विवेक और साधना

लेखक

केदारनाथ

संपादक

किशोरलाल घ० मशरूवाला

रमणीकलाल म० मोदी



नवजीवन प्रकाशन मंदिर
अहमदाबाद–१४

विवेक और साधना

लेखक

केदारनाथ

संपादक

किशोरलाल घ० मशरूवाला

रमणीकलाल म० मोदी



नवजीवन प्रकाशन मंदिर
अहमदाबाद–१४

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाओी देसाओी
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद–१४

पहली आवृत्ति ३०००, १९५३
दूसरी आवृत्ति ३०००

रु० ४.००

नवंबर, १९६०

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाओी देसाओी
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद–१४

पहली आवृत्ति ३०००, १९५३
दूसरी आवृत्ति ३०००

रु० ४.००

नवंबर, १९६०

पितृ-स्मरण

देश और औीश्वर-सम्बन्धी मेरी भावनाओंके कारण जिन्हें संसारमें सबसे ज्यादा कष्ट सहना पड़ा और जिन्होंने पुत्र-वात्सल्यसे सारा कष्ट सन्तोषपूर्वक सहन किया, अुन मेरे तीर्थस्वरूप पिताश्रीका अत्यन्त नम्रता तथा कृतज्ञतापूर्वक स्मरण ।

केदारनाथ

पितृ-स्मरण

देश और ओीश्वर-सम्बन्धी मेरी भावनाओंके कारण जिन्हें संसारमें सबसे ज्यादा कष्ट सहना पड़ा और जिन्होंने पुत्र-वात्सल्यसे सारा कष्ट सन्तोषपूर्वक सहन किया, अुन मेरे तीर्थस्वरूप पिताश्रीका अत्यन्त नम्रता तथा कृतज्ञतापूर्वक स्मरण।

केदारनाथ

प्रकाशकका निवेदन

दूसरी आवृत्ति

'विवेक और साधना' की यह दूसरी आवृत्ति पाठकोंके सामने रखते हुअे हमें हर्ष होता है। पहली आवृत्ति प्रकट होनेके बाद अिसके गुजराती संस्करणकी तीसरी आवृत्ति प्रकट हुअी थी। अुसमें श्री नाथजीने जो सुधार या परिवर्तन किये थे, वे सब अिस आवृत्तिमें दाखिल कर दिये गये हैं।

७–११–'६०

पहली आवृत्ति

अिस पुस्तककी मूल मराठी आवृत्ति छापते समय हमने अपना यह निश्चय जाहिर किया था कि अिसका हिन्दी संस्करण भी हम कुछ समयमें प्रकाशित करेंगे। अिसलिअे श्री केदारनाथजी जैसे अनुभवी और विवेकी सत्पुरुषकी यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुस्तक हिन्दीमें पाठकोंके सामने रखते हुअे हमें बड़ा आनन्द हो रहा है। मराठी और गुजरातीमें यह पुस्तक काफी लोकप्रिय सिद्ध हुअी है। आशा है कि अुसका यह हिन्दी संस्करण और अधिक लोगोंका ध्यान आकर्षित करेगा।

यह पुस्तक वेदान्त, भक्ति, ध्यान, योग-साधना, सिद्धि, साक्षात्कार, तप, वैराग्य आदि विषयोंके जिज्ञासुओं और साधकोंको भी विवेककी कसौटी पर परखा हुआ सच्चा मार्ग बतायगी और सीधा-सादा, सदाचारी और कुटुम्ब, समाज तथा देशकी सेवाका जीवन बितानेके अिच्छुक संसारियोंको भी रूढ़िवाद और अंधश्रद्धासे अूपर अुठाकर विवेकका रास्ता दिखायगी। आज जब कि सारी दुनियामें भौतिक सुख-वादका बोलबाला है और पद-पद पर मानवकी मानवताका ह्रास हो

रहा है, तब अिस पुस्तकके मानव-कल्याणसे प्रेरित लेखकने जगह-जगह अिस बात पर जोर दिया है कि सद्‌गुणोंकी वृद्धि करके मानवताका विकास करना चाहिये। यही मनुष्य-जीवनका सर्वोच्च ध्येय है; यही मानव-जीवनकी चरम सार्थकता है।

गुजरातीसे हिन्दी अनुवाद श्री रामनारायण चौधरीने किया है, जिसे श्रीनाथजी, स्व० श्री किशोरलाल मशरूवाला और श्री रमणीकलाल मोदी आद्योपान्त देख गये हैं। अिसमें गुजरातीकी दूसरी आवृत्तिके सारे सुधार और संशोधन शामिल कर लिये गये हैं। आशा है यह पुस्तक साधक, चिन्तक, अभ्यासी और संसारी सभीके लिअे अुपयोगी सिद्ध होगी।

२–५–'५३

संपादकोंका निवेदन

परम पूज्य श्री केदारनाथजीकी यह पुस्तक पाठकोंके सामने रखते हुअे हमें अनेक तरहसे आत्म-संतोष होता है। हम अिन्हें संक्षेपमें नाथ या नाथजी भी कहते हैं। अिसलिअे आगे अिस छोटे नामका ही हमने प्रयोग किया है। पूज्य नाथजीका बुद्धिपूर्वक सत्संग शुरू किये हमें लगभग ३० साल हो गये हैं। अुनके अुपदेश और समागमसे हमारे विचारोंमें भारी परिवर्तन हुआ; बुद्धिमें स्पष्टता आअी; भावनाओंकी शुद्धि हुअी; जीवनके ध्येय और साधनोंके चुनावमें फर्क पड़ा। क्या करें, कैसे करें, किसलिअे करें, वगैरा प्रश्नोंसे परेशान मन स्थिर हुआ। अुस परेशानीके कारण पैदा हुअी हमारी अपनी व्याकुलताका असंतोष और अुसके परिणामस्वरूप हमारे गृहस्थ-जीवनमें तथा हमारी संस्थाओं और साथियोंके साथ होनेवाले हमारे झगड़े कम हुअे। जिस महात्माकी सेवामें और संस्थामें हम प्रत्यक्ष रूपमें काम करते थे और जिनके जीवन-कार्यको आज भी आगे बढ़ानेकी कोशिश हम कर रहे हैं, अुनकी सेवा और अुनका कार्य करनेकी हमारी योग्यता बढ़ी। अनेक प्रकारके भ्रमों और कल्पनाओंके जालमें फंसने या काल्पनिक भयोंसे डरकर अुनसे छूटनेके लिअे बेकार कोशिश करनेकी झंझट और जंजालसे छूटे। जो चीज जैसी हो अुसे वैसी ही देखनेकी हिम्मत हममें आअी।

*

अिन सारे शुभ परिणामोंके फलस्वरूप हमारे मनमें नाथजीके प्रति गुरुबुद्धि और अत्यन्त कृतज्ञ-बुद्धि हो, यह स्वाभाविक ही है।

फिर भी, भारतवर्षमें आम तौर पर गुरु-शिष्य-संबंधकी जो कल्पना है, अुससे नाथजीका और हमारा गुरु-शिष्य-संबंध कुछ दूसरी ही तरहका रहा है। अिसका श्रेय पूज्य नाथजी और पूज्य गांधीजीको ही ज्यादा है। हमारे बचपनसे प्राप्त परंपरागत संस्कार तो वैसे ही थे, जैसे आम तौर पर हमारे देशके जिज्ञासुओंके होते हैं। हमारी अुम्र ३० वर्षसे कम थी,

बुद्धि परिपक्व नहीं थी; ज्ञान, भक्ति, वैराग्य वगैराके हमारे संस्कार पुराने साम्प्रदायिक ढंगके ही थे। अेक तरफ जिन दो अलग सम्प्रदायोंमें हम पले थे, अुनमें अपनी अलग-अलग बुद्धिके अनुसार हमारी अैसी दृढ़ श्रद्धा थी कि हमारे सम्प्रदायमें धर्म, ज्ञान और मोक्षकी संपूर्ण अथेति है और कोअी दूसरा संप्रदाय, दर्शन वगैरा अुसकी बराबरी नहीं कर सकता। दूसरी तरफ हमारी यह भी भावना थी कि गुरुके बिना ज्ञान नहीं और ज्ञानके बिना मोक्ष नहीं। अिसलिअे हम सम्प्रदायकी चारदीवारीमें ही गुरुको ढूंढ़ते थे। घर, सगे-संबंधी और समाज वगैराको हम स्वार्थके और मिथ्या तथा नाशवान संबंध मानते थे; अुन्हें छोड़कर भाग जानेकी हमारी वृत्ति थी। अिन सब बातोंका हमारे मनमें बड़ा मन्थन चल रहा था। अितनेमें पूज्य नाथजीसे हमारा नये रूपमें परिचय हुआ। यों तो वे हमारे साबरमती आश्रममें शरीक होनेके पहलेसे ही वहां आते-जाते थे, अिसलिअे काका साहबके अेक महाराष्ट्री मित्र और आश्रमके प्रति सद्भाव रखनेवाले सज्जनके रूपमें साधारण तौर पर हम अुन्हें जानते थे। परंतु बादमें हमें अनायास पता चला कि अुन्होंने हिमालयमें कअी वर्ष बिताकर, योग वगैरा साधकर 'आत्म-साक्षात्कार' किया है। यह हमें अुनका नअी दृष्टिसे परिचय हुआ और हम अेक सिद्ध योगी तथा ब्रह्मनिष्ठ पुरुषके नाते अुनके पीछे लगे। अिससे वे चाहते तो हमारे श्रद्धालुपन और शिष्यभावसे लाभ अुठाकर — जैसे कअी शिष्य अपने सद्गुरुको भगवान बनाकर अुनके संप्रदाय-प्रवर्तक बन जाते हैं अुसी तरह — हमें अपने शिष्य बनाकर अेक पंथ चला सकते थे। वे हमें गांधीजीकी प्रवृत्तियोंसे पराङ्मुख भी कर सकते थे। साथ ही गांधीजी भी यदि महात्मापनका अहंकार रखनेवाले और अिसलिअे दूसरे 'महात्मा' को अपनी संस्थामें बरदाश्त न कर सकनेवाले होते, तो अुन्होंने पूज्य नाथजीको अपनी संस्थामें आनेसे रोक दिया होता। क्योंकि यह बात सत्याग्रह आश्रममें छिपी नहीं रही थी कि पूज्य नाथजी और हम दोनोंमें से पहल करनेवाले किशोरलालके बीच गुरु-शिष्य जैसा सम्बन्ध हो गया है। अिसके परिणामस्वरूप आश्रमके दूसरे भी कअी लोग अुनका समागम करने लगे थे और अुन सबके बारेमें कुछ समय तक अैसा

महात्मापनके भानका अभाव था, अिसलिअे अुन्हें कभी नाथजीसे अीर्ष्या नहीं हुअी। अुलटे अुन्हें यह सोचकर आश्वासन मिला कि अेक अैसे सत्पुरुष अुनके पास आते रहते हैं, जो अुनकी गैरहाजिरीमें आश्रमवासियोंके मार्ग-दर्शक बन सकेंगे। अुन्होंने सदा ही नाथजीके साबरमती आने-जाने और रहनेको प्रोत्साहन दिया। दांडी-कूंचके समय गांधीजीने अुनसे आश्रम पर निगाह रखने और बार-बार वहां आते रहनेका वचन लिया था। दूसरी ओर नाथजीको गुरुपनके अहंकारने कभी छुआ ही नहीं था। अिसलिअे जो भी भाअी-बहन आश्रमका या और कोअी सार्वजनिक काम करते, अुन्हें अुससे हटाने या शिथिल करनेका अुन्होंने कभी प्रयत्न नहीं किया। अुलटे अैसी कोशिश की जिससे अुनकी काम करनेकी योग्यता बढ़े।

अिसका कारण यह नहीं था कि विनोबाजी, काकासाहब वगैराकी तरह पूज्य नाथजीका भी गांधीजीके साथ अैसा सम्बन्ध था, जिससे अुन्हें गांधीजीके कार्यकर्ता या साथी माना जा सके। वे अेक स्वतंत्र व्यक्ति थे। कुछ बातोंमें गांधीजीसे भिन्न दृष्टि भी रखते थे और अैसे विचार भी रखते थे, जो गांधीजीको मंजूर न थे। फिर भी दोनोंके अंतिम आशय अुच्च, महान और समान होनेके कारण हरअेक व्यक्ति पर नाथजीके समागमका परिणाम गांधीजीकी प्रवृत्तियोंके लिअे मददगार ही साबित हुआ।

*

पूज्य नाथका महाराष्ट्रमें भी अेक मित्र-मंडल था। जैसा अुन्होंने अपने 'आत्म-परिचय' में बताया है, वे युवावस्थामें व्यायाम-सम्बन्धी और क्रांतिवादी हलचल करते थे। अुसके कारण और कौटुम्बिक सम्बन्धोंके कारण यह मित्र-मंडल बना था। अुनमें से बहुतोंको बचपनसे नाथजीका परिचय और अुनकी योग्यताका अनुभव था और वे भी अुनका समागम करनेको अुत्सुक रहते थे। अिन सबमें कितने ही अैसे हैं जो पू० नाथको लगभग अपने गुरु जैसे मानते हैं, फिर भी अुन्हें हम नामसे भी नहीं जानते और न वे ही हमें पहचानते हैं। कभी अनायास किसी जगह भेंट हो जाने पर ही पहला परिचय होता है और पता चलता है कि वे नाथजीको कअी सालसे पहचानते हैं।

अिस प्रकार नाथजीका सत्संग हरअेकने स्वतंत्र रूपमें ही किया है। हम दोनोंके बारेमें भी कुछ हद तक तो अैसा ही हुआ। हम दोनों साबरमती आश्रमके ही सेवक थे। दोनों अुनकी निगरानीमें कुछ-न-कुछ ध्यान वगैराका अभ्यास करते थे। फिर भी बहुत वर्षों तक हम अेक-दूसरेके साथ होनेवाले पत्र-व्यवहार, चर्चाके विषयों वगैराके बारेमें बहुत तफसीलसे नहीं जानते थे। तीनोंमें से किसीका कुछ भी गुप्त नहीं था, परन्तु तीनोंमें किसीका स्वभाव अैसा नहीं था कि बेकार कुतूहलका भाव रखकर यह जानने या बतानेकी कोशिश करे कि किसके साथ क्या चर्चा हो रही है। गुप्तता रखनेका हमारा कोअी आशय ही नहीं था, अिसलिअे अनायास और धीरे-धीरे अेक-दूसरेके साथकी चर्चाओं, पत्र-व्यवहार वगैराकी जानकारी हमें होती गअी। यही बात पूज्य नाथके साथ समागम करनेवाले और लोगोंके बारेमें भी हुअी। सहज ही अुनके कुछ सम्भाषणों, चर्चाओं और सार्वजनिक कार्योंमें मौजूद रहनेके और सबके लिअे अुपयोगी सिद्ध होनेवाले पत्र-व्यवहार तथा पूज्य नाथकी नोटबुकें वगैरा पढ़ने और सुननेके अवसर आये। हमारे अपने जीवनको जो लाभ हुआ था, अुसका हमें प्रत्यक्ष अनुभव था और अिन समागम करनेवालोंके सन्तोषको भी हम देख सकते थे। कुछ लोगोंकी कठिनाअियों और शंकाओंका समाधान हम न कर पाते, तो हम अुन्हें नाथजीके पास भेजते; और अधिकतर वे न केवल अुनसे सन्तुष्ट ही होते, बल्कि बादमें अुन्हें कभी छोड़ते ही नहीं थे।

*

अिन सब चर्चाओं, वार्तालापों वगैराके नोट रखनेकी रमणीकलालको आदत है। किशोरलालको अैसी आदत नहीं। परन्तु पूज्य नाथसे अुन्होंने जो लाभ अुठाया ह, अुसे पचाकर वे पाठकोंके सामने रखते ही रहते हैं। पाठक यह पुस्तक पढ़ते-पढ़ते ही देख लेंगे कि अिसके बहुतसे विचार विस्तारसे या संक्षेपमें किशोरलालकी 'तालीमकी बुनियादें', 'जीवन-शोधन', 'संसार और धर्म'* वगैरा पुस्तकोंमें और कअी लेखोंमें व्यक्त हो चुके हैं। परन्तु वे पूज्य नाथके ढंग पर या अुनका हवाला देकर नहीं, बल्कि किशोरलालके अपने ढंग और अपनी जिम्मेदारी पर व्यक्त किये गये हैं।

* तीनों पुस्तकें नवजीवन ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित।

स्वतंत्र विचारकके रूपमें किशोरलालकी ख्याति है, परन्तु अुन्होंने अपनी पुस्तकोंकी अर्पण-पत्रिका और प्रस्तावना वगैरामें अपने विचारोंके लिअे पूज्य नाथका अृण स्वीकार किया है। वह अृण कितना बड़ा है, यह नाथजीकी अिस पुस्तकको पढ़कर मालूम हो जायगा। साथ ही किशोरलालके विचारों पर गांधीजीकी भी छाप है। और वह अितनी ओतप्रोत है कि अुन रचनाओंमें गांधीजी, नाथजी और स्वयं किशोरलालकी बुद्धिका कितना हिस्सा है, अिसका विश्लेषण करना मुश्किल है।

परन्तु रमणीकलालने अपनी नोट लेने, पत्र-व्यवहार सुरक्षित रखने वगैराकी आदतके कारण अिस तरहका काफी संग्रह कर रखा था। पू० नाथके पास भी कुछ नोट, पत्र वगैराका संग्रह था। अुन सबको व्यवस्थित रूपमें जमाकर अुनमें से छंटनी वगैरा करनेका रमणीकलालमें अुत्साह था।

*

कुछ वर्षोंसे हमें लग रहा था कि पू० नाथके विचार पुस्तकबद्ध हो जायं तो अच्छा हो। अुनके समागममें आनेवाले दूसरे मित्रोंकी भी अैसी अिच्छा थी। हालांकि हम मानते हैं कि सत्पुरुषोंका प्रत्यक्ष सम्पर्क ही जीवनमें अधिक और कअी तरहसे लाभदायी होता है, फिर भी जिनके लिअे प्रत्यक्ष सम्पर्क संभव न हो अुनके लिअे और सम्पर्कसे प्राप्त किये हुअे ज्ञानका स्मरण ताजा करनेके लिअे अुनके विचार पुस्तकरूपमें हों, तो वे भी बड़े अुपयोगी हो सकते हैं। हर रोजके पठन-मननमें अुनका अुपयोग हो सकता है। कुछ अैसे ही विचारोंसे प्रेरित होकर १९४२ में किशोरलालके जेलके दिनोंमें हमारे बीच हुअे पत्र-व्यवहारमें यह कल्पना अुत्पन्न हुअी कि पूज्य नाथके विचारोंकी टिप्पणियां, पत्र वगैरा जो कुछ भी अिकट्ठा किया जा सके अुसे जुटाकर प्रकाशित किया जाय। और अिसके लिअे पूज्य नाथकी स्वीकृति लेकर अुसका पहला कच्चा संग्रह तैयार किया गया। फिर, किशोरलालके छूटनेके बाद अुनके साथ संग्रहकी जांच करने पर अैसा लगा कि ये टिप्पणियां, पत्र वगैरा कहीं संक्षेपमें, कहीं केवल सूत्र रूपमें और कहीं-कहीं पूर्वापर सम्बन्ध न जाननेवालेको कुछ भी बोध न हो अिस रूपमें होनेके कारण अुन्हें ज्योंके त्यों छापनेसे पूरा लाभ नहीं हो सकता। अिसलिअे पहले तो हमने जहां-जहां अस्पष्टता थी, वहां-वहां

पूज्य नाथसे स्पष्टता करनेवाले परिशिष्ट लिखवाने शुरू किये। परन्तु अिस सारे साहित्यमें अितने विविध और फिर भी आपसमें गुंथे हुअे विषय थे कि अुन्हें व्यवस्थित करनेकी कोशिशमें क्लिष्टता बढ़ती नजर आयी। अिस बारेमें पूज्य नाथके साथ हुअी चर्चामें अुन्हें लगा कि अिन टिप्पणियों और पत्रों वगैराकी व्यवस्थामें न फंसकर अुनके महत्त्वपूर्ण विषयों पर वे संवाद या प्रश्नोत्तरके रूपमें लेख तैयार करें। तदनुसार अुन्होंने थोड़े किये भी। अुनमें से कुछ अुन वर्षोंके 'शिक्षण अने साहित्य' गुजराती मासिकमें प्रकाशित भी हुअे हैं। अिसी बीच किशोरलालकी 'संसार अने धर्म' (गुजराती) पुस्तक छप रही थी। अुसकी पूर्तिके रूपमें कुछ लिखनेकी हमने अुनसे प्रार्थना की। अुसमें अुन्होंने तीन अध्याय लिखे, जो अुस पुस्तकमें आ ही गये हैं।

परन्तु अधिक विचार करने पर संवादों वगैराके ढंगका यह निरूपण पूज्य नाथको संतोषप्रद नहीं मालूम हुआ। अिसलिअे यह विचार हुआ कि दुबारा मेहनत करनी पड़े तो हर्ज नहीं, लेकिन अपने विचारोंको समग्र और व्यवस्थित रूपमें भाषाबद्ध किया जाय। हमने पूज्य नाथसे दो बार तो मेहनत करा ली थी। अुनका हरअेक विषयकी गहराअीमें जानेका स्वभाव, अुसे सुन्दर अक्षरोंमें मराठीमें अपने हाथसे लिख डालनेकी लगन, अनेक मुलाकातियोंको दिया जानेवाला समय, समय-समय पर बढ़ जानेवाली खुजली (अेग्ज़िमा) का अुपद्रव, बीच-बीचमें प्रवास, सार्वजनिक कार्य, हाथसे ही खाना बनाने और कपड़े धोने वगैराकी व्यवस्था, बीमारोंकी सेवा अुनका स्वभाव-सिद्ध व्यवसाय होनेके कारण सगे-संबन्धियों और स्नेहियों वगैराकी आ पड़नेवाली शुश्रूषायें और चिन्तायें, और छपवानेकी दृष्टिसे लिखनेका मुहावरा न होनेके कारण सिद्धहस्त लेखकोंकी अपेक्षा अिसमें लगनेवाला अधिक समय — अिन तमाम कारणोंसे अिस तरह दुबारा लिख डालनेमें अुन्हें बहुत परिश्रम पड़ा और समय भी ज्यादा लगा। वे मराठीमें लिखते, साफ करते, अुसका गुजराती अनुवाद किया जाता और फिर वे अुसे देखते। अिन बातोंमें काफी समय चला गया। अुन्हें खूब मेहनत भी अुठानी पड़ी। परन्तु चूंकि अुन्हें अिसकी अुपयोगिताका विश्वास हो गया था, अिसलिअे अैसी प्रवृत्तिके बारेमें

किसी समय अुन्हें जो संकोच होता था वह अुन्होंने छोड़ दिया और सारा परिश्रम खुशीसे किया। अुसी परिश्रमका फल यह पुस्तक है।

अिसमें आये हुअे विचार अेक तरहसे स्वतंत्र रूपमें ही लिखे गये हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि टिप्पणियों, पत्रों वगैराका जो मसौदा पहले बनाया गया था, अुसीकी यह नअी व्यवस्था है। अुन सबमें बीज-रूपमें तो ये विचार बिखरे हुअे पड़े ही हैं, परन्तु जिस रूपमें अुनका अिसमें विकास हुआ है, अुस रूपमें वे पुरानी टिप्पणियोंमें नहीं पाये जायंगे। यह कहनेमें हर्ज नहीं कि टिप्पणियों और पत्रों वगैराको अलग रखकर ही यह पुस्तक लिखी गयी है। जैसे-जैसे विचार आते गये वैसे-वैसे लिखे गये हैं और सब कुछ लिखे जानेके बाद अिसका संकलन किया गया है। कुछ महत्त्वके पत्रोंका अिसमें समावेश किया गया है। अिसलिअे अेक प्रकारसे हरअेक अध्याय स्वतंत्र है। परन्तु सबके पीछे कुछ सैद्धान्तिक विचारोंकी मजबूत बुनियाद है।

*

ये मौलिक सिद्धान्तरूप विचार क्या हैं, अिसका थोड़ा मनन कर लेना पाठकोंके लिअे सहायक होगा।

पहले तो अिसका थोड़ा स्पष्टीकरण करना ठीक होगा कि यह पुस्तक किसके लिअे है। चूंकि समाजमें नाथजीका परिचय हमारे गुरुके रूपमें हो गया है, अिसलिअे साधारण तौर पर पाठकोंको यह खयाल होना संभव है कि यह पुस्तक मुख्यतः वेदान्त-ज्ञान, भक्ति, ध्यान, योग-साधना, सिद्धि, साक्षात्कार, तप और वैराग्य आदि विषयोंका निरूपण करती होगी और अुस मार्गके साधकों, जिज्ञासुओं, मुमुक्षुओं और अधि-कारियोंके कामकी ही होगी। अैसी कल्पना की जा सकती है कि जो किसी प्रकारकी खास साधना या मोक्षकी अिच्छा या संसारका त्याग करनेकी ख्वाहिश नहीं रखते; या चार देह, पंच कोष, चौबीस तत्त्व वगैराकी चर्चाओंमें दिलचस्पी नहीं लेते; मन, बुद्धि, विज्ञान आदिकी भूमिकाओं, तरह तरहकी समाधि, आनंद, साक्षात्कार वगैरा प्राप्त करनेकी अभिलाषा नहीं रखते; बल्कि अितनी ही सद्वृत्ति रखते हैं कि समाजमें किस तरह सदाचारसे रहें और चलें, गृहस्थाश्रम और जीवनके फर्ज

अदा करें, जनसेवा करें, अच्छे वातावरणका सेवन करें और धीरे-धीरे अपनी योग्यता विविध प्रकारसे बढ़ायें, अुनके लिअे शायद यह पुस्तक अुपयुक्त न हो। अिसलिअे अिन दोनों प्रकारके जिज्ञासुओंको बता देना ठीक होगा कि यह पुस्तक दोनोंके लिअे है। पहले वर्गके साधकोंको यह पुस्तक अनेक भ्रमों, कल्पनाओं, गूढ़ तत्त्वों वगैरामें फंसनेसे बचायेगी, जितने साधन-मार्गका जिस प्रकार और जिस दृष्टिसे अभ्यास करना जरूरी है, अुसका स्पष्ट मार्गदर्शन करेगी तथा जो दूसरे वर्गके सत्संगार्थी हैं, अुनकी विवेक-बुद्धिको जाग्रत करके अुसका अुपयोग करना सिखायेगी और स्वयं अपने साथ तथा कुटुम्ब और समाजके साथ शुद्ध सम्बन्ध रखना और कर्तव्य पालन करना सिखायेगी। अिसमें कोअी विषय अैसा नहीं है जिसे केवल पू० नाथ पर या पू० नाथके माने हुअे किसी शास्त्र पर श्रद्धा रखकर ही मान लेना पड़े, या जो पू० नाथ या किसी औरको अपना तन-मन-धन अर्पण करके ही प्राप्त किया जा सकता हो, या जो किसी गूढ़ भूमिका पर आरूढ़ होनेके बाद ही समझमें आ सकता हो। अिसलिअे जिस किसीमें सन्मार्ग पर चलनेकी थोड़ी भी वृत्ति है या जिसे किसी साधन-मार्गका प्रयत्न करनेकी अभिलाषा है, अुन दोनोंके लिअे यह पुस्तक मार्गदर्शक होगी। अिसमें छात्र-छात्राओं, पति-पत्नी, नवदंपति, समाजसेवक वगैरा सभीको स्पर्श करनेवाले विषयों पर विचारप्रेरक और अुत्साहवर्धक अध्याय मिलेंगे। अितना अिस पुस्तकके बारेमें निश्चयपूर्वक कहनेमें हमें कोअी संकोच नहीं होता।

बहुत संभव है कि तरह-तरहके धर्मों, सम्प्रदायों, रूढ़ियों और श्रद्धाओं वगैराके बलवान संस्कारोंमें पले हुअे पाठकोंको यह पुस्तक कुछ आघात पहुंचाये। कुछ अैसे भी विचार अुसके पढ़नेमें आयेंगे, जिनकी अुसने आशा न रखी हो और अुनसे कदाचित् प्रारंभमें अुसे असंतोष हो, अुसका जी दुखे और मन संशयके चक्करमें पड़कर घबरा जाय। हम खुद पू० नाथके साथ अपने प्रारंभिक परिचयमें काफी घबराहटमें पड़े थे। अपने संप्रदायोंके बारेमें हमारी भक्ति और श्रद्धा जितनी दृढ़ थी, अुतने ही तीव्र आघात भी हमें लगे। जब तक हम यह नहीं तय कर सके कि नाथजीके विचार सही हैं या हमारे सम्प्रदायके मत सही हैं, तब

तक अुस परेशानीमें हमने कितनी ही बार आंसू गिराये। परन्तु अन्तमें हमने निःशंकतासे प्राप्त होनेवाली प्रसन्नता और स्थिरता भी अनुभव की। अिसलिअे हम यह कह सकते हैं कि अगर पाठकमें निडर होकर सत्यको जानने और अुस पर चलनेका निश्चय और हिम्मत होगी, तो वह अिन आघातों और संशयोंको पार कर लेगा और विवेकयुक्त निश्चय प्राप्त करनेका संतोष अनुभव करेगा।

*

हमारे देशको श्रेष्ठ आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान और संस्कृति निर्माण करनेका गौरव प्राप्त है। नीति और तत्त्व-विचारके क्षेत्रमें भारतके विचारकोंने जो स्वतंत्रता दिखाअी है और पराकाष्ठा की है, वह दूसरे सब देशोंसे बढ़ी-चढ़ी है। यह दावा हमींने खुद अपने लिअे नहीं किया है, परन्तु दुनियाके सब देशोंके महान तत्त्ववेत्ताओंने अिसे स्वीकार किया है। स्वाभाविक रूपमें ही हमें अिसके लिअे अभिमान और धन्यता अनुभव होती है।

फिर, हमारी यह भी ख्याति है कि भारतवर्षके लोग संसारके सब लोगोंकी अपेक्षा अधिक धर्मपरायण और धर्मको दुनियाकी भौतिक वस्तुओं और बड़प्पनसे ज्यादा महत्त्व देनेवाले हैं। संसारके सब विषयों और कर्मोंकी कीमत हम केवल भौतिक लाभ-हानिके आधार पर नहीं आंकते, परन्तु हमारे लिअे यह कहा जाता है कि हम अुनके आध्यात्मिक, धार्मिक या नैतिक परिणामोंके अनुसार अुनका मूल्यांकन करते हैं। हमारे प्रति दुनियावालोंका यह जो खयाल है, अुसका भी हमें गर्व होता है।

अिस प्रकार हमें अपनी संस्कृतिके बारेमें प्राचीनता और श्रेष्ठताका और अपनी धर्म-भावनाका तीव्र रूपमें भान है, और अिस भानका नशा भी है। अिस नशेके जोरमें हम यह भी कह डालते हैं कि अैसे मामलोंमें तो हम जगतके गुरु हैं; दूसरा कोअी देश हमें कुछ नया सिखा या दे ही नहीं सकता; अुलटे, दूसरी संस्कृतियोंमें भी कुछ लेने लायक है, यह खयाल ही हममें घुसा हुआ बड़ा भारी दोष है; जो कुछ बाहरसे आ गया है, अुसे निकाल देनेकी हमारी कोशिश होनी चाहिये।

अपनी दृष्टिमें हमारी अितनी अधिक महिमा होने पर भी राष्ट्र या कौमकी हैसियतसे हमारी कैसी दयाजनक और कंगाल हालत है! कैसा परतंत्रता और गुलामीसे भरा हुआ हमारा सदियोंका अितिहास है! कितनी विषमता, दरिद्रता, संकुचितता, भेददृष्टि और अबंधुत्व हममें है! कितने छोटे-छोटे अेक-दूसरेसे सदा लड़ते रहनेवाले राज्य, पंथ और जात-पांत हैं। बलवानके हाथों दुर्बल पर कैसा अत्याचार, दीन और स्त्री-जातिका कैसा दलन युगों तक निरन्तर होता रहा है!

अगर बुद्धि, संस्कारिता और धर्म-भावनामें हम बहुत अूपर अुठे और आगे बढ़े हुअे हैं, तो हमारा सार्वजनिक जीवन — राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, स्वास्थ्य वगैरा सभी क्षेत्रोंमें — अितना ज्यादा कंगाल क्यों है? धर्म, अर्थ और कामका बहुत स्पष्ट और सूक्ष्म दर्शन पाये हुअे समाजका अितना पतन हो ही कैसे सका? शायद यह समझमें आ सकता है कि न सोची हुअी आपत्ति आ पड़नेके कारण थोड़े वर्षके लिअे दुःखकी लहर दौड़ जाय। परन्तु सैकड़ों बरस तक ह्रास ही होता रहे और करोड़ोंकी जनसंख्या, अर्थप्राप्तिके कुदरती साधनोंकी बहुतायत और बुद्धिमान और वीर स्त्री-पुरुषोंकी अटूट परम्पराके बावजूद हमारा देश अुन बेड़ियोंको तोड़ न सके, अुलटे अेकके बाद अेक नये-नये विजेताओंसे पादाक्रांत होता रहे — यह संभव ही क्योंकर हुआ? किस पापसे हम पराभूत हुअे अथवा किस सत्यका लोप करनेसे हम शापित बने और हजारों वर्ष तक दुःखके सागरमें डूबते ही गये? बीच-बीचमें अीश्वरके अवतार जैसे पराक्रमी पुरुषों, अीश्वरके साथ अेकता साधनेवाले ब्रह्मनिष्ठ महात्माओं और परमकृपालु संतवृत्तिके पुरुषोंके बार-बार प्रयत्न करने पर भी, जैसे रबरकी पट्टी अुसे खींचकर रखें तभी तक बढ़ी हुअी दिखाअी देती है पर छोड़ते ही सिकुड़ जाती है वैसे ही, हमारे लोग अैसे अैसे अुद्धारकोंकी जीवन-लीला समाप्त होते ही फिरसे विपत्ति और दुष्टताके शिकार ही बनते रहे, अैसा कौनसा पाप हमारे जीवनसे चिपट गया था और आज भी चिपटा हुआ लगता है?

कुछ लोग कहते हैं कि हम धर्मको जीवनमें बहुत महत्त्वका स्थान देनेवाले होनेके कारण ही संसारमें पीछे रह गये हैं और आगे नहीं बढ़

सकते। अगर हम धर्मको गौण बना दें, तो सांसारिक दृष्टिसे बहुत प्रगति कर सकते हैं। क्या यह सच है? संभव भी है? अगर यह कहा जाय कि धर्म अपने अनुयायियोंके बड़े-बड़े साम्राज्य जीतने और स्थापित करनेमें, करोड़पति बननेमें, अैश-आराम और भोग-विलासमें डूबे रहनेमें बाधक होता है, तो यह समझमें आ सकता है। परन्तु क्या धर्म मनुष्यके अुचित अर्थ और कामका भी शत्रु हो सकता है? क्या धर्म अपने अनुयायीको अितना कंगाल बना सकता है कि वह दाने-दानेको मोहताज हो जाय? क्या वह अुसे अैसा गरीब और कायर बना सकता है कि कोअी भी डरा-धमका कर अुसकी मेहनतसे प्राप्त की हुअी और किफायतशारीसे बचाअी हुअी वस्तु अुससे छीन कर ले जाय? क्या धर्म अुसे अितना भोला और मूर्ख रख सकता है कि वह सहज ही किसीसे भी धोखा खा जाय? क्या वह अपना पालन करनेवालेको अितना अंधश्रद्धालु, मूर्ख और लालची बना सकता है कि वह किसीकी मामूली करामातोंसे भुलावेमें आ जाय? अगर अैसा ही परिणाम आये, तो या तो हमारे अिस खयालमें भ्रम है कि हम धर्मपरायण हैं या धर्म समझकर हम जिससे चिपटे हुअे हैं वह धर्म नहीं बल्कि कोअी भ्रम ही है। या तो 'धर्मादर्थश्च कामश्च' (धर्मसे ही अर्थ और काम सिद्ध होता है) यह व्यास-वचन गलत है या हमारा यह अभिमान गलत है कि हम धर्मपरायण लोग हैं।

कुछ लोग धर्म और अीश्वरका अभेद करके धर्मके बारेमें जो शंका अूपर बताअी गअी है, अुसे अीश्वरके अस्तित्व-विषयक शंकाके रूपमें प्रगट करके पूछते हैं कि यदि अीश्वर है तो अैसे अन्याय, दुःख वगैरा क्यों होते हैं? अीश्वर यह सब कैसे देख सकता है? अिसलिअे या तो अीश्वर है ही नहीं या जिसे हम अीश्वर मान बैठे हैं अुससे वह कोअी दूसरी ही शक्ति है।

अिस प्रकार अेक ओर धर्म अथवा अीश्वर और दूसरी ओर अर्थ-कामके बीचका विरोध बहुतोंको परेशान करता रहा है। धर्म, भक्ति, ज्ञान, अध्यात्म-शास्त्र, दर्शन वगैराके ग्रंथोंमें अिसका स्पष्टीकरण नहीं मिलता। अुनमें योगाभ्यासों, सिद्धियों, अगम्य शब्दों, तत्त्वों, तत्त्वोंके गणितों और पंचीकरणों वगैराकी बहुतसी अैसी बातें हैं, जिनमें पड़नेका

मामूली आदमीका बूता नहीं, जिनका वह खुद प्रयोग या अभ्यास करके अपने अनुभवसे प्रमाण नहीं जुटा सकता। कभी न मिटनेवाले आनन्द और कल्पनामें न आ सकनेवाले प्रकाशों और किरणोंका अुनमें अुल्लेख है। हजारों वर्षकी समाधियों और मृत्युके बाद प्राप्त होनेवाले स्थानोंकी और कल्प-कल्पमें होनेवाले राम-कृष्णादि अवतारोंकी कथाअें अुनमें हैं। स्वप्नमें स्वप्न, अुसमें फिर स्वप्न और अुसमें भी फिर स्वप्न, ब्रह्माण्डमें खण्ड, खण्डमें अणु, अुस अणुमें दूसरे ब्रह्माण्डों वगैराकी अद्‌भुत कथाअें भी अुनमें हैं। दुःखके आत्यंतिक नाश और सुखके आश्वासन हैं और यज्ञकर्मों तथा विधियोंके सूक्ष्म नियम हैं। परन्तु अुनसे अिसका बोध नहीं होता कि भारतवर्षके लोगोंको अपने अति दारुण दुःखोंका नाश करने और साधारण सुखी और स्वाभिमानपूर्ण जीवन-यात्राके लिअे पुरुषार्थ करनेकी प्रेरणा देनेवाला धर्म और संस्कृति कौनसी है।

दर्शनकारोंने तो अितना कहकर कि जगत दुःखरूप ही है और हमेशा रहेगा और जीवन क्षणभंगुर होनेके कारण अुतना दुःख सह लिया जाय, जो दुःख कम किये जा सकते हैं अुनके निवारणका प्रयास करनेका भी विचार नहीं किया। अिस प्रकार कोअी यह नहीं बताता कि हमारे धर्म-विचार और संस्कृति-विचारमें क्या खामियां पैदा हो गअी हैं, वे किस तरह पैदा हुअी और टिकी हुअी हैं।

हमारे खयालसे अिन अुलझनोंका हल ढूंढ़नेवालेके लिअे यह पुस्तक अत्यन्त सहायक होगी। यह अुसकी विचार-शक्तिको नवीन प्रेरणा देगी, अुसकी बुद्धिको स्वतंत्र बनायेगी और अुसके मतोंका संशोधन करेगी। यह व्यक्ति और समाजका अन्योन्याश्रय सम्बन्ध बताती है; व्यक्तिका समाजका सेवक बनने और अुसके प्रति कर्तव्य पालनेका जो धर्म भुला दिया गया है और जिसका विकास रुक गया है, अुसकी तरफ सबका ध्यान खींचती है। पशुके जैसे ही बालबच्चोंका पालन-पोषण करनेवाले, कामादि वासनाओंसे प्रेरित होनेवाले और अुनके लिअे धन कमाते हुअे भी गृहस्थाश्रमके धर्मोंके प्रति विमुख बने हुअे भोगपरायण तथा परंपरागत धर्मभक्तिपरायण संसारी लोगोंको यह झकझोर कर जाग्रत करती है। जितना कम समझमें आये अुतने ही ज्यादा जोरसे पकड़ रखनेवाली

श्रद्धाको यह पुस्तक विवेककी दृष्टि देनेका प्रयत्न करती है। साथ ही जिन्हें योग, भक्ति, कर्म या ज्ञानके मार्गोंका अध्ययन और साधना करनेकी रुचि है, अुन्हें अिनकी विवेकयुक्त रीतियां बताती है, अुन्हें प्रेरणा भी देती है और साथ-साथ अुन सब साधनाओंका हेतु और साध्य भी स्पष्ट कर देती है।

चार-सौ पन्नोंकी पुस्तकमें अितनी सारी वस्तुओंका समावेश होनेके कारण वह अैसी नहीं है, जिसे अेक ही बार पढ़कर ताकमें रख दिया जा सके। अिसमें कभी-कभी पुनरुक्ति भी मालूम होगी। परन्तु पुनरुक्ति जैसे वाक्योंकी भी पाठक तुलना करेगा, तो देखेगा कि हरअेक वाक्यमें किसी-न-किसी नये भाव या विचार पर पाठकका ध्यान खींचा गया है, केवल वाचालताकी पुनरुक्ति नहीं है।

*

पाठकोंको यह जाननेकी स्वाभाविक ही जिज्ञासा हो सकती है कि पू० नाथकी अैसी पुस्तक लिखनेकी योग्यता क्या है। हमें पहले यह अिच्छा हुअी कि नाथजीके जीवनकी तफसील खुद अुनसे और अुनके बालमित्रों, कुटुम्बीजनों वगैरासे प्राप्त करके संक्षिप्त चरित्र लिखा जाय। परन्तु अुसमें कुटुम्बीजन तो विविध घरेलू बातें ही बता सकते हैं। अुन्हें अिस तरह सजाया जा सकता है कि वे पढ़नेमें अच्छी लगें। परन्तु पू० नाथकी यह राय रही कि जिन तफसीलोंका समाजके कल्याणके लिअे कोअी खास अुपयोग न हो, अुन्हें देनेकी क्या जरूरत और अुन्हें जुटानेके लिअे समय और श्रम लगानेकी क्या आवश्यकता? जिन बातोंके जाननेसे पाठकको या समाजको लाभ हो सकता है और जो बातें पुस्तक-को पढ़ने, समझने या यह जाननेके लिअे अुपयोगी हों कि किस तरह पू० नाथ अिन विचारों पर आये, वे ही दी जायं तो ठीक होगा। अैसी बातें तो वे खुद ही बता सकते हैं। मित्रों, कुटुम्बीजनों वगैरासे अुनकी साधनाओं, अेकान्तके अभ्यासों, विविध गुरुओं वगैराके समागमों और मनके मन्थनों वगैराकी तफसील नहीं मिल सकती। अुनके खयालसे काकासाहब, स्वामी आनन्द वगैरा जैसे कुछ मित्र भी, जो अुनके साधना-कालके दरमियान ही परिचित हुअे, अुन्हें केवल अेक व्याकुल साधकके

रूपमें ही बता सकते हैं। अुनके अन्तरमें भारी अुथल-पुथल थी, कालांतरमें वह शांत हो गअी और शांत हो जानेके बाद अुन्होंने अपने सब मित्रोंको बता दिया कि अुनकी व्याकुलता मिट गअी है और खोज पूरी हो गअी है। परन्तु क्या व्याकुलता थी और वह कैसे मिटी, अिस बारेमें चर्चा करनेका मौका अुन्हें अिन मित्रोंके साथ भी नहीं मिला। अिसलिअे वे खुद जितना कह सकते थे अुतनेसे हमें सन्तोष मान लेना था। अिस बारेमें कुछ व्यक्तिगत जानकारी आवश्यक थी। यह बात अुन्होंने मान ली और आम तौर पर अपने बारेमें न कहनेका संकोच छोड़कर अपना परिचय स्वयं लिख देना मंजूर कर लिया। अिस प्रकार पुस्तकके साथ अुनका व्यक्तिगत परिचय भी अुन्हींके हाथों लिखा हुआ पाठकको प्राप्त हो जाता है। हम आशा रखते हैं कि अुसमें हम अपने व्यक्तिगत परिचयसे थोड़ा और जोड़ दें, तो पाठकको अनुचित नहीं लगेगा।

पू० नाथसे हमारा पहला परिचय हुआ, तब अुनकी अुम्र चालीससे कम थी और अूंचे व्यायामसे कसे हुअे मजबूत शरीरके कारण अुम्र जितनी थी अुससे भी कम ही दिखाअी देती थी। अब वे लगभग ७० वर्षके हो गये हैं, अिसलिअे कुदरती तौर पर ही आकृतिमें बहुत फर्क पड़ गया है। कअी बीमारियों और कठोर जीवनके कारण अितनी शक्ति न रहने पर भी असली मजबूत काठी तो कोअी भी देख सकता है।

पू० नाथकी नैसर्गिक प्रकृति क्षत्रियकी कही जायगी। कोअी आंखें लाल करके अुन्हें डरा नहीं सकता; वे अैसे नहीं जो किसीके सामने निस्तेज हो जायं या दब जायं। अीश्वरभावका — यानी दूसरोंको अनुशासनमें रखनेकी शक्तिका — आवश्यकतानुसार अुपयोग करना अुन्हें आता है। जरूरत हो तो नियमोंका पालन करानेमें वे कठोर बन सकते हैं। अेक बलवान सेना खड़ी करके अंग्रेज सरकारसे लड़ाअी छेड़कर देशको स्वतंत्र करनेकी युवावस्थाकी महत्त्वाकांक्षाअें होनेके कारण सेनापतिके आवश्यक गुण अुन्होंने अपनेमें प्रयत्नपूर्वक बढ़ाये भी थे। यानी, साथियों पर रोब रखना, अपनी योजनाओं या अपने किये हुअे कामोंके बारेमें जहां तहां बातें न करना, बल्कि अपने हाथके नीचे काम करनेवाले मनुष्योंमें से भी जिसको जितनी जरूरत हो अुतनी ही बात कहना।

कके कामकी बात खसे न कहना, खके कामकी बात कसे न कहना। किसीने सवाल पूछा अिसलिअे अुत्तर देना ही चाहिये सो बात नहीं; अुत्तर देने जैसी बात लगे तो ही कहना और पूछा जाय अुतना ही कहना।

यह स्वभाव तीस वर्ष पहले था, परन्तु अब वह स्वभाव रखनेका प्रयोजन न रह जानेके कारण बहुत फर्क पड़ गया है। फिर भी अुसकी झलक आज भी दिखाअी देती है। अिस स्वभावके कारण शुरूमें हमें अपनी अुलझनें दूर करानेमें कुछ कठिनाअियां भी मालूम होती थीं। अुनका शासन भी बड़ा कड़ा लगता था। और अपने आप तो वे शायद ही कुछ कहते थे। अिसलिअे अिस पुस्तकमें जो विचार बड़ी स्पष्टतासे या जोर देकर कहे गये हैं, वे खुद हमें तो वर्षोंके समयमें छुटफुट ढंगसे ही मालूम हुअे हैं; और कुछ तो अंतिम कुछ वर्षोंमें ही अधिक स्पष्ट हुअे हैं।

*

ग्रंथोंमें ओश्वरकी गुणरूपमें कअी प्रकारकी अुपासना बताअी गअी है, जैसे सत्यरूपमें, प्रेमरूपमें, आनन्दरूपमें, अहिंसारूपमें, सौंदर्यरूपमें, ज्ञानरूपमें वगैरा वगैरा। पू० नाथने ओश्वरकी साधना करुणा-मूर्तिके रूपमें की है। करुणाशीलता अुनके स्वभावका सबसे बढ़ा-चढ़ा अंग कहा जा सकता है। संसारमें स्वार्थ, दुःख और कपट ही भरे हैं; मां, बाप, भाअी सब स्वार्थके सगे हैं, यह देखकर बहुतसे साधक संसारसे तंग आकर, परेशान होकर, अुस पर गुस्सा करके और अुद्विग्न होकर अुसका त्याग करते हैं व सबसे अलग होकर रहनेका मार्ग अपनाते हैं। नाथने देखा कि दूसरे देशोंकी बात तो दूसरे देशवाले जानें, परन्तु भारतके लोगोंका जीवन तो अवश्य अिन दोषोंसे भरा हुआ है। परन्तु अुन्हें अपने सगे-सम्बन्धियोंसे कुछ लेना नहीं था, अुन्हें अपनी चिंता नहीं थी। अिस-लिअे अपने लिअे जगत पर या सगे-सम्बन्धियों पर क्रोध करनेकी अुन्हें जरूरत नहीं थी। अिन दोषोंके लिअे अुनका त्याग करनेकी भी जरूरत नहीं थी। परन्तु अिन दोषोंके कारण भारतके लोग परतंत्र, दुःखी, दरिद्री, पुरुषार्थहीन, कायर, अंतःकलहसे जर्जर और दयाजनक स्थितिमें

हैं। जिनमें कुछ साधुता है, अुदात्त भावनाअें हैं, तीव्र अीश्वर-श्रद्धा तथा अुच्च जीवनके लिअे व्याकुलता है, वे सब अिस संसारको छोड़ देनेकी ही आध्यात्मिकता स्वीकार कर लें, तो फिर ये लोग कल्पांत तक भी अूपर कैसे अुठेंगे? अिस प्रकार संसारके दुःखका जो दर्शन अनेक साधुओंके लिअे संसारका त्याग करनेकी प्रेरणा देनेवाला बन जाता है, अुसने नाथको करुणाभावसे अुसकी सेवा करने और अुसकी मुक्तिका मार्ग ढूंढ़नेके लिअे अीश्वरको खोजनेकी प्रेरणा की। अुन्हें अिस ध्येयसे सन्तोष नहीं हुआ कि जो लोग अपने-अपने कर्मानुसार मायामें फंसे रहते हैं, अुन्हें छुड़वानेकी अभिलाषा छोड़ दी जाय, अपना आत्मराज्य प्राप्त करके निवृत्तिका और ब्रह्मका अखंड सुख और सब दुःखोंका नाश करनेवाले मोक्षका ध्येय हासिल कर लिया जाय और वैसे अधिकारियोंको ही जीवनके शेष कालमें मदद दी जाय और हो सके तो अुन्हें भी कर्म-मार्गसे हटा लिया जाय।

*

अुन्होंने हमें जो नया ध्येय दिया वह यही है; और अुनके सम्पर्कमें जो जो आते हैं, अुन्हें अेक या दूसरी तरहसे वे जो कुछ समझाते हैं वह भी यही है। तुममें जो कुछ सद्वृत्तियां हैं, मुमुक्षुता है, अुनका अुपयोग दूसरोंके दुःख कम करनेमें करो; समाजको अपने सद्गुणोंकी छूत लगाओ; अपने गुणोंके थोड़े अुत्कर्षसे सन्तुष्ट न रहो; अुन्हें सतत बढ़ाते रहो; अपनी विवेक-बुद्धिको सदा ही तेज बनाये रखो; अिसके लिअे चित्तकी अपार शक्तियोंकी खोज करो और अुन्हें विकसित करो, ध्यान वगैराका अभ्यास करो, शरीरको कसो और योगाभ्यास वगैराको अुनके साधन मानो। परन्तु अीश्वर या आत्माका साक्षात्कार करना, आनन्दमें निमग्न हो जाना, गंगातट पर हिमगिरि-शिला पर पद्मासन लगाकर निर्विकल्प समाधिमें डूब जाना वगैरा ध्येयोंमें न रमे रहो। अीश्वर और आत्माका निश्चय कर लो और फिर अुनमें निष्ठा रखो। अीश्वर-निष्ठा और आत्मनिष्ठाका जो महत्त्व है, वह जगतको सुखी करने, समाजको अुन्नत बनाने और तुम्हारी मनुष्यताका विकास करनेके लिअे है। सब प्राणियोंका सुख, समाजकी अुन्नति, मनुष्यमें मानवताका विकास

— अिनका जीवनके लिअे महत्त्व है। साक्षात्कार, मुक्ति और निर्विकल्प समाधि जीवनके ध्येय नहीं हैं। अुनमें स्वच्छंदता भी हो सकती है, और वे दंभके साधन भी बन सकते हैं।

ये अुनके अुपदेशकी बुनियादें हैं। अिनकी विशद व्याख्या अिस पुस्तकमें की हुअी मिलेगी।

*

करुणारूप अीश्वरकी अिस अुपासनाका नाथके स्वभाव पर अेक बड़ा परिणाम यह हुआ कि बीमारोंकी सेवा, रिश्तेदारोंकी बीमारी व मौतसे विपत्तिमें फंसे हुअे कुटुम्बीजनोंकी चिन्ता और अुनके लिअे परिश्रम अिनके जीवनका सबसे महत्त्वपूर्ण व्यवसाय बन गया है। यह नहीं कहा जा सकता कि सगे-सम्बन्धियों, स्नेहियों वगैराके सुखके अवसरों पर ये अुपस्थित होंगे ही, परन्तु कोअी बीमार है, अुचित शुश्रूषाके अभावमें या समभावी स्नेहियोंके अभावमें परेशानीमें है और अिसका अुन्हें पता लग जाय, तो यह नहीं हो सकता कि अिसके बाद भी वे वहां न जायं। और नाथकी शुश्रूषा भी अितनी चिन्तायुक्त और सावधानीपूर्ण होती है कि मां भी वैसी शुश्रूषा नहीं कर सकती। बहुत वर्ष पहले अिनकी शुश्रूषाका अनुभव करनेवाले अेक मित्रने कहा था कि अगर नाथ शुश्रूषा करनेको मिलें, तो फिरसे बीमार पड़नेकी अिच्छा हो सकती है! पू० नाथ कोअी संस्था चलानेकी या और किसी प्रवृत्तिमें नहीं पड़ सके, अिसका अेक बड़ा कारण बार-बार आ पड़नेवाली बीमारोंकी सेवा-शुश्रूषा ही कहा जा सकता है।

जिन्होंने नाथके क्षात्र स्वभाव, करुणा और योगीपनकी ख्याति ही सुनी हो और अुनकी पुस्तक तथा दूसरे लेखों द्वारा ही अुनका परिचय पाया हो, अुन्हें अैसी कल्पना होना संभव है कि नाथ अेक अुग्र-गम्भीर, बंद होठवाले पुरुष होंगे। परंतु अैसा भय रखनेका कोअी कारण नहीं है। नाथके पास अटूट विनोद और गंभीर चर्चा तथा हास्यके फव्वारेका मनोहर मेल भी होता है।

*

हम आशा रखते हैं कि जैसे हमें यह पुस्तक तयार करते हुअे कृतार्थता महसूस हुअी है, वैसे ही पाठकको भी अिसका अध्ययन सन्तोषप्रद लगेगा।

ता० २८-४-'५१

किशोरलाल घ० मशरूवाला
रमणीकलाल म० मोदी

'विवेक और साधना' का यह हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो रहा है, तब मेरे बड़े भाअीके समान तथा अिस पुस्तकके सह-सम्पादक श्री किशोरलालभाअी हमारे बीच सदेह अुपस्थित नहीं हैं, यह बड़े दुःखकी बात है। पू० नाथजीके जीवन-विषयक विचार जनताके समक्ष रखनेके बारेमें जो संकल्प हुआ था, अुसमें अुनकी तीव्र अुत्कंठा और परिश्रम कितना था अिसका मैं स्वयं साक्षी हूं। अिसलिअे अिस पुस्तकके सम्पादनमें अुनका कितना बड़ा हाथ था, अिसका अुल्लेख यहां करना मैं अपना कर्तव्य मानता हूं। यह अनुवाद अुनका देखा हुआ है। पू० नाथजीने स्वयं प्रस्तावनामें श्री किशोरलालभाअीके बारेमें जो कुछ लिखा है, वह सर्वथा अुचित ही है।

गुजरातीकी पहली आवृत्ति पांच-छः मासमें ही समाप्त हो गअी थी। अुसकी दूसरी आवृत्ति हालमें ही प्रसिद्ध हुअी है। अिसके लिअे पू० नाथजीके साथ पूरी पुस्तक फिरसे पढ़ी गअी और अुस पर विचार किया गया था। और जहां आवश्यक मालूम हुआ, वहां विषयको स्पष्ट करनेवाली टिप्पणियां जोड़ी गअी थीं। प्रकरणोंका क्रम भी बदला गया था। यह सब अिस हिन्दी अनुवादमें ले लिया गया है।

रमणीकलाल म० मोदी

शांतिनगर, नं० १७
आश्रम रोड, अहमदाबाद – १३
ता० ६-२-'५३

प्रस्तावना

अिस पुस्तकमें जो लेख और विचार दिये गये हैं, वे जीवन-सम्बन्धी अनेक प्रकारके अनुभवों परसे लिखे गये हैं। कओी विचारशील व्यक्तियोंके साथ हुअे संवाद-प्रसंगोंमें से भी मुझे ज्ञान मिला है। अुस ज्ञानको विवेककी दृष्टिसे परखनेके बाद ही मैंने अुसे महत्त्व दिया है। अिसलिअे अनुमान, तर्क, कल्पना या केवल श्रद्धाके आधार पर अिसमें शायद ही कुछ लिखा गया हो। अिन विचारोंको पढ़कर कुछ श्रद्धावान भावुकोंका, कुछ तत्त्वज्ञानियोंका और परम्परागत मान्यताके अनुसार धर्म, अध्यात्म, ओीश्वर वगैराके बारेमें आस्तिकता रखनेवालोंका दु:खी होना संभव है। परन्तु अुन सबसे मेरी नम्र प्रार्थना है कि अिस पुस्तकके मेरे किसी शब्द पर वे भले ही विश्वास न करें, परन्तु अपने बारेमें मैं नीचे जो चार वाक्य लिख रहा हूं, अुन पर वे अवश्य विश्वास करें: "श्रद्धा और भावुकताकी पराकाष्ठा; तत्त्वज्ञान और सन्त-वचनों पर अनन्य निष्ठा; धर्म, अध्यात्म, ओीश्वर वगैराके विषयमें अपार आस्तिकता; अित्यादि सारी भूमिकाओंके अनुभवोंमें से और अुन अनुभवोंके लिअे अनेक प्रकारके कष्ट सहन करके मैं यहां प्रगट किये गये विचारों पर आया हूं। आध्यात्मिक अुद्देश्यके लिअे जैसे मुझे अज्ञानवश व्यर्थ ही तकलीफें अुठानी पड़ीं, अुस तरह अन्य किसीको न अुठानी पड़ें, यह अेक करुणापूर्ण हेतु मुख्यत: अिस सारी रचनाकी जड़में है। अिसके सिवा, जब कओी लोगोंने अपने अनुभवसे बताया कि ये विचार मानव-जातिका अुत्कर्ष और अुन्नति करनेमें कओी तरहसे अुपयुक्त साबित होंगे, तभी मैं अिन्हें प्रकाशित करनेको तैयार हुआ हूं। मुझे यह भी नहीं लगता कि ये विचार समाजके सामने पेश करनेमें मैं कोओी जल्दबाजी कर रहा हूं। अुदात्त अुद्देश्यकी पूर्तिके लिअे ५० वर्ष साधना और प्रत्यक्ष सेवाकार्यमें बितानेके बाद और बहुतोंके जीवन पर अुनके सुपरिणाम देखनेके पश्चात् ही मैंने यह काम हाथमें लिया है।"

ये अनुभव कौनसे थे, वे कैसे कैसे होते रहे और अुनसे मैंने क्या सार निकाला वगैरा बातोंकी थोड़ीसी जानकारी पाठकोंको हुअे बिना मेरी विचारसरणी और अुसके औचित्य-अनौचित्यके बारेमें अुनका संशयमें पड़ जाना संभव है। अिसलिअे अपने जीवन और साधना दोनोंके विषयमें कुछ लिखना मुझे जरूरी मालूम हुआ। और अिसीलिअे पुस्तकके शुरूमें ही मैंने 'आत्म-परिचय' का अध्याय दिया है।

अिस पुस्तकके विचार पाठक अधिक स्पष्टतासे समझ सकें, अिस ढंगसे पेश करनेके लिअे मुझे समय-समय पर सुझाव देकर मेरे मित्र श्री किशोरलाल मशरूवाला और श्री रमणीकलाल मोदीने मुझे जो प्रेमपूर्वक सहायता दी, अुसका यहां अुल्लेख करना जरूरी है। खास तौर पर श्री रमणीकलाल मोदीने हरअेक महत्त्वके विचारकी मेरी तरफसे स्पष्टता हो जानेके लिअे जो सूक्ष्मता, दूरदर्शिता, पृथक्करण-शक्ति और पाठकोंके लिअे चिन्तायुक्त भावना दिखाअी, अुस सबका प्रस्तुत पुस्तक लिखनेमें बड़ा अुपयोग हुआ है।

मुझमें विद्वत्ता और लेखन-कुशलता न होनेके कारण पाठकोंको पुस्तकमें कुछ त्रुटियां दिखाअी देना संभव है। अितने पर भी अिसमें पाठकोंको जो कुछ मनन करने योग्य, आदरणीय और आचरणयोग्य मालूम पड़े, अुस सबका कर्तृत्व विश्वचालक परमात्माका है। अुसके लिअे हृदयपूर्वक अत्यन्त कृतज्ञ और विनम्र भावसे हाथ जोड़कर सिर नवानेके सिवा और मैं क्या कर सकता हूं?

शान्तिकुंज, नायगांव क्रॉसरोड, **केदारनाथ**
दादर, बम्बअी–१४
४–१२–'५०

*

अेक अत्यन्त दुःखद घटनाका यहां मुझे अुल्लेख करना पड़ता है। यह हिन्दी अनुवाद जनताके समक्ष जल्दी रखनेकी अुत्सुकता होते हुअे भी वह प्रसिद्ध हो अिसके पहले ही श्री किशोरलालभाअीका देहावसान हो गया। बहुत वर्षोंसे हम दोनोंका मित्र-सम्बन्ध था। अुस सम्बन्धमें किसी

भी तरहके भौतिक स्वार्थ या मान-प्रतिष्ठाकी किसीको अिच्छा न होनेसे वह सम्बन्ध दिनोंदिन ज्यादा पवित्र, अुदात्त और गाढ़ होता गया। हम दोनोंका जीवन जीवनका अुच्च आदर्श सिद्ध करनेमें अेक-दूसरेकी मदद करते हुअे बीता है, अिसलिअे अुनके वियोगसे दूसरे मित्रोंकी तरह मुझे भी बहुत ज्यादा दुःख होता है। अिस पुस्तकके लिखवानेमें भी अुनका बार-बारका अत्यन्त प्रेमभरा आग्रह और जनहित-सम्बन्धी अुनके हृदयकी गहरी भावना ही बहुत अंशमें कारणभूत हुअी है।

जानेवाला अेक क्षणमें चला जाता है। पीछे रहनेवालोंको अपना जीवन अुसके बिना बिताना पड़ता है — काटना पड़ता है। अैसी हालतमें मित्रधर्मकी दृष्टिसे हमारा यही कर्तव्य हो जाता है कि हम दिवंगत मित्रके अपूर्ण रहे पवित्र हेतुओं और संकल्पोंको पूरा करनेमें निरंतर जुटे रहें। और अैसा करते रहनेसे ही वियोगका दुःख कुछ हद तक सह्य होता है। अिस दृष्टिसे भी मैंने यह टिप्पणी लिखना शुरू की। और जिनके अवसानसे सारे भारतको हानि पहुंची, अुनके विषयमें केवल अपने दुःखको महत्त्व देकर अुसका वर्णन करना अुचित नहीं, अिस विवेकसे अपने अत्यन्त भावुक और प्रेमल मित्रके विषयमें मेरे ये अुद्‌गार भी मैं यहीं समाप्त करता हूं।

केदारनाथ

शांतिकुंज, नायगांव क्रॉसरोड,
दादर, बम्बअी–१४
५–२–'५३

आत्म-परिचय

१. जीवनकी रूपरेखा

मेरे पिताजीका नाम अप्पाजी बलवन्त था। कुलनाम कुलकर्णी था। कामके सिलसिलेमें वे देशपांडे भी कहलाते थे। हमारे पूर्वज महाराष्ट्रमें कुलाबा जिलेके पाली गांवमें बहुत वर्षोंसे रहते थे। वहांका मुखियापन वंश-परम्परासे हमारे कुटुम्बमें चला आ रहा था। मेरे पिताजी तथा अुनके पांच भाअियोंका सारा परिवार मिलाकर हमारा कुटुम्ब बहुत बड़ा था। पिताजीको सरकारी नौकरीके कारण बाहर रहना पड़ता था। थाना, रत्नागिरि, खानदेश वगैरा जिलोंमें कअी जगह अुन्हें नौकरीके सिलसिलेमें रहना पड़ा। मेरा बचपन अिन तीन-चार जिलोंमें बीता है। मेरा जन्म सन् १८८३ में हुआ।

शिक्षा

हम कुल छह भाअी थे और तीन बहनें। हमारा घर मध्यम स्थितिका था। अतः हमारा रहन-सहन भी सादा ही था। मैं जब नौ-दस बरसका था तब माताजी चल बसीं। तबसे हमारी देखभालकी सारी जिम्मेदारी पिताजी पर आ पड़ी। माताजीकी मृत्युके बाद हम सब भाअी और अेक छोटी बहन पूना चले गये। वहां मेरी थोड़ी-सी पढ़ाअी हुअी। १८९३ से १८९७ तक मेरा समय पूनामें बीता। बादमें खानदेशके सिरपुर और धूलियामें भी मेरी थोड़ी पढ़ाअी हुअी। धूलियामें जब मैं पांचवीं अंग्रेजीमें था तब पढ़ाअी छोड़ दी। यह १९०१ की बात होगी। मेरी अुम्र अुस वक्त १७ वर्षकी थी।

देशप्रेमके संस्कार

मेरे पढ़ाअी छोड़नेके समय देशमें कोअी भी राष्ट्रीय हलचल नहीं थी। राष्ट्रीय महासभाका कार्य अुस समय अितना संकुचित था कि अुसका विद्यार्थी-वर्गके साथ कोअी सम्बन्ध नहीं था। वह काल अखबारों और भाषणोंका भी नहीं था। छुटपनमें चार-पांच भाषण सुननेकी स्मृति है। अुनमें से दो-तीन स्वदेशी संबंधी थे। अैसा याद पड़ता है कि

अितिहास पढ़नेसे मुझे अपने देश और पूर्वजोंके प्रति अभिमान तथा मौजूदा परिस्थिति पर दु:ख होता था। यह तो मैं निश्चित रूपसे नहीं कह सकता कि किन कारणों या संस्कारोंका यह परिणाम हुआ, परन्तु अैसा याद पड़ता है कि आठवें सालसे मेरे मनमें स्वतंत्रताकी भावना अस्पष्ट रूपमें पैदा हुअी। यह भी याद आता है कि अुस समय मैं रत्नागिरि जिलेके राजापुर गांवमें था। अुस समय पिताजीके पास अेक सज्जन आया करते थे। वे १८५७ के गदरमें शामिल थे और अुन्होंने अपना नाम बदल लिया था। मुझे याद नहीं पड़ता कि अुनकी ओरसे अनजाने कोअी संस्कार मुझे मिले भी थे। अुस समय जो भावना पैदा हुअी अुसका पोषण पूना आनेके बाद होता रहा। जब रैंड और आयर्स्टकी हत्यायें हुअीं तब मैं पूनामें ही था। १८९७ और १८९९ के अकालके समय लोगोंकी हालत देखकर और सुनकर मन बड़ा व्याकुल होता था। तेरह-चौदह वर्षका होते होते मुझे यह स्पष्ट प्रतीत होने लगा कि हमारा देश आजाद होना चाहिये। यह भावना आगे चलकर आहिस्ता-आहिस्ता प्रबल होती गअी। वर्तमान शिक्षासे देश स्वतंत्र नहीं किया जा सकता, यह निश्चय होने पर वही शिक्षा लेते रहना मेरे लिअे असह्य हो गया। परिणामत: अन्तमें मैंने पढ़ाअी छोड़ दी।

आदर्श-सम्बन्धी मेरी कल्पना

मेरी गिनती प्रथम श्रेणीके विद्यार्थियोंमें नहीं थी। अैसी अभिलाषा भी नहीं थी। फिर भी कक्षामें मेरा नम्बर आम तौर पर अूंचा ही रहता था। क्रिकेट और कुछ दूसरे खेलोंमें सिर्फ अपनी बराबरीके विद्यार्थियोंमें मैं पहले दर्जेका था। परन्तु देशके विचार ज्यों-ज्यों मनमें आने लगे, स्वतंत्रताके लिअे हमें कुछ-न-कुछ करना चाहिये; त्याग, साहस और पुरुषार्थ करना चाहिये अित्यादि विचार ज्यों-ज्यों आने लगे, त्यों-त्यों खेलकूदका शौक कम होने लगा। व्यायाम तथा तत्सम्बन्धी तालीमकी जरूरत महसूस होने लगी और अिसी अुद्देश्यसे मैं अुसका अभ्यास करने लगा। स्कूली पढ़ाअी छोड़ देनेके बाद मैं तुरन्त ही व्यायाम द्वारा युवकोंमें बल और अुत्साह पैदा करके अुन्हें राष्ट्रीय कार्यमें प्रवृत्त करनेका प्रयत्न करने लगा। मैंने स्वदेशीका व्रत ले लिया और दूसरोंको भी

देने लगा। पचास साल पहलेके अुस समाजमें मेरे विचारके अनुसार कोअी भी आदर्श व्यक्ति मेरी जानकारीमें नहीं था। अिसलिअे समर्थ रामदास और छत्रपति शिवाजी महाराज मुझे आदर्श विभूतियां मालूम होते थे। मेरे राष्ट्रीय विचारोंका रुख लगभग अुनके विचारोंके अनुरूप ही था। अीश्वर, धर्म, नीति, चारित्र्य, शील और सदाचार पर मेरी पहलेसे श्रद्धा थी। निजी सुखके प्रति विशेष रुचि नहीं थी। मेरी वृत्ति सेवापरायण थी। 'दासबोध', 'मनाचे श्लोक' और संत तुकारामके अभंगोंका मेरे मन पर गहरा असर अुसी समय हुआ। पिताजीके मुंहसे कभी-कभी भक्तिके पद्य और श्लोक सुननेको मिलते थे, जिससे ये संस्कार दृढ़ होते गये।

चारित्र्यका संस्कार

शुरूसे ही मेरा यह दृढ़ विश्वास हो गया था कि व्यायाम द्वारा शरीर-बलका और अीश्वर, सदाचार वगैराके प्रति श्रद्धाके द्वारा चरित्र-बलका विकास हुअे बिना हम देशका कार्य नहीं कर सकेंगे। अिसलिअे अिसी प्रकारके संस्कार अपने पर और समाज पर डालनेका मेरा प्रयत्न यथाशक्ति जारी था। अिसी अरसेमें शस्त्रविद्यामें पारंगत अेक सज्जनका और मेरा साथ हो गया। वे पुलिस-विभागमें काम करते थे और पेन्शन लेनेकी तैयारीमें थे। जातिके मराठा थे। अुनका शरीर कसा हुआ था। जवानीमें सरकारके विरुद्ध विद्रोह किया था। अुसमें सरकारने अुन्हें माफी देकर पुलिस महकमेमें नौकरी दे दी थी। अुनका मुझ पर अत्यंत प्रेम था। मुझे सिखानेके लिअे वे कभी-कभी व्यायाम-शाला आते थे। शस्त्रविद्यामें प्रवीणता देखकर मुझे अुनके प्रति जितना आदर था, अुससे भी अधिक आदर अुनकी चारित्र्य-निष्ठाके लिअे था। पेन्शन लेकर अपने गांव जाते समय अुन्होंने हममें से कुछ खास भाअियोंको जो अुपदेश दिया, वह मेरे चित्त पर स्थायी रूपसे अंकित हो गया है। अुन्होंने कहा, "पिताजीने मेरी भरी जवानीमें मुझे अुपदेशके जो शब्द कहे थे, वह मैं आज तुमसे कहता हूं। मैं अुनका अिकलौता बेटा था। अुन्होंने मुझे आग्रहपूर्वक कहा था कि 'तीस सालके होनेसे पहले शादी न करना। शरीर और मनको दृढ़ तथा पवित्र रखना। व्यायाम कभी

न छोड़ना। तुम्हारा शरीर अितना कड़ा और मजबूत होना चाहिये कि पत्थर पर गिरनेका मौका आ जाय तो पत्थरको तुम्हारा डर लगे, परन्तु तुम्हें अुसका डर न लगना चाहिये। सदाचार और शील पर श्रद्धा रखना। धनका लोभ न करना। स्त्रियोंके प्रति आदर और पवित्र भाव रखना। अीश्वरको कभी न भूलना। अपनेको सुखी करनेकी अपेक्षा औरोंको सुखी करनेमें आनन्द मानना। अिस प्रकार चलोगे तो तुम्हारा जीवन धन्य होगा।' मेरे लिअे अुनका यह अुपदेश था। मैं भी वही बात आज तुमसे आग्रहपूर्वक कहता हूं। अिस प्रकार चलनेमें तुम्हारा कल्याण है।" आगे बोले: "पिताजीकी मृत्युके बाद कुछ कौटुम्बिक कठिनाअियोंके कारण मुझे अट्ठाअीसवें वर्षमें विवाह करना पड़ा। परन्तु अुनके अुपदेशके विपरीत मैंने भूलकर भी आचरण नहीं किया।" अिस आशयका अुपदेश थोड़ेमें अुन्होंने दिया। व्यायाम और दूसरोंके लिअे अुपयोगी बनना, अिन दो बातों पर जोर होनेके कारण वह अुपदेश तुरन्त मेरे गले अुतर गया। अुस अुम्रमें मुझे पता तक नहीं था कि द्रव्य और स्त्री-सम्बन्धी मोह क्या चीज है, फिर भी अुस अुपदेशमें मुझे बहुत गंभीरता महसूस हुअी। अपने जीवनकी जांच करने पर लगता है कि त्याग और सादगीके प्रति मुझमें पहलेसे ही किसी हद तक आकर्षण रहा होगा। अंग्रेजीकी दूसरी कक्षामें हंटरके अितिहासमें गौतम बुद्धके गृहत्यागका वर्णन पढ़ते ही अुसका असर मेरे मन पर पड़ा था। अिसी तरह शंकराचार्य, ज्ञानेश्वर, रामदास आदिके जीवन-चरित्रोंका भी मन पर असर हुआ था। त्यागी पुरुषोंके जीवनका मेरे मन पर छुटपनसे ही विशेष प्रभाव था। अैसे ही किसी कारणसे अुक्त अुपदेशका मन पर गहरा असर हुआ होगा। हमारे समाजमें पिता द्वारा पुत्रको दिये गये अिस प्रकारके अुपदेशके अुदाहरण मुश्किलसे ही मिलेंगे।

मेरी प्रवृत्ति

व्यायाम और अुसके साथ-साथ दूसरी प्रवृत्तियां कुछ समय तक खानदेशमें चलानेके बाद मैं अपने मूल गांव पाली आया और वहां ये प्रवृत्तियां, घरकी खेती आदि काम करने लगा। अपनी प्रवृत्तिके सिलसिलेमें समय-समय पर मैं बाहर भी जाता था। अुस समयकी अपने मनकी स्थितिका विचार करने

पर आज भी लगता है कि मुझमें आत्म-विश्वास बहुत अधिक था। देशसेवा और कार्यके अुद्देश्यसे मैं जिन-जिनसे मिला, अपने काममें शरीक होनेके लिअे मैंने जिन-जिनसे आग्रह किया, अुनमें से शायद किसीने भी अिनकार नहीं किया। अुनमें से कअी तो अनेक दृष्टिसे मेरी अपेक्षा बड़े और श्रेष्ठ थे, तो भी हरअेकके मन पर मेरे बोलनेका असर पड़े बिना न रहता। अिससे मेरा आत्म-विश्वास बढ़ता गया।

गृहत्याग और पुनरागमन

अैसी स्थितिमें तीन-चार बरस बीतने पर मुझे महसूस होने लगा कि अपने संकल्पित अुद्देश्यके पीछे पूरी तरह पड़े बिना यह काम सफल नहीं होगा। अतः मैं पिताजीसे बिना पूछे या किसीको बताये बिना ही सन् १९०४ में घर छोड़कर चल दिया। पिताजीको छोड़कर जाना बहुत मुश्किल मालूम हो रहा था। पितृसेवाकी भावना और मेरे जानेके कारण पिताजीको होनेवाले दुःखकी कल्पना मनको अत्यन्त व्याकुल बना रही थी। मनकी अैसी स्थितिमें साधुवेषमें लगभग डेढ़ सौ मील नंगे पैर पैदल प्रवास करके सज्जनगढ़ गया। वहां समर्थ रामदासकी समाधिका दर्शन किया। थोड़े दिन रहकर पूरे आत्म-विश्वासके साथ वहांसे चला। मेरी अुम्र, संस्कार, ज्ञान, अनुभव, स्वभाव और आत्म-विश्वास — अिन सबके अनुरूप ही मेरे कार्यकी योजना थी। अुसे पूरा करनेके अुद्देश्यसे जब मैं घूम रहा था, तब अुस समयके सातारा जिलेके अेक प्रमुख नेतासे मिला। मेरी अुम्र अुस वक्त २०–२१ वर्षकी होगी और अुनकी ५०–५२ सालकी। मैंने अुन्हें अपने विचार बताये, परन्तु अुन्हें अमलमें लाना अुन्हें असंभव प्रतीत हुआ। और अिस खयालसे कि अैसा करनेमें मेरा निश्चित विनाश होगा, दया या वात्सल्य भावसे प्रेरित होकर अुन्होंने मुझे अपने विचारोंसे विमुख करनेकी बड़ी कोशिश की। यह देखकर कि मैं अुनका कहना मान नहीं रहा हूं, अुन्होंने यह हठ पकड़ लिया कि 'यह साधुवेष छोड़े बिना मैं तुम्हें यहांसे जाने न दूंगा।' देशके लिअे अुपयोगी सिद्ध होनेवाली कोअी चीज सीखनेके लिअे अुन्होंने मुझे अुपदेश किया। अिसके लिअे व्यवस्था करनेकी सारी जिम्मेदारी लेनेको वे तैयार हो गये। अन्तमें यह देखकर कि अुनके आगे मेरी कुछ चलेगी

नहीं, मैंने अपने कपड़े अुनको सौंप दिये। वहांसे निकलनेके बाद फिरसे साधुवेष लेनेका मेरा विचार था; परन्तु अितनेमें मेरे अेक मित्रके पालीमें बहुत बीमार होनेके समाचार मिले। मैं सामान्य वेशमें ही घर चला गया। पिताजीसे सब हाल कहा। वे जरा भी नाराज नहीं हुअे। मित्र अच्छा हो गया। मैं फिर पहलेकी तरह थोड़ीसी अपनी प्रवृत्ति और घरकी खेतीका काम करने लगा।

बंगाल-विभाजन और हमारी निराशा

अिसी अरसेमें बंगालके विभाजन (बंग-भंग) के कारण पैदा हुअे प्रक्षोभसे स्वदेशी आन्दोलन अुठा। जन-जागृतिकी दृष्टिसे मुझे वह अच्छा लगा। लोगोंमें देशाभिमान और देशके लिअे त्याग और कष्ट सहनेकी वृत्ति पैदा होते देखकर भावीके बारेमें मेरे मनमें आशा बंधने लगी। कुछ साहसपूर्ण काम भी अुस कालमें हुअे। लेकिन चूंकि मेरा खयाल था कि बम या गोलीकी मददसे किसी व्यक्तिकी हत्या करनेके मार्गसे हमारे अुद्देश्यकी पूर्ति नहीं होगी, अिसलिअे वे साधन हाथमें होने पर भी अुस मार्गकी ओर जानेकी मेरी अिच्छा नहीं हुअी। १९०८–०९ तक देशका वातावरण क्षुब्ध ही रहा। मगर अुसके बाद सरकारकी दमन-नीतिके कारण सर्वत्र भय छा गया। देशकार्यके मामलेमें सब जगह शिथिलता आ गअी। हम जिस मार्ग पर जानेकी कोशिश कर रहे थे, अुस मार्गके बहुतसे व्यक्ति निराश होकर अपने-अपने जीवन-व्यवसायमें लग गये।

अेकान्तका निश्चय

अैसी स्थितिमें मुझे अपनी शक्तिका और लोक-मानसका अंदाजा हो गया और समझमें आ गया कि हम जैसा चाहते हैं अुसके अनुसार करनेकी स्वयं मुझमें और दूसरोंमें भी पात्रता नहीं है। अब मेरे सामने यह सवाल अुपस्थित हुआ कि आगे क्या किया जाय। मेरी मन:स्थिति अैसी नहीं थी कि देश या समाज-सम्बन्धी ध्येय छोड़कर केवल व्यक्तिगत कार्यमें जीवन बिता दूं। कुछ सूझ नहीं रहा था। रास्ता दीख नहीं रहा था। देशकी स्थिति दिन-दिन असह्य होने लगी। शांति और समाधानपूर्वक दिन बिताना मेरे लिअे असंभव हो गया। अैसा महसूस

होने लगा कि अब परमेश्वरकी कृपाके सिवा कोअी आधार और आशा नहीं। 'दासबोध' और 'ज्ञानेश्वरी' पढ़नेका सिलसिला पहलेसे ही जारी था। वह संस्कार अिस बार प्रबल हो अुठा। अेकान्तमें जाकर परमेश्वरका आदेश प्राप्त किया जाय और अब वही आगेका रास्ता बतायेगा, अिस विचार और निश्चयसे मैं अुसकी आराधनामें लग गया।

साधना और कुछ अनुभव

अुपवास, पारायण, अनुष्ठान, चिन्तन, ध्यान वगैरा साधनों द्वारा मैंने अेकान्तमें आराधना शुरू की। सन् १९१० तक खानदेश और सातारा जिलेमें और कभी-कभी भाजेकी गुफामें रहा। परन्तु वहां भी मुझे अपनी कल्पनानुसार निरुपाधिकता महसूस नहीं हुअी। अिसलिअे १९११ में मैं हृषीकेशकी तरफ जाकर अेकान्तमें रहने लगा। आसनोंका अभ्यास पहलेसे था ही, प्राणायामका भी थोड़ा ज्ञान था। अुसी अभ्यासको आगे बढ़ाया और आगे चलकर धारणा और ध्यान तक पहुंच गया। मानसिक शक्ति बढ़नेके अनेक अनुभव हुअे। परन्तु जिस अुद्देश्यके लिअे मैंने यह सारा प्रयत्न किया था वह सिद्ध नहीं हुआ। साधनामें होने-वाले भिन्न-भिन्न और बढ़ते हुअे अनुभवोंके कारण मेरे विचारोंमें और तात्कालिक साध्यमें भी आगे चलकर फर्क पड़ता गया। अीश्वरका आदेश, दर्शन, साक्षात्कार आदि साध्य गौण हो गये और अन्तमें अुसका 'ज्ञान' प्राप्त करनेके साध्य पर मैं आ पहुंचा। अिस सारे समयमें व्याकुलता बढ़ती गअी। बीच-बीचमें भयंकर निराशा भी होती थी। अुस समय कोअी मार्गदर्शक प्राप्त करनेकी अिच्छा भी होती थी। अुसकी कृपासे अिष्ट साध्य प्राप्त हो जायगा, अिस विचारसे यह प्रयत्न भी किया। अेक सत्पुरुषके समागममें कुछ दिन बिताये भी। मुझ पर वे प्रसन्न थे, परन्तु अुनका ध्येय केवल संन्यासपरायण था, अतः अुनके मार्ग पर जानेकी मेरी अिच्छा नहीं हुअी। मैंने अुस समय संसार-व्यवहार छोड़कर वैराग्य और परमार्थके नाम पर हजारों मनुष्योंको संन्यासी जीवन बिताते हुअे देखा। अुनमें से कुछका मेरे साथ थोड़ा-बहुत सम्बन्ध भी आया। अिससे अपने जीवन-ध्येयकी दृष्टिसे मुझे कोअी लाभ नहीं हुआ, तो भी अुनके विचार, रहन-सहन, आदतें, संस्कार, स्वभाव और अुनके ध्येयों वगैराकी

मुझे जानकारी मिली। अलग-अलग सम्प्रदायों, पंथों, गुरुशिष्य-सम्बन्धों, और परम्पराओं, अलग-अलग साधनों, शक्तिपात, शक्ति-संचरण विद्याओं, दूरदृष्टि, दूर-श्रवण जैसी सिद्धियों आदिके बारेमें मुझे थोड़ासा ज्ञान हुआ। भक्ति और अध्यात्म-सम्बन्धी हमारी अलग-अलग कल्पनाअें, भावनाअें, मान्यताअें, तर्क, तत्त्वज्ञानकी भिन्न-भिन्न प्रणालियां आदि बहुतसी बातें मैं जान सका। वैराग्यके सही-गलत प्रकार; अुसके अलग-अलग कारण; भ्रम, दंभ और साधु-वैरागियोंके अखाड़े, अुन सबके बारेमें अुनका अभिमान, अुनके ठाठ, अुनके आडम्बर, अुनके व्यसन और अुनके कारण वगैराकी जानकारी मुझे अुसी कालमें हुअी। अिस प्रकार समाज और अध्यात्म-सम्बन्धी मेरे ज्ञानमें कुल मिलाकर वृद्धि ही हुअी। साधनाके अुद्देश्यसे मुझे दो-तीन बार हृषीकेशकी तरफ जाना पड़ा। अेक बार जमनोत्री, गंगोत्री, केदार बदरीनारायण तक मैं भ्रमण कर आया। अिस यात्राके दौरानमें कुछ अच्छे व्यक्तियोंसे मेरी मुलाकात हुअी, जो संन्यास-पद्धतिसे रहकर अपनी विचारसरणीके अनुसार साधना और अभ्यास कर रहे थे। यद्यपि अुनके और मेरे जीवन-ध्येयमें अन्तर था, तो भी अुनकी शांति और प्रसन्नता देखकर आनन्द हुआ। जब मैं भ्रमण कर रहा था तभी मेरी समझमें आ गया कि अपने अुद्देश्यके अनुकूल जिसे कोअी साधन मिला हुआ होता है, वह अुसे छोड़कर भटकता नहीं फिरता। साधनमें आगे गति रुक जाने पर ही मेरी वृत्ति चंचल बनी और तभी मैं ज्ञानप्राप्तिकी कोअी आशा न होने पर भी सैकड़ों मील निरर्थक घूमता रहा।

सत्यका निर्णय हुअे बिना हमारा धर्म और अुस समय हमारा समाज-सम्बन्धी कर्तव्य क्या है और अुसे कैसे पूरा किया जा सकता है, यह हमें नहीं सूझता। अैसी समझके कारण अुत्तरोत्तर होनेवाले अनुभवों परसे मेरे तात्कालिक साध्य बदलते गये। अभ्यास करने पर आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान, अद्वैतानुभव, चित्तका लय वगैरा साध्यों पर भी मैं धीरे-धीरे पहुंचा। चूंकि मैं ग्रंथ-प्रामाण्यको यानी ग्रंथ परसे अपनी या अुस विषयके माने गये ज्ञानी व्यक्तियोंकी कल्पनाओंको प्रमाणभूत मानता था, अिसलिअे जिस समय जो कल्पना मुझे सत्य प्रतीत हुअी

अुसीके पीछे मैं पड़ गया। जीवनके अुमंग और अुत्साह भरे लगभग दस बरस सतत अिसी प्रयत्नके पीछे अत्यन्त व्याकुलतामें बीते। अलग-अलग भूमिकायें साधकर मैंने अलग-अलग अनुभव किये। परन्तु अितना करनेके बाद भी मैं अपना धर्म या कर्तव्य तय नहीं कर सका; या जो काम मुझे करने जैसा लग रहा था, अुसे करनेकी शक्ति या पात्रता भी मुझमें नहीं आअी।

अीश्वर साक्षात् दर्शन देकर ज्ञान, बल और सामर्थ्य देता है, अिस श्रद्धासे मैं पहले अुसके दर्शनके पीछे पड़ा। श्रद्धा, सतत चिन्तन, ध्यान, अनुसंधान, अेकाग्रता और अन्य साधनोंके कारण दर्शन जैसे अनेक अनुभव मुझे हुअे। परन्तु अुन अनुभवोंको विवेक-दृष्टिसे सब पहलुओंसे जांचनेके बाद मुझे मालूम हुआ कि वे अपनी ही कल्पना द्वारा निर्मित अल्पकालिक अर्ध-जाग्रत अवस्थाके आभासमात्र हैं। मेरे ध्यानमें आ गया कि चूंकि अुन सब अनुभवोंको रंग-रूप मेरा ही दिया हुआ है, अिसलिअे अुन सबका कर्ता मैं ही हूं। अिसी प्रकार आत्मा और ब्रह्मका साक्षात्कार, दर्शन, अद्वैतानुभव वगैरा बातोंमें भी प्रयत्न करनेके बाद अुनमें क्या भ्रम है और क्या सत्य है, अिसका बोध मुझे हुआ। अीश्वर, आत्मा और ब्रह्म, ये तत्त्व अलग-अलग नहीं परन्तु अेक ही महान व्यापक तत्त्वके हमारे दिये हुअे अलग अलग संकेत हैं। वह तत्त्व अैसा नहीं जो देखा जा सके या भासमान हो सके। अुसीसे संसार और हम सब निर्माण हुअे हैं और वही हम सबका आधार है। यह बात तत्त्वज्ञानके अध्ययनसे तथा जगतकी अुत्पत्ति, स्थिति और लयके निरीक्षणसे मेरे ध्यानमें आ गअी। विवेक और निश्चयसे अिस विचार पर मैं दृढ़ भी हो गया। अनन्त विश्व-व्यापारमें और हमारे शरीर, बुद्धि और मनके हरअेक कर्ममें यही महान तत्त्व — यही शक्ति — प्रेरणा देकर काम करती है। अुसके कार्य दिखाअी देते हैं, परन्तु अुस शक्तिको स्वतंत्र रूपसे अलग देखना संभव नहीं। हम स्वयं वही शक्ति हैं। मेरी समझमें यह भी आ गया कि स्वयं हमें अपना ही दर्शन होना संभव नहीं। ध्यान-धारणाके अभ्याससे

अनुभवोंका विश्लेषण

चित्तकी अेकके बाद अेक भूमिका साधते साधते अन्तमें अुसका लय भी किया जा सकता है। अिसी तरह मेरी समझमें यह भी आ गया कि अीश्वर-सम्बन्धी भावना और चिन्तनमें चित्त तद्रूप किया जा सकता है। मुझे यह भी प्रतीत हुआ कि अूपरकी किसी भी भूमिका या अवस्थाको प्राप्त कर लेने या सभी भूमिकाओं और अवस्थाओंको सिद्ध कर लेनेसे भी मानव-कर्तव्य पूरा नहीं हो जाता। अिसलिअे अिनमें से किसी भी अनुभवसे मेरा समाधान नहीं हुआ और न धन्यता ही महसूस हुअी। सौभाग्यसे मुझे कहीं-कहीं अच्छे प्रामाणिक साधक भी मिले। अुनमें से कोअी अेक भूमिकामें, तो कोअी दूसरी अवस्थामें मग्न रहते थे। कोअी साक्षी-अवस्थाको सर्वश्रेष्ठ मानते थे, कोअी लयावस्थाको अर्थात् अुन्मन अवस्थाको ही आत्मानुभव या ब्रह्मानुभव समझते थे। कोअी दिव्यशक्ति प्राप्त करनेके पीछे पड़े हुअे थे। परन्तु अुनमें से अधिकांशकी स्थितिकी जांच करने पर अैसा दिखाअी देता था कि वे अपनी ही कल्पना, वृत्ति या निवृत्त स्थितिको या अपने मानसिक सामर्थ्यको अीश्वर, आत्मा, ब्रह्म या दिव्यत्व समझकर अुसीमें कृतार्थता मानते हैं। अिन साधकोंसे बातचीत करनेका मौका आने पर कुछके ध्यानमें अुनकी अपनी भ्रांति आ जाती, तो कुछ अपनी स्थितिसे ही आग्रहपूर्वक चिपटे रहते।

साधनोंके कारण साधकको कभी-कभी बिलकुल ही अकल्पित या अभूतपूर्व अनुभव होते हैं। वे साधनामें होनेवाली चित्तकी भिन्न-भिन्न सूक्ष्म अवस्थाओंके परिणाम होते हैं। परन्तु ये बातें साधककी समझमें न आनेसे वह अिनमें से किसी भी रम्य, भव्य या आकर्षक अनुभवको ही मुख्य मानकर अुसीमें तल्लीन या मग्न रहनेका प्रयत्न करता है। अिसमें अुसे अेक प्रकारका आनन्द और शांति मिलती है। साधकका ध्येय अिससे अुदात्त हो, तो अिस स्थितिको वह सर्वश्रेष्ठ नहीं मानता। सुख, आनंद, अुन्नति, लाभ आदि हरअेक बात या स्थितिका जो सामूहिक लाभ और हितकी दृष्टिसे विचार करता है, अुसे चाहे जितने बड़े व्यक्तिगत लाभसे भी संतोष नहीं होता।

२. अनुभवोंका सार

मेरे जीवनका ध्येय पहलेसे ही व्यापक और सामूहिक रहा। अिसलिअे साधनाके हर अनुभव और तत्कालीन चित्तकी भूमिकाको मैं जांचने लगा। अुससे मैं यह समझ गया कि सबकी जांच करनेवाली, परखनेवाली सर्वहितकारी विवेक-दृष्टि सबसे श्रेष्ठ है। बहुतसे साधकों, साधु-संन्यासियों, अपनेको अवतार माननेवाले तथा अपने अनुयायियों द्वारा

विवेक-दृष्टि और महाजाग्रत अवस्था

अपनेको अीश्वर कहलवानेवाले लोगोंका अनुभव और अुनकी भूमिकायें समझ लेने और परखनेके अवसर मुझे मिले। अिनसे भी मेरी समझमें यही बात ज्यादा स्पष्टतासे आने लगी। किसी भी भ्रम, व्यसन या अनर्थमें अपने आपको फंसने न देकर या किसी भी श्रेष्ठ या दिव्य माने जानेवाले अनुभव, स्थिति या आनन्दमें तल्लीन न होने देकर हमेशा अुन्नतिकी ओर जानेमें यही दृष्टि मेरे काम आअी है। अिस दृष्टिके कारण मैं समझा कि चित्तकी लयावस्थाकी अपेक्षा अुसके बादकी ज्ञानावस्था श्रेष्ठ है, क्योंकि अुस अवस्थामें लयावस्थाका बोध स्थायी रहता है और जीवनमें अुसका अुपयोग करनेकी शक्ति और संभावना बनी रहती है। किसी भी अनुभवमें तल्लीन होकर अुसीमें डूबे न रहते हुअे अलग-अलग अनुभवोंसे समृद्ध होकर तथा ज्ञानको बढ़ाते हुअे महाज्ञानी बनकर मनुष्यको मौजूदा जागृतिमें से महा-जागृतिमें जाना है, यह भी अुस विवेक-दृष्टिके कारण ही मैं समझ पाया।

साधन-कालके भिन्न-भिन्न अनुभवों और प्राप्त हुअी अलग-अलग अवस्थाओं, भूमिकाओं और शक्तियोंसे यद्यपि मेरा पूरा समाधान नहीं हुआ, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि अुन सबका मेरे जीवनके लिअे कोअी अुपयोग नहीं हुआ। हां, अीश्वरके दर्शनके लिअे जो व्याकुलता सहन करनी पड़ी वह व्यर्थ थी; तो भी अुस समय अुस निमित्तको लेकर

साधनोंसे हुअे स्थायी लाभ

अीश्वर-सम्बन्धी जो प्रेम और निष्ठा, सत्य-सम्बन्धी जिज्ञासा, सहिष्णुता तथा अन्य सद्‌गुणोंकी वृद्धि हुअी, अुनका आज भी जीवनमें बड़ा अुपयोग होता है। ध्यानाभ्याससे चित्तमें जो स्थिरता, दृढ़ता, सूक्ष्मता, विश्लेषण-

शक्ति आयी और अिन सबके कारण वृत्तियोंके ज्ञान आदिका जो लाभ हुआ, वे सब आज तक मेरे लिअे बहुत अुपयोगी सिद्ध हुअे हैं। तत्त्वज्ञानके अध्ययनसे समभावका तत्त्व गले अुतरनेके कारण सत्य, दया, क्षमा, अुदारता, सेवावृत्ति, परोपकार, त्याग वगैरा सद्गुणोंकी जड़ मजबूत होनेमें और अहंकाररहित बुद्धिसे अुनका विकास करनेमें मुझे बहुत सहायता मिलती है।

अिस मार्गके खतरे

अिन सारे लाभोंके बावजूद भी मुझे अितना तो लगता ही है कि अुस समयकी मेरी ओीश्वर-सम्बन्धी भूलभरी कल्पनाओं; तत्त्वज्ञान और साक्षात्कार-संबंधी भ्रामक मान्यताओं; आदेश, दिव्य दर्शन, दिव्य शक्ति आदिके बारेमें परम्परागत श्रद्धा; धार्मिक माने गये ग्रंथोंके प्रति प्रामाण्य-बुद्धि; अुसमें से सत्यासत्य ढूंढ़ निकालनेकी अपात्रता आदिके कारण मुझे कओी शारीरिक और मानसिक कष्ट व्यर्थ सहन करने पड़े। अुस समय स्वयं मुझमें विवेक और ज्ञान होता या कोओी मार्गदर्शक मिल जाता, तो मुझे अिस तरह तकलीफें न अुठानी पड़तीं। अिसका यह अर्थ नहीं कि ओीश्वर या अध्यात्म-संबंधी हमारे सब विचार गलत हैं, सब ग्रंथ भ्रामक कल्पनाओंसे भरे हुअे हैं; या अिन बातोंके पीछे पड़ना जीवनको व्यर्थ गवां देना है। अपने अनुभवों परसे मैं यह नहीं कह सकता। परन्तु अिन बातोंके पीछे पड़नेके लिअे भी ठीक समझ और अुचित साधनोंकी जरूरत है, अन्यथा जीवनका हेतु पवित्र होने पर भी अुसके सिद्ध न होनेसे मनुष्यको व्यर्थ कष्ट सहने पड़ते हैं। अितना ही नहीं, अैसी परिस्थितिमें भ्रम, दंभ या नास्तिकताकी अुत्पत्ति होनेकी बहुत कुछ संभावना रहती है। मिसालके लिअे, कोओी साधक ओीश्वर-दर्शन, आत्म-साक्षात्कार वगैराकी भ्रामक मान्यताके अनुसार कोओी साधन शुरू कर दे और अगर अुसकी समझके अनुसार होना संभव ही न हो, तो फिर वह भ्रमसे किसी भी आभास या कल्पनाको दर्शन या साक्षात्कार मान लेता है। साधककी प्रज्ञा अभ्यास-कालमें विकसित हुओी हो, तो अुसका भ्रम जल्दी ही अुसके ध्यानमें आ जाता है और वह फिरसे तात्त्विक विचारोंकी तरफ मुड़ता है। अगर वह अुस भ्रमको ही अनेक प्रकारसे मजबूत करने और

सही सिद्ध करनेके प्रयत्नमें पड़ जाय, तो अुसमें धीरे-धीरे दंभ आने लगता है। जिस साधकको दर्शन और साक्षात्कार जैसा कोअी आभास नहीं होता और जिसमें यह कहनेकी हिम्मत नहीं होती कि साधनोंका कष्ट अुठाकर भी कुछ प्राप्त नहीं हुआ और जिसकी प्रज्ञा भी विकसित नहीं होती, वह या तो दर्शन, साक्षात्कार आदिका ढोंग करने लगता है या अिस निर्णय पर पहुंचकर कि अीश्वर, अध्यात्म आदि सब केवल भ्रामक कल्पनायें हैं, पूर्ण नास्तिक बन जाता है। असलमें दंभी भी नास्तिक ही है। अंतर अितना ही है कि वह अपनी नास्तिकता छिपाकर श्रद्धाका ढोंग करता है। अिस परसे यह खयाल होता है कि अिनमें से कोअी भी प्रकार व्यक्तिकी अुन्नति और सामाजिक हितकी दृष्टिसे निःसंशय अहितकर है।

भ्रम और दंभके कारण

अनेक पंथोंके भिन्न-भिन्न हेतुओंसे साधना करनेवाले कअी प्रकारके साधक मैंने देखे हैं। अुनके परिणामोंका भी मुझे पता है। अुन्हींमें से कुछ साधक किस तरह सिद्ध बने, कुछ सिद्धसे महात्मा और गुरु बनकर आगे चलकर परमेश्वरके अवतार या साक्षात् अीश्वर कैसे बने, यह भी मैंने देखा है। अिन सब बातों परसे तथा अपने अनुभवसे मुझे विश्वास हो गया है कि मनुष्यके अज्ञान, मोह, अधैर्य आदि दोष ही अुसे भ्रम और दंभमें डालने या नास्तिकताकी ओर ले जानेका कारण बनते हैं। जनहितकारी और परोपकार-वृत्तिवाले कुछ व्यक्ति भी कभी-कभी दिव्य शक्ति प्राप्त करनेके लिअे साधक-दशा स्वीकार कर लेते हैं। अैसे साधक अीश्वरकी आराधना करके अुसकी कृपाकी याचना करने तक भ्रममें हों, तो भी कमसे कम प्रामाणिक तो होते ही हैं। परन्तु जब वे यह दिखाने लगते हैं कि अीश्वरकी कृपासे अुनमें कोअी दिव्य शक्ति आ गअी है, तब वे भी जान-बूझकर दंभमें पड़ते हैं। गुरुशाहीके अनेक रूपों परसे हम सब यह अच्छी तरह जानते हैं कि हमारे देशमें बुद्धिमान माने जानेवाले लोगोंमें भी पुरुषार्थके अभावके कारण कितनी अन्धश्रद्धा होती है। अुस समाजके अनेक लोग अैसे व्यक्तियोंके आसपास श्रद्धा और आशासे जमा हो जाते हैं। अपनी भावतृप्तिके लिअे वे अिन

व्यक्तियोंको अीश्वर बना देते हैं। अुन्हें अीश्वर बनानेसे भावुकोंकी भी प्रतिष्ठा बढ़ती है। लोगोंकी श्रद्धाके कारण अिन व्यक्तियोंको भी अपनेमें अीश्वरत्वका भ्रम और मोह पैदा हो जाता है। पहलेका साधारण दयालु वृत्तिवाला साधक, अीश्वरकी कृपाकी याचना करनेवाला आराधक और अपनेको सम्पूर्ण रूपमें अीश्वरार्पण करनेवाला भावुक भोले लोगोंके स्तुति-स्तोत्रों और पूजा-अर्चनसे थोड़े ही दिनोंमें अपनेको अीश्वर मानने लगता है! क्या यह कम दुःख और आश्चर्यकी बात है? अज्ञान, भ्रम, दंभ और भोलेपनके अैसे अुदाहरण हिन्दुस्तानके सिवा और कहीं भी देखनेको नहीं मिलते। जिनमें परमेश्वरका अवतार या अीश्वरीय सामर्थ्यका संचार हुआ है, अैसी विभूतियां हिन्दुस्तानके अलावा और कहीं पैदा नहीं होतीं। अिससे हिन्दुस्तानको पुण्यभूमि माना जाय या पापभूमि? या यह समझा जाय कि हिन्दुस्तान भोले लोगोंका बाजार है?*

मानव-शक्तिकी मर्यादा

साधन-कालके संयम तथा अेकाग्रताके कारण कुछ साधकोंमें अेक प्रकारकी विशेष शक्ति आती है। अुस शक्तिका प्रभाव भी कभी-कभी दूसरे व्यक्तियों पर पड़ता हुआ दिखाअी देता है। वह प्रभाव कितना ही बड़ा क्यों न दिखाअी दे, मनुष्य कभी अीश्वर नहीं बन सकता। यद्यपि जल्दीसे यह बात ध्यानमें नहीं आती, परंतु विचार करने पर खयालमें आता है कि कितनी ही महान सिद्धि मिल गअी हो, तो भी अुससे मनुष्यके अपने आपको अीश्वर मान लेनेमें केवल हमारे भोलेपनका ही नहीं, बल्कि मोहका भी बहुत बड़ा अंश है। जब अुस अीश्वरत्वको बाहरी ठाटबाटसे, दूसरोंसे मिलनेवाली पूज्यतासे अथवा बुद्धिको मोहमें डालने-वाले और नशा लानेवाले वाग्जालसे सिद्ध करनेका प्रयत्न किया जाता है, तब विवेकी मनुष्यको अुसमें केवल नाटकीयता और दंभ ही मालूम होता है, और अीश्वरका भ्रम रखनेवाले व्यक्तियों और अुनके भक्तोंकी दशा अुन्हें दयाजनक प्रतीत होती है।

---

* सन् १९१०-११ के अरसेमें केवल महाराष्ट्रमें ही अीश्वरके कअी अवतार प्रगट हुअे थे।

मनुष्यका अहंकार और अुसकी महत्त्वाकांक्षा जब परमेश्वर बननें तक जा पहुंचती है, तब अुसमें ज्ञान और वैराग्यकी अपेक्षा अज्ञान और मोहका ही अधिक स्पष्ट दर्शन होता है, और अिन दोषोंके कारण ही यह बात अुस समय अुसके ध्यानमें नहीं आती। ओीश्वरका पद अेवं विश्वका सारा कारोबार और अुत्पत्ति, स्थिति तथा लयकी सारी जिम्मेदारी मनुष्य ओीश्वरके पास ही रहने दे और सिर्फ अपना मनुष्यत्व ही बनाये रखे और अुसे विकसित करे, तो भी अुसका और दुनियाका बहुत भला हो सकता है! अिससे ओीश्वरके नाम पर होनेवाले कितने ही भ्रम, दंभ और अनर्थ मिट जायंगे; कलह और द्वेष कम हो जायेगा; मानवता बढ़ेगी; समभावकी महत्ता समझमें आयेगी; बन्धुता और मित्रता बढ़ने लगेगी; संयम और चित्तशुद्धिका महत्त्व बढ़ेगा; कर्तृत्व और पुरुषार्थका विकास होगा। संक्षेपमें हम सब सुखी होंगे।

सभी भूमिकाओं और अनुभवोंकी जांचके बाद मैं समझ गया कि अिन भूमिकाओं और अनुभवोंको प्राप्त करते हुअे जो शारीरिक और मानसिक सद्‌गुण बढ़े हों, अुनका सबके हितके लिअे प्रामाणिकतासे अुपयोग करनेमें ही जीवनकी सार्थकता है। यद्यपि मेरी पूर्व कल्पनाके अनुसार परमेश्वरके दर्शन तथा आदेश-विषयक अुद्देश्य बादमें अनुभवके आधार पर भ्रामक साबित हुअे, तो भी अिस निमित्तसे जो प्रयत्न और परिश्रम किया गया, अुससे मानवीय प्रकृति और मानवीय मन, गुणों और धर्मोंका मुझे ज्ञान हुआ। अिस ज्ञानसे बड़ा लाभ यह हुआ कि मैं व्यक्ति, कुटुम्ब, गांव, देश, राष्ट्र और मानव-जातिमें से किसीके भी कल्याणके अविरोधी मानव-धर्मका विचार कर सका। अिसी ज्ञानके कारण मुझमें यह विश्वास भी पैदा हुआ कि व्यक्ति और मानव-जातिका कल्याण करनेका सामर्थ्य अिस धर्ममें है।

धर्म-निश्चय

विवेक और साधनाके कारण मनको थोड़ी शान्ति मिली। अिसके बाद विचार हुआ कि बीचके समयमें मनकी व्याकुल अवस्थामें जो परिश्रमी जीवन छोड़ दिया था वह फिरसे शुरू किया जाय। क्योंकि मैं समझ गया था कि परिश्रमी जीवन मानव-धर्मका अेक महत्त्वपूर्ण अंग है। १९०८से १९१८ तकके

परिश्रमका प्रयत्न

अर्सेमें मेरी कौटुम्बिक और बाहरकी राष्ट्रीय स्थितिमें बहुत फर्क पड़ गया था। अतः अुन स्थानोंमें पहलेके ही काम करते रहना मेरे लिअे संभव नहीं था। अिसलिअे मैंने तय किया कि स्वतंत्र रूपमें शरीर-श्रमका कोअी काम सीखा जाय और अुसके जरिये आजीविका चलाअी जाय। जीवनको सब दृष्टिसे पवित्र, प्रामाणिक और धर्म्य बनाकर जनसेवा करते रहनेके विचारसे मैंने बढ़अीगिरी, सिलाअी, बुनाअी आदि धंधोंमें प्रवेश करनेका प्रयत्न किया। अलग-अलग कारखानोंमें भी रहा तथा बुनाअी और बढ़अीगिरीमें थोड़ा-बहुत प्रवेश किया। मुझे यह विश्वास भी हुआ कि अिस अभ्यासमें अेकाध साल नियमित और सतत लगानेसे मैं स्वावलम्बी बन सकूंगा। परन्तु पारिवारिक तथा बाहरके संबंधोंमें मेरा पूर्व जीवन ही व्यापक होनेके कारण मुझ पर तरह-तरहके कर्तव्य आ पड़े। अुन्हें कर्तव्य-बुद्धिसे पूरा करते हुअे कोअी भी अुद्योग बाकायदा सीखनेकी सहूलियत मुझे नहीं मिलती थी। अिसलिअे निर्धारित अुद्देश्यके पीछे मैं लगातार नहीं पड़ सका। अिसके अलावा आध्यात्मिक विचार और साधनामें भी मेरा कुछ समय बीता था, अिसलिअे मित्र-मंडली और परिचित लोगोंमें अुस मार्गका मैं ज्ञाता और मार्गदर्शक समझा जाने लगा था। अिसलिअे जिज्ञासु और श्रेयार्थी साधकोंको मित्रभावसे सहानुभूतिपूर्वक मदद देनेके प्रसंग आने लगे। अिस प्रकारका आध्यात्मिक ढंगका कोअी काम करनेकी मेरी अिच्छा या संकल्प कभी न रहने पर भी — बल्कि अिस प्रकारके कामोंको टालते रहने पर भी — अभ्यासी साधकोंको मुझे निरुपाय होकर सहायता देनी पड़ी। अिस विषयमें दरअसल जरूरी-गैरजरूरी अनेक प्रकारके कष्ट सहकर मैंने विवेकपूर्वक सिर्फ अपने मनको शान्त कर लिया था। औरोंका मार्गदर्शक बननेकी दृष्टिसे मैंने कभी विचार ही नहीं किया था। परन्तु ज्यों-ज्यों जिम्मेदारी बढ़ने लगी, मुझे अुस विषयमें अधिक ध्यान देना पड़ा; और अधिक विचार करना अनिवार्य हो गया। अिस कारण अुद्योगकी शिक्षाका क्रम भी बार-बार टूटने लगा। अिस तरह आगे चलकर शारीरिक शक्ति भी दिनों-दिन क्षीण होने लगी। दूसरे कामोंका प्रसार भी बढ़ता गया। अैसे अनेक कारणोंसे अुद्योगकी शिक्षा पिछड़ गअी; पूरी न हो सकी। मैं अपने मतके अनुसार स्वावलम्बी न बन सका। आदर्श जीवनका

अुद्देश्य सिद्ध नहीं हुआ। फिर भी सेवाभावसे लोक-शिक्षणके साथ साथ अपनी शक्तिके अनुसार रचनात्मक कार्योंमें मैं समय लगाता हूं और भरसक सादा और परिश्रमी जीवन बनानेका मेरा प्रयत्न है।

पठनका अुद्देश्य

विद्वान लोगोंकी तुलनामें मेरा पठन बहुत ही अल्प है। पठन मननके लिअे है और मनन ज्ञानके लिअे। ज्ञानका पर्यवसान अन्तमें सदाचारमें होना चाहिये, यह मेरा खयाल है। अिसलिअे मेरा मानसिक रुख अैसे पठनकी ओर है, जिससे हमारे भीतरकी सद्भावनाअें जाग्रत हों और अुनका विकास हो। अितिहास, पुराण, धर्म, नीति तथा चरित्र-संबंधी ग्रंथोंके पठनसे मुझे बहुत लाभ हुआ। संत-साहित्यके कारण भक्ति, नीति, पवित्रता, समता आदिके संस्कार दृढ़ हुअे। अुन भावनाओंका पोषण और संवर्धन होता गया। चित्तशुद्धि और सद्‌गुणोंके अुत्कर्षके साथ कर्ममार्गकी ओर स्वाभाविक आकर्षण होनेसे और पढ़े हुअेको जीवनमें चरितार्थ करनेका आग्रह होनेसे थोड़ा पठन भी जीवन-विकासकी दृष्टिसे मेरे लिअे बहुत अुपयोगी सिद्ध हुआ।

कर्म और जीवनका साफल्य

देशहितकी दृष्टिसे व्यायामका महत्त्व मालूम हुआ, अिसलिअे मैंने व्यायाम विषयका थोड़ा-बहुत अध्ययन किया। अिस दृष्टिसे जीवन-संबंधी गहरा और व्यापक विचार करने पर व्यायामके साधनों तथा पद्धतिके संबंधमें मेरे विचारोंमें आगे चलकर फर्क पड़ता गया। ज्यों-ज्यों मैं जीवनकी सफलताका विचार करने लगा, मुझे अैसा प्रतीत होने लगा कि केवल व्यायामके संबंधमें ही नहीं, बल्कि मनुष्यकी शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक सभी प्रकारकी शक्तियां, अुन शक्तियोंको प्राप्त करनेके साधन, अुपाय तथा अुन शक्तियों द्वारा प्रकट होनेवाला हरअेक कर्म — सबका रुख जीवनको शक्तिशाली, तेजस्वी और पवित्र बनानेका होना चाहिये। अिसके विपरीत दूसरे हेतुओंसे होनेवाले शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक कर्मोंमें मनोरंजन होगा, प्रतिष्ठा होगी, अुनमें आनन्द और शांति देनेका सामर्थ्य भी होगा; अुनमें विकासका आभास भी होगा। परन्तु अितनेसे ही मानव-जीवन कृतार्थ नहीं हो सकता। अगर हमारा यह खयाल हो कि

हमारे साथ साथ दूसरे भी सुखी हों और हम सबका जीवन सार्थक हो, तो हमें अिन सब प्रकारोंसे निकल कर अैसा ही मार्ग ग्रहण करना चाहिये, जिससे हमारी तमाम भीतरी शक्तियोंके विकासके साथ-साथ अुनकी शुद्धि भी होती रहे। अिस विकास और शुद्धिमें ही हमें आनन्द, प्रसन्नता, धन्यता और कृतार्थता मालूम होनी चाहिये। यह बात अपने प्रयत्नके प्रमाणमें मुझे अनुभवसिद्ध हो गअी है कि संयम, सादगी तथा सद्‌गुणयुक्त पुरुषार्थमें ही जीवनकी सफलता है।

अंधश्रद्धा और भोलापन

'मन:शक्तिकी खोज' नामक अध्यायके अधिकांश विचार स्वानुभवके आधार पर लिखे गये हैं। साधुताके प्रति श्रद्धा होनेके कारण समाजमें चमत्कार-सम्बन्धी भ्रम किस तरह निर्माण होते और फैलते हैं, अिसका मुझे व्यक्तिगत अनुभव है। मैं अेकान्तमें रहने लगा, तो मेरे प्रति केवल भोले लोगोंमें ही नहीं, विद्वान लोगोंमें भी श्रद्धा अुत्पन्न होने लगी। अिससे भी अधिक आश्चर्यकी बात तो यह है कि मुझसे द्वेष रखनेवाले किसी किसी व्यक्तिमें भी अेक प्रकारका भय और बादमें श्रद्धा अुत्पन्न होने लगी। कुछको सपनेमें मेरा दर्शन होने लगा। किसीको मेरी तरफसे स्वप्नमें अुपदेश मिलने लगा। किसीके संकटका निवारण हो गया, किसीका रोग मिट गया। कोअी मेरी कृपासे मरते-मरते बच गया। कोअी मेरी मानता रखने लगे और अुनकी मानता मैं पूरी करने लगा। अिस प्रकार भावुक और कामनिक* लोगोंमें मेरी ख्याति होने लगी, चमत्कारकी अनेक बातें मेरे नाम पर फैलने लगीं, श्रद्धालु लोगोंको अैसी बातोंके कारण आनन्द होने लगा और अुनकी श्रद्धा कअी गुनी बढ़ने लगी। परन्तु मैं जानता था कि मेरी जिस दिव्य शक्तिका अनुभव और साक्षात्कार लोगोंको हो रहा था और जिन बातोंका कर्तृत्व वे मुझमें आरोपित करते थे, अुनमें से किसीका भी मेरे साथ संबंध नहीं था। अिसलिअे और लोगोंमें अिस प्रकारका गलत खयाल और श्रद्धा निर्माण होने देनेमें अपना और जनताका अकल्याण है अैसी दृढ़ मान्यता होनेके कारण मैंने अुन चमत्कारोंके कर्तृत्वसे अिनकार कर दिया और अुन्हें बता दिया कि अिस प्रकारकी श्रद्धा तुम्हारा और

---

* कामना रखनेवाले।

मेरा, दोनोंका अहित करनेवाली है। अुस समय पहले तो अुन्होंने यह बात मानी नहीं। अुलटे, वे समझने लगे कि निरहंकार होनेके कारण मैं प्रतिष्ठासे बचना और अपनी दिव्य शक्तिका व्यय न होने देनेके लिअे अप्रकट रहना चाहता हूं। अिस तरह मेरी साधुताके बारेमें अुनके मनमें और भी अधिक श्रद्धा पैदा हुअी। परन्तु हर बार मेरे स्पष्ट कहनेसे और मेरी सादगीसे अन्तमें लोग समझने लगे और मेरे प्रति अुनकी अंधश्रद्धा मिट गअी। अुस समय मैंने लोकश्रद्धाका पोषण किया होता, तो अिसमें शक नहीं कि लोगोंमें भ्रम बढ़ता और मुझमें दंभ; तथा हम सबकी दुर्गति होती। साधकके साथ चमत्कार किस प्रकार जोड़ दिया जाता है, अिसका मुझे निजी अनुभव हो गया है। तबसे किसीके भी चमत्कारकी कथाके बारेमें मेरा मन सशंक रहने लगा है।

मनःशक्तिका संशोधन

चमत्कार-विषयक भ्रम और भोलेपनके पहलूको छोड़ दें, तो अिस सवालसे संबंधित दूसरा खोज करने योग्य पहलू यह है कि चमत्कार दिखानेकी कोअी विशेष शक्ति मनुष्य अपनेमें निर्माण कर सकता है या नहीं। अिस संबंधमें मेरा यह खयाल है कि अैसी शक्ति मनुष्य अेक हद तक प्राप्त कर सकता है। अुसमें अैसी शक्ति निर्माण हो सकती है। जैसे मनुष्य अपनी शारीरिक शक्ति अेक हद तक बढ़ा सकता है, वैसे ही अुचित प्रयत्नसे वह अपनी मानसिक शक्ति भी अेक खास सीमा तक बढ़ा सकता है। अिस शक्तिके कार्यकारण-भाव सूक्ष्म और गूढ़ होनेसे हम अुसे दैवी शक्ति कहते हैं। परन्तु सूक्ष्म विचार करने पर अैसा कहनेका कोअी कारण नहीं है; या जिसमें अैसी शक्ति आअी हो अुसे भी दैवी पुरुष या अीश्वर माननेकी जरूरत नहीं। अगर तात्त्विक दृष्टिसे विचार करें तो कौनसा प्राणी, कौनसी शक्ति या कौनसी क्रिया अीश्वरीय नहीं है? अेक ही शक्तिसे, विश्वशक्तिसे, सारा दृश्य-अदृश्य फैलाव पैदा हुआ है और अुसका व्यापार चल रहा है। सूर्य या अुससे भी प्रचंड और देदीप्यमान गोलेसे लगाकर अणुसे भी छोटे जीव तक सबमें यदि यही शक्ति है और सबको चला रही है, विश्वकी स्थावर-जंगम, चर-अचर, सभी वस्तुओंका नियंत्रण करती है, तो मनुष्यकी थोड़ीसी बढ़ी हुअी शक्तिको ही हम

दिव्य या दैवी शक्ति कैसे मान सकते हैं? अतः चमत्कारके भ्रममें न पड़कर और अीश्वरत्वके मोहमें न फंसकर हमें अिस बातके संशोधनकी तरफ ध्यान देना चाहिये कि हम अपनी मानसिक शक्तिका कैसे विकास करें। अुस शक्तिको हम ज्यादा क्रियाशील, गतिशील, तीव्र और शुद्ध कैसे बना सकते हैं और अुसकी मददसे मानव-व्यवहार पर भी अिष्ट असर किस प्रकार पैदा किया जा सकता है, अिसका शास्त्रीय दृष्टिसे विचार करनेकी ओर हमारा झुकाव होना चाहिये। मैं स्वयं अिस विषयमें पारंगत या शास्त्री नहीं हूं, फिर भी अपने और दूसरोंके थोड़ेसे अनुभवों परसे मेरी अिस विषय पर केवल श्रद्धा ही नहीं, विश्वास भी है कि मनुष्य अुचित प्रयत्नसे अेक सीमा तक अपनी मानसिक शक्ति बढ़ा सकता है, अुसे अंकुशमें रख सकता है तथा बिना भ्रम और दंभ बढ़ाये संसारके दुःखोंको दूर करनेमें सहृदयतापूर्वक अुसका अुपयोग कर सकता है। मानव-जातिको अिस मनःशक्तिकी कितनी जरूरत है और अिसके लिअे मनुष्यको किस तरह प्रयत्नशील रहना चाहिये, अिसका विवेचन अुस अध्यायमें किया गया है।

*

अपने प्रथम संकल्पित कार्यमें मुझे जो दिक्कतें आयीं; जो त्याग करना पड़ा; किसी समय दो धर्म्य कर्तव्य आ पड़ने पर निर्णय करनेमें जो मनोमंथन हुआ; छुटपनसे अुदात्त अुद्देश्यके पीछे पड़नेसे जो कौटुम्बिक कठिनाअियां पैदा हुअीं; कुटुम्बीजनोंको जो दुःख भोगने पड़े; अुनकी अुपेक्षा और अवहेलनाके कारण मुझे खुद जो मनस्ताप हुआ; अुनकी अुचित जरूरतें भी पूरी न कर सकनेके कारण समय समय पर जो मानसिक वेदना हुअी; मेरी प्रवृत्तिकी साहसभरी योजना; अुस जमानेके साहसके प्रसंग और कृत्य; असीम मित्रप्रेम; दूसरोंके लिअे जो अुदारता दिखानी पड़ी और देशके लिअे जो संकट सहन करने पड़े; निराशा, अज्ञात-वास और चिन्ताग्रस्त अवस्थामें जो दिन गुजारने पड़े — अुन सबका वर्णन मैंने अिस 'परिचय' में जान-बूझकर नहीं किया है। अिसी प्रकार अेकान्त-वास और साधना-कालकी मनकी व्याकुलता; तप, संयम, अुपवास, प्रवास आदिके दौरानमें आये हुअे कष्ट और सहन-शक्तिकी परीक्षा करनेवाले प्रसंग;

जीवनको जान-बूझकर असुविधापूर्ण बना लेनेसे जो तरह तरहकी तकलीफें सहनी पड़ीं; वियोगके कारण प्रियजनोंको जो दुःख अुठाने पड़े — अुन सबका निरूपण भी मैंने छोड़ दिया है। दर्शन, साक्षात्कार, तद्रूपता आदिकी अलग-अलग भूमिकाओंमें भिन्न-भिन्न प्रकारके जो आनन्दानुभव हुअे, और अुस अरसेमें बढ़े हुअे मानसिक सामर्थ्यके जो प्रत्यय मिले, अुनका भी मैंने यहां अुल्लेख नहीं किया है। जीवनमें छोटे-बड़े, प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध व्यक्तियोंके साथ जो संबंध कायम हुअे तथा अधिकाधिक दृढ़ और गाढ़ बनते गये, अुन सम्बन्धोंका भी मैंने अिसमें निर्देश नहीं किया है। हिमालयमें रहने और भ्रमण करने पर भी वहांकी प्रकृतिका भव्य, रम्य और आकर्षक वर्णन करनेकी बात मेरे मनमें नहीं आयी। जीवनका प्रवाह किन-किन आचार-विचारोंसे गुजरता हुआ, किन-किन संस्कारोंको धारण करता हुआ, किन-किन प्रवृत्तियों, साधनाओं और अभ्यासोंमें से आजके स्वरूपको प्राप्त हुआ है और आजके विचार किन-किन अनुभवों और अुनके परीक्षणसे पार होकर निकले हैं, अितना ही कहनेका अिसमें साधारणतः प्रयत्न किया गया है।

अब अेक ही महत्त्वपूर्ण बात अपने बारेमें कहनेकी रह जाती है। हर मनुष्यकी अपने प्रति ममता होनेके कारण अुसे अपने आचार-विचार प्रिय लगते हैं। अिस प्रियताके कारण मनुष्यको अपने जीवनमें अुदात्तता, भव्यता, सज्जनता, विशेषता आदि सभी कुछ महसूस होती है। अुस समय जीवनकी कितनी ही भूलों, अपराधों तथा दुर्गुणों, दुर्बुद्धि और विकारों — सबका अुसे विस्मरण हो जाता है। अिसका सत्य और प्रामाणिकताके साथ मेल नहीं बैठता। मनुष्य थोड़े-बहुत अंशोंमें गुण-दोषोंका पुतला होता है। अतः यदि मैं अपने कोअी दोष 'परिचय' में न बता सका होअूं, तो भी औरोंकी तरह ही मुझमें भी गुण-दोषोंका मिश्रण है। जिनके दोषोंका दुनियाको बहुत पता नहीं होता या जिनके दोषोंसे किसीका बहुत नुकसान नहीं होता या जो दोषोंको दूर करनेकी कोशिश करते हैं और जिनके गुणोंकी थोड़ी-बहुत ख्याति फैली होती है, वे दुनियामें 'भले' माने जाते हैं। अैसे अनेक भलोमें से मैं भी अेक हूं, अितना ही पाठक मेरे बारेमें समझें। जिस जीवन-सिद्धिके विषयमें मैंने पुस्तकमें बार-बार लिखा है, वह मुझे

अभी तक पूरी तरह प्राप्त नहीं हुआी है। अब भी अुस दिशामें मैं यथाशक्ति प्रयत्नशील हूं।

जिसे अपने बारेमें अच्छा या बुरा कुछ भी कहनेकी स्वभावसे अरुचि है और जो केवल कर्तव्य-निष्ठ रहनेका प्रयत्न करता है, अुसे अपना परिचय अितना विस्तारपूर्वक लिखना पड़ा है! 'अहंवृत्ति' को भरसक कम करके मैंने अपने बारेमें जो कुछ लिखा है, वह भी मित्रोंके आग्रहके कारण और अिस खयालसे कि पुस्तकमें दिये गये विचारोंके पीछे रही जीवनभरकी प्रयत्नशीलताकी बात पाठकोंके ध्यानमें आ जाय। अितने पर भी यदि अिसमें किसीको आत्मस्तुतिका दोष जान पड़े, तो मुझे अुसे नम्रतापूर्वक स्वीकार ही करना पड़ेगा। पाठकोंसे अनुरोध है कि अिसके लिअे वे मुझे अुदारतापूर्वक क्षमा कर दें।

अनुक्रमणिका

पहला भाग

विभाग १ : विवेक-दर्शन

विभाग २ : साधन-विचार (चित्तका अभ्यास)

दूसरा भाग

विभाग १ : धर्म्य व्यवहार

विभाग २ : गुण-दर्शन

विवेक और साधना

पहला भाग

विभाग १ : विवेक-दर्शन

१

सामूहिक ध्येय

धर्म-कल्पनाका अुद्गम

बिलकुल प्रारम्भिक कालमें मनुष्यकी क्या स्थिति रही होगी, अिसकी कल्पना करना हमारे लिअे कठिन है। परन्तु जबसे मनुष्य-प्राणी कम या अधिक प्रमाणमें समूह बनाकर रहने लगा, तबसे समूहके धारण, पोषण और रक्षणके लिअे अुसे कुछ न कुछ नियम अवश्य बनाने पड़े होंगे। ये नियम ही अुस कालका धर्म था। अुसके बाद ज्यों ज्यों समूहकी संख्या बढ़ती गअी, त्यों त्यों धर्मकी कल्पना व्यापक बनती गअी। बिना व्यापकताके समुदायकी वृद्धि नहीं हो सकती। व्यापकता केवल अेकाध विषयमें होनेसे काम नहीं चलता। किंतु समुदायके धारण, पोषण और रक्षणके लिअे आवश्यक भिन्न भिन्न साधनों और अुन्हें निर्माण करनेके लिअे जरूरी ज्ञान, विद्या, कला आदि सभी बातोंमें व्यापकता लानी पड़ती है। अुन सबमें वृद्धि और विकास किये बिना मानव तथा मानव-समुदायका धारण, पोषण तथा रक्षण नहीं हो सकता। ज्यों ज्यों समुदाय बढ़ता है त्यों त्यों पहले बने नियमोंमें व्यापकताके प्रमाणमें आवश्यक परिवर्तन करने पड़ते हैं। वे कुछ निसर्गतः होते हैं तो कुछ अपनी बुद्धिका अुपयोग करके करने पड़ते हैं। अिस प्रकार समुदायकी वृद्धि और साथ साथ धारण, पोषण और रक्षणके लिअे जरूरी साधन और अुसके लिअे आवश्यक ज्ञान, विद्या, कलाका विकास ये बातें अेक-दूसरे पर अवलंबित हैं। अैसी स्थितिमें कुटुम्ब-संस्था निर्माण होती है। अुसीमें से कौटुंबिक भावनाओंकी वृद्धि सहज भावसे होने लगती है। अनेक कुटुंब मिलकर व्यवस्थित समाज बनता है। समाज व्यवस्थित बने, अिसके लिअे महत्त्वकी

बात यह है कि अुसे बचपनसे सुसंस्कार देनेकी व्यवस्था की जाय। सुसंस्कारोंसे सद्‌गुणोंकी वृद्धि होती है। अिन सद्‌गुणोंके लिअे आवश्यक सत्त्वकी शुद्धि ही सत्त्व-संशुद्धि है। अिस सत्त्व-संशुद्धि पर ही मानव-धर्मके विकासका प्रमाण अवलंबित रहता है। किसी समुदायके पास धारण, पोषण और रक्षणके विपुल साधन होने पर भी यदि अुसमें सद्‌-गुणोंका विकास न होता रहे, तो वह समाज संसारमें समाजके रूपमें टिक नहीं सकता। सद्‌गुणोंके लिअे आवश्यक सत्त्व यदि समाजमें न हो तो ये सद्‌गुण बढ़ नहीं सकेंगे और सत्त्वकी शुद्धि न होती रहे तो सत्त्वकी वृद्धि नहीं होगी। अिसलिअे समाजमें सत्त्व-संशुद्धिकी अत्यंत आवश्यकता है। मानसिक शुद्धि और सद्‌गुणोंसे मनुष्यमें शील और चारित्र्यका विकास होता है। मानव-धर्ममें अिसलिअे सत्त्व-संशुद्धिका महत्त्व है। अिस प्रकारकी संशुद्धिके बिना मानवताकी दृष्टिसे मनुष्यका विकास नहीं होता। अैसी स्थितिमें समाजके रूपमें अुसकी वृद्धि भी नहीं होती। अिसलिअे समय तथा आवश्यकतानुसार धारण, पोषण और रक्षणके साधन निर्माण करने पड़ते हैं और सत्त्व-संशुद्धिका महत्त्व समझकर मानव-धर्ममें सुधार करने पड़ते हैं।

पुरानी समाज-रचनाका मोह

हमारे देशमें अत्यन्त प्राचीन कालमें धर्मके नाम पर जो चातुर्वर्ण्य समाज-रचना खड़ी हुअी थी, अुसके बाद यद्यपि दुनियाके साथ हमारे सम्बन्ध बढ़ते रहे, परन्तु किसी प्रकारकी व्यवस्थित समाज-रचना या जाग्रत धर्म अिधर सैंकड़ों वर्षोंमें निर्माण नहीं हो सका। जबसे भारतवर्षका बाहरके लोगोंसे सम्पर्क आया, तबसे हमारे पतनकी जो शुरुआत हुअी है, वह अब तक पूरी तरह रुक नहीं सकी है। बाहरी लोगोंसे टक्कर लेनेके लिअे अपनी समाज-रचनामें आवश्यक सुधार करके हम अपने समाजको सबल और समर्थ नहीं बना सके हैं। अनेक आपत्तियां सहन करने पर भी हमारा पुरानी समाज-रचनाका मोह कम नहीं हुआ है। ‘अीश्वरकी अिच्छा’ और ‘प्रारब्ध कर्म’ के जैसे निराशाजनक सिद्धान्तके आधार पर अस्तव्यस्त समाज-रचनामें हम जैसे-तैसे जी रहे हैं। हमारे यहां धर्मश्रद्धाके नाम पर जड़ता और पंगुताका ही पोषण हुआ है।

लम्बे समयसे हमारे सामने कोअी निश्चित अुदात्त जीवन-ध्येय कभी नहीं रहा। जैसे दूसरे प्राणी अपनी-अपनी अिच्छाओंके कारण जीते हैं और अपनी जरूरतें पूरी करनेके व्यक्तिगत प्रयत्नमें सारी जिन्दगी बिताते हैं, करीब-करीब वही हालत, मनुष्य होने पर भी, हमारी हो गअी है। हमारे यहां हरअेक युगमें विद्वान थे, पंडित थे, महान संतपुरुष थे; धनवान और अैश्वर्यवान पुरुष थे; अेकसे अेक बढ़कर बलवान, रण-वीर और धुरन्धर योद्धा-थे; विलक्षण बुद्धिशाली राजनीतिज्ञ थे। परन्तु अैसा कोअी भी सामूहिक ध्येय हमारे सामने नहीं था, जिसे सब मिलकर अपनी शक्ति और बुद्धिसे प्राप्त करें। हमारे पास अैसा कोअी भी जीवन-ध्येय नहीं रह गया था, जिससे सबको धन्यता मालूम हो, कृतार्थता और गौरव महसूस हो और जो सबके सम्मिलित परिश्रमके बिना, अैक्यके बिना, अेक-दूसरेके लिअे संतोषपूर्वक और सच्चे दिलसे किये जानेवाले स्वार्थत्यागके बिना प्राप्त नहीं हो सके। अिसके अनिष्ट परिणाम हम भोगते आये हैं, और भोग भी रहे हैं। अभी तक सबके अेकत्रित सद्-गुणों और स्वार्थत्यागसे प्राप्त होनेवाला अुदात्त ध्येय हमने स्वीकार नहीं किया है, अिसलिअे हम सबकी शक्ति या कर्त्तृत्वमें अेकसूत्रता नहीं आ पाती; न हम सबमें अेकता निर्माण होती है, न सबमें अेक प्राण ही संचारित होता है। साधुचरित और पुरुषार्थी नेता स्वार्थत्याग और अेकताका अुपदेश कर रहे हैं, फिर भी वह हमारे चित्तमें स्थान नहीं बना पाता।

सामूहिक ध्येयका अभाव

‘तू अपना सुख देख’, ‘तू अपना संभाल’, ‘दुनियाके पचड़ेमें पड़नेकी तुझे जरूरत नहीं’—अिस प्रकारके अुपदेश और संस्कार हमें बचपनसे मिलते रहते हैं और हमारी अनेक पीढ़ियां अिसी स्थितिमें बीती हैं, अिसलिअे हमारे खूनमें वे अुपदेश और संस्कार घुल-मिल गये हैं और अपने बारेमें हमारी कल्पनायें अेकदम संकुचित हो गअी हैं। अिस कारण कोअी भी अुदात्त सामूहिक भाव हममें निर्माण नहीं होता। हम केवल स्वार्थके पीछे पड़े रहते हैं। किसी कारण जब हम संसारसे अूबकर धर्म और अध्या-त्मका विचार करने बैठते हैं, तो वहां भी हमें स्वार्थके सिवा और कोअी

अुसके कारण

अुपदेश नहीं मिलता। 'तू अकेला आया है और अन्तमें अकेला ही जायगा'; 'दुनियामें कोअी किसीका नहीं'; 'अपनेको मायाके जालसे छुड़ा ले'; 'अीश्वर-प्राप्ति कर'; 'तू कौन है यह जान ले'; 'जन्म-मरणसे मुक्त हो जा'; 'मोक्ष-प्राप्ति कर ले'; —अैसा ही अुपदेश मिलता रहता है। कहीं भी रहो, कहीं भी जाओ, कुछ भी पढ़ो, किसीका भी अुपदेश सुनो—अिसके सिवा और कोअी अुदात्त विचार या संस्कार नहीं मिलेगा। संसारका ही स्वार्थपूर्ण अुपदेश हमें परमार्थके क्षेत्रमें भी 'आत्मा' के नाम पर मिलता है, अिसलिअे वह आसानीसे हमारे गले अुतर जाता है और हमें अच्छा लगता है। क्योंकि वह हमें यह नहीं कहता कि तुम अपना स्वार्थ छोड़ो, दूसरोंके बारेमें विचार करो या अुनके लिअे मेहनत करो। संसारमें हम अपनी ही वृत्तियोंका पोषण, वर्धन और शमन करते हैं, और परमार्थके नाम पर भी हम वही करते हैं। परन्तु दोनोंमें से कहीं भी हम अपनी वृत्तियोंकी जांच नहीं करते। हमारी वृत्तियां धर्म्य हैं या अधर्म्य, अुचित हैं या अनुचित, दूसरोंके हितमें साधक हैं, बाधक हैं या घातक, अिसका विचार न करके हम केवल अपनी वृत्तियोंके पीछे दौड़ते रहते हैं। अिस प्रकार बिना किसी अुदात्त आदर्श दृष्टिको सामने रखे हमारा जीवन बहता जा रहा है।

सजीव अुदात्त आदर्शका प्रभाव

चातुर्वर्ण्य समाज-रचना जिस जमानेमें जीवित थी, अुस समय हमारे सामने जीवन-सम्बन्धी कोअी न कोअी अुदात्त आदर्श जरूर था। अेक जमानेमें हमारे यहां अैसी शिक्षा-पद्धति थी कि यज्ञोपवीतकी दीक्षा देनेके समयसे ब्रह्मचारीको पवित्र, अुदात्त और व्यापक संस्कार मिलते रहें। अिस पद्धतिके द्वारा ब्रह्मचारीको जीवनके आध्यात्मिक लक्ष्यकी सतत याद दिलाअी जाती थी। तभी बलवान तथा प्रतापशाली, धर्मनिष्ठ तथा कर्तव्यनिष्ठ समाज-रक्षक निर्माण होते थे। अुस जमानेमें केवल व्यक्तिगत सुखोपभोग या कामनाओंका, वृत्तियों या भावनाओंका महत्त्व नहीं होता था। ब्राह्मण अपने ब्रह्मतेजको बढ़ानेके लिअे जीते थे। अिस श्रेष्ठ वर्णकी कर्तव्यनिष्ठा और धर्मनिष्ठाकी छाप सारे समाज पर अवश्य पड़ती रही होगी। अिस तरह सारा समाज जीवनके किसी अुच्च आदर्शकी ओर निश्चित

रूपसे बढ़ता रहा होगा। किसी भी राष्ट्रके बल और पराक्रमके अुत्कर्ष-कालकी जांच करने पर यह विदित हुअे बिना नहीं रहेगा कि अुस कालमें राष्ट्रकी निष्ठा किसी पवित्र, अुच्च और अुदात्त तत्त्व पर आधारित थी। यूनानी राष्ट्रके अुत्कर्ष-कालमें हर नवजात शिशुको कठोर शारीरिक परीक्षामें से गुजरना पड़ता था। अुसमेंसे सही-सलामत पार हो जाने पर ही राष्ट्रके भावी नागरिकके रूपमें अुसका ठीक ढंगसे पालन किया जाता था। अिस व्यवस्थाके कारण राष्ट्रमें चाहे जैसी निष्प्राण प्रजाअें नहीं बढ़ती थीं और राष्ट्र जनसंख्या-वृद्धिके व्यर्थ भारसे भी बच जाता था। अैसे ही जमानेमें थर्मोपीलीको अमर बनानेवाले वीर निर्माण होते हैं। किसी राष्ट्रमें बल, तेज और अुत्साह तभी बढ़ता है जब अुसके सामने — सारी जनताके सामने — सबका कोअी पवित्र, अुदात्त और महान आदर्श होता है; व्यक्तिगत कामनाओं, वृत्तियों या भावनाओंको महत्त्व न देकर तथा व्यक्तिगत सुख-दुःखकी परवाह न करके सबमें अपने आदर्शके प्रति दृढ़ निष्ठा होती है; तथा अिस आदर्श और निष्ठाके लिअे मौका पड़ने पर अपना बलिदान करनेकी हरअेककी तैयारी होती है।

हमारी अवनति और अुसे दूर करनेका अुपाय

अिस प्रकारका अुच्च और पवित्र, अुदात्त और सतत प्रेरणा देनेवाला कोअी आदर्श हमारे सामने नहीं रहा। बाहरके लोग आकर लूटपाट करें, हमें गुलाम बनाकर बेगार करायें और चाहे जैसा हम पर राज्य करें — अैसा हमारा कुछ वर्ष पहलेका अितिहास रहा है। यह सैकड़ों वर्षोंके आदर्शहीन जीवनका परिणाम है। बदलते हुअे समयके साथ-साथ अपनी मानवताको कायम रखने तथा बढ़ानेवाला परिवर्तन हमारे धार्मिक और सामाजिक नियमोंमें करना जरूरी होने पर भी हम अिस तरफसे लापरवाह रहे, अिसीलिअे हममें आज अैसी पामरता आ गयी है। व्यक्तिगत सुख-सन्तोषके पीछे लगे रहनेके सिवा हमारा और कोअी ध्येय ही नहीं रह गया है। प्राचीन कालके धर्मनियमोंका आचरण करके आज हम धार्मिक समाधान प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हैं, जब कि वे आज व्यर्थ बन गये हैं। अैसी पुरुषार्थहीन प्रवृत्तिसे निर्माण होनेवाली निवृत्ति भी अुतनी ही निष्प्राण और निस्तेज होती है। अतः प्रवृत्ति और निवृत्ति,

दोनोंमें हमारी अधोगति स्पष्ट दिखाअी देती है। संसारका क्षुद्र विकारमय स्वार्थी जीवन और परमार्थके नाम पर पुरुषार्थहीन तथा ज्ञानहीन कल्पना और भावनावश जीवन! अिस तरह प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनोंमें विवेकशुद्ध और पुरुषार्थयुक्त जीवनका लोप हो गया है। परन्तु अब व्यक्तिगत सुख या श्रेष्ठताको महत्त्व न देकर यदि हम जीवनका व्यापक रूपमें विचार करना सीखें और हमारे दिलमें यह बात बैठ जाय कि हम मनुष्य हैं तथा सब प्रकारसे मनुष्य बनकर जीनेके लिअे हमारा जीवन है, तो हमें अपनी शक्तियोंका दूसरे ही रूपमें दर्शन होगा। अपनेपनकी हमारी संकुचित भावना नष्ट हो जाय और हम समुदायके प्रति आत्मीयता अनुभव कर सकें अितनी विशालता हमारे हृदयमें प्रकट हो, तो व्यक्तिगत कल्याणके ध्येय तथा सुख और दिव्यताकी कल्पना आदिकी हीनता और असत्यता हमें स्पष्ट रूपमें प्रतीत हो जायगी और जीवन-सम्बन्धी सारे क्षुद्र आदर्श हमारे चित्तसे लुप्त हो जायंगे। हम यह भी समझ जायंगे कि विकारों या भावनाओंके अधीन रहनेमें मानवता नहीं है; बल्कि अुन विकारों और भावनाओंके निमित्तसे प्रकट होनेवाली अपनी अनेक प्रकारकी शक्तियोंको विवेक द्वारा शुद्ध करके अुनका अुचित कार्योंमें अुपयोग करनेमें ही मानवता है। अिस प्रकार हममें विवेक और धर्मकी जागृति हो, तो जो मानवता आज नष्ट हो रही है वह हमें फिरसे प्राप्त हो सकेगी।

संयम, प्रेरणा और विवेक-शक्तिका विकास

मनुष्यमें अनेक प्रकारकी शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक शक्तियां हैं। ये शक्तियां वृत्ति और कर्म द्वारा, मनुष्यकी अिच्छा हो या न हो, व्यक्त होती हैं। भापका अगर अुचित रूपमें योजनापूर्वक अुपयोग किया जाय तो अुससे महान कार्य संपन्न हो सकते हैं। अिसी तरह मनुष्यकी शक्तियोंको विकारों और भावनाओंके रूपमें अव्यवस्थित ढंगसे और अविवेकपूर्वक व्यर्थ न जाने दिया जाय और अुन्हें बढ़ाकर तथा यथासंभव शुद्ध करके अुनका योजनापूर्वक अुपयोग किया जाय, तो कितने ही महान सत्कार्य किये जा सकते हैं। किंतु अिसके लिअे अेक-अेक वृत्तिका शोधन आवश्यक है। अनुचित वृत्तियोंका निरोध करके अुन्हें भावनाओंमें परिणत करना चाहिये। अुन भावनाओंको भी शुद्ध करके विवेकपूर्वक अुनका

अुचित कार्यमें सदा अुपयोग करते रहना चाहिये। कितनी ही दिव्य भावना क्यों न हो, अुसीमें लुब्ध नहीं हो जाना चाहिये। अिससे किसी भी शक्तिका विकास नहीं होता, बल्कि वह केवल मनोविलास है अैसा समझना चाहिये। वह आनन्द भले ही हो, तो भी अुसमें मानवोचित पुरुषार्थसे मिलनेवाली प्रसन्नता नहीं होती। अगर अीश्वर-सम्बन्धी भावना ही चित्तमें रमती रहती है, तो अुसमें कुछ समयके लिअे हमें आनन्द, आवेश या मस्ती तो मिल जायगी; परन्तु अुसमें पुरुषार्थ नहीं होगा। व्यक्तिगत कल्याणकी दृष्टिसे अीश्वरके साथ तन्मय होनेका प्रयत्न किया जाय और अैसी तन्मयताका हमें अनुभव हो, तो भी जब तक अीश्वरी शक्तिका संचार न हो और अुसके अनुरूप पुरुषार्थ हमारे द्वारा प्रकट न हो, तब तक अुस तन्मयताकी कीमत मानसिक विश्रांतिसे ज्यादा नहीं हो सकती। मनःकल्पित तथा मनःपोषित प्रेमोन्मत्त अवस्थाका भी अीश्वरके संबंधमें कुछ भी असंबद्ध बोलते रहनेके सिवा और कोअी अुपयोग न होता हो, तो वह अवस्था भी जीवन-कल्याणकी दृष्टिसे बेकार है। जिसे जीवन-सिद्धि प्राप्त करनी हो, अुसे कल्पना-सृष्टिमें कभी नहीं रहना चाहिये। समस्त वृत्तियों और शक्तियोंको शुद्ध करके तथा अुन्हें बढ़ाकर सबको काबूमें रखनेकी शक्ति प्राप्त करनी चाहिये। वृत्तियोंको चाहे जैसे स्वैरतासे प्रकट होनेसे रोकना चाहिये। अिसके लिअे हममें **संयमशक्ति** होनी चाहिये और अुन्हें अुचित कार्यमें लगानेके लिअे **प्रेरणाशक्ति** होनी चाहिये। अिसी तरह अपने कर्तव्यको पहचानकर अिन दोनों शक्तियोंका अुचित समय पर और अुचित ढंगसे अुपयोग करनेके लिअे हममें **विवेकशक्ति** होनी चाहिये। अिन तीन मुख्य शक्तियोंके विकासमें ही मानवता है तथा सामूहिक ध्येय और कर्तव्यके मार्गसे हमें अिन्हींका विकास करना चाहिये।

कर्ममार्गकी शुद्धि का अुपाय

अीश्वर कैसा है, अिसका अभी तक किसीको पता नहीं लगा है। फिर भी अपनी भाव-तृप्तिके लिअे जैसी जरूरत हो, वैसी ही कल्पना करके और वैसा ही बनाकर हम अुससे आनन्द, धीरज, आधार और समाधान प्राप्त करनेका प्रयत्न करते आये हैं। — जब हमें प्रेम चाहिये तब हमने अुसे प्रेमस्वरूप कहा; आनन्द चाहिये तब आनन्दस्वरूप

कहा; दया चाहिये तब दयासिन्धु माना; वात्सल्य चाहिये तब भक्तवत्सल, दीनवत्सल, मातापिता कहा; पावन होनेकी अिच्छा हो तब पतितपावन वगैरा माना। अिसका कर्ममार्ग पर कोअी अिष्ट परिणाम नहीं हुआ। अिसके कारण हमारी कमजोरी और पंगुता भी कम नहीं हुअी। अिसके बदले, अगर हमने अीश्वरमें कल्पित तथा आरोपित गुणोंसे युक्त होनेकी तथा प्रेमस्वरूप, आनन्दस्वरूप, दया और वात्सल्यसे युक्त होनेकी अेवं अुसीकी तरह न्यायपरायण बननेकी कोशिश की होती, तो अुसके सुपरिणाम समाज पर और हम सब पर होते रहते और तब हमारा जीवन सचमुच सुखी और आनन्दमय होता। सद्‌गुणों पर जोर देते रहते, तो हममें सद्‌गुणोंकी वृद्धि हुअी होती। अिससे हम सबको अेक-दूसरेका आधार मिलता, धीरज और आनन्द मिलता। अैसी स्थितिमें सहज ही हममें अैक्यभाव निर्माण होता और वह अखंड रहता। पारस्परिक सद्‌भावसे अेक-दूसरेके प्रति विश्वास अुत्पन्न होता और अुससे हम सबका अुत्कर्ष हुआ होता। परन्तु हमने प्रत्यक्ष कर्ममार्गमें अुपयोगी बननेवाले अिन सद्‌गुणोंका आग्रह नहीं रखा। जब मनुष्य कर्ममार्गकी शुद्धिका और अुसीसे प्रत्यक्ष आनन्द प्राप्त करनेका आग्रह रखता है, तब अुसे अच्छी बातोंका प्रत्यक्ष आचरण करना पड़ता है, बुद्धि लगानी पड़ती है, योजनाअें बनानी पड़ती हैं और तब अन्तमें जाकर प्रयत्नपूर्वक सफलता हाथ लगती है। अिन सब प्रयत्नोंमें कअी दिशाओंसे अुसका विकास होता रहता है। सात्त्विकताके साथ-साथ कर्तृत्वशक्ति भी बढ़ती है। सद्‌गुणोंमें वृद्धि होती है। कार्यकुशलता और योग्यता बढ़ती है। अुसके प्रयत्नसे औरोंके लिअे भी वह मार्ग तथा अुपाय सुगम बनता है। अुससे बहुतोंको अनेक तरहके लाभ हो सकते हैं। बहुतोंकी सात्त्विकता जाग्रत होती है। औरोंके सद्‌गुणोंको प्रेरणा मिलती है। कर्ममार्गके अज्ञान, अशुद्धि और जड़ताका नाश होकर अपना और दूसरोंका पुरुषार्थ बढ़ता है। काल्पनिकता न होनेसे कर्ममार्गमें जो सुधार प्रत्यक्ष हो जाते हैं तथा समाजकी जो पात्रता बढ़ती है, वह आगे भी जारी रहती है। सात्त्विक आनन्दके भिन्न-भिन्न प्रकार समाजमें रूढ़ होते हैं और अुनके परिणामस्वरूप कुल मिलाकर सारे समाजकी शुद्धि और नीतिकी मात्रा बढ़ती जाती है। अिस

दृष्टिसे देखा जाय तो केवल काल्पनिक या व्यक्तिगत सुख और आनन्दका विचार करनेसे अपनी या समाजकी कोअी शक्ति नहीं बढ़ती। अिसलिअे अैसे सुख और आनन्दकी कीमत व्यक्ति और समाज दोनोंकी अुन्नतिके खयालसे ज्यादा नहीं मानी जा सकती।

अिन सब विचारोंका यही परिणाम निकलता है कि जब हम व्यक्तिगत और केवल कल्पनाजन्य आनन्दको महत्त्व देना छोड़ देंगे, तभी कर्ममार्गकी शुद्धि हो सकेगी। जब यह तत्त्व सूझेगा कि हमें अपनी सारी वृत्तियों, कल्पनाओं और भावनाओंका अुपयोग केवल अुसी अेक अुदात्त सामूहिक ध्येयको सिद्ध करनेके लिअे करते रहना चाहिये और अुसीमें हम सफल होंगे, तभी हम समझ सकेंगे कि संयम, कर्तव्य, पुरुषार्थ और विवेककी मददसे हमें प्रत्यक्ष आनन्द प्राप्त करनेमें व्यक्ति और समाज, दोनोंकी दृष्टिसे कितने प्रत्यक्ष लाभ हैं। अिस प्रकार हम सबके अेक ध्येयसे कर्ममार्गकी शुद्धि होती रहे, तो हम सबकी नैतिक और आध्यात्मिक पात्रता सहज ही बढ़ जायगी। फिर जीवनके हरअेक कार्यसे, कर्तव्यसे हमें सात्त्विक आनन्द मिलता रहेगा और वह हम सबके जीवनमें दिखाअी देगा। माधुर्य, प्रेम, मित्रता, अुदारता, वात्सल्य, नम्रता, मातृपितृभाव, बन्धु-भगिनीभाव, दया, निरहंकारिता आदि सद्‌गुण यथासमय हमारे व्यवहारमें प्रकट होते रहेंगे। जीवनमें हरअेक व्यक्तिके साथ आनेवाले सम्बन्धों और प्रसंगोंमें होनेवाले छोटे-बड़े कर्मों द्वारा हमें और दूसरोंको ज्ञान और आनन्दकी प्राप्ति होती रहेगी।

मानवताके लिअे जरूरी समाज-रचना

कर्ममार्ग और गृहस्थाश्रमकी शुद्धिमें से मानवताका मार्ग निकलता है। अुस मार्ग पर चलनेके लिअे सामूहिक कर्तव्यनिष्ठा और सात्त्विकताकी जरूरत है। अिस सात्त्विकतामें जितना महत्त्व संयमका है, अुतना ही जीवनमें स्फूर्ति देनेवाले पवित्र आनन्दका भी है। पुरुषार्थ और सादगी, कर्तृत्व और निरहंकारिता, आत्मविश्वास और विनय आदि सद्‌गुण हमारे लिअे जरूरी हैं। जगतके झगड़े, क्लेश, संताप, कटुता और नीरसता कम करनेके लिअे हममें प्रेम, माधुर्य और शांतिकी बड़ी जरूरत है। समाजका अज्ञान और अव्यवस्था दूर करनेके लिअे हममें

ज्ञान और चातुर्यका होना जरूरी है। दैन्य और दुःखका नाश करनेके
लिअे हममें पुरुषार्थ, कर्तृत्व और अुद्योगप्रियता होनी चाहिये। अिस प्रकार
सर्वांग परिपूर्णतामें ही सच्ची मानवता है। यही हमारे जीवनका आदर्श है।
अैसा परिपूर्ण जीवन कभी अेक गंभीर महाव्रत जैसा लगेगा, तो कभी प्रेम,
माधुर्य और आनन्दका परम धाम मालूम होगा। कभी वह विवेक और
चातुर्यका भंडार है अैसा अनुभव होगा, तो कभी केवल करुणा और
पुरुषार्थसे भरा हुआ दिखाअी देगा। परन्तु किसी भी अवसर पर और
किसी भी दृष्टिसे अुसे देखें, अुसमें विवेक, सेवा-परायणता और अुदात्तता
ही मुख्यतः दिखाअी देगी। अिस दर्शनमें ही मानवता है। हम सबको अुस
जगह पहुंचना है। हमारा जीवन केवल हमारा या अकेलेका नहीं है, बल्कि
सबके लिअे है, यह निष्ठा जिस हृदयमें दृढ़ हो जाती है, समझ लीजिये
कि अुसमें मानवता जाग्रत हो गअी। अिस मानवताका जिस समाज-
पद्धतिमें विकास हो सके, वही समाज-रचना हमें चाहिये। महायत्न-
पूर्वक हमें अुसका निर्माण करना चाहिये।

२

अीश्वर-भावना

जीवमात्रमें जिज्ञासा-वृत्ति होती है। पशु-पक्षियोंमें वह बिलकुल
मर्यादित रूपमें होती है। अिसलिअे वह आसानीसे हमारे ध्यानमें नहीं आती।
मनुष्यमें वह बचपनसे ही स्पष्ट मालूम होती है, और बौद्धिक वृद्धिके
साथ वह भी बढ़ती जाती है। अिस जिज्ञासा-वृत्तिसे ही मनुष्यमें अीश्वर-
सम्बन्धी कल्पना पैदा हुअी है। किसी महत्त्वपूर्ण वस्तुको हम यथार्थरूपमें
न जान सकें, तो भी अुसे जाननेकी अिच्छा मनमें रहती ही है। अुस
वस्तुविषयक हमारा ज्ञान जितना कम होता है, अुतना ही हमें तर्क या
अनुमान करना पड़ता है। वे तर्क या अनुमान ही हमारी कल्पना या
मान्यता होते हैं। हम प्रायः अुन्हींको अुस वस्तुविषयक अपना ज्ञान
मानते हैं। जैसे-जैसे अनुभव बढ़ता जाता है, ज्ञानमें वृद्धि होती जाती है,

वैसे-वैसे पहली कल्पनाका अयथार्थ अंश कम होता जाता है और यथार्थ अंश बना रहता है और नये-नये तर्कों या कल्पनाओंकी वृद्धि होती रहती है। अिसी क्रमसे मनुष्य अेकके बाद दूसरी अयथार्थ कल्पनासे बाहर निकलकर सत्यकी ओर बढ़ता है। ओश्वर अनन्त, अपार और अगम्य है, फिर भी अपने ज्ञानकी वृद्धिके साथ-साथ हम अुसके स्वरूप और स्वभावकी कल्पनाको बदलते आये हैं। जब तक हमें अुसका सम्पूर्ण ज्ञान नहीं हो जाता, तब तक हमारी तत्सम्बन्धी कल्पनामें, मान्यतामें परिवर्तन तथा सुधार होते ही रहेंगे। हमारी मूल जिज्ञासा-वृत्ति तथा बढ़ते हुअे ज्ञान, आवश्यकताअें और भावनाअें — सबका वह परिणाम होगा। कल्पनासे होनेवाली और अनुभवमें आनेवाली दु:खनिवृत्ति और सुखानुभवके अनुरूप मनुष्यके मनमें ओश्वरके प्रति प्रेम और कृतज्ञताके भाव पैदा होते हैं और अिससे कल्पनाका पर्यवसान भावनामें होकर ओश्वर-सम्बन्धी मूल कल्पना भावनाका रूप ले लेती है। अिष्ट-सिद्धि तक स्थिर रहनेवाली दृढ़ और प्रबल भावना ही श्रद्धा है। श्रद्धासे अुत्पन्न समर्पण-वृत्तिमें से भक्तिका अुद्‌भव हुआ होगा और चाहे जैसी विपरीत स्थितिमें भी विचलित न होनेवाली श्रद्धाका ही नाम निष्ठा पड़ गया होगा। विकसित मानव-मनमें अैसे भाव कम-ज्यादा मात्रामें होते ही हैं। ये भाव ओश्वरके विषयमें, तत्त्व या धर्मके विषयमें, या आदर्शके विषयमें होते हैं। लेकिन मानव-मनमें अिन सबका स्थान है। मानवीय मनमें अुनकी भूख होती है। अिस भाव-तृप्तिमें ही मानवताका विकास है। मनुष्य-जाति अिसी रास्ते पर चलती आओी है।

ओश्वर कैसा है, अिसका शुद्ध ज्ञान मनुष्यको कभी हो सकेगा या नहीं अिस प्रश्नको छोड़ दें, तो भी मूल जिज्ञासासे मनुष्यके मनमें अुत्पन्न हुअे अिन भावोंमें भी बड़ी शक्ति है। यह अिस विषयके आज तकके अितिहाससे मालूम हुआ है। ये भाव ज्यों-ज्यों शुद्ध होते जाते हैं, त्यों-त्यों अुनका सामर्थ्य बढ़ता जाता है — अिस रहस्यको ध्यानमें रखकर मनुष्यको अपने भाव शुद्ध रखनेका प्रयत्न करना चाहिये। अिस प्रकरणके लिखनेमें मुख्यत: यही दृष्टि और हेतु है।

* * *

भिन्न-भिन्न मानव-समाजोंकी अीश्वर-सम्बन्धी कल्पनाओंके अितिहाससे मालूम होता है कि मनुष्य-जातिमें ज्यों-ज्यों मानवीय सद्‌गुण प्रकट होते गये, त्यों-त्यों अैसी कल्पनाअें बदलती गअी हैं। अीश्वरकी मूल कल्पना मनुष्यकी दुर्बलता तथा अुसके थोड़े-बहुत बौद्धिक विकाससे अुत्पन्न हुअी होगी। दुर्बलताके साथ कल्पना या तर्क करनेकी शक्ति मनुष्यमें न होती, तो अीश्वरकी कल्पनाका सूझना संभव नहीं था। पशु-पक्षी दुर्बल हैं, पर अैसा नहीं लगता कि अुनमें अीश्वर-सम्बन्धी कल्पना होती है। मनुष्यको दुःखों, संकटों, कठिनाअियों और आपत्तियोंके निवारणके लिअे, अपनी सुरक्षाके लिअे और साथ ही साथ कामना-अिच्छा आदिकी पूर्तिके लिअे तथा सुखकी स्थिरताके लिअे किसी न किसी दिव्य और महाशक्तिके प्रति श्रद्धाका आधार लेना पड़ता है। दार्शनिक, तत्त्वज्ञ, विचारक, समीक्षक या नास्तिक अीश्वरके संबंधमें जो भी कहें; भले ही कोअी जोरदार दलीलोंसे, तर्कवादसे, तात्त्विक दृष्टिसे या अन्य किसी प्रकारसे अीश्वरका नास्तित्व साबित कर दे, तो भी जब तक मानवप्राणी आजकी स्थितिमें है — और थोड़े-बहुत फर्कके साथ वह अिसी मानसिक स्थितिमें रहेगा — तब तक किसी न किसी रूपमें अुसे अीश्वर-सम्बन्धी कल्पनाकी जरूरत महसूस होती रहेगी। जब तक मनुष्यको हरअेक दुःखका नाश करनेके स्वाधीन अुपायोंका ज्ञान न हो जायगा, जब तक अुसे यह लगता रहेगा कि वर्तमान सुखके स्थायित्वका आधार पुरुषार्थ पर नहीं, बल्कि काबूसे बाहरके अनेक बाह्य संयोगों पर है, या जब तक वह जानता नहीं कि किस पर अुसका आधार है — और असलमें यही वस्तु-स्थिति है — तब तक मनुष्यको किसी-न-किसी महान आलम्बनकी जरूरत महसूस होती रहेगी। दुःखके अवसर पर निर्भय, निश्चिन्त और अनुद्विग्न तथा सुखके समय जाग्रत और संयमशील रहनेके लिअे चित्तकी जैसी पवित्र और स्थिर अवस्था होनी चाहिये, वह जब तक सिद्ध नहीं होती, जब तक मनुष्य चित्तवृत्ति पर सहज ही काबू नहीं रख सकेगा, तब तक किसी-न-किसी महान शक्तिका आधार लेनेकी अुसकी अिच्छा होगी ही। जो सुख-दुःखके पार चले गये हैं, जो हरअेक मामलेमें अपने सामर्थ्य पर आधार रखने जितने शक्तिशाली बन गये हैं, अुन लोगोंको छोड़ दें, तो भी बाकी सारे मनुष्य-

अीश्वरावलम्बन-की जरूरत

समाजको ओीश्वर-सम्बन्धी कल्पनाकी जरूरत है। अज्ञानीसे लेकर विद्वान तक, रंकसे लेकर धनिक तक —— सबको अिस प्रकारकी कुछ कल्पनाकी, भावनाकी जरूरत है। अिसमें अन्तर सिर्फ कल्पनाके स्वरूपका हो सकता है; बाकी प्रकार वही रहेगा। ओीश्वर-सम्बन्धी कल्पनाओंमें अनेक प्रकारके भेद हों, तो भी अुनमें मानी गओी महान शक्ति, न्यायशीलता, दयालुता, दीनवत्सलता, सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता आदि सबमें लगभग अेकवाक्यता है। वह शरणागतोंका रक्षक, अनाथोंका प्रतिपालक, पतितोंका अुद्धारक और अनंत विश्वकी अुत्पत्ति-स्थिति-लयका कर्ता है, अिस बारेमें सब लगभग अेकमत हैं। हां, दुनियामें सब लोगोंकी बुद्धि, परिस्थिति, संस्कार और सामाजिक रीति-रिवाजमें समानता न होनेसे ओीश्वर-सम्बन्धी कल्पनामें पूरी तरह सादृश्य न रहना स्वाभाविक है; और अिसलिअे ओीश्वरको प्रसन्न करने और अुसकी आराधना और अुपासना करनेकी विधि और मार्ग हरअेकके अलग-अलग दीख पड़ते हैं। अिसे छोड़ दें तो यह मालूम होगा कि सबकी ओीश्वर-सम्बन्धी कल्पना बहुत कुछ मिलती-जुलती है।

ओीश्वर-सम्बन्धी कल्पनाका विवेकपूर्ण अुपयोग

ओीश्वर-सम्बन्धी कल्पना तथा ओीश्वर या परलोक सम्बन्धी धर्म-कल्पनाको कुछ लोग अफीमकी गोलीकी अुपमा देते हैं। अिसमें किसी अंश तक सचाओी जरूर है। ओीश्वर-सम्बन्धी कल्पनासे दुनियामें जितनी बुराअियां पैदा हुओी हैं, अुन सबको ध्यानमें रखकर यह अुपमा दी गओी है। अुपमा कायम रखकर यह कहा जा सकता है कि ओीश्वर-सम्बन्धी कल्पना कभी-कभी और कहीं-कहीं अफीम जैसा परिणाम पैदा करनेवाली सिद्ध हुओी है। फिर भी मानना पड़ेगा कि अुसमें अिस कल्पनाका दोष नहीं। अफीमसे भी तो अच्छे-बुरे दोनों प्रकारके परिणाम आ सकते हैं। दवाके तौर पर योजनापूर्वक अफीमका अुचित अुपयोग किया जाये तो वह प्राणदायक होती है और रोज खानेकी आदत लगा लेनेसे या अधिक मात्रामें अुपयोग करनेसे वही हानि-कारक अथवा प्राणघातक सिद्ध होती है। अिसी तरह ओीश्वर-सम्बन्धी कल्पना अहितकर नहीं है; परन्तु अुस कल्पनाका किस ढंगसे, कितनी मात्रामें और किस समय अुपयोग किया जाय, अिसका ज्ञान न होनेके

कारण नुकसान होता है। सिर्फ अफीम ही क्यों, कोअी भी अुपयोगी चीज अज्ञानसे काममें ली जाय, तो अुसके भी दुष्परिणाम भोगने ही पड़ते हैं। सदा आवश्यक और अुपयोगी भोजन भी अनुचित ढंगसे, अनुचित मात्रामें और अनुचित समय पर किया जाय, तो अुससे भी अनेक रोग घर कर जाते हैं और कभी-कभी जीवनसे भी हाथ धोना पड़ता है। अिसलिअे हमारे हिताहितका आधार केवल वस्तु नहीं होती, बल्कि हमारा विवेक या अज्ञान होता है; क्योंकि अिसी पर वस्तुका अुपयोग निर्भर करता है।

औीश्वर-सम्बन्धी योग्य कल्पनाके लक्षण

अिन सब पर विचार करनेसे मालूम देता है कि मानवके अुत्कर्ष और अुन्नतिके लिअे औीश्वर-सम्बन्धी कल्पना, भावना, श्रद्धा, भक्ति, निष्ठा — ये सब जरूरी हैं। ये मनुष्यको अवनतिकी तरफ ले जानेवाली नहीं हैं। अिनसे मिलनेवाली शान्ति और प्रसन्नताके लिअे मानव-मन प्यासा रहता है। मानव-मनको सहारा देकर अुन्नत करनेके लिअे ये बहुत ही अुपयोगी हैं। अिसमें मुख्य और महत्त्वकी बात यही है कि औीश्वर-सम्बन्धी कल्पना अधिकसे अधिक विवेकशुद्ध, सरल और अुदात्त होनी चाहिये। अुसमें गूढ़ता या गुप्तता न रहे। अुस कल्पनासे चित्तको आश्वासन या आधार मिलता रहना चाहिये। अिसके लिअे जरूरी है कि अुसमें किसी भी प्रकारकी कर्मकाण्ड-संबंधी झंझट न रहे। अुलटे अुसमें अैसी स्वाधीनता और सरलता होनी चाहिये कि श्रद्धा, विश्वास और निष्ठा चित्तमें बराबर बढ़ती रहे। अुसमें मध्यस्थ, पथ-प्रदर्शक या गुरुकी जरूरत न होनी चाहिये। अुस कल्पनाको माननेवालेका नीति और पवित्रताकी ओर स्वाभाविक झुकाव होना चाहिये। अुसमें सदाचारकी प्रधानता होनी चाहिये। दया, सत्य, प्रामाणिकता, धैर्य, निर्भ-यता, अुदारता, निश्चिन्तता, शान्ति और प्रसन्नताके लाभ अुसमें सहज ही मिलने चाहिये। अुस कल्पनाके ये स्वाभाविक परिणाम होने चाहिये कि मनुष्यमात्र पर प्रेम बढ़ता रहे, सामूहिक कल्याणकी अिच्छा हमेशा जाग्रत रहे और कर्तव्य करनेकी स्फूर्ति सतत बनी रहे। अुस कल्पनामें यह प्रभाव होना चाहिये कि हमारा अज्ञान और भोलापन (अन्ध और मूढ़ विश्वास) मिट जाय, हमारे विकारोंका नाश हो, हमारी आशा,

तृष्णा, लोभ और दंभका विलय हो, चित्त स्वाधीन और शुद्ध बने, बुद्धि व्यापक और तेजस्वी हो, धर्म-भावनाको प्रोत्साहन मिले और अहंकार क्षीण हो जाय। अुस कल्पनामें अैसा दिव्य गुण होना चाहिये कि वह हमारी पामरता और क्षुद्रता, पंगुता और दुर्बलता, आलस्य और जड़ता — सबका नाश करके हमारी कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियोंकी शुद्धि करे और हममें आत्मविश्वास पैदा करे और साथ ही हमारे शरीर, बुद्धि और मनमें नित-नये चैतन्यका संचार करे। सारांश यह कि अुस कल्पनामें अैसा सामर्थ्य होना चाहिये कि वह मनुष्यको सब तरहसे मानवताकी तरफ ले जाकर तथा संपूर्ण सिद्धि प्राप्त कराकर कृतार्थ कर सके। औीश्वर-सम्बन्धी अैसी कल्पना मनुष्यमात्रका कल्याण ही करेगी। यह सम्भव नहीं कि अुससे किसीका भी कोअी अहित हो।

औीश्वर-सम्बन्धी कल्पनाको समयानुसार बदलनेकी जरूरत

अिसलिअे हर कालके अनुरूप औीश्वर-सम्बन्धी कल्पना समय-समय पर मनुष्यको मिल जाय, तो मानव-जातिके कितने ही अनर्थ सहज टल सकते हैं। परन्तु मानव-जातिके दुर्भाग्यके कारण यह बात मनुष्यके ध्यानमें नहीं आ रही है। आज भी लोग पांच हजार, दो हजार, अेक हजार, पांच सौ या सौ वर्ष पूर्वकी औीश्वर-सम्बन्धी कल्पनाको तथा अुसके आसपास खड़ी की गअी धर्मकी कल्पनाओंको मजबूतीसे पकड़े बैठे हैं। मानव-जातिका कल्याण किस बातमें है, अिसका विचार न करके पुरानी कल्पनामें दिव्यता माननेका हम सबका स्वभाव बन गया है। भूतकालमें यदि अनेक बार औीश्वर-सम्बन्धी कल्पना बदली जा सकी है और हर बार अुससे हमारा कल्याण होता रहा है, तो आज भी नअी कल्पना धारण करनेमें क्या हर्ज है? लेकिन हम अिस मामलेमें अिस तरहसे विचार ही नहीं करते। भोलेपन, अज्ञान, डर, लालच और यह भय कि औीश्वर-सम्बन्धी वर्तमान कल्पनाके बदलनेसे हमारी आर्थिक हानि होगी, हमारी प्रतिष्ठा नष्ट हो जायगी — अिस प्रकार अनेक कारणोंसे पुरानी कल्पना बदलनेको कोअी तैयार नहीं होते। समाजकी वर्तमान स्थिति और जरूरतोंका विचार न करके और यह देखते हुअे भी कि पुरानी कल्पनाअें घातक सिद्ध हो रही हैं, हम काला-

नुरूप नअी कल्पना धारण नहीं करते; अितना ही नहीं, अुलटे अुसका विरोध भी करते हैं। समाज स्वयं अज्ञान और श्रद्धाके कारण पूर्व कल्पनाको छोड़नेके लिअे तैयार नहीं होता। पुरानी कल्पनाके चाहनेवाले, अुस कल्पनाके कारण महत्त्व पाये हुअे मध्यस्थ, गुरु और कर्मकाण्डी पुरोहितोंका वर्ग नअी कल्पनाका हमेशा विरोध करते हैं। अैसा मालूम होता है कि पुरानी निरुपयोगी और अहितकर कल्पनाओंको छोड़ देनेके लिअे तैयार न होकर नअीका विरोध करनेवाला वर्ग समाजमें हमेशा होता है और अीश्वरके नाम पर हमेशा अुसीने अनर्थ किये हैं।

अीश्वर-सम्बन्धी सर्वश्रेष्ठ कल्पना, भावना व श्रद्धा

अेक जमानेमें अैसी कल्पना थी कि यज्ञमें मनुष्यों या पशुओंकी आहुति लिये बिना अीश्वर संतुष्ट नहीं होता। वह बदलते-बदलते अब यहां तक आ पहुंची है कि अीश्वर केवल सदाचार और भावभक्तिसे सन्तुष्ट होता है। मानव-जातिमें सदाचार और सद्भावनाओंको जैसे-जैसे महत्त्व मिलता गया, वैसे-वैसे यह परिवर्तन होता आया है। अिसका रहस्य ध्यानमें रखकर हमें आज अैसी ही अीश्वर-सम्बन्धी कल्पना धारण करनी चाहिये, जिससे मानवमात्रकी प्रगति, अुत्कर्ष, अुन्नति और सर्वांगीण कल्याण सिद्ध हो; वह कल्पना हमें विवेकपूर्वक तय करनी चाहिये। जो मनुष्यमात्रके शाश्वत कल्याणका विचार करके आचरण करनेमें अपनी सारी शक्ति-बुद्धिका अुपयोग करते हैं, जिनके दिलमें भूतमात्रके प्रति सहानुभूति होती है, जो सदाचारी हैं, जिनका हृदय निर्मल है, जो निःस्पृह हैं, जो पूर्वग्रह और पूर्वसंस्कारोंसे मुक्त हैं और जो विवेकी हैं, अैसे सज्जनोंके हृदयमें अीश्वर-सम्बन्धी जैसी कल्पना दृढ़ हुअी हो और जो अुन्हें अपने जीवनमें गति, अुत्साह, बल, प्रेरणा, प्रकाश और पवित्रता प्राप्त करनेमें अुपयोगी हो, जिससे अुनकी प्रज्ञा और सात्त्विकता बढ़ती हो, वह कल्पना आजके समयमें धारण करने योग्य मानी जानी चाहिये। अुसका अनुकरण करनेमें हमारा और मानव-जातिका कल्याण है। अैसे सज्जनोंकी कल्पनाको समझना संभव न हो, तो हमें अपने संस्कारों, हृदय और जीवनकी जांच करनी चाहिये। जीवनमें हम जो भी अुदात्त, भव्य और पवित्र प्राप्त कर सके हैं; संकटमें, दुःखमें, कठिनाअीमें, भयमें

जिसके बल और श्रद्धा पर हम धैर्य रख सके तथा शीलकी रक्षा कर सके; जिससे अगतिक स्थितिमें गति, पश्चात्तापमें सान्त्वना, पतनावस्थामें अुत्थान, मूर्छावस्थामें भान, अज्ञानावस्थामें ज्ञान, असहाय स्थितिमें सहायता, मोहमें विवेक और संयम, कुछ भी सूझता न हो अैसी परेशानीकी हालतमें प्रकाश और मार्ग प्राप्त कर सके; जिससे पुरुषार्थमें बल और अुत्साह, कर्ममें शुद्धता और व्यापकता प्राप्त हुअी, वह कल्पना कौनसी है, वह भावना कौनसी है? कौनसी पवित्र श्रद्धा जीवनमें ये सब बातें सिद्ध करनेमें अुपयोगी बनी है? यह ढूंढ़ निकालना चाहिये। अुसी कल्पना, भावना, या श्रद्धाको भरसक सरल, प्रभावशाली, निरुपाधिक, स्वाधीन, महान, भव्य, व्यापक, बाह्य आडम्बर-रहित, शुद्धसे शुद्ध, मंगलसे मंगल और श्रेष्ठसे श्रेष्ठ बनाकर अपने हृदयमें दृढ़ करना चाहिये। अगर मनुष्य यह बात सिद्ध कर सके तो वह अिसके बल पर जीवनभर अेकनिष्ठ रहकर अपने जीवनको सार्थक कर सकेगा।

निष्ठा और संकल्पका सामर्थ्य

मनुष्यके चित्तमें अिस प्रकारकी अीश्वर-भावना जाग्रत रहे, अिसके लिअे अुसमें अपने अभ्युदय और अुन्नतिकी तीव्र अिच्छा होनी चाहिये, विवेक होना चाहिये। ये वस्तुअें सज्जनोंके सहवाससे सहज ही प्राप्त की जा सकती हैं। अगर हम श्रेयार्थी हैं, तो हम पर विवेकी और पुरुषार्थी सज्जनकी संगति और अुसके चरित्रका शुभ परिणाम हुअे बिना नहीं रहता। अिन सबकी मददसे हमें अपनी मानवताका ध्येय सिद्ध करना चाहिये। जीवनके ध्येयके बारेमें हमने जैसी कल्पना की होगी या जैसा निश्चय किया होगा, वैसी ही हमारी अीश्वर-विषयक कल्पना होगी। अिसलिअे सबसे पहले हमें ध्येयकी शुद्ध और स्पष्ट कल्पना होनी चाहिये। हमें यह निश्चित समझ लेना चाहिये कि जो कुछ भी भव्य प्रतीत होता है, वह सब आदरणीय या अनुकरणीय नहीं होता। जो आकर्षक लगता है, वह ध्येय नहीं होता। केवल आनन्दप्रद या सुखकर लगनेवाला, केवल शान्ति और प्रसन्नता देनेवाला भी हमारा ध्येय नहीं होता। जो दिव्य और रम्य लगता है, वह भी ध्येय नहीं होता। अिसके विपरीत जो मानवताके अनुरूप हो, सद्‌गुणोंका पोषक हो, संयमका सहायक हो, धर्म

और कर्तव्यका प्रेरक हो, जिसे प्राप्त करनेके लिअे प्रामाणिक मानव-व्यवहार और परिश्रम आदिका त्याग न करना पड़े, जिसकी प्राप्तिकी अिच्छा सब करें और जिसके प्राप्त हो जाने पर मानव-व्यवहार अधिक सरल, पवित्र और व्यवस्थित हो जाय, अुसे प्राप्त करना हमारा ध्येय है। वह काम मुश्किल हो सकता है, परन्तु अुसमें भ्रम नहीं हो सकता। अुसके मार्गमें कठिनाअियां हो सकती हैं, परन्तु दंभ नहीं हो सकता। अुसमें हमेशा आनन्द न हो, तो भी कृतार्थता होगी। अुसे प्राप्त करना कठिन है, अतः अुसकी कठिनताकी तीव्रता कम महसूस हो, भ्रममें न पड़ना पड़ें और दम्भमें न फंसें, अिसके लिअे जरूरी है कि किसी अत्यन्त पवित्र और महान शक्ति पर हमारी श्रद्धा और निष्ठा हो। तमाम अनिष्टों और संकटोंसे, पापों और बाधाओंसे बाहर निकालकर हमें अपने ध्येय तक पहुंचानेकी शक्ति अुस निष्ठामें ही है। ध्येय-सम्बन्धी हमारे दृढ़ संकल्पसे निष्ठा जाग्रत रहती है। विश्वमें सर्वत्र व्याप्त महान शक्तिको अपने लिअे अुपयोगी बना लेनेका सूत्र और सामर्थ्य हमारे दृढ़ संकल्पमें है।

३

स्तवनका सामर्थ्य

अपनी अुन्नतिके लिअे किसी बाहरी धार्मिक आडम्बर या कर्म-काण्डकी जरूरत नहीं, केवल आंतरिक आतुरताकी जरूरत है। जिसमें अैसी भीतरी व्याकुलता होती है, अुसे अुन्नतिका मार्ग मिल जाता है। यदि अुसमें दृढ़ता और निग्रहशक्ति हुअी, तो अुस मार्ग पर चलनेका सामर्थ्य भी अुसे मिल जाता है। अुन्नतिके मार्गमें पहली मुश्किल अपने ही अनुचित संस्कारोंको और आदतोंको बदलनेकी आती है। अिन संस्कारों और आदतोंको बदले बिना हम आगे नहीं बढ़ सकते। हम अिन्द्रियोंकी आदतों और मन पर जमे संस्कारोंसे बंधे होते हैं। हम पर अुनका काबू रहता है। श्रेयार्थी मनुष्यको अनुचित आदतों और संस्कारोंसे मुक्त हो जाना चाहिये। अिसके लिअे अपनेमें सामर्थ्य पैदा करना जरूरी है। वह

सामर्थ्य ध्येय-सम्बन्धी आतुरता और निग्रह-वृत्तिसे प्राप्त होता है। अिस प्रयत्नमें पुरानी और नअी मनोवृत्तियोंका कुछ समय तक झगड़ा होता रहता है। दीर्घ कालसे पोषित अेक ही तरहके संस्कारों, आदतों और कृतियोंके कारण पुरानी मनोवृत्तियां स्वभाव बन गअी होती हैं। अिस स्वभावका नाश हमें नअी मनोवृत्तियोंके द्वारा तथा विशेषतः अपने निग्रहसे करना पड़ता है। पहलेकी अयोग्य वृत्तियोंमें आदतका जोर होता है; और नअी शुभ वृत्तियोंमें निश्चयका बल होता है, पवित्र संकल्प और अुसके कारण पैदा होनेवाले आत्मविश्वासकी मदद होती है। अिस तरह परस्पर-विरोधी वृत्तियोंका हमारे चित्तमें चलनेवाला संघर्ष हमें सहना पड़ता है। हमारा निश्चय और संकल्प दृढ़ हो, हममें पर्याप्त निग्रह-शक्ति हो तो हमारी शुभ वृत्तियोंकी अन्तमें विजय होती है और हम अपने मार्गमें आगे बढ़ते हैं। हमारे चित्तमें अुन्नतिके लिअे व्याकुलता हो तो हमें कअी बार अिस प्रकार अपने ही चित्तके झगड़े सहन करने पड़ेंगे। परन्तु अुनसे तंग न आकर या कभी भी निराश न होकर हमें अपनी अुन्नतिके रास्ते पर आगे ही बढ़ते रहना चाहिये।

अन्तरकी अुत्कट अिच्छा — संकल्प हमें अिस मार्गमें हमेशा मदद देता रहेगा। अिस अिच्छा और संकल्पको कभी मंद न पड़ने देना चाहिये। पठन, मनन, सज्जनोंकी संगति, अुचित और धर्म्य व्यवसाय आदिकी सहायतासे हमें अपने संकल्पको सदैव जाग्रत और दृढ़ रखना चाहिये। अिसी संकल्पके बलसे हमें अपने मार्गमें सिद्धि प्राप्त करनी है। अिस संकल्पमें बल आये, अिसके लिअे हममें ओश्वर-निष्ठा होनी चाहिये। अिस निष्ठामें अपार सामर्थ्य है। साधनके बिना निष्ठा नहीं बढ़ती, निष्ठाके बिना संकल्पमें बल नहीं आता। अिसलिअे हमें किसी साधनका आलंबन लेना पड़ता है। वह साधन अैसा होना चाहिये, जिससे हमारी निष्ठा दृढ़ हो, हमारा संकल्प अेकविध, शुद्ध तथा दृढ़ हो और अुसमें तीव्रता और तेजस्विता आये। अिसके अलावा वह साधन स्वाधीन होना चाहिये। अुसमें किसी भी प्रकारके कर्मकाण्डका आडम्बर न होना चाहिये। अुस साधनमें ही अैसा प्रभाव

ओश्वर-निष्ठा, संकल्प और साधनका सामर्थ्य

होना चाहिये, जिससे हमारे हृदयमें भावभक्तिकी बाढ़ आने लगे और चित्त निर्मल होने लगे, अुसमें अीश्वर-निष्ठा सहज ही वृद्धिगत हो और वह बढ़ते-बढ़ते हमारे शरीरके अणु-अणुमें रम जाय। अिस प्रकार हम मूर्तिमंत निष्ठा बन जायें। अगर हम यह साध सकें, तो हमारी अुन्नतिमें ज्यादा देर न लगे। क्योंकि अुसके कारण चित्तमें पैदा होनेवाले दृढ़ और तीव्र शुभ संकल्पसे अयोग्य संस्कारोंका बल जल्दी क्षीण होता जायगा और थोड़े ही समयमें वे सब संस्कार नष्ट हो जायेंगे और हमारी अुन्नतिका मार्ग सुलभ और सरल हो जायगा।

स्वाधीन साधन अीश्वर-स्तवन है

अिसके लिअे सबसे प्रभावशाली और स्वाधीन साधन अीश्वर-स्तवन है। जो हमें अच्छा लगे और जिसके परिणामस्वरूप हममें सद्भाव जाग्रत हों और हमारे हृदयमें धीरे-धीरे संचरित होने लगें, अिस प्रकारका स्तवन हमें साधनके तौर पर चुनना चाहिये। यह स्तवन या स्तोत्र हमें हर रोज शुचिर्भूत होकर अेकान्तमें शांत और प्रसन्न समयमें, अन्तर्मुख होकर शान्ति और स्थिरतासे अिस ढंगसे नियमित रूपमें बोलनेका कार्यक्रम रखना चाहिये कि अुसके प्रत्येक शब्दका, भावका अपने चित्त पर गहरा असर हो और केवल अपनेको ही अुसकी जानकारी हो। बोलते समय स्तवनके प्रत्येक शब्दसे हमारे चित्त पर शुभ, पवित्र और गंभीर लहरें अुठनी चाहियें, प्रेम जाग्रत होना चाहिये, हृदय सात्त्विक भावोंसे भर जाना चाहिये और वे भाव हृदयकी गहराअी तक पहुंच जाने चाहियें। कोमलता और दृढ़ता, प्रसन्नता और तेजस्विता हृदयमें व्याप्त हो जानी चाहिये। स्तवन करते करते हमारी निष्ठा बढ़नी चाहिये। किसी भी अवसर पर, किसी भी कारणसे वह नष्ट या विचलित न हो, अैसी दृढ़ व अभंग बन जानी चाहिये। और यह सब परिणाम स्तवन करते-करते ही हो रहा है, अैसा अनुभव होना चाहिये। हमें अैसा महसूस होना चाहिये कि स्तवनके शुरूमें हमारे चित्तकी जो स्थिति थी, वह स्तवनके अन्तमें अूपर लिखे अनुसार बदल गअी है। अिस तरहका सामर्थ्य हमें स्तवनकी पद्धतिसे पैदा करते आना चाहिये। स्तवनमें जिन अीश्वरीय गुणोंका हम वर्णन करते हैं, जो स्तुति करते हैं, जिन गुणोंके स्तोत्र गाते हैं, वे गुण, वे

भाव स्तवन करते करते हममें संचरित होने चाहिये। अपने प्रेम, भक्ति-भावना और निष्ठासे हम अीश्वर-सम्बन्धी कल्पनाके साथ, गुणोंके साथ तन्मय हो जायं, समरस हो जायं, तो वही गुण हममें प्रगट हुअे बिना नहीं रहेंगे। अैसी स्थितिमें दुर्बलता और दीनता, दुष्टता और हीनता, जड़ता और कृपणता, अशुद्धता और लंपटता, बुरी आदतों और कुसंस्कारोंके लिअे हमारे हृदयमें स्थान नहीं रहेगा। अिन सबका समूल नाश हो जायेगा।

स्तवनमें अैसी महान शक्ति है। परन्तु अुसे प्राप्त करना हमारे अन्तरकी तीव्र अिच्छा पर अवलंबित है। हमारी तीव्र अिच्छा स्तवनमें बल लायेगी, स्तवनसे निष्ठामें बल आयेगा और निष्ठा संकल्पको दृढ़ और प्रभावशाली बनायेगी। तीव्र अिच्छा ही संकल्प है। यह संकल्प, स्तवन और निष्ठा सब अेक-दूसरेके पोषक और बल बढ़ानेवाले हैं। अुन्हें अेक-दूसरेसे अलग नहीं किया जा सकता। संकल्पका प्रभाव स्तवन पर, स्तवनका निष्ठा पर और निष्ठाका फिर संकल्प पर — अिस प्रकार सामर्थ्य-वृद्धिका यह चक्र चलता रहता है। दृढ़ संकल्पका हमारे सारे जीवन पर अनजाने सतत असर पड़ता रहता है। स्तवनसे अुसमें महान शक्ति प्रगट होती है। हमारी दूसरी शक्तियोंसे यह शक्ति बहुत व्यापक है। अिस शक्तिके कारण असंभव दीखनेवाली बातें सहज ही सिद्ध होने लगती हैं। हमारी संकल्प-शक्ति ही हमारे भीतरकी सच्ची शक्ति है। जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति — अिन तीनों अवस्थाओंमें वह हममें जाग्रत रूपमें काम करती रहती है। हमारे भीतर और बाहर होनेवाली तमाम घटनाओंसे अुस शक्तिका सम्बन्ध है और अुसका कार्य अज्ञात रूपसे सदैव जारी रहता है। हमारा मन, बुद्धि, चित्त और साथ ही हमारा 'अहं' सबके सुप्त दशामें चले जानेके बाद भी वह शक्ति जाग्रत रहती है। वह जाग्रत रहती है, अिसलिअे गाढ़ निद्रामें से भी निश्चित समय पर वह हमें जाग्रत करती है। वह जाग्रत न हो तो रोजकी अपेक्षा सुबह जल्दी अुठनेका संकल्प करके रातको सो जानेके बाद ठीक अुसी समय गहरी नींदसे हमें कौन जाग्रत करेगा? अिसलिअे अिसमें शक नहीं कि हमारे दृढ़ संकल्प अनजानमें हमारे जीवनका निर्माण करते हैं। अुन

संकल्पोंको अधिकाधिक दृढ़, तीव्र और यशस्वी बनानेके लिअे स्तवनकी अत्यन्त आवश्यकता है। अिस स्तवनसे ये सारी सिद्धियां प्राप्त करनेका रहस्य जिसने साध लिया है, वह अपनी अुन्नतिके मार्ग पर चलते चलते, जीवनको क्रमशः विकसित करते करते अपना ध्येय प्राप्त कर सकेगा।

४

स्तवन-शुद्धि

आपने पत्रमें लिखा है कि अपने अिष्टदेव या आदर्श तत्त्वका सर्वत्र साक्षात्कार होना आत्मविकासमें अुपयोगी है अथवा आत्मविकासकी अेक सीढ़ी है; परन्तु मुझे अैसा नहीं लगता। क्योंकि साक्षात्कारकी अैसी भाषाके कारण ही हमारे धार्मिक और आध्यात्मिक ग्रंथोंमें भ्रम खूब बढ़ता गया है। भक्तिके अतिरेकके साथ साथ अगर चित्तमें अुसी परि-माणमें भ्रम घर करके रहते हों, तो यह कहना पड़ेगा कि भक्तिकी वे कल्पनायें और प्रथायें सदोष हैं। त्याग नजर आते ही अीसाका साक्षा-त्कार होता है, अैसा कहनेवाले अीसाअी भक्तका आपने पत्रमें अुदाहरण दिया है। परन्तु यों न कहकर यह कहना ही अुचित होगा कि त्याग नजर आते ही अुस महापुरुषका स्मरण हो आता है। परन्तु अैसा कहनेसे भक्तकी भावतृप्ति नहीं होती। अैसे समय भक्ति जब गलत मार्ग अपनाये, तब अुसे मोह या भ्रम ही कहना चाहिये। अिस स्थितिकी या अिस प्रकारकी भावतृप्तिकी विकासमें जरूरत नहीं मालूम होती। विकासकी किसी भी भूमिकाका आधार गलत समझ पर नहीं होना चाहिये। भ्रमात्मक भक्तिमें कोअी विकास नहीं होता, अैसी बात नहीं। भक्तकी भावना और आचरण जीवनके कर्तव्योंका जिस हद तक अनुसरण करते होंगे, अुस हद तक अुसमें विकास माना जा सकता है। बाकीकी कल्पनायें और भ्रम व्यक्ति और समाज दोनोंके विकासमें बाधक होते हैं। किसी भी स्थितिको विकास तभी कहा जा सकता है जब वह स्थिति अुचित मार्ग पर अुन्नत होते होते क्रमशः प्राप्त हुअी हो और

बादके विकासके लिअे बाधक या प्रतिबंधक न होकर स्वाभाविक रूपमें ही सहायता देनेवाली हो। तभी अुसे विकासकी सीढ़ी कहा जा सकता है। कोअी भी सीढ़ी या भूमिका प्रयत्नशील मनुष्यको क्रम-क्रमसे आगेकी भूमिकाकी तरफ ले जानेवाली हो जानी चाहिये। हमारा विकास समझ-पूर्वक क्रमानुसार नहीं होता, अिसका अेक कारण यह है कि हम अुसके लिअे कोअी व्यवस्थित साधन नहीं जानते। अितना ही नहीं, परन्तु अैसा मालूम होता है कि अिस बातका भी हमें पता नहीं है कि विकासका भी कोअी निश्चित क्रम होता है और चित्तको अुत्तरोत्तर अुच्च भूमिका पर ले जानेके लिअे कुछ व्यवस्थित साधनोंकी जरूरत होती है। अेकसे अेक अुदात्त और अुच्चतर भावनाओं और धारणाओंके अनुशीलन और आधारसे, चिन्तनसे और तन्मयतासे मनुष्य अुच्चतर भूमिकाअें प्राप्त कर सकता है। अिसके लिअे भावना, धारणा और चिन्तनके स्थूल अभ्याससे धीरे-धीरे सूक्ष्म अभ्यासमें जाना पड़ता है। अुस अभ्यासमें अेक तरहका क्रम, सुसंगति तथा चित्तको साध्य तक ले जानेवाली योजना होनी चाहिये। अिन सबकी मददसे चित्त स्थूल अनुभवसे धीरे-धीरे सूक्ष्म और गाढ़ अनुभवमें तन्मय हो जाता है। तब तक मार्गमें आनेवाली हरअेक भूमिका दृढ़ करनी पड़ती है। अेकसे अेक श्रेष्ठ भूमिकाकी चित्त-स्थितिका विचार करके प्रार्थना, स्तवन, भजन या भक्तिके किसी भी प्रकारमें सुसंगति और मेल बिठाकर अुसमें से विकासका अुत्तरोत्तर बढ़ता हुआ क्रम साधना पड़ता है। अैसा न करते हुअे जिनमें कोअी मेल नहीं, कोअी क्रम नहीं, अैसे भाव, अर्थ, धारणा, हेतु और लक्ष्यकी दृष्टिसे सब प्रकार असम्बद्ध और विसंगत श्लोक हम प्रार्थना या स्तवनके रूपमें रोज बोलते रहें, तो भी विकासकी दृष्टिसे अुनका कोअी अुपयोग नहीं। प्रार्थना या स्तवन करते समय अुसके अर्थ या भावके साथ हमारा चित्त धीरे-धीरे समरस होना चाहिये। अिसके लिअे पहले हमें अपने जीवनका साध्य निश्चित करना चाहिये। साध्यको सिद्ध करनेके लिअे विवेकपूर्वक यह तय करना चाहिये कि कौनसी भावनायें और धारणायें साधनके तौर पर जरूरी हैं। ये भावनायें जिनसे जाग्रत हों, क्रमशः विकसित हों, अैसे अेकसे अेक अधिक अर्थपूर्ण और भावपूर्ण श्लोकों या

स्तवनका सुसंगत चुनाव करना चाहिये। यह चुनाव अैसा होना चाहिये कि अुसके अनुसार प्रार्थना करते करते चित्त सहज ही बढ़ते हुअे क्रमसे अुसके अर्थ या भावके साथ समरस होकर अन्तमें गाढ़ अनुभवमें तल्लीन हो जाय। हर रोजके अैसे क्रमसे चित्तकी सात्त्विक भूमिकायें दृढ़ होती जायेंगी। चित्त हमेशा आनन्दित और प्रसन्न रहने लगेगा। काम, क्रोध और लोभके आवर्त अपने आप मन्द पड़ जायेंगे। रागद्वेषसे चित्त मुक्त होने लगेगा। फिर हम दुःखसे घबरायेंगे नहीं। सात्त्विक कर्मोंके लिअे हममें अुत्साह पैदा होने लगेगा। अिस प्रकार भक्तिभावनासे की गअी प्रार्थना या स्तवनके द्वारा हममें अिस प्रकारका बल आ जाता है। हमारा विकास होता है।

आज अिस विषयके निमित्तसे अिसी प्रकारके कुछ विचार बताता हूं। हमारे समूचे धार्मिक और आध्यात्मिक संस्कारोंमें अेकनिष्ठा निर्माण करनेका प्रयत्न शायद ही कहीं पाया जाता है। सब जगह अनेक देवी-देवताओंकी कल्पनाओं और अुनकी आराधनाके प्रकारोंकी संख्या बढ़ती दिखाअी देती है। अेकेश्वरी निष्ठा हमें रुचती नहीं और पचती भी नहीं। हमारे मनका रुख देवी-देवताओंकी कल्पनाअें बढ़ाने या किसी भी तरह अुन्हें कायम रखनेकी तरफ ही दिखाअी देता है। किसी भी अच्छी कल्पना या विशेषताको देवत्व तक ले जाये बिना हमें संतोष नहीं होता। ब्राह्मण, माता, पिता, गुरु, पति, गाय, सर्प, तुलसी, बड़, पीपल, चन्द्र, सूर्य — सभी हमारे देवता हैं। अिन सबके बारेमें देवत्वकी भावना मुश्किलसे कम होने लगी कि अिधर हिन्दुस्तानको 'भारतमाता', 'हिन्द देवी' कहकर अुसके नकशे बनने लगे हैं। दरिद्रोंको 'नारायण' बनाने तक हम जा पहुंचे हैं। संभव है अब स्त्रियों, बच्चों और हरिजनोंकी देवता बननेकी बारी आ जाय!

अिन सब बातों पर विचार करनेसे अैसा लगता है कि हमारे संस्कारों और परम्पराओंके कारण हमारा मानस ही अिस प्रकारका बन गया है। कभी हम अीश्वरके बारेमें भिन्न-भिन्न कल्पनाअें करके, अुसके साथ तरह-तरहके काल्पनिक सम्बन्ध जोड़कर अपनी भावतृप्ति कर लेनेका और मनको आनंदित करनेका प्रयत्न करते हैं; तो कभी

अपनी कामनाओंके लिअे देवी-देवताओंकी तरह तरहकी कल्पनाअें करते हैं। कभी अेकाध विशेषताको देवपद पर ले जाकर बैठा देते हैं, तो कभी कर्तव्य और करुणाकी भावनासे जब हमारा मन भर जाता है, तब जिसके लिअे हममें ये भावनाअें पैदा होती हैं अुसमें देवत्वकी प्रतिष्ठापना करने लगते हैं। देवत्वकी भावनाके बिना केवल मनुष्यके रूपमें किसीकी सेवा करनेमें हमें रुचि नहीं। मनुष्यकी सेवा करनेके लिअे हमारा मन तैयार नहीं होता और तैयार हो तो भी अन्तमें अुसमें देवत्वकी कल्पना किये बगैर वहां टिक नहीं सकता। साक्षात्कारकी भाषाके बिना हम अध्यात्म या अीश्वरके विषयमें बोल नहीं सकते। परन्तु हमें अिन संस्कारोंसे बाहर निकलना चाहिये। ये संस्कार हमारे चित्तमें कितने ही गहरे घर किये बैठे हों, तो भी यह समझकर कि सत्य ज्ञानसे अिन सबका समूल नाश करनेमें ही हमारा कल्याण है, हमें अिस विषयमें हमेशा प्रयत्नशील रहना चाहिये।

(पत्र, २०–९–'४०)

५

मानवताकी विडम्बना और गौरव

मनुष्य-जन्मकी श्रेष्ठता

जो अपनी देहको ही सर्वस्व मानकर अुसके सुख-स्वास्थ्यको ही महत्त्व देता है वह जीव है तथा जिसे मानवता प्रिय होती है वह मनुष्य —जीव और मनुष्यके ये लक्षण तय करें, तो अैसा नहीं लगता कि कोअी भूल होगी। जब तक मनुष्य मानवताके महत्त्वको न जानकर केवल शरीर और जीवको संभालता और पालता रहता है, तब तक कहा जा सकता है कि वह मानवता तक नहीं पहुंचा। मानवताके जरूरी गुणोंके खातिर जो मनुष्य तन-मनसे कष्ट सहन करता है, अुसे मानवताका अुपासक मानना ठीक होगा; और मानवताकी सिद्धिके लिअे या मानवतामें कमी न रहने देनेके लिअे मौके पर जो प्राणार्पण कर देता है, वह मानवताकी कसौटी पर खरा अुतरा है और अुसने मानवता सिद्ध

कर ली है अैसा कहना चाहिये। मानवतासे श्रेष्ठ सिद्धि संसारमें दूसरी कोअी नहीं। थोड़ा विचार करने पर समझमें आ जायगा कि मानव-जीवन कितने महत्त्वका है। 'कर्तुमकर्तुं' की शक्ति दुनियामें यदि कहीं निर्माण हो सकती है, तो वह मानव-जीवनमें ही हो सकती है। महान विद्वान और महापराक्रमी पुरुष तथा अपने-अपने समयके अद्वितीय, अजेय और धुरंधर योद्धा अिस मानवकुलमें ही पैदा होते आये हैं। बड़े-बड़े ज्ञानी, तत्त्वदर्शी, ज्ञानविज्ञानके शोधक और बोधक, तपस्वी और यशस्वी, प्रतिसृष्टिकर्ता और महर्षि, महान संत, महंत, अर्हत आदि सबकी अुत्पत्ति मानव-जातिमें ही होती आअी है। सज्जनोंकी रक्षा करके धर्मकी ग्लानि दूर करनेवाले परमेश्वरके अवतारोंका विचार करें या संसारके अुद्धारके लिअे पृथ्वी पर आनेवाले परमेश्वरके पुत्रोंका, सिद्धार्थ गौतम या वर्द्धमान महावीर जैसे धर्मसंस्थापकों व धर्मप्रवर्तकोंका विचार करें या परमेश्वरकी आज्ञासे धर्मका प्रचार करनेवाले पैगम्बरोंका — ये सब मानवजातिमें ही अुत्पन्न हुअे हैं। अुन्होंने मनुष्यरूपमें ही काम करके विदा ली है। अुनके जन्मसे मानवताकी शोभा बढ़ी है। अुनके कारण मानवताका महत्त्व बढ़ा है। मानव-जन्मका विचार करें, अपनी जिम्मेदारी पहचानकर अपना जीवन अुन्नत करनेका प्रयत्न करें, तो हम भी अपना जीवन सार्थक कर सकेंगे। यह ध्यानमें रखकर कि अीश्वरकी अतर्क्य घटनासे, परमात्माकी अलौकिक कलासे हमारी अुत्पत्ति हुअी है, हम अपने जीवनकी शुद्धि और सिद्धि साधनेका निश्चय करें, तो विश्व-शक्तिसे हमें सदा सहायता मिलती रहेगी। हमारा विवेक और अुसके साथ ही मानवताका आदर्श हमारे हृदयमें सतत जाग्रत रहेगा।

मानवताके मार्गमें विघ्न

यद्यपि मानवताका मार्ग सीधा है और चित्तकी शुद्धि तथा सद्-गुणोंकी वृद्धि ही जीवनकी मुख्य वस्तुअें हैं, फिर भी विवेककी कमीके कारण, आदर्शकी गलत कल्पनाके कारण, प्रतिष्ठा और कीर्तिके लोभके कारण अथवा तात्कालिक सुख-लोलुपताके कारण मनुष्य अुलटे रास्ते लगकर अपनी मानवता खोता है और कभी-कभी अिसीमें वह अपना गौरव भी समझता है। अैसे समय वह भ्रांतिमें फंसा हुआ होता है।

अिसलिअे अुसे अपनी मानवता कायम रखनेमें हमेशा सावधान और दक्ष रहना चाहिये। जिसे अपनी मानवता पर प्रेम है, वह सिर्फ अपनी ही मानवता बढ़ानेकी कोशिश नहीं करता, बल्कि अुसकी अिच्छा होगी कि दुनियामें भी मानवता बढ़े। और अुस दिशामें वह प्रयत्नशील होता है। क्योंकि यदि जगतमें मानवता नहीं बढ़ती है, तो अकेले व्यक्तिको अपनी मानवता बढ़ानेमें अत्यन्त परिश्रम करना पड़ता है और अपयश या शरीर-नाश तक सहन करनेकी नौबत आ जाती है।

सुकरात, ओीसा मसीह, गुरु तेगबहादुर और दूसरे अनेक संत जनोंके, जिन्हें सत्य और मानवताके खातिर अत्यन्त कष्ट सहन करना पड़ा, समयमें अगर अुनके जैसी अुत्कट मानवता हजारों लोगोंमें होती, तो अपनी मानवता कायम रखनेके लिअे अुन्हें प्राण गंवानेकी नौबत न आती या अुनमें से किसीको भी असह्य कष्ट सहन न करने पड़ते। बहुतसे मनुष्य सत्य और प्रामाणिकतासे बरतते हों, तो साधारण मनुष्य भी सत्य और प्रामाणिकतासे रह सकता है। परन्तु समाजमें असत्य और दूसरे दुर्गुण सर्वत्र फैले हुअे हों, तो अेकाध व्यक्तिको भी अपना जीवन सन्मार्ग पर रखना बहुत मुश्किल होता है। सार्वत्रिक असत्याचरण बढ़नेसे मनुष्योंमें पारस्परिक प्रेम, विश्वास और आदर नष्ट होता है। जीवन-निर्वाहके लिअे हरअेकको दूसरोंसे अधिक कपटी और असत्याचरणी बनना पड़ता है। अिस तरह समाजमें केवल दुर्गुणकी ही वृद्धि होती है। अिस तरह सब मिलकर मानवताकी विडम्बना करते हैं और किसीके लिअे भी अच्छे रास्ते पर चलना अधिकाधिक कठिन हो जाता है। विवेकी मनुष्य अिस स्थिति और अुसके कारणोंको जानता है और अुसमें से भी धीरज और निष्ठासे मार्ग निकाल लेता है। मनुष्य मनुष्यके बीचके सम्बन्ध निर्मल हों और अुनमें स्वाभाविकता आये, अिसके लिअे वह खुद सद्-गुणका आचरण करता है। वह जानता है कि सद्गुणके आचरणसे ही सद्गुणके लिअे पोषक वातावरण पैदा होता है। किसीके अुपकारका हम बदला न दे सकते हों तो भी अुसके लिअे हमारा केवल कृतज्ञ-भाव भी अुसके, हमारे और सबके मनमें अुदारता और दूसरे सद्भावोंकी वृद्धि करता है, परस्पर विश्वास बढ़ाता है और मानव-जातिके प्रति

विश्वासमें वृद्धि करता है। परन्तु किसीकी कृतघ्नता देखकर न केवल अुसके प्रति ही हमारा विश्वास नष्ट होता है, बल्कि सारी मानव-जातिके प्रति विश्वास कम हो जाता है। सहज होनेवाले अच्छे-बुरे बरतावसे हम अनजानमें जगतके सद्‌गुण या दुर्गुणमें कैसी वृद्धि करते हैं, अिसे विवेकी मनुष्य समझता है। अिसलिअे वह जीवनमें सत्य, प्रामाणिकता और कृतज्ञता आदि सद्‌गुणोंको महत्त्व देता है। जो लोग असत्य, कपट, धोखेबाजी, दगा, कृतघ्नता आदिसे अपना काम निकालकर सन्तोष मानते हैं, अुन्हें विचार करना चाहिये कि अैसे बरतावसे वे अपने चित्तमें और दुनियामें किस चीजकी वृद्धि करते हैं। अिस प्रकार प्राप्त होनेवाली वस्तु भौतिक दृष्टिसे कितनी ही कीमती प्रतीत होती हो, तो भी वह अशाश्वत है और वह अपनी तथा समाजकी मानवताका नाश करके ही प्राप्त की गयी होती है। अुस चीजके हमारे हाथसे निकलनेमें देर नहीं लगेगी। लेकिन अुसे प्राप्त करनेके लिअे हमारे हृदय और समाजमें जो दुर्गुण अुत्पन्न हुअे और बढ़े हैं, अुनका नाश हम नहीं कर सकेंगे। हमें विचार करना चाहिये कि अैसे आचरणसे हमारी कौनसी शक्ति बढ़ती है? अिससे हम अपनेको और समाजको कहां ले जाते हैं? अिसमें हमारी सबलता है या निर्बलता? हम सब अिसी मार्ग पर चलते रहेंगे और अपनी कार्यसिद्धिके लिअे दूसरोंके साथ दुर्गुणी बननेकी होड़में लगेंगे, तो अन्तमें अुसका परिणाम क्या होगा? औरोंकी बात छोड़ दें, तो भी हम अपनी संततिको, अपने लड़कोंको अपने अिस बरतावसे कैसी परिस्थितिमें डाल देते हैं? अिस दुनियामें अुनके लिअे हम किस प्रकारका क्षेत्र तैयार करके रखते हैं? अिस तरह अपनी ओरसे होनेवाले कर्मोंके वर्तमान और भावी परिणामोंका मनुष्य सूक्ष्मता और दीर्घदृष्टिसे विचार करे, तो अपने व्यवहारके परिणामोंका भीषण चित्र अुसकी नजरके सामने खड़ा हो जायगा। अपनी तरफसे होने-वाली मानवताकी विडम्बना अुसके ध्यानमें आ जायगी। वह गलत मार्गसे बाहर निकलनेका प्रयत्न करेगा। अुसके मनमें सदाचारके प्रति श्रद्धा पैदा होगी। अगर वह दृढ़निश्चयी हुआ तो अपने और दूसरोंके कल्याणके लिअे अिस नवजाग्रत श्रद्धा पर अटल रहकर सदाके लिअे सदाचारी बन जायेगा।

स्वार्थ, दम्भ, कपट, असत्य, असंयम, अविवेक, दुष्टता, क्रूरता, सात्त्विकतारहित अिन्द्रियजन्य भोग और अुनके कारण मानव-जातिकी तरफसे होनेवाले अनर्थ — अिन सबके कारण मानवताकी विडम्बना होती आअी है। धन, मान, कीर्ति और प्रतिष्ठाके पीछे पड़े हुअे, विलासमें डूबे हुअे, व्यसनोंमें फंसे हुअे, जवानीके मदमें मत्त, सत्ताके नशेमें चूर, स्त्री-पुत्रके मोहके कारण कर्तव्यको भूले हुअे — ये सब लोग मानवताकी विडम्बना करते हैं। माता-पिताके प्रति अपना कर्तव्य न समझनेवाले, कलाके नाम पर वासनाकी वृद्धि करनेवाले, धर्मके नाम पर स्वार्थ साधनेवाले, सामूहिक धर्म न जाननेवाले मानवताकी विडम्बना ही करते हैं। अीश्वर-भक्ति करते-करते अपनेको ही अीश्वर माननेवाले, लोगोंमें अिस प्रकारकी भ्रांति फैलानेवाले, अपनेको ही भगवान कहलवाकर लोगोंसे अपनी पूजा करानेवाले — अिन सबको मानवताकी विडम्बना करनेवाले कहनेमें हर्ज नहीं। हम मानव माता-पिताके पेटसे जन्मे हैं। अिसलिअे शरीर, बुद्धि और मनकी तमाम शक्तियोंका विकास करके, शुद्धि करके, हमें मानवताकी पूर्णता प्राप्त करनी है। अिसका भान न रहनेसे शक्तिके जोरसे कोअी दानव बनता है, तो कोअी मोह और भ्रांतिमें फंसकर भगवान बननेका दिखावा करता है। मनुष्यको न दानव बनना है, न अीश्वर। परन्तु मानव-रूपमें व्यवहार करते हुअे सद्‌गुणों द्वारा चैतन्यको प्रकट करते करते अुसे मानवताकी सीमा तक पहुंचना है। अुसे मानवताकी शांति, सुख और प्रसन्नता प्राप्त करनी है। अिसीमें अुसका विकास है। अिसीमें अुसकी पूर्णता है। और जिससे यह सिद्धि मिले वही अुसका धर्म है।

मानवताकी विडम्बना करनेवाले

ये सब बातें स्पष्ट हैं। फिर भी मनुष्य भ्रांतिवश तरह-तरहके मोहमें फंसता है, अिसलिअे अपना आदर्श अुसकी समझमें नहीं आता; ध्येय अुसके ध्यानमें नहीं आता। मानवताका गौरव और मानवताकी विडम्बना, अिन दोके बीचका भेद वह समझ नहीं पाता। मनुष्यकी दुर्दम्य अिच्छायें कभी दानव बनकर, तो कभी देवत्वके मोहमें फंसकर प्रकट होती हैं। अिन दोनों मार्गोंको टालकर मानवताका सरल रास्ता अपनानेके

मानवताका गौरव

लिअे शुद्ध विवेककी जरूरत है। यह विवेक न हो तो मनुष्य विलासको ही विकास समझ लेता है, भ्रांतिको ज्ञान, दुर्बलताको सज्जनता, डरपोकपनको क्षमा और मनमें आसक्ति होने पर भी जबरन् किये गये त्याग और संयमको वैराग्य समझता है। भावना और योजना, अुदासीनता और शान्ति, जड़ता और स्थिरता, मोह और प्रेम, आसक्तिजन्य कर्म और कर्तव्यके बीचका भेद अुसकी समझमें नहीं आता। परन्तु मोह और भ्रांतिको टालकर, अज्ञानको दूर कर, और विवेकको शुद्ध और सूक्ष्म बनाकर यह जानना चाहिये कि जीवनके अन्त तक हमें क्या प्राप्त करना है और अुसे प्रयत्नपूर्वक प्राप्त करना चाहिये। हम दुर्बलता और क्षुद्र कामनाके कारण देवताको ढूंढ़ते फिरते हैं, अिसलिअे हमें देवत्व श्रेष्ठ लगता है। विकट अवसर पर भी जो अपना शील कायम रखकर मानवतापूर्वक जीवन बिताता है, अुसके लिअे हमें विशेषता, आदर या पूज्यभाव महसूस नहीं होता; परन्तु अेकाध साधारण भावुकको भी हम देखते देखते अीश्वर-पद पर बिठा देते हैं। अीश्वर-भक्तिसे, धार्मिक आचरणसे मनुष्यमें नम्रता, निरहंकारता, कृतज्ञता आदि गुण आते हैं, फिर भी भक्तिके मार्ग पर लगा हुआ साधक थोड़े ही दिनोंमें अपना मनुष्यत्व भूलकर देवत्वमें सन्तोष मानने लगता है। अिससे यह दिखाअी देता है कि मान-प्रतिष्ठाकी अिच्छा मनुष्यको मानवतासे गिरा देनेमें किस तरह कारण बनती है। अिस प्रकारकी आकांक्षा और अिच्छामें मानवताकी विडम्बना है। जिन जिन आशाओं, तृष्णाओं और कामनाओंके कारण मनुष्य मानवताको भूल जाता है, वे तमाम मनुष्यकी हानि करनेवाली हैं; यह जानकर मनुष्यको सावधानी और संयमसे, धीरज और पुरुषार्थसे, विवेक और निरहंकारीपनसे मानवताका मार्ग स्पष्ट और सरल बनाना चाहिये। धर्म, कर्म, आनन्द, लाभ, अिच्छा, कामना, भावना, प्रतिष्ठा आदि सब प्रसंगोंमें अुसे अपनी मानवताका स्मरण रखकर चलना चाहिये। मानव-कर्तव्य और मानव-धर्मका अुसे सदा स्मरण रखना चाहिये। विश्वशक्तिसे, अीश्वरीय शक्तिसे प्रकट होकर अपने तक पहुंचे हुअे अिस मानवताके दानको हमें अधिक शुद्ध और मानव-सद्गुणोंसे अधिक समृद्ध करके भावी सन्तानोंके कल्याणके लिअे मानव-जातिको समर्पित करना चाहिये। अिसीमें मानवता और

मानव-जातिका गौरव है। यही सब धर्मोंका सार है। अिसीमें भक्ति और और तत्त्वज्ञानकी परिसीमा है।

६

भक्तिशोधन — १

औश्वरकी आराधना, भक्ति आदिकी कल्पनाअें

मानवीय दुर्बलता और कल्पना-शक्तिसे औश्वर-सम्बन्धी कल्पना निर्माण हुअी। अुसके सहारे मनुष्य अपने दुःख, अज्ञान, कठिनाअियों, आपत्तियों और संकटोंका निवारण करने और धीरज तथा आश्वासन प्राप्त करनेकी कोशिश करता आया है। जैसे-जैसे मानव-प्रकृतिमें सज्जनताकी वृद्धि होने लगी, वैसे-वैसे मनुष्य समझने लगा कि औश्वर सौजन्यकी मूर्ति है और प्रेम, वात्सल्य, दया आदि गुणोंका सागर है और वह अुसके साथ गहरा सम्बन्ध जोड़ने लगा। औश्वरके बारेमें भयानकता या अुग्रताकी कल्पना हो, तो अुसके प्रति प्रेम और भक्ति अुत्पन्न नहीं हो सकती। परन्तु औश्वर-सम्बन्धी सौम्य कल्पनामें से ही आगे चलकर भक्ति, अुपासना आदि शुरू हुअे होंगे। अवतारवादके कारण औश्वर दुष्ट-संहारक और दीनवत्सल दिखाअी देने लगा। अिस परसे अुसकी भक्तिके अनेक प्रकार निर्माण हुअे। उसमें भी सकाम भक्ति और औश्वरके साथ तद्रूप होकर जन्म-मरणसे मुक्ति दिलानेवाली भक्ति — अैसे भेद पैदा हुअे। सकाम भक्तिमें से ही अनेक देवताओंकी अुत्पत्ति हुअी। जबसे औश्वरको सगुण, साकार माना जाने लगा तबसे अुसके दर्शनकी अिच्छा, अुत्कंठा, व्याकुलता आदि मनुष्यमें पैदा होने लगी और अिन सबका मोक्षके साथ सम्बन्ध जोड़ा गया। औश्वरका ज्ञान, दर्शन, साक्षात्कार, तद्रूपता, अुसके साथ समरस होना, अुसके साथ मिल जाना आदि कल्पनाओंके कारण औश्वरका सतत ध्यान, चिन्तन और अनुसंधान रहनेके लिअे अुसकी मूर्तिका सारे अुपचारोंके साथ पूजन, अर्चन, भजन, कीर्तन वगैरा अुपायोंका आश्रय भक्त-जन लेने लगे। अवतारकी कल्पनाके कारण औश्वर और अुसकी लीलाके वर्णनोंसे भरे ग्रंथोंका निर्माण होने लगा। अुससे भावुकता बढ़ने लगी। अुसके

दर्शनकी व्याकुलताके कारण संसारके प्रति अुदासीनता पैदा हुअी और अुसीसे वैराग्यकी अुत्पत्ति हुअी। वैराग्यके कारण प्रेमी भावुकोंके मनमें तपके संस्कार जाग्रत हुअे। परिणाम यह निकला कि लोग जान-बूझकर अपनेको कष्टमय स्थितिमें डालने लगे। अीश्वरके प्रेमस्वरूप होने पर भी अुसके दर्शनके लिअे खास कष्ट सहन किये बिना वह प्रसन्न नहीं होता, अैसी विसंगत विचार-सरणी पैदा हुअी। श्रवण, मनन, निदिध्यास और साक्षात्कार — यह अिस मार्गकी सिद्धिका क्रम माना गया और निदिध्यासके अनेक अुपाय निकले। नाम-स्मरण, ध्यान आदि साधनों द्वारा किसी किसीको साक्षात्कार होने जैसा महसूस होने लगा। जिन्हें अितनेसे यश नहीं मिला, अुनमें से कुछ लोगोंने श्रीकृष्णके दर्शनका सतत निदिध्यास रहनेके लिअे खुद राधा बननेका प्रयत्न शुरू किया। राधाकी प्रेमभावना अपनेमें लानेके लिअे वे हावभाव, पोशाक और भाषा वगैरा सभीमें राधाका अनुकरण करने लगे। अुसमें से अुस प्रकारके विवेकहीन पंथ निकले और अुनकी परम्परा चालू रही।

दर्शन-साक्षात्कारकी परीक्षा

भक्तिकी अैसी कल्पनाओंके कारण हमारा किसी हद तक अेकांगी विकास जरूर हुआ; परन्तु अिससे मानवीय पूर्णता साधनेके लिअे जो मार्ग अपनानेकी जरूरत थी वह हमें नहीं सूझा। शायद हमारी परिस्थिति अुस समय अैसी नहीं रही होगी। हमने मानवताके सर्वांगी विकासको अपने जीवनका ध्येय समझा होता, तो किसी भी अुपायसे अीश्वरका निदिध्यास रखकर तत्सम्बन्धी कल्पनामें लीन होनेमें हमें कृतार्थता महसूस न होती। श्रीकृष्णके दर्शनके लिअे विवेकहीन साधनोंके पीछे हम न पड़ते। निदिध्याससे अीश्वर-साक्षात्कार जैसा मालूम होनेके बाद भी हम अुस अनुभवकी विवेकपूर्वक जांच करते, तो हमें दिखाअी देता कि वह साक्षात्कार अीश्वरका नहीं, परन्तु निदिध्यास और अनुसंधान द्वारा अीश्वर-सम्बन्धी जो कल्पना हम अपने चित्त पर जमा रहे थे अुसका आभास है। अुस कल्पनाको रंग, रूप, भव्यता, अद्भुतता आदि सब कुछ हमारा ही दिया हुआ है। सही विचार करने पर हमारे ध्यानमें आ गया होता कि वह हमारी ही पैदा की हुअी कल्पना है। अिस तरहका आभास अेकाध

बार या बार-बार हो तो भी अुससे मानवताकी पूर्णता नहीं हो सकती। यह बात समय पर हमारे ध्यानमें न आनेके कारण और जीवन-सम्बन्धी अेकांगी विचारोंके कारण विवेकहीन और पुरुषार्थहीन कल्पनामें हम सच्ची भक्तिसे बहुत ही दूर बह गये।

भक्तिकी गलत मान्यतासे तपकी प्रवृत्ति

अीश्वर-सम्बन्धी अपनी ही कल्पनाके साथ तद्रूपता साध लेनेसे, चित्तको कुछ समय तक निर्व्यापार कर लेनेसे या भक्तिके काल्पनिक आनन्दमें मग्न या बेहोश हो जानेसे मानवताकी पूर्णता नहीं हो सकती। ये अपनी ही कल्पनामें रमे रहने या तन्मय होनेके आनन्द और समाधानके प्रकार हैं। अिसके लिअे हम अपनेमें जितनी व्याकुलता निर्माण करते हैं, अपना जीवन जान-बूझकर जितना कष्टमय बनाते हैं अुतनी ही प्रतिक्रियाके रूपमें हममें आनन्द, प्रसन्नता या शान्ति प्रतीत होने लगती है। अिसमें शक नहीं कि बार-बार आनन्दमय कल्पना करके अुस स्थितिको टिकाये रखनेकी कोशिश करनेसे वह कुछ समय तक टिकी रह सकती है। परन्तु अिस स्थितिकी जांच करने पर, अुसका कार्य-कारणभाव जांचने पर, यह मालूम हो जायगा कि यह "अीश्वर-प्राप्तिका आनन्द" केवल हमारी निर्माण की हुअी अपनी कष्टमय स्थितिका और अपनी कल्पनाका परिणाममात्र है। भावनाशील मनुष्यके मनमें जन्म-मरणके भयके कारण वैराग्य और भक्तिप्रधान ग्रथोंके पढ़नेसे अीश्वर-प्राप्तिकी व्याकुलता पैदा होती है। अुसमें अीश्वर-सम्बन्धी ज्ञान और प्रेमका अंश बहुत थोड़ा होता है और भय तथा कल्पनाका अंश ही ज्यादा होता है। अीश्वर-विषयक प्रेमके आनन्दके कारण संसारकी सुख-सुविधाओंकी जरूरत मनुष्यको महसूस न होती हो, अुन सुख-सुविधाओंके बिना मनुष्य आनन्द, अुल्लास और अुत्साहमें पुरुषार्थी जीवन व्यतीत कर सकता हो, तो अिसमें शक नहीं कि अीश्वर-सम्बन्धी प्रेम और आनन्द जीवनमें अत्यन्त आवश्यक साबित होंगे। परन्तु जिन मनुष्योंमें अीश्वर-सबन्धी प्रेम और वैराग्यका संचार हुआ है, वे जब जरूरी सुख-सुविधाओंका आग्रहपूर्वक, जबरन् त्याग करके भक्ति, विह्वलता आदि बढ़ानेकी कोशिश करते हैं, तब अुनमें भक्ति और प्रेमके अुत्कर्षके कारण जो सहज शान्ति और प्रसन्नता आनी चाहिये, वह नहीं

आती। अुनके बजाय आवश्यक कर्मों और कर्तव्योंका त्याग करके जान-बूझकर अेकांगी और अैकान्तिक बनाये गये कष्टमय जीवनकी असह्यता ही अुन्हें अुत्तरोत्तर अधिक महसूस होने लगती है। अिस असह्यताके कारण होनेवाली व्याकुलता अीश्वर-सम्बन्धी प्रेमके कारण ही पैदा हुअी है, अैसा भ्रामक खयाल अुनमें पैदा हो जाता है। भक्तिकी गलत समझके कारण आग्रह-पूर्वक त्याग और तपका मार्ग स्वीकार करनेसे अपनी दिशाभूल और मानसिक स्थितिके कार्य-कारणभाव अुनके ध्यानमें नहीं आते। अैसी स्थितिमें या तो अीश्वर-साक्षात्कारका भ्रम या आभास हुअे बिना अथवा अुस बारेमें दंभ शुरू किये बिना खुदके बनाये हुअे कष्टमय जीवनसे अुनका छुटकारा नहीं होता। अिस प्रकारके ज्यादातर भक्तोंका जहां पूर्वजीवन त्यागमय देखनेमें आता है, वहां बादका जीवन विलास और वैभव-संपन्न और आरामतलब देखनेमें आता है। अीश्वरीय प्रेम और निष्ठा जिनके हृदयमें हों, अुनमें औरोंकी अपेक्षा अधिक शान्ति, प्रसन्नता, अुत्साह आदि सहज होने चाहिये। सादे जीवनसे ही अुन्हें सन्तोष होना चाहिये। अपनी हरअेक शक्ति और विशेषताका अुपयोग निरहंकार वृत्तिसे, अीश्वरार्पण बुद्धिसे करते रहनेमें अुन्हें स्वाभाविक कृतार्थता महसूस होनी चाहिये। प्रेम या निष्ठाके लिअे अपना जीवन जान-बूझकर कष्टमय बनानेका अुनके लिअे कोअी कारण नहीं है।

साक्षात्कार आदि कल्पनाओंमें विचारदोष

हम लोगोंमें अैसी मान्यता और श्रद्धा चली आयी है कि अीश्वर, आत्मा और ब्रह्मका साक्षात्कार या दर्शन, अीश्वरीय दिव्य प्रेम, परमेश्वरीय आनन्द, अीश्वरज्ञान, आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान आदिमें से किसी भी अनुभवकी प्राप्ति गुरुकृपासे, तपसे या भक्तिसे साधकको बिजलीकी चमककी तरह अेकदम हो जाती है, मायाका परदा अेकाअेक अुठ जाता है। परन्तु अनुभवसे यही मालूम होता है कि अिसमें सत्यकी अपेक्षा भ्रमका ही बड़ा हिस्सा है। अीश्वर, आत्मा या ब्रह्म आदि तत्त्व अैसे स्थूल नहीं हैं या हमसे भिन्न नहीं हैं कि अुनका साक्षात्कार या दर्शन हो सके। अिसलिअे हमको अपना ही ज्ञान होता है, दर्शन होता है, या हमको अपना ही साक्षात्कार होता है, या 'मैं कौन हूं' यह हम जान सकते हैं—अैसा

मानना अेक प्रकारका भ्रम है; और हमें दर्शन या साक्षात्कार हो गया है, अैसा मानना तो महाभ्रम है। ये सब हमारे चित्तकी ही वृत्ति-निवृत्तिके प्रकार हैं। चित्तके अभ्यासमे और अुसमें होनेवाले अनुभवके निरीक्षणसे विवेकी मनुष्य अिन सब प्रकारोंको पहचान सकता है और मानवीय पूर्णताकी दृष्टिसे अुनकी अुपयुक्तता या अनुपयुक्तताको जान सकता है।

समरसताका जीवनकी दृष्टिसे विचार

अीश्वर, आत्मा या ब्रह्मकी कल्पनाके साथ चित्तका तादात्म्य साधनेसे या अन्तमें चित्तको निर्व्यापार करनेसे अुन तत्त्वोंकी प्राप्ति होती है, अुनका ज्ञान होता है या अुनके साथ समरसता सिद्ध होती है, अिस मान्यतामें विचारदोष मालूम होता है। जिन-जिन तत्त्वोंके साथ हम तादात्म्य या समरसता साधनेकी कोशिश करते हैं, अुन तत्त्वोंमें माने गये गुण हममें आते हों, तो ही यह कहा जा सकता है कि तादात्म्य या समरसता सिद्ध करनेका हमारा प्रयत्न अुचित है। अीश्वरके साथ समरसता सिद्ध होनेके बाद भी हममें पुरुषार्थ और समता न आये; दया, न्याय, अुदारता, प्रेम, क्षमा, वात्सल्य आदि सद्‌गुण पूरी तरह न आयें; अखंड सत्कर्म-परायणता व्याप्त न हो, तो मानवीय पूर्णताकी दृष्टिसे अुस तादात्म्य और समरसताकी कोअी कीमत नहीं मानी जा सकती। भापकी जड़शक्तिके मारफत, बड़ी नदियोंसे निकाली गअी नहरों द्वारा या किसी जल-संचय द्वारा भी योजनाकी सहायतासे प्रचण्ड कार्य कराये जा सकते हैं, तो फिर चैतन्यके अपार सागर जैसे परमात्माके साथ — ब्रह्मके साथ अेकरूप या समरस हो जाने पर हमारे द्वारा भी अुस महाचैतन्यके अनुरूप कार्य होते रहें, यही सब दृष्टियोंसे सुसंगत और अुचित प्रतीत होता है।

भक्ति और अुपासनाके सच्चे लक्षण

जीवनमें अीश्वर-विषयक श्रद्धा, भक्ति और निष्ठाकी बहुत जरूरत है। लेकिन अिन सबमें जिस हद तक विवेक, पुरुषार्थ और व्यापकता होगी, वहीं तक ये भावनायें हमें कृतार्थ कर सकेंगी। अीश्वर सम्बन्धी प्रेमसे हमारे चित्तमें केवल अष्ट सात्त्विक भाव जाग्रत हों या अुन भावोंके अतिरेकसे हमें तद्रूपता या मूर्छा आ जाय, तो अिसे भक्तिकी परिसीमा नहीं कहा जा सकता। ये सब लक्षण

कदाचित् हमारी दुर्बलताके भी साबित हो सकते हैं। तद्रूपतासे हम परमेश्वरके साथ समरस होते हैं और हमारा अुसमें समर्पण होता है। अिससे मोक्षकी प्राप्ति होती है। अिस मान्यता और श्रद्धाके कारण यह अवस्था बहुत श्रेष्ठ मानी गअी है। परन्तु अैसा लगता है कि अिसमें बहुत बड़ा विचारदोष है। विश्वव्यापी अपार शक्तिसे निर्मित 'मैं' रूपमें माने गये शरीर, बुद्धि और मनसहित चैतन्य द्वारा मानव-कर्तव्योंको पूरा करते रहनेमें भक्तिकी परिसीमा है। यद्यपि विश्वशक्तिकी तुलनामें हम अणुके जैसे हैं, तथापि यह अणु अुसीका अंश है। अतः परमात्मामें जिन सात्त्विक गुणोंकी कल्पना की जाती है, वे सब अंशरूपमें हममें हैं ही। अिन गुणोंका अुत्कर्ष और पूर्णता साधनेकी कोशिश करना भक्तिका सच्चा लक्षण है। हम कहते हैं कि परमात्मामें दया, न्याय, वात्सल्य, अुदारता, प्रेम, क्षमा आदि गुण हैं। हम यह अपेक्षा रखते हैं कि संसारव्यापी मानवजातिमें भी ये सद्गुण हों। तो क्या अिन्हीं सद्गुणोंको अपनेमें लाना, अुनका अुत्कर्ष करना और अिस प्रयत्नमें ही विश्वशक्तिके सात्त्विक तत्त्वोंके साथ समरसता सिद्ध करना सच्ची तद्रूपता नहीं है? हममें अनेक शक्तियां और गुण सुप्त रूपमें निवास करते हैं। अुनमें से जिस शक्ति या गुणको जाग्रत करने तथा बढ़ानेका प्रयत्न करेंगे, वे सब हमारे द्वारा प्रकट होते रहेंगे। यह अीश्वरीय नियम है। यह सृष्टिका धर्म है। हारमोनियम या तंतुवाद्यकी जिस स्वरपट्टीको हम दबाते हैं, वही स्वर अुसमें से निकलने लगते हैं। अिसी प्रकार मानवरूपमें व्यापार करनेवाली विश्वशक्तिके — परमात्माके — अंशमें से हमारे संकल्पके अनुसार परमेश्वरीय शक्ति और गुणोंका सतत प्रगटीकरण होता रहता है। अिसीमें सच्ची मानवता, समर्पण और समरसता है। विश्वशक्तिका कारोबार अनेक प्रकारसे अखंड रूपमें जारी है। अुस कारोबारमें से हमारे हिस्सेमें आया हुआ कार्य हम भी अखंड रूपमें करते रहें, यही परमेश्वरकी सच्ची अुपासना है।

श्रद्धा, भक्ति, निष्ठा — अिन श्रेष्ठ और पवित्र भावनाओंमें असाधारण सामर्थ्य है। हममें जितना संयम, पुरुषार्थ, सद्भावना और जितने सद्गुण होंगे, अुतना ही सामर्थ्य प्रगट होगा। साराश यह कि जिस मात्रामें हममें धर्म होगा, जिस मात्रामें हमारा जीवन धर्ममार्ग पर चलता रहा होगा,

अुसी मात्रामें हमारी भावनाओंके प्रभावका हमें अनुभव होगा। धर्ममें सामर्थ्य लानेका काम श्रद्धाका है, धर्मको गति देनेका काम भक्तिका है और धर्ममें तेज लानेका सामर्थ्य निष्ठामें है। यह ध्यानमें रखकर हमें श्रद्धा, भक्ति और निष्ठाको अपने जीवनमें अुचित महत्त्व देना चाहिये।

७

भक्तिशोधन — २

त्याग और वैराग्यका भेद

हम लोगोंमें भक्ति और आराधनाकी विभिन्न कल्पनायें और पद्धतियां प्रचलित हैं। अुन सबका कैसे और कब निर्माण हुआ, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। फिर भी समाज या लोक-मानसमें अुनके निर्माणके कारणोंका कुछ अन्दाज लगाया जा सकता है। जब मनुष्य छोटे-बड़े समूहमें रहने लगा होगा, अुसके बाद अुसमें आराधनाका भाव पैदा हुआ होगा। अुस समय आराधनाका स्वरूप बहुत कुछ सामूहिक रहा होगा, और अुसमें सामूहिक हितका — कमसे कम अपने दलके हितका तो — हेतु रहा ही होगा। अुसके बाद व्यक्तिगत दुःख-शमनके लिअे भी आराधनाके प्रकार शुरू हुअे होंगे। आराधनामें वैराग्यका भाव नहीं, दुःख-शमन और सुख-प्राप्तिका हेतु होता है। पुनर्जन्मकी कल्पनाके बाद तपकी और तपसे त्याग और वैराग्यकी कल्पना पैदा हुअी होगी। तपमें भी आगे चलकर अैहिक और पारलौकिक जैसे भेद दिखाअी देते हैं। मोक्षकी कल्पनाके बाद अुसीमें से पारमार्थिक हेतुवाले तपका विचार अुत्पन्न हुआ। त्याग और वैराग्यकी कल्पनाके निरीक्षणसे मालूम होगा कि अिस जन्ममें या अगले जन्ममें मनकी कामना पूरी होनेकी अिच्छा और आशासे रखे जानेवाले संयम और कड़े व्रतमें वैराग्य नहीं होता। केवल अुतने समयके लिअे त्यागकी भावना होती है। वैराग्यकी भावना तो अिस या अगले जन्मके लिअे भी बाहरी सुखोप-भोगकी अिच्छा न करके अुसका स्थायी त्याग करनेमें होती है। त्यागमें बहुत हुआ तो पारलौकिक और वैराग्यमें केवल पारमार्थिक हेतु होता है।

मोक्षके हेतुसे कर्मक्षयकी विचारसरणी पैदा हुअी और अुसके बाद ही वैराग्यकी भावनासे संयमका आग्रह मानव-मनमें पैदा हुआ होगा।

भक्तिकी कल्पनाका साधारण अितिहास

देवताओंकी कल्पनाके बाद अुसीमें से आराधनाकी और अुसके बाद तपकी कल्पना निकली हो, तो भी बहुजन-समाज देवताओंकी आराधनामें ही दीर्घकाल तक लगा रहा होगा। तिथि या पर्वके निमित्तसे अेकाध व्रत करनेके सिवा साधारण लोगोंके आचरणमें तपका संस्कार नहीं पाया जाता। मोक्षकी कल्पनाके बाद तपको पारमार्थिक दृष्टिसे महत्त्व मिला। कर्मक्षयके सिद्धान्तके कारण मोक्षके लिअे संन्यास जरूरी हो गया। कर्मक्षयके लिअे ही चित्तलयके अुपायकी खोज हुअी। मोक्षमार्गी व्यक्तियोंने ही अुसकी वृद्धि की। दर्शनोंका अुपयोग जीव और जगतका सम्बन्ध अधिकाधिक शुद्ध और सरल बनानेकी दिशामें न करके अुनसे मोक्षप्राप्ति करनेकी वृत्ति दिखाअी देती है। अवतारवादकी कल्पनाके बाद पौराणिक देवताओंकी आराधना शुरू हुअी। आराधनाकी तहमें हमेशा सकाम हेतु ही होता है। आराधना और तपकी मिश्रित कल्पनाओंसे भक्तिकी भावनायें निकली मालूम होती हैं। भक्तिके सकाम और निष्काम ये दो मुख्य भेद माने जाते हैं। अैहिक सुखके लिअे भक्ति करनेवाले सकाम और मोक्षके लिअे भक्ति करनेवाले निष्काम भक्त कहलाते हैं। सकाम भक्ति अगर आराधना है तो भक्तिमें अिस तरहके दो भेद माननेका कारण नहीं रह जाता। तत्त्वज्ञान और अवतारवाद दोनोंका मेल बिठानेके प्रयत्नमें से सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार आदि अीश्वर-सम्बन्धी कल्पनायें निकली हैं। अुनका मेल बिठानेके सतत प्रयत्नकी सिद्धिके परिणामस्वरूप परमेश्वरको निर्गुणसे सगुण और सगुणसे निर्गुण, निराकारसे साकार और साकारसे निराकार — अिस प्रकार अपनी सुविधाके अनुसार और प्रसंगोपात्त भावना और आवश्यकताके मुताबिक चाहे जैसा बना देना हमारे तत्त्वज्ञानमें साधारण खेल-सा हो गया है। प्रचलित देवताओंकी आराधनाके द्वारा कामनासिद्धि न होनेके कारण लोकमानसमें नये-नये देवताओंकी कल्पना पैदा होती रही है। हर देवताकी अुत्पत्तिकी कथा अैसी ही मिलती है कि भक्तके संकटके समय अवतार लेकर अुसने अुसका संकट-निवारण किया; आज भी अेक

खास निश्चित पद्धतिके अनुसार अुसकी आराधना की जाय, तो आराधकको वह संकटसे छुड़ाकर सुख और वैभवसे संपन्न कर देगा, अैसी लोक-श्रद्धा है। देवताओंकी आराधनाके लिअे मूर्तिपूजाकी प्रथा शुरू हुआी। वैदिक कालमें देवताओंकी आराधना थी। परन्तु यह कहीं भी नहीं जान पड़ता कि अुस जमानेमें मूर्तिपूजाका रिवाज था। अिस बारेमें शंका है कि अेकेश्वर-अुपासना या भक्तिकी रूढ़ि किसी भी जमानेमें थी या नहीं। अीश्वरको सगुण माने बिना भावभक्तिको आधार नहीं मिलता; और अुसे सगुण और साकार माने बिना मूर्तिपूजाको आधार नहीं मिल सकता। कामना, देवता और अवतारवादके कारण हमारे समाजमें मूर्तियों और अुनकी पूजाके प्रकारोंकी बेहद वृद्धि हो गअी है। लोकमानस भी वैसा ही बन गया है। त्याग कहीं-कहीं दिखाअी देता हो, तो भी अुसमें वैराग्य नहीं दिखाअी देता। अीश्वरप्रेम और अीश्वर-निष्ठाके कारण समाज अुन्नत होता है, अुसमें सद्गुण रहते और वृद्धि पाते हैं। परन्तु केवल आराधनाके पीछे पड़ा हुआ समाज कामनिक और दुर्बल रहता है।

सकाम और निष्काम भक्तिका परिणाम

हमारी हमेशाकी अुचित जरूरतें पूरी करनेके लिअे आवश्यक पुरुषार्थका, सुविधाओंका और अुनके लिअे जरूरी विद्या, कला और ज्ञानका अभाव; परस्पर सहायताके द्वारा अेक-दूसरेका दुःख कम करनेके लिअे जरूरी सहयोग-वृत्तिका अभाव; आत्मीयताकी विशाल भावनाका और तदनुरूप आचरणका यानी कुल मिलाकर सामूहिक भावनाका अभाव — अैसी कअी वैयक्तिक और सामाजिक प्रतिकूल परिस्थितियोंके कारण देवताओंकी आराधनाके सिवा दुःख या संकटके समय आशा दिलानेवाला और कोअी अुपाय न रह जानेके कारण बहुजन-समाज देवताओंका आराधक बन गया है। दुःख पड़ने पर 'अीश्वरेच्छा', 'प्रारब्ध' जैसे शब्दोंसे मनका समाधान कर लेनेकी जो आदत पड़ गअी है, अुसका भी यही कारण है। हम अपने दुःखों, कठिनाअियों और संकटोंके लिअे अुचित भौतिक अुपाय नहीं जानते। समुदायकी हमें मदद नहीं होती। 'दुनियामें कोअी किसीका नहीं', अिस निराशामय सूत्रके अनुसार हम सबका

जीवन बीता जा रहा है। आज भी अीश्वरभक्ति और धार्मिकताके जो प्रकार प्रचलित हैं, अुनका विचार करने पर मालूम होगा कि अुनमें भक्ति या अीश्वर-सम्बन्धी प्रेम हरगिज नहीं होता, बल्कि अपनी अिच्छापूर्तिके लिअे देवताराधना ही चली आ रही है। देवताका आराधक अुस देवताको परमेश्वरका सर्वश्रेष्ठ स्वरूप माने तो भी आराधनाकी सारी पद्धतिसे यह स्पष्ट दिखाअी देता है कि परमात्माकी विशाल कल्पना करनेमें हम असमर्थ हैं। अिसीलिअे समाजमें स्थल-देवता, जल-देवता, कुल-देवता, जाति या समुदायके देवता —— अिस प्रकार अलग-अलग संकुचित स्वरूप, अधिकार और सामर्थ्य रखनेवाले देवोंकी कल्पनायें रूढ़ हो गयी हैं। जैसे जातिको छोड़कर समाजकी कल्पना करना हमारी शक्तिके बाहर है, अुसी तरह देवतासे अधिक व्यापक अीश्वरके विषयमें कल्पना करना भी हमारी शक्तिके बाहर है। अिसमें शक नहीं कि हममें महान सामूहिक भाव पैदा न होनेका अेक कारण हमारी संकुचित आराधना भी है। अिसकी जड़में हमारी सकाम भक्ति ही है। अिसीसे देवता, मूर्तिपूजा और कर्मकांडकी वृद्धि हुअी है। परन्तु निष्काम मानी जानेवाली भक्तिमें भी हमारी असमर्थता, पंगुता और दुर्बलता ही कारण होगी। मालूम होता है कि संसारकी दिक्कतें, संकट या मरनेके बाद होनेवाली यातनायें, जन्म-मरणका भय और अिन सबके साथ मोक्षकी अभिलाषा आदि बातें हमारे निष्काम भक्तोंके वैराग्यका कारण थीं। अीश्वर-सम्बन्धी प्रेमके कारण जिन्हें संसार नीरस लगा हो और अुसके सुखके बारेमें भीतरसे स्वाभाविक वैराग्य पैदा हुआ हो, अैसे मनुष्योंका मिलना मुश्किल है। अुनमें त्याग होगा, परन्तु वैराग्य शायद ही दिखाअी दे। अिसीलिअे भक्तिके पहले आवेशमें त्यागी और तपस्वी जीवन बितानेवाले व्यक्ति कालान्तरमें गुरु और महन्त बनकर बादमें सुखभोगी और वैभवप्रिय हो जाते हैं। समर्थ रामदास कहते हैं:

संसार तापें तापला। त्रिविध तापें जो पोळला।
तोचि अेक अधिकारी झाला। परमार्थासी ।।

दासबोध ५–३–३४

(जो संसारके दुःखसे तप्त हो गया है, जो आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीन प्रकारके तापसे जला हुआ है, केवल वही परमार्थका अधिकारी होता है)। ग्रंथोंसे मालूम होता है कि परमार्थकी योग्यताके बारेमें हमारे महात्माओंकी अैसी समझ थी। जब समाज-व्यवस्था अच्छी नहीं होती, जब समाजमें प्राकृतिक बाह्य कारणोंसे आनेवाले संकट दूर करनेकी शक्ति नहीं होती, जब प्रामाणिक रीतिसे मेहनत करने पर भी अपना और अपने स्त्री-बच्चोंका निर्वाह करना कठिन होता है, तब समाजमें अेक ओर झूठा वैराग्य और दूसरी ओर अनेक दुर्गुण बढ़ते जाते है। जहां यह विश्वास नहीं होता कि सालभर मेहनत करके कमाया हुआ धन हमें निश्चिततासे और व्यवस्थित ढंगसे भोगनेको मिल जायगा, जहां संकटोंमें कोअी किसीकी मदद नहीं करता, जहां प्रेम, विश्वास और अेकताकी भावनायें नहीं, जहां सबकी रक्षा करने या न्याय करनेकी सामर्थ्य नहीं, अुस समाजमें संसार-सुखके बारेमें ज्यादा निराशा, अुदासीनता आदि मालूम हों तो आश्चर्य नहीं। अिसी तरह वैसी ही स्थितिमें दूसरी ओर समाजमें अन्याय और अत्याचारकी वृद्धि हो, तो अुसमें भी कोअी आश्चर्य नहीं। अिसमें शक नहीं कि सामाजिक दृष्टिसे यह अत्यन्त अवनत और लाचारीकी अवस्था है। अिसीमें से कोअी भक्त बनकर प्रख्यात हो जाये, तो वह अपने अनुयायियोंका अेक पंथ निर्माण करता है। वह अैसा बन्दोबस्त करता है कि यह पंथ भिक्षासे या मठ-मंदिर, देवस्थान और जागीरसे चलता रहे। परन्तु जो समाज-स्थिति हमारी पंगुता, वैराग्य और भक्तिका कारण बनी, अुसे सुधारनेका प्रयत्न प्रायः कोअी नहीं करता। अैसी स्थितिमें जैसे-जैसे साधु-सम्प्रदाय बढ़ते गये, वैसे-वैसे यह गलत खयाल और अभिमान हममें बढ़ता गया कि हम अधिकाधिक धार्मिक बनते हैं, हममें भक्ति और ज्ञानकी वृद्धि होती है। अिसके परिणामस्वरूप जीवनके लिअे आवश्यक और अुसे अुन्नत करनेवाले कर्ममार्ग और गृहस्थाश्रमकी अवहेलना होने लगी और आज हम अधिकाधिक पंगु और असमर्थ होते जा रहे हैं।

वेदों और अुपनिषदोंका महान तत्त्वज्ञान हमारे देशमें बहुत पुराने समयसे प्रचलित है। रामायण, महाभारत जैसे कीमती ग्रंथ हजारों वर्षसे हमारे यहां पढ़े और सुने जाते रहे हैं। फिर भी हममें सामूहिक भाव निर्माण नहीं होता, हमारा समाज समर्थ नहीं बनता। जीवनके लिअे अुम तत्त्वज्ञान और अुन बहुमूल्य ग्रंथोंसे जरूरी बोध न लेकर हम अपनी दुर्बलताके कारण तथा अपनी जरूरतें पूरी करनेके लिअे आवश्यक ज्ञान और सामर्थ्य आदिके अभावके कारण अवतारवादी, देववादी और कर्मवादी बनकर केवल मूर्तिपूजक और आराधक बन गये हैं। मूर्ति ही हमारा परमेश्वर बन गअी है। अब भी करोड़ों लोग भूत-पिशाचकी पूजा करते हैं। गाय, बैल, सर्प जैसे प्राणी; बड़, पीपल, शमी, अुदुम्बर, तुलसी जैसे पेड़ और पौधे, सबका कामनिक पूजन अभी तक चलता है। अिस स्थितिसे जिन्हें अर्थोपार्जन होता है, वे धर्मोपदेशक बनकर यही स्थिति कायम रखनेका प्रयत्न करते हैं। अिन सबमें आज भी हमारी दुर्बलता और अज्ञानका साक्षात्कार होता है।

देवी-देवताओंकी वृद्धिके कारण आअी हुअी पंगुता

पहलेके असंख्य देवता और देवस्थान होते हुअे भी अुनमें निरंतर बढ़ती हो रही है। अीमानदार और सदाचारी गृहस्थको समाजमें कोअी प्रतिष्ठित नहीं मानता। संसार छोड़ देनेवालेको और अपनेको भक्त कहनेवालेको बहुजन-समाज पूज्य मानने लगता है, अुसके चारों ओर अनुयायी अिकट्ठे होने लगते हैं। लोगोंको अेक नवीन आराध्य मिल जाता है। वे यह श्रद्धा रखते हैं कि अुसकी कृपासे अुनका योगक्षेम होता है या होगा। थोड़े ही दिनोंमें वह भक्त महात्मा बन जाता है, गुरु बन जाता है। अिस प्रकार भावुकोंकी बढ़ती जानेवाली भक्तिके कारण समय पाकर वह भक्त भगवान बन जाता है। अुसकी मृत्यु होते ही जो सामर्थ्य जीते जी अुसमें नहीं थी, वह अुसके शवमें, शवके जल जाने पर राखमें और राखसे पत्थर-मिट्टीकी- अुसकी समाधिमें या अुसकी पादुका या मूर्तिमें, अिस क्रमसे बढ़ते-बढ़ते अन्तमें वहीं स्थिर हो जाती है। समाजमें यह श्रद्धा रूढ़ हो जाती है कि अुस समाधि या मूर्तिमें

बैठकर वह महात्मा यानी वह मरा हुआ आदमी संसारका — कमसे कम अपने भक्तोंका तो योगक्षेम अवश्य चलाता है। वह अेक देवस्थान या यात्राधाम बन जाता है । जिन्हें भावुकों या यात्रियोंसे द्रव्यलाभ होता है, वे सब अुस स्थानका माहात्म्य बढ़ाते हैं । परन्तु आश्चर्य और दुःखकी बात यह है कि पुराने और हर साल बढ़ते जानेवाले अैसे देवताओं, देवस्थानों और भगवानके अवतारोंके सम्मिलित सामर्थ्यसे भी हमारा दैन्य, दारिद्र्य और अज्ञान नष्ट नहीं होता, पंगुता दूर नहीं होती, हममें पुरुषार्थ नहीं आता। अैसी शक्ति नहीं आती, जिससे हमारी अुचित आवश्यकतायें अीमानदारीसे पूरी की जा सकें। सीधी-सादी अिन्सानियत भी अभी तक हममें नहीं आती। बहुजन-समाजकी आज यह अवस्था है।

केवल आधार बढ़ा लेनेसे दुर्बल मनुष्य सबल नहीं बन जाता। बल्कि काल्पनिक आधारोंसे तो दुर्बलता ही बढ़ती है। हमारे समाजकी अैसी ही स्थिति है। हम आज भी मानवताको महत्त्व नहीं देते। देवत्व हमें प्यारा लगता है। विशेषताका किंचित् आभास होने पर ही हम अपनेको श्रेष्ठ मानने लगते हैं। कामनिक लोग पीछे पड़कर हमें अेकदम पूज्य और देवता बना देते हैं। पत्थरको सिन्दूर लगाते ही जैसे अुसका बजरंग बन जाता है, अुसी तरह जिसे अच्छी तरह गुजारा करना नहीं आता, जिसमें अपनी अुचित आवश्यकताअें अीमानदारीसे पूरी करने लायक भी ज्ञान, शक्ति और पुरुषार्थ नहीं, अुसे समाज आराध्य बना लेता है। कारण, लोगोंको कामनापूर्तिके लिअे देवताकी जरूरत होती है। अुनकी दृष्टिमें शुद्धचित्त, सदाचारी, कर्ममार्गी गृहस्थकी कोअी कीमत नहीं होती। अिस प्रकारकी भावुक सामाजिक मनोरचनामें देवतापद प्राप्त करना आसान है, परन्तु मनुष्य बनना कठिन है। जहां भावुकोंकी श्रद्धाके कारण पत्थरमें भी देवत्व आ जाता है, वहां मनुष्यत्व प्राप्त होनेसे पहले यदि भावुक लोग हमें देवता या भगवान बना दें तो अिसमें आश्चर्यकी क्या बात? मानवताकी दृष्टिसे यह स्थिति दोनों ओरसे अत्यन्त हीनता, अज्ञान और दुर्बलताकी द्योतक है। अिस स्थितिके कारण ही धर्म और अीश्वरके नाम पर समाजमें दम्भ चला आ रहा है और दिन-दिन समाजका पुरुषार्थ नष्ट होता रहा है।

सार यह कि अुच्च तत्त्वज्ञान, बहुमूल्य ग्रन्थ, लाखों देवता और मंदिर, अीश्वर-सम्बन्धी सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार आदिकी कल्पनायें, सकाम-निष्काम भक्ति और आराधना — किसीसे भी मानवताका विकास नहीं हुआ। यह बात हमारे गले अुतर जानी चाहिये कि हमने मनुष्यत्वको महत्त्व नहीं दिया, मानव-धर्मकी कीमत नहीं पहचानी और सामूहिक ध्येयको जीवनका आदर्श नहीं बनाया, अिसलिअे हम आजकी गिरी हुअी हालतमें पहुंच गये हैं। यह बात भी हमारे ध्यानमें आ जानी चाहिये कि यह स्थिति ज्योंकी त्यों बनी रहेगी तो हमारे सारे देवस्थान, मठ-मंदिर, पंथ, सम्प्रदाय वगैरा हमारी दुर्बलता, अयोग्यता और अज्ञानके प्रमाण और स्मारक बन जायेंगे। यह समय अब निकट आ गया है। अपनी संस्कृतिका हम कितना ही अभिमान रखें, तत्त्वज्ञान पर हम कितना ही पांडित्य बता सकते हों, तो भी हमारी परीक्षा हमारी मानसिक स्थिति, हमारे सद्‌गुणों और हमारे रोजके आचरणसे ही की जाती है। बहुजन-समाज आज किस भूमिका पर है, अुसे देखकर समाजकी योग्यता निश्चित की जाती है।

भक्तिका सच्चा स्वरूप

यह स्थिति हमें दुःखद प्रतीत होती हो और हम समझते हों कि हम मनुष्य हैं और हमें मनुष्य बनकर जीना है, तो व्यक्तिगत सुख तथा अीश्वर-सम्बन्धी भ्रामक ध्येयकी कल्पनायें हमें छोड़ देनी चाहिये। हमें अपनेमें शुद्ध विवेक जाग्रत करना चाहिये। हमें अैसा व्यापक और सामूहिक ध्येय बनाना चाहिये कि हमारे पुरुषार्थ और सद्‌गुणोंकी वृद्धि होती रहे। हमें सबके कल्याणका मार्ग स्वीकार करना चाहिये। अिसके लिअे अीश्वरके प्रति अपनी निष्ठाको हमें शुद्ध और व्यापक बनाना चाहिये। अुस निष्ठामें ही भक्तिका अन्तर्भाव होता है। हमारी अैसी प्रतीति होनी चाहिये कि चित्तकी शुद्धि और सद्‌गुणोंकी अुपासना तथा अुस अुपासना द्वारा प्रसंगानुसार दूसरोंके लिअे अपने अपने सुखका समर्पण ही परमात्माकी श्रेष्ठ भक्ति है। निष्ठा अेक महान शक्ति है। जीवनमें कर्तव्य और धर्मके अवसर पर जब-जब हमें अपनी सामर्थ्य कम होती दीखे, तभी और अुसी जगह अिस महान शक्तिका

अुपयोग करके अपनी सात्त्विकता और सामर्थ्य बढ़ाकर हमें धर्ममार्गमें आगे बढ़नेकी कोशिश करनी चाहिये। अिसके लिअे हमें अीश्वर-सम्बन्धी परम शुद्ध, अत्यन्त व्यापक, महामंगल और महासमर्थ भावना धारण करनी चाहिये। जब वह हृदयमें गहरी पैठकर हमारे खूनमें मिल जायगी, तब हमारे द्वारा होनेवाले हरअेक कर्ममें, हमारी वृत्तियों और भावनाओंमें अुसी निष्ठा, भक्ति या श्रद्धाका दर्शन होता रहेगा। सद्‌गुण और सत्कर्मके रूपमें अुस महाशक्तिके अंशका हमारे द्वारा यथासमय यथायोग्य प्रकटीकरण होता रहेगा। फिर हमें बार-बार अीश्वरकी सहायता नहीं मांगनी पड़ेगी। अुस समय हमारा तमाम व्यवहार मानवधर्मका पोषक और सहायक बन जायगा। हमारा समस्त जीवन ही धर्ममय, श्रद्धामय, भक्तिमय और निष्ठामय बन जायगा। अीश्वरके साथ तादात्म्य प्राप्त करने, अुसके लिअे समर्पित होनेका यही मार्ग है। अिसीमें श्रद्धा, भक्ति और निष्ठाकी परिसीमा है। अगर यह मार्ग हमें सिद्ध हो जाय, तो व्यक्तिगत सुख और आनन्द-सम्बन्धी भक्तिकी हमारी तमाम कल्पनायें लुप्त हो जायंगी। हमें यह अनुभव होगा कि हमारा अपना अुद्धार, समाजका अुद्धार, और संसारका अुद्धार अेक-दूसरेसे भिन्न नहीं है। हमारा जीवन सदा अितना शुद्ध, चेतन और व्यापक रहेगा कि वह सहज ही परमात्माके साथ समरस हो गया होगा। यही भक्ति, यही समर्पण और यही मानवताकी पूर्णता है।

८

भक्तिशोधन — ३

महाशक्तिकी शरणमें

हमारे शरीरकी शक्तिकी अपेक्षा बाहरी सृष्टिकी शक्ति अत्यन्त प्रचण्ड और अपार है। अिस शक्तिके सामने हमारी न तो कुछ चलती है और न चलेगी, यह ज्ञान मानवजातिके प्रारम्भिक कालमें भी मनुष्यको हो गया होगा। अुस शक्तिके दुःखदायी अनुभवसे भयभीत और दीन बने मनसे, अुस शक्तिको देवता मानकर अुसके आगे अपनी दीनता प्रगट करके, अुसकी प्रशंसा करके, अुसकी शरणमें जाकर अुसका कोप शान्त करनेका प्रयत्न मनुष्य अुसी जमानेमें करने लगे होंगे। अुसका कोप अपने पर फिरसे न होने देनेके लिअे अपनी प्रिय लगनेवाली वस्तुअें बारम्बार अर्पण करके अुसे सन्तुष्ट करनेकी कल्पना अुन्हें अुसी वक्त सूझी होगी। अिसी प्रकारकी विधियोंसे देवताओंकी आराधना शुरू हुअी होगी। भयसे दीनता, दीनतासे शरणागति और अुसीसे यदि कुछ अनिष्ट दूर होने या कुछ सुखप्राप्तिके अनुभव जैसा लगा तो कृतज्ञता, कृतज्ञताके बाद नम्रता और प्रेम, प्रेमसे श्रद्धा और श्रद्धासे भक्ति, भक्तिसे निष्ठा — अिस प्रकार बहुत लम्बे समयके अलग-अलग अनुभवोंसे मानव-मनमें अलग-अलग भावनायें अेकके बाद अेक पैदा होती रही हैं और अुनका विकास होता रहा है।

विज्ञान, तत्त्वज्ञान और भक्तिका मानवजातिके अुत्कर्षके लिअे अुपयोग

आदिकालमें मनुष्यको प्राकृतिक धर्मोंका बहुत अल्प ज्ञान था। धारण-पोषणके साधन केवल कुदरती थे। बादमें ज्यों-ज्यों अुसे प्रकृतिके धर्मोंका ज्ञान होने लगा, त्यों-त्यों वह अपने परिश्रम और बुद्धिसे धारण-पोषणके दूसरे जरिये जुटाने लगा। अिसी क्रमसे जैसे-जैसे अुसका भौतिक ज्ञान बढ़ता गया, मानव-जातिमें जैसे-जैसे सहयोगवृत्ति बढ़ती गअी, प्रेम, विश्वास, आदर, परोपकार, अुदारता आदि भावनायें और साथ ही सामूहिक कल्पनायें जैसे-जैसे मनुष्यमें बढ़ती गअीं वैसे-वैसे महाशक्ति — देवता — के स्वरूपके

बारेमें अुसकी कल्पना बदलती गअी और अुस शक्तिकी मददकी अुसे पहलेसे कम जरूरत मालूम होने लगी। अितने पर भी आराधनाकी पड़ी हुअी रूढ़ि अुसने लम्बे अरसे तक कायम रखी। अिसमें अुसे अेक प्रकारकी मानसिक सान्त्वना मिलती रही।

जैसे महाशक्ति, देवता, परमेश्वर आदि हर कल्पनामें अन्तर है, वैसे ही आराधना, श्रद्धा, भक्ति आदि भावनाओंमें भी अंतर है। महाशक्तिका डर लगता हो तो अुसके प्रति प्रेम या भक्तिभाव पैदा नहीं हो सकता। भय और आशासे मनुष्यके मनमें शरणागत-भाव, दीनता और दास्यभाव पैदा होते हैं। परन्तु कृतज्ञता, नम्रता, प्रेम, भक्ति आदि भाव अुत्पन्न होनेके लिअे परमेश्वरके प्रति थोड़ी-बहुत मात्रामें तो निर्भयता और आत्मीयता महसूस होनी ही चाहिये। वह दयासिन्धु और दीनवत्सल है, यह श्रद्धा भी होनी चाहिये। अिसी श्रद्धामें से प्रेम, भक्ति आदिका अुदय होता है। निष्ठाका भाव सबसे बादमें निर्माण होता है और अुसके लिअे बहुत समय लगता है।

प्रकृतिके नियमोंके बढ़ते हुअे ज्ञानमें से ही वर्तमान विज्ञानका निर्माण हुआ है। प्रकृतिके नियमोंकी खोज अितनी आगे बढ़ गयी कि हम विचारमें सृष्टिके आदि-कारण तक पहुंच गये। अिसीमें से तत्त्वज्ञानकी अुत्पत्ति हुअी। विज्ञान और तत्त्वज्ञानका विकास बहुत लम्बे समयसे धीरे-धीरे होता आया है। अुस सबका असर परमेश्वर-सम्बन्धी कल्पना पर हुआ। अुसकी अुग्रता अब अितनी कम हो गयी है कि वह हमें सौम्य और कृपालु प्रतीत होने लगा है। विज्ञान, तत्त्वज्ञान और परमेश्वर-सम्बन्धी भाव — अिन सबका सुख-सुविधा, विकास और अुन्नतिके लिअे किस प्रकार अुपयोग किया जाय, अिसका विचार संसारके ज्ञानी और मानव-जातिके हितचिंतक महापुरुषोंने समय-समय पर किया है। अिसी विचारमें से मानवधर्मका ज्ञान अधिकाधिक स्पष्ट होता गया है। यह मानवधर्म अलग-अलग देशोंमें, अलग-अलग मानव-समूहोंमें भिन्न-भिन्न रूपमें प्रचलित है।

ज्ञान, विज्ञान, तत्त्वज्ञान, आराधना, श्रद्धा, भक्ति, निष्ठा आदि मानवधर्मकी सिद्धिके लिअे हैं। मानवको अपने अज्ञानका स्पष्टतासे भान हुआ, तबसे अुसके ज्ञानकी वृद्धि हुअी है।

ज्ञान-अज्ञानयुक्त मानव-मन

ज्ञानकी प्रगतिके साथ ही अज्ञानका भान भी अुसे अधिकाधिक स्पष्टतासे होने लगा है। किसी भी कालके मानव-मनकी जांच करने पर मालूम होगा कि वह ज्ञान-अज्ञान दोनोंसे युक्त है। यह बात विशेष ध्यानमें रखने लायक है कि जब ज्ञानवृत्ति जाग्रत होती है, तब अज्ञानका भान दब जाता है। अुस समय मनुष्यमें ज्ञानके लिअे आनन्द और अहंकारके भाव जाने-अनजाने स्फुरित होते हैं। अज्ञानके भानको अगर तत्त्वतः ज्ञान कहें, तो अुस ज्ञानकालमें अर्थात् अज्ञानके स्पष्ट भानके समय मनुष्यमें नम्रता, कृतज्ञता, निरहंकारिता वगैरा भाव अुठते हैं। जबसे मनुष्यमें ज्ञानदशा स्पष्ट हुअी तबसे अुसका व्यवहार अिसी ज्ञान-अज्ञानकी स्थितिमें चलता रहा है। जब वह अपनी ज्ञानदशा पर आरूढ़ होता है, तब प्राप्त ज्ञानको ही सर्वस्व और सर्वश्रेष्ठ मानने लगता है। अपने ज्ञान पर स्वयं ही खुश होता है। अुस खुशीमें कभी-कभी अपने ज्ञानका महत्त्व, अुसकी श्रेष्ठता और अुससे महसूस होनेवाली धन्यता वह बोलकर या लिखकर व्यक्त करता है। सूक्ष्म दृष्टिसे देखने पर प्रतीत होता है कि अिस निमित्तसे अुसका ज्ञान-अहंकार प्रकट होता है। अीश्वरके बारेमें भी ज्ञान-अज्ञानका यही रूप पाया जाता है। जब मनुष्यको अपने अज्ञानका भान होता है, तब वह अीश्वरके आगे अपनेको पामर और मन्दबुद्धि मानता है; अीश्वरको कोअी जान नहीं सकता, वह अनंत है, अपार है, कल्पनातीत है वगैरा बातें कहता है और हृदयमें नम्रता, कृतज्ञता, निरहंकारिता वगैरा भाव धारण करता है। परन्तु यही मनुष्य जब ज्ञान-अहंकारमें अपने अज्ञानको भूल जाता है, तब यों कहने लगता है कि मैंने अीश्वरको जान लिया है, मुझे अुसका साक्षात्कार हो गया है, आदि आदि । वह कल्पनातीत परमेश्वरकी स्थिति, मति (मानस) का वर्णन करने लगता है। वह अिस तरहका आभास अुत्पन्न करनेकी कोशिश करता है, मानो अुसे अिस बातका निश्चयपूर्वक ज्ञान है कि परमेश्वरको क्या प्रिय है, क्या अप्रिय है, वह किस बात पर कोप करता है और किससे सन्तुष्ट होता है। कभी वह

प्रेमके आवेशमें आता है, तो कभी यों कहने लगता है कि मैं खुद ही अीश्वर हूं अथवा अीश्वर और मैं अेक ही हूं। अिस प्रकार मनुष्य अपनी ज्ञान-अज्ञान, अहंकार-निरहंकार, महानता और नम्रता आदि वृत्तियोंका कभी पोषण तो कभी शमन करता है। जो ज्ञानकी कल्पनासे अुन्मत्त बन जाता है, अुसीको कभी-कभी नम्रता अच्छी लगती है। अिस परसे यह प्रतीत होता है कि मनुष्य अपने अज्ञानका भान पूरी तरह नहीं मिटा सकता और साथ ही ज्ञानका अहंकार भी नहीं छोड़ सकता।

अीश्वरके संपूर्ण ज्ञानकी अशक्यता

अनंत विश्वमें व्याप्त सत् तत्त्वका — परमशक्तिका — संपूर्ण और यथार्थ ज्ञान मानव-मनको होना संभव नहीं है। मनुष्यके पास अैसा साधन ही नहीं है कि वह अितनी महान शक्तिका आकलन या अुसकी योग्य कल्पना कर सके। मनुष्यकी बुद्धि मर्यादित है। अुस बुद्धिको पृथ्वीसे अनंत गुना विशाल क्षेत्रमें फैले हुअे असीम तत्त्वका ज्ञान हो जाय, यह संभव नहीं दीखता। अुस तत्त्वका विचार करते करते मन थककर स्तब्ध हो जाय, लीन हो जाय, तो यह मान लेना कि अुस तत्त्वका ज्ञान हो गया, जरा भी सत्य नहीं। तर्क करनेकी हमारी बुद्धि कुंठित हो जाय तो हम अिस तत्त्वमें मिल गये अैसा मान लेनेमें ज्ञान नहीं, बल्कि विचारकी भूल है। अनंतकी तुलनामें जो अणु जितना भी नहीं है, वह मनुष्य यह कहे कि अुसे अनन्तका ज्ञान हो गया, तो अिसमें अुसके ज्ञानकी सिद्धि दिखाअी देनेके बजाय अुसके अहंकारका ही दर्शन होता है अैसा कहना अधिक योग्य होगा।

ज्ञानस्थिति सम्बन्धी गलत मान्यता

अत्यन्त सूक्ष्मतासे विचार करने पर तत्त्वचिन्तक लोगोंने अैसा तर्क किया कि विश्वका विस्तार हमारे अनुभवमें अनंत रूपमें आता हो, तो भी यह सारा विस्तार अेक ही महान तत्त्व पर भासित होनेवाला और प्रतिक्षण बदलनेवाला आविर्भावमात्र है। शरीर-बुद्धि-मन सहित अहंके रूपमें व्यापार करनेवाले हम भी अुसी तत्त्वके क्षणिक आविर्भाव हैं। हमारी कल्पनामें आनेवाला और न आनेवाला सभी कुछ यह महान तत्त्व है। अुसका न आदि है, और न अन्त। न तो यह बात है कि वह कभी नहीं था और न यह कि वह कभी नहीं होगा। अिसी प्रकार अुन्होंने

अनंत और अपने बीचके सम्बन्धके बारेमें और साथ ही दोनोंके बीचके मूलभूत तत्त्वके बारेमें तर्क करके अपनी जिज्ञासाका शमन किया। फिर अिसी तर्कके साथ किसीने तादात्म्य प्राप्त करनेमें, किसीने अुसका तीव्र अनुसंधान रखनेमें, किसीने अिस सिद्धान्तको अपने मन पर मजबूतीसे जमानेमें या अुसके लिअे प्रयत्न करनेमें थोड़ी देरके लिअे मनका मनत्व लय किया। किसीकी बुद्धि कुंठित हुअी, किसीकी वृत्तियोंका थोड़ी देरके लिअे लय हो गया, तो अुनमें से प्रत्येक यह मानने लगा कि अुसे अीश्वर, आत्मा और ब्रह्मका ज्ञान हो गया। कोअी अिसी अवस्थाको बार-बार अनुभव करनेकी कोशिश करने लगा और यह मानने लगा कि हम अीश्वररूप, आत्मरूप, ब्रह्मरूप हो गये। किसीने यह मान लिया कि 'मैं कौन हूं' अिसकी अुसे अनुभूति हो गअी है। अिन सब प्रकारोंमें अुस समयकी स्थितिके सूक्ष्म निरीक्षण और परीक्षणका अभाव दिखाअी देता है।

अीश्वरभक्ति और स्वावलम्बन

अिन सब बातोंसे खयाल होता है कि तत्त्वज्ञान, आत्मा और ब्रह्म वगैराके बारेमें भ्रामक मान्यताओंके दूर हुअे बिना मानवताका मार्ग सरल नहीं होगा। भक्तिके नाम पर परावलम्बन और ज्ञानके नाम पर निष्क्रियता ही समाजमें बढ़ती गअी हो, तो अुस भक्ति और ज्ञानकी हमें जांच-पड़ताल करनी चाहिये। भक्तिके कारण अीश्वर पर अपना सारा भार डालनेकी शिक्षा पाये हुअे लोगोंमें दिन-दिन कमजोरी ही बढ़ती हो, तो यह आशा हरगिज नहीं रखी जा सकती कि अैसे लोग कभी भी स्वावलम्बी और स्वतंत्र होंगे। जिन लोगोंको किसी पर भी भार डालकर जीवन बितानेकी आदत पड़ जाती है, वे लोग कभी अीश्वर पर तो कभी राजा पर, कभी गुरु पर तो कभी महात्मा या नेता पर अव-लम्बित होकर रहते हैं। यानी वे हमेशा पराधीन और परतंत्र ही रहते हैं। अुनकी मनोरचना ही अिस प्रकारकी बन जाती है। अुन्हें हमेशा किसी न किसी सहारेकी जरूरत होती है। असलमें विज्ञानकी मददसे मनु-ष्यको अपने और सबके भरण-पोषण और रक्षणके मामलेमें स्वाधीन बनना चाहिये। अिसी प्रकार तत्त्वज्ञान, भक्ति, निष्ठा वगैराके कारण भी अुसमें जितेन्द्रियता, चित्तकी स्थिरता, गम्भीरता, निर्भयता, निश्चितता वगैरा

सद्‌गुण आने चाहिये और अिस ओरसे भी अुसमें स्वाधीनता आनी चाहिये। अिस प्रकार विज्ञान, तत्त्वज्ञान, भक्ति वगैराका मानवता प्राप्त करनेमें सतत अुपयोग होना चाहिये। परन्तु यदि अैसा न हो और हम अुसके कारण दिन-दिन अधिक बलहीन, विवेकहीन बनते जायं, परतंत्र और पराधीन बनते जायं, तो अैसा लगता है कि अुस विज्ञान, तत्त्वज्ञान या भक्तिका अुपयोग करनेमें हमारी तरफसे भारी भूलें होती होंगी। अितिहास परसे सारी मानव-जाति और अलग-अलग मानव-समूहोंकी स्थितिका क्रमशः अध्ययन करके हमें अिस मामलेमें अपने निर्णय करने चाहिये। हमें अिस बातका विचार करना चाहिये कि सुखी और स्वाधीन बननेके लिअे हमें क्या करना है। व्यक्तिगत सुख-शान्तिकी कल्पना हमें छोड़ देनी चाहिये। समूहके कल्याणको महत्त्व देकर हमें मानव-जीवनका विचार करना चाहिये और सिद्धान्त निश्चित करने चाहिये।

ज्ञान-विज्ञानकी मर्यादा

हमें अितना निश्चित समझ लेना चाहिये कि मनुष्य कितना ही जितेन्द्रिय, संयमी और अपरिग्रही हो, तो भी विज्ञानके बिना, भरण-पोषण और रक्षणके लिअे आवश्यक विविध विद्याओं और कला-ओंके बिना और साथ ही मनुष्यों और दूसरे प्राणियोंके सहयोग या मददके बिना अुसका काम नहीं चलेगा। अिसी प्रकार विज्ञानमें आजकी अपेक्षा वह कितना ही आगे बढ़ जाय, भौतिक विद्यामें चाहे जितना पारंगत हो जाय और अपनी समाज-रचना कितनी ही निर्दोष और समर्थ बना ले, तो भी जीवनमें धीरज, शान्ति और प्रसन्नता प्राप्त करने और जीवनको पूर्ण बनानेके लिअे तत्त्वज्ञान, भक्ति, निष्ठा, संयम, जितेन्द्रियता, त्याग, परिग्रहकी मर्यादा आदि बातें स्वीकार किये बिना अुसका काम नहीं चलेगा। मनुष्यकी व्यक्तिगत शक्तिके अनुपातमें अुसके सम्बन्ध बहुत विशाल हो गये हैं। शरीर, बुद्धि और मनके धारण, पोषण और रक्षणके लिअे अुसे बहुतसे स्थूल और सूक्ष्म द्रव्योंकी जरूरत होती है। 'मैं कौन हूं' अिसकी जांच करते-करते वह यह मान ले कि मैं शरीर नहीं हूं, तो भी अुसका शरीरका भाव नष्ट नहीं होता। शरीरकी जरूरतें पूरी तरह मिटती नहीं, बुद्धि और मनको पोषण दिये बिना काम नहीं चलता। मानव-सहायताके बिना निर्वाह नहीं होता। दूसरी

तरफ केवल शरीरको ही 'अहं' समझकर मनुष्य सुखी होनेकी कितनी ही कोशिश करे, तो भी मनकी गूढ़ शक्तियों और सृष्टिकी अव्यक्त शक्तियों और गुण-धर्मोका आधार लिये बिना अुसका जीवन चल नहीं सकेगा। मानवकी शक्ति-बुद्धि कितनी ही बढ़ जाय और यह लगे कि सुखके सारे साधन हाथमें आ गये हैं, तो भी अुसकी शक्ति-बुद्धि और साधनोंकी मर्यादाके बाहर रहनेवाली विश्वशक्ति अनंत और अपार ही होगी; और अपनेमें बढ़ती हुअी दिखाअी देनेवाली शक्ति-बुद्धिका पोषण और संवर्धन भी अुसी अपार विश्वशक्तिसे होता रहेगा। हमारे भीतर और बाहर विश्वमें स्थूल, सूक्ष्म, प्रकट और सुप्त सब मिलाकर बनी हुअी सम्पूर्ण शक्ति ही परमशक्ति अर्थात् परमात्म-शक्ति है। वह व्यक्त और अव्यक्त दोनों रूपोंमें नित्य निरन्तर कार्य करती है। हमारे द्वारा होनेवाली प्रत्येक क्रिया, विचार, विचारस्पन्द, मानसिक बल, प्रेरणा, भावना, कल्पना-तरंग — सब अिसी शक्तिसे और अिसी शक्तिकी सहायतासे पैदा होते हैं। किसी भी भव्य या सूक्ष्मातिसूक्ष्म क्रिया या विचारको अुस शक्तिसे अलग करना संभव नहीं। बड़ेसे बड़ा ज्ञानी अथवा विज्ञानी भी अन्न, जल और वायुके बिना शरीरको कायम नहीं रख सकता। और सब शरीरोंकी तरह मानवशरीरका भी परमशक्तिसे ही निर्माण हुआ है और अुसी शक्तिसे पैदा हुअे द्रव्यों द्वारा अुसका पोषण और वर्धन होता है। मानव रूपमें पहचाना जानेवाला अुसी शक्तिका यह अंश अुसी परमशक्तिके अलग-अलग रूप दिखाता हुआ, मन-बुद्धि द्वारा भिन्न-भिन्न कलायें, विद्यायें और भाव प्रगट करता हुआ और अलग अलग अवस्थायें पार करता हुआ अन्तमें अुस परमशक्तिमें ही विलीन हो जाता है। जन्म और मृत्युके बीचके समयमें अुसमें अलग 'आत्मत्व' का — 'अहंता' का — भाव सतत जारी रहता है। यह 'अहं' जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति — तीनों कालमें अनुस्यूत रहता है। अुसका स्वरूप कभी स्पष्ट, कभी अस्पष्ट, कभी प्रकट और कभी सुप्त रहता है। वही 'अहं' जब अज्ञानका भान होता है तब नम्रता, कृतज्ञता और निरहंकारिता दिखाता है और ज्ञानके अहंकारमें वही अखिल ब्रह्मांड या विश्वमें व्याप्त है — अैसी बातें करने लगता है। मनुष्यमें अनेक परस्पर-विरोधी भाव, गुण और धर्म हैं। अुन सबके द्वारा मानवके

'अहं' का दर्शन और पोषण होता है। मनुष्यमें ज्ञान और अज्ञान दोनों हैं। वह केवल अज्ञानमें नहीं रह सकता और सम्पूर्ण ज्ञानी भी नहीं हो सकता। दोनोंके द्वारा 'अहं' का पोषण और समाधान करनेकी अुसकी कोशिश जारी रहती है। कभी तो 'अनंत परमेश्वरको जानना संभव नहीं, हम अुसके आगे अणुमात्र भी नहीं हैं' — यह मानकर अिस भूमिकासे मनुष्य शरणागतता, नम्रता, कृतज्ञता, निरहंकारिता वगैरा भावनाओंका समाधान प्राप्त करता है; तो कभी यह मानकर कि परमेश्वरका स्वरूप, अुसकी स्थिति, मति, अुसका स्थान, मान वगैरा सब हम जानते हैं, वह ज्ञानका आनन्द और समाधान प्राप्त करता है। यदि अैसा कहें कि अुसे सम्पूर्ण ज्ञान है, तो यह सहज ही मालूम हो जाता है कि अुसमें ज्ञानकी अपेक्षा अपार अज्ञान ही है। अितने पर भी अुसे अपनेमें जिस ज्ञानका अनुभव होता है, अुस ज्ञानसे अुसका 'अहं' अितना विस्तृत और गाढ़ हो जाता है कि अुसके नीचे अुसके अपार अज्ञानका भान भी अुस वक्त ढंक जाता है।

गूढ़ प्रश्नोंके विषयमें जिज्ञासा और अुसकी तृप्तिकी मर्यादा

हमने किसलिअे जन्म पाया है? मनुष्यप्राणी सृष्टिमें पहले किस तरह अवतीर्ण हुआ? अुसके जन्मकी जड़में कौनसे कारण हैं? कौनसे अुद्देश्य हैं? अुसे अपने जीवनमें क्या प्राप्त करना है? अुसका जन्म अुसकी अिच्छासे हुआ है या अुसकी अिच्छा-अनिच्छाका अुसके जन्मके साथ कोअी सम्बन्ध नहीं है? किस शक्तिने अुसे जन्म लेनेको मजबूर किया है? जन्म देकर अुस शक्तिने अुस पर अुपकार किया या अपकार? सृष्टिमें प्रतिक्षण होनेवाले अनंत निर्माण और नाशका कर्ता कौन है? अिस सबमें अुसका हेतु क्या है? अिस सृष्टिसे लाखों गुनी बड़ी अगणित सृष्टियां, ग्रह, तारे, सूर्य-चन्द्र जैसे गोले, आकाशमें दर्शन देनेवाले और दर्शन तथा कल्पनाके परे रहनेवाले अनंत विश्व — ये सब किस शक्तिसे निर्माण हुअे हैं? वे किस शक्तिके बल पर किसलिअे लाखों वर्षोंसे अव्याहत रूपमें चले आ रहे हैं? अिन सबका आरम्भ कहांसे हुआ और अन्त किसमें होगा? अिस तरहके कितने ही सवाल मनुष्यके मनमें अुठते हैं। अुनके यथार्थ अुत्तर नहीं मिलते। बुद्धि मूढ़ हो जाती है।

तर्क कुंठित हो जाता है। कल्पना अवरुद्ध हो जाती है। विचार थक जाता है। परन्तु मानव-मनका समाधान नहीं होता। विश्वमें व्याप्त रहने-वाला सत्-तत्त्व हम खुद ही हैं; जिसका कभी नाश नहीं होता, जिसका न आदि है न अंत, अुस मूल परब्रह्मके हम अंश हैं। अिस प्रकार तर्कसे समझ-कर और अिस समझको मजबूत बनाकर तदाकार वृत्ति कर लेनेसे परम-शक्ति और विश्वका ज्ञान हो गया, यह समझकर अुसीमें आनन्द माननेकी आदत डाल लें, तो कोअी शक नहीं कि अुसमें अेक प्रकारका आनन्द आता है। परन्तु अुसे पूर्ण ज्ञान या मानवताकी पूर्णता न समझकर यह कहना अुचित होगा कि वह भी मानवीय अहंकारका ही अेक स्वरूप है।

अीश्वरके नाम पर होनेवाले अनर्थ

परमेश्वरका स्वरूप कैसा है, यह न जानते हुअे भी अुसके बारेमें निश्चयपूर्वक ज्ञान देनेवाले शास्त्र या धर्मग्रंथ अलग-अलग देशोंमें और भिन्न-भिन्न भाषाओंमें निर्माण हुअे हैं। लोगोंमें अिस प्रकारकी श्रद्धा प्रचलित है और धर्मग्रंथोंमें अैसे वर्णन हैं कि किसी जगह परमेश्वर मनुष्यके पेटसे जन्म लेकर आता है, तो कहीं परमेश्वरके पुत्र या अुसके भेजे हुअे फरिश्ते या देवदूतके रूपमें आता है और लोगोंकी रक्षा करता है, लोगोंको अुपदेश देता है। 'हम सब अेक ही परमेश्वरकी सन्तान हैं', 'हम सब भाअी भाअी हैं', अिस आशयके बोध-वचन धर्मपुरुष कहते आये हैं। परन्तु अनन्त विश्वमें व्याप्त शक्तिको ही यदि परमेश्वरकी संज्ञा सचमुच लागू होती हो, तो यह सम्भव नहीं कि वह सम्पूर्ण शक्ति किसी मनुष्यके पेटसे जन्म ले या कोअी मनुष्य अुसके पेटसे पुत्ररूपमें जनमे। यह मान्यता भी विवेक-युक्त नहीं कि अुसके दरबारमें से कोअी देवदूत पृथ्वी पर मनुष्य-जातिके अुद्धारके लिअे भेजा जाता है। हां, यह कहना अुचित होगा कि हम सब अेक ही विश्वशक्तिसे पैदा हुअे हैं और अिस सम्बन्धके कारण हम सब अेक ही हैं या भाअी भाअी हैं। परन्तु यदि हम सब सचमुच ही अीश्वरके बालक होते, तो अलग अलग धर्मों या अीश्वरके नाम पर धर्मके अभिमान या आश्रयके कारण अपने स्वार्थके खातिर आज तक जो मार-काट होती आअी है वह कदापि नहीं होती। जैसा कि हम मानते हैं, यदि हम सचमुच भाअी भाअी होते, तो हमारे बीच होते रहनेवाले घातक झगड़ों

और अुनसे होनेवाले अनर्थोंको हमारा पिता आरामसे बैठा नहीं देखा करता। हम यह भी मानते हैं कि वह दयालु और वात्सल्यपूर्ण है। यदि वह दयालु और वत्सल होता, तो अुसके नाम पर चली आअी गलतफहमियों और भयंकर रीति-रिवाजोंको वह खुद प्रगट होकर कभीका बन्द कर देता। परन्तु अीश्वरके साथ हमारा सम्बन्ध अिस तरहका नहीं है। दरअसल समझनेकी बात यह है कि चूंकि हम मानव हैं अिसलिअे मानव-धर्मकी सिद्धिके लिअे हम सबमें परस्पर प्रेम, विश्वास, अुदारता और अेकता पैदा होनी चाहिये; आपसमें सद्भाव पैदा होना चाहिये और बढ़ता रहना चाहिये। हम अेक-दूसरेके भाअी न हों तो भी आज हमें भ्रातृभाव अुत्पन्न करके अुसे बढ़ाना है। हम यह बात सिद्ध कर सकेंगे तो ही मानव-जातिके सुखी होनेकी आशा की जा सकती है। जब तक हम मानवजन्मका महत्त्व नहीं समझेंगे, तब तक हममें मानवताके लिअे सच्चा अभिमान पैदा नहीं होगा। जब तक हम मानवधर्मके अुपासक बनना नहीं चाहेंगे, तब तक परमेश्वरके लिअे हमारी सारी भावना, श्रद्धा और भक्तिका कोअी मूल्य नहीं। जैसा कि हम मानते रहे हैं, कितने ही परमेश्वरके अवतार होते रहें, कितने ही अीश्वरके पुत्र आयें और कितने ही देवदूत पृथ्वी पर चक्कर काटें, परन्तु अुनसे मानव-जातिकी आपसी शत्रुता, घातकता, दुष्टता, छल, कपट, जुल्म, अन्याय आदि बुराअियां कम नहीं होंगी। अुलटे अीश्वरीय अवतार, परमेश्वरके पुत्र या देवदूतके नाम पर ये ही बुराअियां हम भयंकर रूपमें करते हुअे नहीं हिचकिचायेंगे।

यदि हम चाहते हों कि ये बातें — ये बुराअियां न हों, तो हमें अीश्वर-सम्बन्धी और धार्मिक कल्पनाओंको सुधारना चाहिये। अिसका

अीश्वर-निष्ठा

विचार करके कि मानवताका ध्येय कितना विशाल, पवित्र और सब प्रकारसे श्रेष्ठ है हमें अुसे अपनाना चाहिये। अिसके लिअे हमें चित्तकी शुद्धि और सद्गुणोंकी वृद्धि, अिन दो मुख्य बातों पर जोर देना चाहिये। यह साधनेके लिअे अीश्वर-निष्ठा आवश्यक है। वह हमारे जीवनमें, हमारे धर्ममार्गमें हमें प्रेरणा, बल, गति, स्फूर्ति और हिम्मत देनेवाली है। अुसके बिना हमारा केवल शारीरिक या बौद्धिक बल अपूर्ण है। अुस निष्ठाके द्वारा जीवन-

सम्बन्धी हमारा अुच्च संकल्प दृढ़ होना चाहिये। परमात्मा-सम्बन्धी निष्ठामें और हमारे सत्संकल्पमें जो सामर्थ्य है, वह और किसी चीजमें नहीं है। परमात्माका ज्ञान हमें पूरी तरह नहीं हो सकता। फिर भी अुसके बारेमें आज हमें जितना ज्ञान है, अुससे हम अुस पर निष्ठा रख सकते हैं और अुस निष्ठाको बढ़ाकर दृढ़ कर सकते हैं। जीवनमें हमेशा अुपयोगी सिद्ध होनेवाला बल केवल निष्ठामें ही है। अिसमें शक नहीं कि अीश्वर-सम्बन्धी प्रेम और भक्तिभावमें अेक प्रकारका आनन्द है। परन्तु जीवनमें किसी कठिन अवसर पर जब अीश्वर-विषयक प्रेम, श्रद्धा और भक्तिभाव वगैरा डिग जाते हैं, तब मनुष्यका मन स्थिर रखनेमें केवल निष्ठा ही समर्थ होती है। जहां ज्ञान असमर्थ सिद्ध होता है, जहां विवेक पंगु बन जाता है, वहां निष्ठा तमाम शक्तियां जाग्रत करके मनको मजबूत बनाती है, हृदयको धैर्यसे भर देती है, सात्त्विकतामें तेज लाती है और सद्‌गुणोंको बल प्रदान करती है। अिस प्रकार निष्ठा मनुष्यको सब तरहसे चेतना देनेवाली शक्ति है। जीवनमें अुसकी अत्यन्त आवश्यकता है।

९

तत्त्वज्ञानका साध्य

मनुष्यमें संसारके किसी भी प्राणीकी अपेक्षा विचार-शक्ति अधिक है। मानव-जीवनके हर क्षेत्रमें अिस शक्तिका प्रभाव दिखाअी देता है।

तत्त्वज्ञानकी निर्मिति

दुःखका नाश करके सुखकी वृद्धिके अुपाय मनुष्यने अपनी बौद्धिक शक्तिसे ही निर्माण किये हैं। सुख-दुःखके कार्यकारण-सम्बन्धको जानने तथा अुसकी मददसे सुखको बढ़ाकर दुःखका नाश करनेके अुपाय खोजने और अमलमें लानेका प्रयत्न करनेसे ही अनेक शास्त्रों और कलाओंका विकास होता रहा है। मनुष्य-जाति ठेठ प्रारम्भिक कालसे अिसी हेतुके पीछे लगी हुअी दिखाअी देती है। मानव-शरीरमें जो भी नअी नअी शक्तियां प्रकट होती गअीं, अुन सब शक्तियोंसे मनुष्य यही हेतु पूरा करनेका प्रयत्न करता आया है। कर्मेन्द्रियों और

ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अलग अलग विषयोंका अलग अलग तरहसे रसास्वाद करने और हर तरफसे दुःखसे बचनेका अुसका सदासे प्रयत्न रहा है। अिस प्रयत्नमें से ही आगे चलकर विचारवान मनुष्यके मनमें शंका पैदा हुअी कि क्या ये शास्त्र, विद्यायें और कलायें दुःख और भय दूर करके मनुष्यको सचमुच स्थायी रूपसे सुखी बना सकेंगी? बड़ेसे बड़े प्रयत्नों द्वारा प्राप्त किया हुआ सुख भी आखिर अशाश्वत ही होता है। सुखानुभूति क्षणिक होती है। और अेक भय या दुःख टाल देने पर भी दूसरा सामने खड़ा ही रहता है। अैसी परिस्थितिमें क्या मनुष्य सचमुच कभी भी स्थायी रूपसे दुःखरहित और सुखी हो सकेगा? कितने ही प्रयत्न किये जायं और चाहे जितनी खोज और अिलाज किये जायं, तो भी बुढ़ापा नहीं टल सकता, व्याधि नहीं टल सकती और मृत्यु तो कभी टाली ही नहीं जा सकती। वह किस क्षण हमला कर देगी, यह नहीं कहा जा सकता। मनुष्यकी जीनेकी आशा कभी नहीं छूटती। अुपभोगकी — अिन्द्रियग्राह्य रसोंकी — अिच्छा कभी क्षीण नहीं होती। शरीरसुखकी अिच्छा हमेशा रहती है। अैसी स्थितिमें जरा, व्याधि और मृत्युका भय हमेशा बना ही रहेगा। अिस बारेमें विद्वान-अविद्वानका भेद नहीं; सबल-निर्बल, अमीर-गरीब, राजा-रंकका फर्क नहीं। सारी मानव-जाति अिस दुःख और भयमें हमेशासे फंसी हुअी है। अिस प्रकारकी शंकाओं और प्रश्नोंके कारण विचारवान मनुष्यका मन अधिक विचार करने लगा।

सुखकी अपेक्षा दुःखके मौके पर मनुष्यका मन ज्यादा जाग्रत बनता है और अुसके कारणोंकी खोजमें लगता है। अैसे ही मौकेके कारण विचारशील मनुष्य जरा, व्याधि और मृत्युके बारेमें सूक्ष्मतासे विचार करने लगा। अिनके कारणोंकी खोज करने लगा। मृत्युके साथ साथ जन्मका भी अुसे सहज ही विचार करना पड़ा। जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि अिन चार अवस्थाओंमें से अुसे खास तौर पर जन्म और मृत्युका ही विचार करना पड़ा होगा, क्योंकि अेकमें मानव-जीवनका आरम्भ है और दूसरीमें अन्त है। जरा और व्याधिकी अवस्थायें जन्मके कारण ही प्राप्त होती हैं। जन्म-मृत्युकी तरह ये अवस्थायें भी स्पष्ट हैं, परन्तु जन्मके पहले और मृत्युके बादकी दो अवस्थायें गूढ़ हैं। मनुष्यको मृत्युकी अवस्था भी जन्मके कारण

ही प्राप्त होती है। अिसलिअे यदि जरा, व्याधि और मृत्यु नहीं चाहिये तो जन्मसे ही बचना चाहिये। परन्तु विचारवान मनुष्यको यह मालूम हुआ होगा कि जन्म-मरणके रहस्यका पता लगाये बिना और अुनके कारण जाने बिना यह बात सिद्ध नहीं हो सकती। अिसलिअे वह जन्म-मृत्युके कारणोंकी खोज करनेकी तरफ मुड़ा। मानव-जीवनमें मृत्यु जैसी भयानक, दु:खरूप और अनिवार्य दूसरी कोअी आपत्ति नहीं। मृत्युने ही मनुष्यको जीवनके संबंधमें सूक्ष्म, गहरा और गंभीर विचार करनेको प्रेरित किया होगा। मृत्युके कारणों और अुसके बादकी स्थितिका विचार करते करते अुसे जन्म और अुसके कारणोंका भी विचार करना पड़ा होगा। शरीर और अुसकी भिन्न भिन्न अवस्थाओंका, मन-बुद्धि-चित्त-प्राण, चैतन्य, कर्मेन्द्रियां, ज्ञानेन्द्रियां, अुनके कार्य और परिणाम, सृष्टि और पंचमहाभूत अिन सबका वह विचार करने लगा होगा। अिसी तरह मानव-स्वभाव, विकार, भावना, संस्कार, गुण, धर्म, जाग्रति-स्वप्न-सुषुप्ति, त्रिगुण, प्राणिवर्ग तथा वनस्पतिवर्ग, अुनके भेद, अुनकी अवस्थायें, जीवमात्रका परस्पर आकर्षण-अपकर्षण वगैरा सभी सचेतन-अचेतन वस्तुओंकी शोध करते करते अुसे अपना रास्ता निकालना पड़ा होगा। शरीरकी घटना-विघटना, सृष्टिका प्रिय-अप्रिय निर्माण-नाश और विश्वका अखंड रूपमें चलनेवाला प्रचंड कारबार — अिन सबका कर्ता कौन है? जन्म और मृत्यु किसकी आज्ञासे होते हैं? विचारशील लोगोंके मनमें कुदरती तौर पर अिस विषयके विचार और प्रश्न अुठे होंगे। अुनके विचारों, सवालों, शंकाओं और खोजोंसे ही तत्त्वज्ञान तैयार हुआ है। अुसीसे अीश्वर-परमेश्वर, प्रकृति-पुरुष, ब्रह्म-परब्रह्म, आत्मा-परमात्मा, पूर्व और पुनर्जन्म आदि कल्पनायें और विचार मनुष्यको सूझे हैं।

खोजके अन्तमें अनुभवमें आने-वाली कृतार्थता

हरअेक विचारककी ज्ञानसंबंधी जिज्ञासा, अुत्कंठा और व्याकुलता, वैराग्य, सचेतन-अचेतन सृष्टिके अवलोकन, निरीक्षण और परीक्षण, बौद्धिक सूक्ष्मता और व्यापकता और अन्तमें निर्णयशक्तिके अनुसार अुसे अपनी खोजमें सिद्धि प्राप्त हुअी होगी। अुस परसे अुसने जन्म-मृत्यु और समग्र सृष्टिके बारेमें सिद्धान्त निकाले होंगे। अिसीमें अुसे तृप्ति, समाधान, प्रसन्नता और जीवनकी कृतार्थता मालूम हुअी होगी।

आगे चलकर बढ़ते हुअे अनुभव और ज्ञानके कारण, निरीक्षण और निर्णय-शक्तिके कारण अपनी पहली मान्यतामें समय पाकर किसीके मनमें शंका पैदा हुआी होगी और अिन नअी शंकाओंके साथ वह फिर खोज करने लगा होगा। या बादका विचारक पहलेके सिद्धान्त मंजूर न होनेके कारण अपनी शंकाओंको लेकर अधिक सूक्ष्मता और व्यापकतासे अुसी खोजमें लगा होगा। अिस प्रकार संपूर्ण चराचर तत्त्वोंकी बार-बार खोज करते-करते किसी विचारकके तर्ककी मंजिल विश्वके आदि-कारण तक पहुंच गअी होगी। अुसके बाद अुसे निश्चयपूर्वक लगा होगा कि सबका आदिकारण-स्वरूप अेक ही सनातन अविभाज्य तत्त्व सकल विश्वमें व्याप्त है; और अुसकी सूक्ष्मता, विशालता और व्यापकता परसे अुसने अुसीको ब्रह्मतत्त्व कहा होगा। और विश्वके सजीव-निर्जीव अणुसे लेकर ठेठ ब्रह्मांड तक जो कुछ दृश्य-अदृश्य, गोचर-अगोचर, ज्ञात-अज्ञात, कल्पनामें आनेवाला और न आनेवाला है, सब — वह खुद भी — अुस महान और मूलतत्त्वका आविर्भाव है, अिस दृढ़ तर्क या अनुमान पर वह निश्चित रूपमें पहुंचा होगा और अिस ज्ञानको अुसने ब्रह्मज्ञान कहा होगा। विचारक जिस तत्त्वमें स्थिर हुआ, जिसके आगे विचार करनेकी अुसकी गति रुकी, जिस तत्त्व तक पहुंचकर अुसकी व्याकुलता शान्त हुअी, अुस तत्त्व या तर्कको मुख्य मानकर अुसने अपने अन्तिम निर्णयको अुस तत्त्वका बोधक या सूचक नाम दिया। जिस विचारकको सृष्टिके आदि-कारणमें मुख्यतः नियामकता और शक्तिमत्ता दिखाअी दी, अुसने अुसे अीश्वर नाम दिया; जिसे व्यापकता और अनंतता दिखाअी दी, अुसने अुसे ब्रह्म कहा; जिसे यह लगा कि हम भी अुसी विशाल तत्त्वके आविर्भाव हैं — जिसमें यह निश्चय दृढ़ हुआ कि शरीरका मुख्य तत्त्व यही है — अुसने अुसे आत्मतत्त्व माना। जिन्हें अत्यन्त परिश्रम, सतत सूक्ष्म अवलोकन और अभ्यास वगैराकी मददसे अपनी खोजके अन्तमें यश मिला होगा, जिनके जीवनमें सत्य-ज्ञानके सिवा और कोअी हेतु नहीं रहा होगा, जो वासनातृप्त, समस्त भौतिक विषयोंके प्रति अना-सक्त, ज्ञानके लिअे अत्यन्त व्याकुल और समर्थ होते हुअे भी विरक्त होंगे, अुन्हें अपनी खोजके अन्तमें मिली हुअी सफलतासे कितना आनन्द, कितनी प्रसन्नता और कृतार्थता महसूस हुअी होगी, अुसकी कल्पना

हम जैसोंको कैसे हो सकती है ! अेक ही अुच्च हेतुके पीछे तम-मन-धन सर्वस्व न्योछावर करके, अुसीको जीवनका अेकमात्र हेतु बनाकर, अुसके लिअे अपार परिश्रम करनेके परिणामस्वरूप जब अुन्हें अुसमें सफलता मिली होगी, तब अुन्हें कैसा लगा होगा ? अुन्हें अैसा लगा हो कि जीवन सार्थक हुआ, जीवनमें कोअी भी हेतु बाकी नहीं रहा और कोअी भी कार्य या कर्तव्य अब करनेको रह नहीं गया, और अिससे अुन्हें परमानन्द हुआ हो, तो अिसमें आश्चर्य क्या ? सृष्टिमें या अपनेमें, भीतर या बाहर अब कुछ भी जाननेको नहीं रह गया, अैसा प्रतीत होने पर अुन्हें परम कृतार्थता भी अनुभव हुअी होगी। ज्ञानसे परिपूर्ण होनेके बाद जीवनकी अिच्छा नहीं और मृत्युका भय भी नहीं — अैसी अुनकी अवस्था हुअी होगी। किसी प्रकारका बन्धन नहीं, किसी तरहकी अिच्छा नहीं, अैसी स्थितिमें अुनके मनमें मोक्षकी कल्पना आअी हो तो वह भी स्वाभाविक थी। अिसमें शक नहीं कि सत्यकी खोजका मूल हेतु, अुसके लिअे किया गया परिश्रम, चिन्तन, मनन, निदिध्यास, विरक्त स्थिति, स्वार्थका पूरी तरह अभाव, सब तत्त्वोंकी खोज, अपने प्रयत्नमें मिली हुअी सफलता और अुससे प्राप्त ज्ञानावस्था — अिन सबका वह स्थिति स्वाभाविक परिणाम होना चाहिये। अिस प्रकार अेकसे अेक बढ़कर प्रखर, सूक्ष्म और गाढ़ विचारशील शोधकों द्वारा किये गये प्रयत्नोंसे निर्माण हुआ तत्त्वज्ञान हमें मिला है। यह सब अुन महाभागोंकी कमाअी है।

दर्शनकारोंका मानव-जाति पर अुपकार

अुन मूल दार्शनिकोंके बारेमें विचार करने पर अुनकी सत्य-ज्ञान संबंधी जिज्ञासा, अुत्कंठा और व्याकुलता; अुसके लिअे किये गये अुनके परिश्रम; अुनकी सूक्ष्म, कुशाग्र, मर्मस्पर्शी परन्तु व्यापक बुद्धिमत्ता; विषयको आरपार भेदकर ठेठ सत्य तक जा पहुंचनेवाली अुनकी दीर्घ, भेदक और पवित्र दृष्टि आदिका खयाल आते ही अुनके प्रति खूब आदर पैदा हुअे बिना नहीं रहता। भौतिक अिन्द्रियजन्य सुखके प्रति अुनका वैराग्य; प्रकृति — पंचमहाभूतोंसे लेकर मानव-शरीर, मन, प्राण, चित्त, जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि वगैरा तक सारी चराचर सृष्टिका अुनका सूक्ष्म अवलोकन और निरीक्षण; साथ ही अिन सबके गुणधर्म और

संस्कारोंका अुनका ज्ञान वगैरा बहुत ही आश्चर्यप्रद लगता है। मोह और अज्ञानसे व्याप्त संसारमें तत्त्वशोधनके पीछे पड़कर जिन महापुरुषोंने सत्यकी अुपासना की और आवश्यक ज्ञान प्राप्त किया वे सचमुच धन्य हैं। मानव-जाति पर अुनके भारी अुपकार हैं। सारी मानव-जातिको अिस विषयमें अुनका सदैव अृणी रहना चाहिये।

तत्त्वज्ञानका विकास बादमें कैसे रुका?

परन्तु मालूम होता है कि तत्त्वशोधनका यह प्रयत्न भारतवर्षमें पहले जैसा जारी नहीं रहा। आगे चलकर किसी समय वह रुक गया। अिससे आगे तत्त्वज्ञानका विकास हमारे देशमें हो नहीं पाया। अिसके कारणोंका विचार करने पर अैसा मालूम होता है कि हमने किसी समय तत्त्वज्ञानके साथ मोक्षका सम्बन्ध जोड़ दिया। तबसे हमारा शोधकपन खतम हो गया, केवल श्रद्धालुपन बढ़ता रहा और ज्ञानकी अुपासना बन्द हो गअी। मूल शोधकों और दार्शनिकोंको जिज्ञासा और परिश्रमका फल ज्ञान, शान्ति और प्रसन्नताके रूपमें मिल गया। अिस परसे किसी समय हममें यह गलत खयाल पैदा हो गया कि अुनकी तत्त्वज्ञान-सम्बन्धी विचार-सरणीको केवल मान लेनेसे ही हमें भी वैसा ही ज्ञान, शान्ति और प्रसन्नता मिल जायगी। अैसी शंका होती है कि यह सब अुसीका परिणाम होना चाहिये। अिस विषयमें अेक बार अैसी समझ दृढ़ हो जाने पर अुसीसे ब्रह्मज्ञान, आत्मज्ञान, ब्रह्म-साक्षात्कार, आत्म-साक्षात्कार आदि कल्पनायें पैदा हुअी हैं और तत्त्वशोधक दार्शनिकोंके आनन्द परसे ब्रह्मानन्द, आत्मानंद, नित्यानंद आदि अलग अलग आनन्दोंकी कल्पना करके हमने आनन्दकी अुपासना शुरू की है। ज्ञान, आनन्द, कृतार्थता और बन्धनरहित अवस्था आदि सब किसके परिणाम हैं, अिसका विचार न करके हमने यह मान लिया कि अिन दार्शनिकों और विचारकों द्वारा प्रस्तुत विचारसरणी ही अिन सब बातोंका साधन है। अनेक प्रकारका परिश्रम करनेके बाद, हेतु सफल होनेके बाद और शोधकोंकी ज्ञानकी आतुरता शान्त होनेके बाद अुनके चित्तकी जो स्वाभाविक अवस्था हुअी वह अिन सबके परिणामस्वरूप थी, अिस बात पर ध्यान न देकर हम केवल विचारसरणीसे या आनन्दकी कल्पनासे कृतार्थता मानने लगे और मोक्ष प्राप्त करनेका प्रयत्न करने

लगे। किसी समय हममें अिस प्रकारका भ्रामक विचार पैदा हो गया और परम्परासे मजबूत होते होते अुसने श्रद्धाका स्वरूप धारण कर लिया।

अमरीकाका प्रथम दर्शन होने पर कोलम्बसको अतिशय आनन्द हुआ और अुस भूमि पर पहला कदम रखने पर अुसने कृतार्थता अनुभव की। न्यूटनको अपनी खोजमें कामयाबी हासिल होने पर आनन्द और धन्यता महसूस हुअी। आज भी बड़े बड़े शोधकों और वैज्ञानिकोंको अपनी खोजों और प्रयत्नोंमें सफलता मिलने पर आनन्द और कृतार्थताका अनुभव होता है। अिस परसे यह मानकर कि अमरीकाके दर्शन और अुस जमीन पर कदम रखनेमें ही आनन्द और कृतार्थता प्रतीत होनेका गुण है, या न्यूटनका सिद्धान्त समझ लेनेसे आनन्द प्राप्त हो जाता है, या आजके शोधकोंकी खोजोंकी अुपपत्ति समझ लेनेसे वैसा ही आनन्द और कृतार्थता हमें भी मिल जायगी, कोअी वैसी कोशिश करे तो क्या वह अुचित होगी? हम अुसे ठीक मानेंगे? ज्ञानके दूसरे क्षेत्रोंमें जिस चीजको हम ठीक नहीं समझते या कभी नहीं समझेंगे, अुसको तत्त्वज्ञानके विषयमें अुस पर आरोपित आध्यात्मिक स्वरूपके कारण ठीक समझते हैं, अुस पर श्रद्धा रखते आये हैं; और अुसके आधार पर आज बड़े बड़े सम्प्रदाय चल रहे हैं।

मोक्ष-सम्बन्धी कल्पनाका आनंद

अिन सब बातोंका विचार करने पर प्रश्न होता है कि ज्ञान किसे कहा जाय? आनन्द और कृतार्थताका स्वरूप क्या है? अिन भावों या अवस्थाओंका निर्माण किस चीजसे होता है? ये किसके परिणाम हैं? — अिन सब प्रश्नोंका हमने सूक्ष्मतासे विचार नहीं किया है। हम तत्त्वशोधक नहीं हैं। हममें शोधकी, जिज्ञासाकी आतुरता नहीं है। हमें आनन्दकी अिच्छा है। मोक्षकी अिच्छा भी किसी किसीमें होगी। परन्तु मूल शोधकको होनेवाले आनन्द या कृतार्थताकी अिच्छा हमें नहीं है। फिर भी हम यह मानते रहे हैं कि शोधककी खोज पूरी होने पर अुसे जो वस्तु निर्णयके रूपमें मिली, अुस निर्णयको हम अपने चित्त पर अनेक प्रकारसे जमा लें, तो जन्म-मरणसे मुक्त हो जायंगे। यह मानकर कि अुस निर्णयको चित्त पर जमा लेना साध्य और अुसकी बताअी हुअी तात्त्विक विचारसरणी साधन है, अुसीको अलग अलग रूपकों, आलंकारिक भाषा और पांडित्यपूर्ण तर्क-

वाद द्वारा पेश करके, ग्रंथ लिखकर और काव्य रचकर हम अपने पर और दूसरों पर अुसे जमाने लगे। यह हिप्नोटिज़्म जैसी ही कोअी चीज मालूम होती है, पर यह ज्ञान नहीं है। अिसमें कृतार्थता नहीं है। अुन्हीं कल्पनाओंको अलग अलग ढंगसे रंगकर हम अपने पर अुनका रंग चढ़ाते रहे और दूसरोंको भी अुनका रंग चढ़ाने और अुनमें रमाने लगे। अिससे हमें जो आनन्द मिलता है, वह खोजके अन्तमें होनेवाले ज्ञानका आनन्द नहीं होता; परन्तु हमारे ही द्वारा अपने चित्त पर जमाअी हुअी कल्पनाका, हमारे ही मनमें यह जमाते रहनेका कि हम खुद कोअी दिव्य, अजर, अमर तत्त्व हैं, और आनन्दकी धारणा रखकर पैदा किया हुआ आनन्द होता है। प्रत्यक्ष खोजसे होनेवाले ज्ञानका आनन्द और खोजकी विचारसरणीसे और आनन्दकी धारणा कर लेनेसे होनेवाला आनन्द, अिन दोनोंमें बड़ा अन्तर है। अिस बातकी प्रबल शंका है कि हमारे तत्त्वज्ञानके सम्बन्धमें अैसा ही कुछ हुआ होगा। मोक्ष हमारे जीवनका ध्येय है; तत्त्वज्ञानीको मोक्ष मिलता है; ज्ञानसे मोक्ष मिलता है; तत्त्वज्ञानीके ज्ञानको हम मान लें और अुसे अपने चित्त पर जमा लें तो हमें भी मोक्ष मिल जायगा; अैसी हमारी श्रद्धा है। अिस श्रद्धाके दढ़ होने पर मोक्ष निश्चित समझिये! अिस क्रमसे हममें अेक प्रकारकी जो श्रद्धा निर्माण हुअी, वह परम्परासे आज अितनी दृढ़ हो गअी है कि जिस दृष्टिसे मैं यह लिख रहा हूं अुस दृष्टिसे अिस विषय पर विचार करनेको शायद ही कोअी तैयार होगा।

शोधक और श्रद्धालुके बीचका भेद

तत्त्वज्ञानकी कअी अलग अलग प्रणालियां हैं। अुन सबमें अेक-वाक्यता भी नहीं है। अन्तिम सिद्धान्तमें तो अुनके बीच परस्पर-विरोध भी जान पड़ेगा। तो भी जो अिस मतको अेक बार स्वीकार कर लेता है, वह अुससे अितना चिपट जाता है कि अुसे कितना ही समझाया जाय, वह अपनी विचारसरणीको नहीं छोड़ता। कारण, वह शोधक नहीं श्रद्धालु होता है। हमारे तत्त्वज्ञानमें कोअी भूल है, यह मान लिया जाय या साबित हो जाय, तो हमारा तत्त्वज्ञान अपूर्ण सिद्ध हो जायगा; अिससे हमारे मोक्षमें और सद्गतिमें बाधा

पड़ेगी; अितना ही नहीं परन्तु हम जिस सम्प्रदायके हैं अुसकी और अुसके मूल प्रवर्तककी त्रुटि मानी जायगी; अिससे अुस मूल प्रवर्तकके दिव्यपन या अवतारीपनके बारेमें शंका पैदा होगी, हमारी श्रद्धा कम हो जायगी और खुद हम तथा हमारी परम्पराके तमाम साम्प्रदायिक अज्ञानी ठहरेंगे — अिस प्रकारकी अनेक तरहकी शंकाओं और भयके कारण आध्यात्मिक दृष्टिसे सर्वश्रेष्ठ माने गये तत्त्वज्ञानकी जांच करनेके लिअे कोअी तैयार नहीं होता। अिस तरहके श्रद्धालु सिर्फ साम्प्रदायिक लोगोंमें ही होते हों सो बात नहीं। कोअी सम्प्रदाय स्वीकार न किया हो तो भी आध्यात्मिक हेतुके लिअे किसी विशेष तत्त्वज्ञानको माननेवाले लोगोंमें भी ज्यादातर भूतकालके किसी महापुरुषकी दृष्टिसे ही तत्त्वज्ञानका विचार करनेवाले होते हैं। श्रद्धालु होनेके कारण वे भी अिसी दृष्टिसे विचार करते हैं कि अुनकी विचारसरणीके बारेमें अश्रद्धा अुत्पन्न न हो और श्रद्धा बढ़ती रहे। साम्प्रदायिकोंमें या असाम्प्रदायिकोंमें कोअी अभ्यासी व विचारक नहीं रहता सो बात नहीं। परन्तु अुनके अभ्यास और विचारके तरीकेका अेक निश्चित रूप बन गया होता है। वे अपनी मूल श्रद्धाको कायम रखकर अध्ययन करते हैं, अिसलिअे अुनमें शोधक-वृत्तिकी बहुत ही कम सम्भावना है। जो सचमुच शोधक होते हैं वे केवल श्रद्धासे कोअी बात माननेको तैयार नहीं होते। वे हर बातको अनुभवसे सिद्ध करनेका प्रयत्न करते हैं। चूंकि जितनी शंकायें और तर्क अुठें अुन सबको दूर करके अुन्हें सत्य-ज्ञान प्राप्त करना होता है, अिसलिअे वे शंका और तर्कसे डरते नहीं। परन्तु जिनकी तत्त्वज्ञानकी श्रद्धाकी जड़में मोक्षकी आशा होती है, वे अपने तत्त्वज्ञानकी रक्षा वैसे ही करते हैं जैसे भावुक भक्त अपनी पूज्य मूर्तिकी रक्षा करता है। जैसे वह भक्त अपनी मूर्तिको अलग अलग ढंगसे सिंगार और सजाकर अपनेमें आनन्द पैदा करनेकी कोशिश करता है, अुसी तरह ये तत्त्वज्ञानी भी अपने माने हुअे तत्त्वज्ञानको भिन्न भिन्न रूपकों और आलंकारिक भाषासे रोचक बनाकर आनन्द पैदा करनेका प्रयत्न करते हैं। और अुस आनन्दके अनुसार आत्मा और ब्रह्मकी आनन्दरूपता वगैराका वर्णन करते हैं।

सत्यशोधन तत्त्वज्ञानका मुख्य हेतु है। अुसमें जो आनन्द है, वह सत्यज्ञानका है। अुस सत्यको शब्दोंसे समझाना नहीं पड़ता और न अुपमा और अलंकार द्वारा अुसमें माधुर्य लाना पड़ता है। ज्ञानसे आनन्द प्राप्त करनेके लिअे पहले ज्ञानकी आतुरताकी जरूरत होती है। अुसे प्राप्त करनेके लिअे मेहनत करनी पड़ती है। जीवनका यही अेक अुद्देश्य रखकर सर्वस्वका त्याग करके अुसके पीछे लगना पड़ता है। अिस मार्गमें प्रखर बुद्धि और अत्यन्त लगनकी आवश्यकता होती है। और अिन सबके अतिरिक्त सत्यकी परख और निर्णय-शक्तिकी जरूरत होती है। ये चीजें जितनी मात्रामें हममें होती हैं, अुतनी ही मात्रामें हमें ज्ञानसे आनन्द मिलता है। वेदान्त या और किसी भी विचारसरणीको केवल मान लेनेसे, विश्वकी अुत्पत्ति या संहारका अुलटा-सीधा क्रम ग्रंथ द्वारा समझ लेनेसे, पंचीकरण पद्धतिसे पंचमहाभूतोंकी अलग अलग पद्धतिका बंटवारा समझ लेनेसे और अन्तमें 'आत्मा या ब्रह्म मैं ही हूं' अैसी धारणा चित्त पर सतत जमाते रहनेसे वह आनन्द हमें नहीं मिल सकता, जो खोजके अन्तमें प्राप्त होनेवाली सफलतासे मिलता है। मोक्षकी आशासे 'मैं कौन हूं?' की जांच करनेका प्रयत्न करनेवाला श्रद्धालु साधक अूपर बताअी हुअी विचारसरणी द्वारा अपने मनको समझाते और मनाते हुअे अन्तमें 'मैं ही आत्मा, मैं ही ब्रह्म हूं; बाकीका सब कारबार, शरीर, मन, बुद्धि, प्राण वगैरा प्रकृतिका खेल है' अिस समझ पर पहुंच कर 'अहं ब्रह्मास्मि' के महावाक्य पर अपनी चित्तवृत्ति दृढ़ करनेका प्रयत्न करता है। सतत अभ्याससे अुसकी यह वृत्ति अितनी दृढ़ हो जाती है कि वह मानने लगता है कि यही सत्यका अनुभव है और यही आत्मबोध है। परन्तु अुसके ध्यानमें यह नहीं आता कि यह आत्मबोध नहीं, बल्कि वेदान्त-प्रणाली परसे हमारी ही बनाअी हुअी अेक चित्तवृत्ति है। जन्म-मृत्युके डरके कारण 'मैं कौन हूं' की जांच होनी चाहिये, अिस व्याकुलतासे साधक-दशामें अुसमें वैराग्यनिष्ठा रहती है। अिसके कारण अुसमें कुछ कुछ संयम और सद्गुण आ जाते हैं। बादमें तत्त्वज्ञानके अेकाध सिद्धान्तको मानकर यह समझ दृढ़ कर लेनेसे कि 'वही मैं हूं' अुसके चित्तकी व्याकुलता शान्त हो

तत्त्वज्ञान और कल्पनाजन्य आनंदके बीच भेद

जाती है। अैसी हालतमें श्रद्धालु अभ्यासीका यह खयाल हो जाता है कि मुझे आत्मसाक्षात्कार हो गया और अुसे समाधान हो जाता है। तत्त्वज्ञानका अेकाध सिद्धान्त अिस तरहसे मानकर, अुसे अलग अलग रूपकोंसे सजाकर और अुसमें भिन्न भिन्न रस और आनन्द पैदा करके हम मन ही मन अपना रंजन करने लगे। और अपने चारों ओर जमा होनेवाले भावुकोंके मनमें अुस आनन्दकी अिच्छा अुत्पन्न करने लगे। अध्यात्मज्ञानमें श्रेष्ठ मानी गअी या अवतारी समझी गअी भूतकालीन विभूतियां हम खुद ही हैं, अैसी कल्पना और विश्वास करके कोअी मस्तीका, तो कोअी श्रेष्ठताका आडंबर दिखाने लगा। अिस प्रकार हम अपनी भ्रामक वृत्तिका ही तत्त्वज्ञानके नाम पर पोषण करने लगे, और अिसके लिअे अुस तत्त्वज्ञानमें से रास्ता निकालने लगे। हममें शोधकका गुण होता तो ज्ञानके नाम पर अैसी भ्रामक बातें न होतीं, हमने अुस शास्त्रका विकास किया होता, अुससे हमें अनेक भौतिक और सात्त्विक लाभ हुअे होते और हम अुन्नत बने होते। परन्तु तत्त्वज्ञानका सम्बन्ध केवल मोक्षके साथ जोड़ दिये जानेसे वे लाभ नहीं हो सके। हरअेक सम्प्रदायने तत्त्वज्ञानकी कोअी न कोअी प्रणाली अवश्य स्वीकार की है। अिसका कारण हमारे महापुरुषों और सर्वसाधारण लोगोंमें चली आ रही यह श्रद्धा है कि तत्त्वज्ञानके बिना मोक्ष नहीं होता। अिसीसे अिस मार्गमें ज्ञानकी खोज न होकर श्रद्धालुपन बढ़ता रहा है।

तत्त्वज्ञानकी सिद्धि

सचमुच अगर हम तत्त्वोंके शोधक और अभ्यासी बन जायं, तो पंच-भूतात्मक सृष्टिके तमाम स्थूल-सूक्ष्म पदार्थों और साथ ही अुनके गुणधर्मोंका ज्ञान हमें हुअे बिना नहीं रहेगा। ध्वनि, प्रकाश, विद्युत् जैसे गूढ़ और महान तत्त्वोंके कार्य-कारण-भावोंका हमें ज्ञान होगा। मनुष्य और अन्य प्राणियोंके गुणधर्म, संस्कार, स्वभाव वगैराका भी हमें ज्ञान होगा। मन, बुद्धि, चित्त, प्राण, चैतन्य आदि सबका सूक्ष्मातिसूक्ष्म ज्ञान हमारे सामने प्रगट होगा। सारी चराचर सृष्टि और अुसके सूक्ष्म तत्त्वोंके हम जानकार बनेंगे। अिस प्रकार समस्त तत्त्वोंकी खोज करते करते अगर हम तत्त्वज्ञानके आखिरी छोर तक पहुंच जायंगे, तो अिस विश्वमें हमसे

कुछ भी अज्ञात नहीं रहेगा और अिस सारे ज्ञानका अुपयोग हम मानव-जातिके अुत्कर्ष और कल्याणके लिअे आसानीसे कर सकेंगे। अुस ज्ञानके कारण हमारे जीवनका स्वाभाविक झुकाव भूतमात्रका हित करनेकी ओर ही रहेगा। परन्तु अिनमें से किसी भी तत्त्वकी शोध हमें न लगी हो और अिनमें से किसी बातसे हम मानव-जातिका कल्याण और भूतमात्रका हित न कर सकते हों, तो यह वस्तु ज्ञानमार्गमें संभव प्रतीत नहीं होती कि केवल आत्मतत्त्वका ज्ञान होनेसे हमें ब्रह्म-साक्षात्कार हो सकता है। सत्यकी दृष्टिसे देखा जाय तो यह केवल कल्पित और श्रद्धाकी बात ठहरेगी। अुसे ज्ञानकी सिद्धि नहीं कहा जा सकता।

तत्त्वज्ञानका जीवनसिद्धिमें पर्यवसान

अिन सब बातों पर विचार करनेसे मालूम होता है कि तत्त्व-ज्ञानका सम्बन्ध मोक्षके साथ न जोड़कर जीवनशुद्धि और सिद्धिके साथ जोड़ना चाहिये। मानवताके लिअे आवश्यक हर बातको अधिकाधिक शुद्ध, तेजस्वी और प्रभावशाली बनानेका सामर्थ्य तत्त्वज्ञानमें होना चाहिये। मानव-जीवनमें धर्म, अर्थ और काम तीनों बड़े पुरुषार्थ हैं। मनुष्यमात्रका सारा जीवन अिन तीन पुरुषार्थोंमें बंटा हुआ है। अिन तीनोंकी शुद्धि द्वारा ही जीवनशुद्धि और जीवनसिद्धि हो सकेगी। ज्ञानके बिना यह शुद्धि और सिद्धि संभव नहीं। अिसलिअे धर्म, अर्थ और कामको शद्ध करनेकी ताकत ज्ञानमें होनी चाहिये। व्यक्ति और समष्टिका कल्याण परस्पर-विरोधी या विघातक न होकर अेक-दूसरेका सहायक बने, अिस दृष्टिसे धर्म, अर्थ और कामका विचार होना चाहिये। अिसके लिअे तत्त्वज्ञानकी खास तौर पर जरूरत है। यह आवश्यकता पूरी करनेकी शक्ति तत्त्वज्ञानमें हो तो ही धर्म, अर्थ और कामकी शुद्धि होगी और मानवधर्मकी सिद्धि होगी। हम जिसे तत्त्वज्ञान कहते हैं अुसमें यह शक्ति न हो, तो अुस तत्त्वज्ञानका विकास करके अुसमें यह शक्ति लानी चाहिये। ज्ञानमें यदि पुरुषार्थ न हो, शक्ति निर्माण करनेका गुण न हो, तो अुस ज्ञानमें और अज्ञानमें कोअी फर्क नहीं। दीपक और आगमें प्रकाश देनेकी शक्ति जरूर होगी। अगर यह अनुभव होता हो कि दीपकमें और अग्निमें वह शक्ति नहीं है, तो यह निश्चित समझना

चाहिये कि वहां दीपक और आग नहीं, परन्तु अुसके बारेमें कुछ न कुछ भ्रांति ही है।

संक्षेपमें, तत्त्वज्ञानके आभास पर विश्वास न रखकर हमें अैसे तत्त्वज्ञानका आश्रय लेना चाहिये, जिसमें मानव-जीवनको सब तरफसे सफल बनानेका सामर्थ्य हो। भ्रमके पीछे न पड़कर यदि हम सचमुच ज्ञानकी प्राप्ति कर लें, तो अुसके साथ हममें पुरुषार्थ अवश्य आना चाहिये। ज्ञान प्राप्त कर लेनेके बाद अुसका अुपयोग करना अुस ज्ञानका स्वाभाविक परिणाम है।

१०

साध्य-साधन विवेक — १

हमारे यहां भक्ति, योग और ज्ञान आध्यात्मिक अुन्नतिके मार्ग माने जाते हैं। अिन मार्गोंकी अुत्पत्ति अेक ही कालमें नहीं हुअी। अैसे किसी भी मार्ग और साधनकी कल्पना व्यक्ति या समाजके किसी दुःखके शमन, सुखके साधन या मनकी सांत्वना और अुन्नतिके निमित्तसे होती है। और आगे अुसीकी वृद्धि होकर अुसमें से भिन्न-भिन्न बौद्धिक और मानसिक आनन्द प्राप्त करनेकी कल्पनायें निकलती हैं। अिन मार्गोंका अन्तिम ध्येय मोक्ष होनेके कारण मोक्षेच्छु साधक अपनी रुचिका मार्ग ग्रहण कर अुन्नतिका प्रयत्न करते रहे हैं। अिसमें सन्देह नहीं कि ये मार्ग और अुनके साधन कम या अधिक मात्रामें व्यक्तिगत विकासके सहायक हुअे हैं। परन्तु अुनमें रही हुअी व्यक्तिगत कल्याणकी कल्पनाके कारण सामाजिक और सामूहिक कल्याणकी भावना हममें पैदा नहीं हुअी, जिसके बिना मानव-जातिकी प्रगति संभव नहीं है। अिसके सिवा, भक्ति, ज्ञान वगैरा मार्गोंमें प्रत्यक्ष कर्मकी अपेक्षा हमारी कल्पना और भावनाका ही अधिक महत्त्व रहा। अतः अुनसे प्राप्त होनेवाले भिन्न-भिन्न लाभ भी विचार करने पर काल्पनिक लगते हैं। अुन मार्गोंमें आनन्द न हो सो बात नहीं। परन्तु अुन मार्गोंके साध्य-साधनका विचार करने पर मालूम

हो जाता है कि अुस आनंदके अधिकांश प्रकार हमारी अपनी ही कल्पना या भावना द्वारा निर्माण किये हुअे होते हैं। हमारी भक्तिके अनेक प्रकारों और आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान-सम्बन्धी हमारी मान्यताओं और श्रद्धा परसे अैसा लगता है कि अिन सब बातोंमें हम अलग अलग काल्पनिक सृष्टियां निर्माण करके अुनसे अपनी भावनाओंका पोषण, वर्धन और शमन करते रहे हैं।

अवतारवाद और अीश्वर-सम्बन्धी हमारी सगुण-साकारकी कल्पनाके कारण भक्तिमार्गमें बहुत ज्यादा काल्पनिकता पैदा हो गअी है। नवधा भक्तिसे हमारी भावतृप्ति नहीं हुअी, अिसलिअे मधुर-भक्ति जैसे प्रकार भी हमने पैदा किये हैं। अीश्वर कैसा है, अिसकी जानकारी न होते हुअे भी, अुसके रंगरूपके बारेमें कोअी ज्ञान न होने पर भी, हमने अुसे रंगरूप देकर, अुसके पीछे मन, बुद्धि, चित्त और अिच्छाको लगाकर अुसकी भक्ति करनेकी प्रणालिकायें बनाअी हैं। अिस विचारकी सत्यतामें शंका हो सकती है कि अीश्वरने लीलामात्र करके अनंत ब्रह्मांडका निर्माण कर दिया; परन्तु यह बात तो निःसंशय है कि हम अपनी अीश्वर-सम्बन्धी कल्पनाओंका विचार करते समय अीश्वरको अपनी सुविधा, भावना और कल्पनाके अनुसार जब जैसा चाहें बना देते हैं। अीश्वरके दर्शनके लिअे व्याकुल भक्त कहता है:

भक्तकी मनःस्थितिका परीक्षण

काय तुझें वेंचे मज भेटी देतां। वचन बोलतां अेक दोन॥
काय तुझें रूप घेतों मी चोरोनि। त्या भेणें लपोनि राहिलासी॥
काय तुझें आम्हां करावें वैकुंठ। भेवो नको भेट आतां मज॥
तुका म्हणे तुझी न लगे दसोडी। परि आहे आवडी दर्शनाची॥

(हे प्रभु! मुझे दर्शन देने और मेरे साथ अेक दो बात करनेमें तेरा क्या खर्च होता है? क्या मैं तेरा रूप चुरा लूंगा, जो अिस डरसे तू छिपकर बैठा है? तेरे वैकुंठसे मुझे क्या करना है? डरे मत! अब मुझे दर्शन दे दे। तुकाराम कहता है कि तुझसे मैं कोअी भी चीज नहीं मांगता। सिर्फ तेरे दर्शनकी ही अिच्छा है।)

अैसी स्थितिमें अीश्वर क्या अनुभव करता है और क्या नहीं, यह सब भक्त ही तय करता है। अीश्वरको कैसी शंकायें हो सकती हैं, असकी खुद ही कल्पना करके निराकरण भी कर लेता है। अिस प्रकार देव और भक्त दोनोंकी भूमिका वह खुद ही अदा करता है। दर्शनोत्सुक अवस्थावाले भक्तोंके अैसे अनेक अुद्गार अुपलब्ध हैं। अैसी व्याकुल स्थितिमें अपनी अिच्छानुसार, निदिध्यासके अनुसार, अुन्हें कोअी आभास हो जाय, तो अुसे वे अीश्वरका साक्षात्कार या दर्शन मानकर अपनेको धन्य और कृतकृत्य समझते हैं। कअी भक्त यदि ध्यान-अनुसंधानके कारण अुन्हें तादात्म्य सिद्ध हो जाय, या अुसे सिद्ध करते करते अुनकी चित्तकी गति कुंठित हो जाय, या चित्तका लय हो जाय, तो यह समझकर कि वे अीश्वरके साथ तद्रूप हो गये, अपने सायुज्य और मोक्षका निश्चय कर लेते हैं। अिन सब प्रकारोंमें निहित अलग-अलग चित्त-स्थितियोंका परीक्षण करने पर अैसा मालूम होता है कि ये सब अपनी ही कल्पनामें रमे रहने और अन्तमें अुसीमें मग्न हो जानेके प्रकार हैं।

आत्मज्ञानीकी मनःस्थितिका शोधन

आत्मज्ञानके लिअे 'मैं कौन हूं?' की खोजमें निकले हुअे साधक स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण शरीर आदिका व्यतिरेक करते करते, ये तत्त्व 'मैं' नहीं हूं अिस प्रकार चित्तको समझाते-समझाते और अुन तत्त्वोंके बारेमें प्रतीत होनेवाली अहंताको दूर करनेका प्रयत्न करते करते अन्तमें केवल 'अपनेपन' का भान करानेवाली वृत्ति तक जा पहुंचते हैं और अुसी स्थितिको पूर्ण स्थिति समझ बैठते हैं। अुस स्थितिमें अुन्हें अैसा लगता है कि हमने 'मैं कौन हूं' जान लिया। अुसीमें वे आनन्द और संतोषका अनुभव करते हैं। वह 'मैं' चार देह, तीन गुण, पांच भूत अिन सबसे अलिप्त है, अलग है; देहके अध्यासके कारण वह देहके साथ बंध गया था। अुस देहाध्यासके छूट जाने पर, 'मैं कौन हूं' यह जान लेनेके पश्चात् फिरसे शरीर नहीं लेना पड़ेगा; यही मुक्ति है, अैसी श्रद्धा वे रखते हैं। 'मैं' स्वयं अलिप्त हूं, अैसा अध्यास करके प्राप्त की हुअी स्थितिको यानी तुर्यावस्थाको वे आत्मस्थिति मानते हैं। कोअी सब वृत्तियोंका निरसन करके चित्तका

लय साधते हैं। और अुसके बाद जो बाकी रह जाता है, अुसे 'मैं' समझकर अुसीको आत्मज्ञानकी अंतिम भूमिका मानते हैं — यानी अुन्मन स्थितिको आत्मस्थिति समझते हैं। अिसीको आत्म-साक्षात्कार मानकर अुसके आधार पर अपने मोक्षके विषययें सुनिश्चित बनते हैं। हममें स्फुरित होनेवाला सत्-तत्त्व ही सारे विश्वमें भरा हुआ है, वही ब्रह्म है, अिस श्रद्धासे जो आत्मस्थितिसे 'अहं ब्रह्माऽस्मि' की भूमिका पर पहुंच जाते हैं, वे यह समझते हैं कि हमें ब्रह्म-साक्षात्कार हो गया। अिस प्रकार साधक अपनी रुचिके अनुकूल साधनसे और स्वयं साध सकें अैसी धारणासे अपनी बुद्धि और शक्तिके अनुसार चित्तकी भूमिका प्राप्त करते हैं और अुसीको ज्ञानकी आखिरी अवस्था समझते हैं तथा अुसमें होनेवाले अनु-भवको अन्तिम जीवन-सिद्धान्त मानते हैं। अिसी भूमिका और अवस्थाको वे प्रयत्नपूर्वक दृढ़ करते हैं। परन्तु प्रायः अिनमें से कोअी भी साधक अपनी भूमिकाकी जांच नहीं करता, चित्तवृत्तिका परीक्षण नहीं करता। अिसलिअे अुनके ध्यानमें यह नहीं आता या अैसी शंका भी अुनके मनमें नहीं अुठती कि जिसे हम अनुभव समझते हैं वह सचमुच आत्माका अनुभव है या आत्माके बारेमें हमारी की हुअी कल्पना पर स्थिर और दृढ़ की हुअी चित्तकी वृत्ति है। अिसी प्रकार चित्तकी वृत्तियोंका लय हो जानेके बाद चित्तकी निर्व्यापार स्थितिमें रहनेवाली 'केवल' अवस्था ही आत्माका सच्चा स्वरूप है, अैसा जो लोग मानते हैं अुन्हें भी यह शंका नहीं होती कि अिस स्थितिमें हमें आत्माका ज्ञान होता है या हमारे शरीरका केवल विस्मरण होता है? जो ध्यान या योगके मार्गसे चित्तकी वृत्तियोंका निरोध करते करते अन्तमें चित्तका लय करके निर्विकल्प अवस्था साधते हैं, वे अुसीको आत्माकी शुद्ध अवस्था मानते हैं। अिन साधकोंकी यह श्रद्धा होती है कि चित्तका लय सधने पर कर्मक्षय हो कर पुनर्जन्म टलता है और मोक्षकी प्राप्ति होती है। अिसलिअे अुनका प्रयत्न लयावस्थाका समय भरसक बढ़ानेका होता है। अुनकी अिच्छा होती है कि आत्माकी शुद्धावस्था सतत रह सके तो अच्छा। 'मैं कौन हूं?' की खोजमें सफल हुअे आत्मज्ञानियों, 'अहं ब्रह्माऽ-स्मि' के अनुभवसे ब्रह्मज्ञानी बने व्यक्तियों तथा निर्विकल्प दशाको प्राप्त

करके समाधि-प्राप्त योगियोंका —— सबका ध्येय मोक्ष ही होता है; और हरअेकका यह दृढ़ विश्वास होता है कि अुनके अपने-अपने साधनों और अुनकी अन्तिम सिद्धिसे पुनर्जन्म टल जायगा और मोक्ष मिल जायगा। परन्तु किस अचिंत्य और अतर्क्य कारणसे हमें सबसे पहला जन्म प्राप्त हुआ, अिसका अनुभवात्मक ज्ञान न होते हुअे भी मोक्षके बारेमें विश्वास कैसे रखा जा सकता है, यह विवेकी मनुष्यकी समझमें नहीं आ सकता। अिस मार्गके साधकोंका खयाल है कि 'आत्मा' नामका बिलकुल ही अलग तत्त्व, जो शरीरके बन्धनमें असंख्य जन्मोंसे फंसा हुआ है, किसी भी अुपाय या साधन द्वारा अलग किया जा सके, तो हमें अपनी मूल शुद्ध, बुद्ध स्थिति प्राप्त हो जायगी। अिसलिअे अिनमें से कोअी आत्माका, कोअी अीश्वरका और कोअी ब्रह्मका सतत चिन्तन करने या अनुसंधान रखनेका प्रयत्न करके तादात्म्य या चित्तका लय साधते हैं; और अिस स्थितिमें देहका विस्मरण हो जाय, संकल्प-विकल्प बन्द हो जाय, तो वे मान लेते हैं कि हम शरीरसे अलग हो गये, शरीरसे अलग आत्मतत्त्वका हमें अनुभव या साक्षात्कार हो गया। परन्तु परम्परा और ग्रन्थोंके प्रमाण पर विश्वास रखकर किये गये अभ्याससे कुछ समयके लिअे केवल शरीरकी विस्मृति ही प्राप्त होती है। अिसमें शक नहीं कि अिसमें यम-नियम, सदाचार वगैराके द्वारा चित्तकी शुद्धावस्था प्राप्त होती है, जो जीवनकी दृष्टिसे बहुत ही महत्त्वकी बात है। परन्तु अिस साधनसे आत्मज्ञान हो जाता है और अिसलिअे मनुष्य जन्म-मरणसे मुक्त हो जाता है, अिस मान्यता और विश्वासमें विवेक और निरीक्षण दोनोंका अभाव जान पड़ता है।

चैतन्यका सतत प्रकटीकरण

समस्त अिन्द्रियोंको चेतना देनेवाली; बचपन, जवानी, बुढ़ापा, जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति आदि सब अवस्थाओंमें अखंड रूपमें कायम रहनेवाली; मन, बुद्धि, चित्त, प्राण सबको प्रेरणा देनेवाली शक्ति हम खुद ही हों, तो यह कहनेका विवेक और अनुभवके साथ मेल नहीं खाता कि अुस शक्तिकी प्रतीति केवल चित्तकी लय अवस्थामें ही होती है और किसी दूसरे समयमें नहीं होती। वह शक्ति हम स्वयं ही हैं, अिसलिअे यह भी संभव नहीं कि चित्तका लय कर लेनेसे हमें अपना ही दर्शन

या साक्षात्कार हो जाय। मन, बुद्धि और चित्तसहित अिन्द्रियोंके सारे कार्य होते रहनेके कारण अुस शक्तिका ही प्रकटीकरण और दर्शन सतत होता रहता है। यह प्रकटीकरण हमेशा शुद्ध रूपमें होता रहे, अिसके लिअे आवश्यक साधनों और अुपायोंका हमें अुपयोग करना चाहिये। देहके अध्याससे आत्मा किसी समय देहके बन्धनमें फंस गअी है और 'मैं ही आत्मा हूं' यह अध्यास दृढ़ करनेसे या चित्तका लय सिद्ध करके देहको भूल जानेसे वह जन्म-मरणसे मुक्त हो जाती है — अिन दो कल्पनाओं और श्रद्धाओं पर अिस सम्बन्धकी सारी विचारसरणी और साधनों तथा अुपायोंकी रचना हुअी है। परन्तु अिस विचारसरणी और साधनोंके कारण जो अनुभव हुअे अुनकी शोधक दृष्टिसे जांच करने पर अुनमें विचारकी सुसंगति और अनुभवोंका निरीक्षण दिखाअी नहीं देता। शरीर और आत्मा अथवा प्रकृति और पुरुष ये दो तत्त्व अेक-दूसरेसे अत्यन्त भिन्न गुण-धर्मवाले होने पर भी अुनका अैक्य कैसे हुआ? कौनसे सुखकी आशासे शुद्ध-बुद्ध, नित्य-निरंतर, सत्-चित्-आनन्दस्वरूप आत्मा अशाश्वत देहका अध्यास लेकर अुसके मोहमें फंसी? और, आत्मा या ब्रह्म-सम्बन्धी अध्याससे केवल थोड़े समय तक शरीरको भूल जानेसे ही वह हमेशाके लिअे अुससे कैसे छूट जायेगी? साधक शरीरके ही आधारसे शरीरको भूलनेका क्रम रोज रखे, तो भी अुसी शरीरके अधिष्ठान पर व्युत्थान दशा स्वभावतः आती ही रहेगी और वही स्वभावतः अधिक समय तक रहेगी। चित्तकी प्रतिदिनकी अैसी निवृत्त और प्रवृत्त स्थितिमें आत्मा अपनी मूल शुद्ध-बुद्ध अवस्था कैसे प्राप्त कर सकेगी और कैसे जन्म-मरणसे मुक्त होगी — अित्यादि शंकाओं और प्रश्नोंका ठीक जवाब अभ्यासके बाद अनुभवसे भी विवेकी मनुष्यको नहीं मिलता। अिन सारी मान्यताओंका परम्परागत श्रद्धाके सिवा और कोअी आधार दिखाअी नहीं देता। आत्माकी सही अवस्था निर्विकल्प है। अभ्याससे अुस अवस्थामें जानेके बाद अुसे अपनी मूल स्थिति प्राप्त हो जाती है, अैसी समझ अिन सब प्रयत्नोंके मूलमें है। परन्तु अभ्यासमें होनेवाले अनुभवकी जांच करने पर पता लगेगा कि सविकल्प-निर्विकल्प अवस्थायें आत्माकी नहीं, चित्तकी हैं। यदि सर्वप्रेरक शक्तिको 'आत्मा' शब्द लागू होता हो,

तो वह शक्ति न सविकल्प है और न निर्विकल्प है। जैसे सूर्यके सतत प्रकाशमान होनेसे अुसकी तरफसे प्रकाश देनेका कार्य सतत अखंड रूपमें होता ही रहता है, वैसे ही सर्वप्रेरक और स्वयंभू शक्तिका कार्य भी सतत ही जारी रहता है। यह तथ्य ध्यानमें रखकर मोक्षकी आशासे अभ्यास या अध्यास द्वारा प्राप्त अवस्थाका किसीको गलत महत्त्व नहीं मानना चाहिये।

परम्परागत ध्येयोंकी अपूर्णता

भक्ति, ज्ञान, योग आदि मार्गोंमें जो लोग यम-नियम, सदाचार वगैराके द्वारा अपनी अुन्नतिकी कोशिशमें रहते हैं, अुनके लिअे मनमें खूब आदर और सद्भाव होने पर भी जीवन-सम्बन्धी केवल परम्परागत और श्रद्धा-मान्य ध्येयके बारेमें अुपरोक्त विचार प्रकट करने पड़ते हैं। अिसमें शक नहीं कि चित्तकी शुद्धि करनेमें जो सफल हुअे होंगे, वे कभी भी आदरके पात्र हैं। मानव-जीवनको शुद्ध रखनेमें और समाजमें अिस प्रकारका वातावरण निर्माण करके अुसे बढ़ानेमें अुनका जितना अुपयोग होता हो अुतने अंशमें वे सचमुच धन्य हैं, अिसमें भी शक नहीं। परन्तु मानव-जीवनकी विशालता और पूर्णताका विचार करनेके बाद अैसा लगता है कि हम आज तक जिन ध्येयोंको श्रद्धापूर्वक मानते आये हैं, वे अब अपूर्ण साबित हो रहे हैं। अिसलिअे अिस दृष्टिसे अब सारी आध्यात्मिक भावनाओं और ध्येयोंका विचार करना जरूरी हो गया है। हमें देखना यह चाहिये कि अिन सारे मार्गों और साधनोंसे हममें मानव-सद्गुणोंकी वृद्धि होती है या नहीं। अुनमें से किसी भी कल्पना, भावना या साधनसे समाजमें असत्य या दम्भ पैदा होने या फैलनेकी गुंजाअिश रहती हो; अुनके कारण किसी भी भ्रामक कल्पनाको महत्त्व प्राप्त होता हो; समाजमें जड़ता, अन्धश्रद्धा, अकर्तृत्व और परावलम्बन बढ़ते हों, तो अिन सब बातोंमें हमें सुधार करना चाहिये।

दिव्य सामर्थ्यका भ्रम

कुछ लोगोंको किसी गूढ़ साधनसे अपनेमें परमेश्वरीय सामर्थ्य पैदा करके अुसके द्वारा अपना, दूसरोंका या समस्त जगतका कल्याण करनेकी महत्त्वाकांक्षा होती है। अिस महत्त्वाकांक्षाकी तहमें अिस तरहकी कल्पनायें होती हैं कि अीश्वर किसी विशेष साधन या क्रियासे सन्तुष्ट हो जाता है

और मनुष्यको दिव्य सामर्थ्य दे देता है या अुस साधन और क्रियासे मनुष्यमें ही अीश्वरीय शक्ति प्रगट हो जाती है। अिस किस्मकी महत्त्वाकांक्षासे प्रेरित होकर किसी खास तरहकी साधना करनेवाले साधक मिलते हैं। परन्तु अभी तक कहीं देखनेमें नहीं आया कि अुनमें से किसीको भी सिद्धि मिली है और अुनमें जगतका कल्याण करनेकी शक्ति आ गअी है। अिस प्रकारके साधकोंके पूर्वजीवनके अनुरूप अुनके पिछले जीवनको महत्त्व प्राप्त होता है। साधक पूर्वजीवनमें ही किसी विशेषताके कारण प्रख्यात रहा हो, तो अुसके साधकपनको महत्त्व मिल जाता है और अुसके प्रयत्नकी ओर बड़े-बड़े लोगोंका ध्यान लगा रहता है। परन्तु ज्यों-ज्यों अैसे साधकोंका समय साधनामें बीतता है और सिद्धिकी दृष्टिसे कुछ प्राप्त होनेकी अुनकी आशा नष्ट होती जाती है, त्यों-त्यों अुनकी साधना और जीवनको भिन्न रूप मिलने लगता है और फिर केवल साधनाके नाम पर ही अुनका जीवन चलने लगता है। सिद्धिकी आशामें अुनका बहुत समय निकल जाता है। अितने समयमें बाहरकी परिस्थिति, दुनियाकी हालत, लोकमानस, कल्पना, आदर्श आदिमें खूब परिवर्तन हो जाता है। साधकोंके चित्त पर अुसका अैसा असर पड़ता है कि अुनकी पहलेकी मन:स्थिति बदलने लगती है। सिद्धिकी दृष्टिसे कुछ भी प्राप्त न हुआ हो, तो भी बहुत समय तक जन-सम्पर्कसे — प्रवृत्तिसे — दूर रहनेके बाद वे समाजमें घुलमिल नहीं सकते। सामर्थ्यहीन और महत्त्व-हीन स्थितिमें अेकान्त छोड़कर अुनकी बाहर आनेकी अिच्छा नहीं होती। सच पूछा जाय तो अैसे समय अुनका कर्तव्य हो जाता है कि अपनी साधना, अनुभव, मन:स्थिति, प्रयत्नके अन्तमें मिली हुअी सफलता-असफलता — अिन सब बातोंको शास्त्रीय शोध और समाजके हितकी दृष्टिसे प्रकट कर दें। परन्तु भ्रम, प्रतिष्ठाके मोह या दम्भके कारण वे अैसी हिम्मत नहीं कर सकते। जैसे भक्ति, ज्ञान और योगमार्गके कितने ही साधक अपनी सफलता-असफलता कुछ न बताकर अपने ध्येयकी सिद्धि हो जानेका दम्भ करते हैं, अुसी तरह दिव्य सामर्थ्यके पीछे पड़े हुअे साधक भी सिद्धिके मामलेमें अपयशको प्रगट न करके दम्भ करने लगते हैं। जन-समुदायमें वे हिलमिल नहीं सकते और अेकान्त भी अुनसे सहन

नहीं होता। तब वे अैसी प्रथा शुरू करते हैं, जिससे लोग ही अुनके पास आने लगें। हमारे समाजमें शुरूसे ही खूब अन्धश्रद्धा रही है। अिस-लिअे भावुक लोग अुनके दर्शनोंके लिअे जाने लगते हैं। समय पाकर अुनके आसपास समुदाय बढ़ता जाता है और अिस तरह समाजमें भ्रम फैलने लगता है।

अैसे साधकोंको सिद्धिकी दृष्टिसे कुछ भी प्राप्त न हुआ हो, तो भी कुछ समयके अेकान्त और हमेशा सूक्ष्म विचार तथा निरीक्षणकी आदतके कारण अुनके विचारोंमें सहज ही सूक्ष्मता और मार्मिकता आ जाती है। यदि वे विद्वान हुअे तो अुनकी विचारशक्ति बढ़ जाती है। अिसलिअे वे विद्वत्तापूर्ण लेख लिख सकते हैं। गीता और अुपनिषदोंके वचनों पर वे अितने गूढ़ अर्थवाले लेख लिखते हैं कि शायद मूल गीता और अुपनिषद्कार भी अुन्हें समझ न सकेंगे। बल्कि अिसमें भी शंका है कि वे खुद भी अुनमें से कुछ समझ सकते हैं या नहीं। अैसे लेख पढ़कर बुद्धिमान और भावुक लोगोंकी श्रद्धा दुगुनी हो जाती है। लेखके अुस भागको वे दिव्य मानते हैं जो समझमें नहीं आता और समझते हैं कि यह अुनकी सिद्धिका प्रताप है। अैसे साधकोंके आसपास अनुयायी और भक्त लोग जमा हो जाते हैं। अुन्हें न कोअी दिव्य शक्ति प्राप्त हुअी होती है और न अपने अुद्धारका ही मार्ग मिला होता है, फिर भी वे धीरे-धीरे जगदुद्धारक बन जाते हैं। भक्त लोग अुनका महत्त्व बढ़ा देते हैं। अिनमें खुद अुनका महत्त्व भी बढ़ता है। सर्व-समर्पण, कृपा, प्रसाद, शक्ति-संचरण, साक्षात्कार और चमत्कारकी भाषा वहां शुरू हो जाती है। अैसे हरअेक साधकके भक्त अपनी भावुकताको पुष्ट करनेके लिअे अुस साधकको भगवान बना देते हैं और अुसके नाम पर अैसे काल्पनिक चमत्कार प्रसिद्ध करते हैं, जिनसे अुनके दिलमें आनन्द हो और अद्भुतता प्रतीत हो। ये भक्त मानते हैं कि बड़े-बड़े युद्ध, अुनमें होनेवाली हार-जीत, अलग-अलग देशोंकी राज्यक्रांतियां, प्रतापी राजनीतिक पुरुषोंकी मृत्यु वगैरा संसारकी तमाम महान घटनायें अुनके गुरुकी अिच्छा, आज्ञा और सामर्थ्यसे होती हैं। वे दुनियाको यह दिखाते हैं कि संसारके सारे अच्छे कामोंका कर्तृत्व अुनके गुरुका है। सारांश यह कि वे लोगोंमें

अैसी भावनाअें फैलानेकी कोशिश करते है कि अुनका गुरु ही अेक जगह बैठकर जगतका सूत्र-संचालन कर रहा है। अिन सब बातोंसे दुनियाका या किसीका भी अुद्धार नहीं होता; केवल अेक नया सम्प्रदाय ही निर्माण होता है। दुनियामें पहलेसे ही चले आ रहे भ्रम और दम्भमें वृद्धि होती है। किसीमें दिव्य तो क्या, थोड़ासा भी सामर्थ्य नहीं बढ़ता। भक्त कहलानेवालोंमें भी सच्ची श्रद्धा शायद ही होती है। परन्तु अपने जीवन और मनको आधार देनेके लिअे वे अेक प्रकारकी श्रद्धा मजबूत करनेकी कोशिश करते हैं। सम्प्रदायका महत्त्व बढ़ानेका प्रयत्न दोनों तरफसे जारी रहता है। परन्तु अिन सब कोशिशोंसे सार यही निकलता है कि जहां भ्रम है वहां दम्भ है, जहां दम्भ है वहां आडम्बर है और जहां आडम्बर है वहां शब्द-चातुर्य जरूरी होता है।

मनुष्यके मनमें कितनी ही गूढ़ शक्तियां हैं। अुन शक्तियोंका विकास हो और साथ ही सद्गुणोंकी वृद्धि हो, तो अिसमें शक नहीं कि मानव-जाति सुखी होगी। परन्तु जहां शक्तिके नाम पर भोलापन और दम्भ बढ़ते हों, वहां समाजकी अुन्नति होना संभव नहीं दीखता। हमारे यहां मानवताको महत्त्व नहीं दिया जाता। किसीमें भगवान बननेकी महत्त्वाकांक्षा होती है, तो किसीको भगवान बनाकर अुसकी आराधना करनेकी बहुजन-समाजमें रुचि होती है। अिस स्थितिके कारण हममें तत्त्वज्ञान और मनःशक्तिके शोधक और मानवताके अुपासक नहीं पाये जाते। अभी हममें सत्यके ज्ञानकी भूख नहीं जगी है, अिसलिअे साधक-दशामें बहुत समय बितानेवाले साधक भी अपना सच्चा अनुभव दुनियाके सामने पेश नहीं करते। अुलटे पुराने भ्रमोंको ही वे और दृढ़ करते हैं। श्रद्धाके अनुसार चलने पर कोअी अनुभव न आवे तो वैसा कहनेकी हिम्मत आये बिना सत्यकी अुपासना नहीं हो सकती। सिद्धार्थ गौतमने कोअी संकोच और भय रखे बिना अपने अनुभव दुनियाको साफ बता दिये। अुनकी तरह अगर हरअेक साधक अपने सच्चे अनुभव प्रगट करे, तो अिस विषयका हमारा अज्ञान दूर हो जायगा और हम सबकी सच्ची प्रगति होगी। भ्रम और दंभसे छूट जायंगे, ज्ञानका हमारा मार्ग सरल होगा। मानव-जाति सुखी होगी। अत्यंत दुःखके साथ कहना पड़ता है कि

संसारकी अंधश्रद्धा, वहम, अज्ञान, भ्रम, दम्भ और अिन सबके परिणाम-स्वरूप होनेवाले पातकों और अनर्थोंका कारण साधकोंकी सत्यके प्रति अवहेलना, विवेक और शोधकताका अभाव, तथा अधीरता, आलस्य, सुख-संबंधी लोलुपता और जनहितके प्रति लापरवाही ही है।

शुष्क वेदान्तका भ्रम

आध्यात्मिक विषयमें सबसे भ्रमात्मक और अनर्थकारी मार्ग है 'मैं ही ब्रह्म हूं' यह मानकर बिना साधनाके ही स्वयंसिद्ध बननेका। अिस मार्गमें कोअी साधन नहीं, विधि नहीं, निषेध नहीं, कष्ट नहीं, किसी भी किस्मकी जिम्मेदारी नहीं, कर्तव्य नहीं। यह अैसा मार्ग है जिसमें मैं ही 'आत्मा' या 'ब्रह्म' हूं, यह हमेशा मनको मनाते और भावना कराते रहनेके सिवा और कोअी साधन नहीं है। अिस मार्गमें कोअी भी अेक तत्त्वज्ञान स्वीकार करके और अुसीमें अपना तर्कवाद शामिल करके अुसके द्वारा साधक खुद ही साध्य बन जाता है। वह 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' अैसे किसी महावाक्यका आधारमात्र ले लेता है। "हम स्वयं और हमारे सिवा जो कुछ गोचर-अगोचर, कल्पनामें आनेवाला और न आनेवाला, स्थिर-अस्थिर, ज्ञात-अज्ञात है, वह सब अेक ही महान तत्त्वका आभासमात्र है। किसी भी बाहरी परिवर्तनसे, स्थित्यंतरसे, मूल तत्त्वमें कोअी फेरबदल नहीं होता। वह विकार नहीं जानता, प्रकार नहीं जानता। अुसीसे विश्वका सतत आभास होता रहता है। अुसमें मायाके लिअे कोअी स्थान ही नहीं है। अुसी तत्त्वका आविर्भाव सर्वत्र भासित होता है। वहां माया आयेगी कहांसे और रहेगी कहां? अज्ञानके निवा-रणकी यहां जरूरत नहीं। विशेष ज्ञान या ज्ञानस्थितिकी आवश्यकता नहीं। वहां कुछ हुआ ही नहीं, अिसलिअे कर्म या कार्यका आग्रह नहीं। कोअी कर्ता नहीं। भूत, वर्तमान या भविष्यका भेद नहीं। हरअेक व्यक्ति, हरअेक वस्तु, अणुरेणु भी आविर्भावकी दृष्टिसे अपने-अपने ढंगसे पूर्ण ही है। वह अपने अुचित स्थान पर, अुचित स्थितिमें और अुचित गतिमें है। मनुष्य कर्म करे तो भी ठीक, न करे तो भी ठीक। आविर्भावकी दृष्टिसे अुन्नति-अवनति, नीति-अनीति आदि केवल कल्पनायें हैं। माया न होनेसे यहां भ्रांति नहीं। बन्धन न होनेसे मोक्ष नहीं। जहां सब कुछ

आविर्भाव ही है, वहां किसे बंधन और किसे मोक्ष कहा जाय? आविर्भावका ज्ञान होना या न होना, दोनों आविर्भावकी ही स्थितियां हैं, अिसलिअे दोनों अेक ही हैं। शुद्ध, बुद्ध, नित्य सनातन अेक ही तत्त्व अनेक रूपसे सजाया हुआ है। अुसका भान रहे और चित्तकी शान्ति बनी रहे, अिसलिअे महावाक्यका स्मरण रखना चाहिये। परन्तु न रखें तो भी मूलभूत तत्त्वमें या अुसके आविर्भावमें अन्तर नहीं पड़ता।" अिस तत्त्वज्ञानमें सद्‌गुणोंका आग्रह न होनेसे, जैसे तैसे जीवनको पूर्ण माननेके लिअे अिसी प्रकारकी विचारसरणी प्रस्थापित करनेमें अुनकी तर्कशक्ति काम करती रहती है। बैल, घोड़ा, पेड़, पत्ते, फूल, घासका तिनका जो कुछ अुनकी नजरमें आये, अुसी पर अपनी तार्किकता लगाकर वे अपना तत्त्वज्ञान और अपना मत दृढ़ करते रहते हैं। ये प्राणी, ये वस्तुअें जैसी हैं अुससे अधिक अच्छी क्यों नहीं हैं, यह प्रश्न या शंका अज्ञान है। कोअी चीज बाहरसे चाहे जैसी दीखती हो, तो भी वह अुसका नाशवान स्वरूप है। सब चीजोंके बाह्य आविर्भाव क्षण-क्षणमें बदलते रहते हैं और वैसे ही बदलते रहेंगे। अिसलिअे विश्वकी सब चीजोंका अिस क्षण जो स्वरूप होना चाहिये, जिस स्थान पर अुन्हें होना चाहिये, अुसी स्वरूप और अुसी स्थानमें वे हैं। मैं भी अिस देहके आविर्भावके रूपमें जहां जैसा होना चाहिये वहीं और वैसा ही हूं। यह सृष्टि और मैं — सब यथातथ हैं। अिसीमें समाधान है। मैं अैसा क्यों और वैसा क्यों नहीं, यह विचार ही अज्ञान, दु:ख और असमाधानका कारण है। अिसे चित्तमें न अुठने देना ही सच्चा साधन है; और यह न अुठे यही सच्ची ज्ञानावस्था है। यह घासका तिनका कभी कहता है कि मैं अपूर्ण हूं? तो फिर मनुष्य होकर भी मुझे अपने आपको अपूर्ण क्यों समझना चाहिये? अुपनिषद्‌में कहा है:

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

(यह पूर्ण है, वह पूर्ण है, पूर्णमें से पूर्ण निकाल लेने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है।) अिस श्लोकका रहस्य जब तक चित्त पर पूरी तरह जम नहीं जाता, तभी तक पूर्ण-अपूर्ण, ज्ञान-अज्ञान, अुन्नति-अवनति,

सद्‌गुण-दुर्गुण, शुद्धि-अशुद्धिके भेद रहेंगे। यह रहस्य मालूम हो जानेके बाद भेद किसका और अुसे मानेगा कौन? सत्य ज्ञान, सत्य सिद्धान्त, 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' है।

अैसे साधक अपनी मन:स्थितिको अैसी बनाते रहते हैं। अुन्हें अिस स्थितिके कारण अेक प्रकारका सन्तोष मिलता रहता है, क्योंकि अिस स्थितिमें अुन्हें अैसा लगता है कि सब कर्तव्योंसे, सारी जिम्मेदारियोंसे बिना कुछ किये ही छूट गये। अिस स्थितिमें मरजी हो तो अुपाधि ली जाय, न हो तो न ली जाय; प्रिय लगे अुस विषयमें मनको जाने दिया जाय; रम्य और आनन्दप्रद लगे सो किया जाय; अिस स्थितिमें मनको कभी अैसा नहीं महसूस होता कि कोअी भी बात, कोअी भी काम आग्रहपूर्वक पूरा करना चाहिये। अैसी किसी झंझटमें नहीं पड़ना चाहिये, जिससे चित्तका स्वास्थ्य जाता रहे। अैसी जीवन-पद्धति रखनेके बाद अुसमें दु:ख और चिन्ताकी गुंजाअिश नहीं रहती। अिसलिअे यह माननेका भ्रम स्वभावत: हो सकता है कि यह ज्ञानकी परमावस्था है। हमारे देशमें अिस प्रकारकी विचारसरणीवाले पंथ मौजूद हैं। अुनमें कोअी बुद्धिमान होता ही नहीं, अैसी बात नहीं है। परन्तु आम तौर पर आलसी, जड़बुद्धि, पुरुषार्थहीन और अपने भीतरका कोअी भी दोष दूर न करके किसी प्रकारकी आध्यात्मिक विशेषता प्राप्त करनेकी महत्त्वाकांक्षा रखनेवाले ही अधिक होते हैं। अिस मार्गमें अुन्हें निरुपाधिकता लगती है और प्रतिष्ठाकी महत्त्वाकांक्षाकी भी अंशत: तृप्ति होती है।

जीवन-कर्तव्य

परन्तु अिस विचारसरणीसे हर तरहके दोषको आश्रय मिलता है और अुसके पोषणकी भी अिसमें भरपूर गुंजाअिश रहती है। अिसलिअे कहना पड़ता है कि जिस विचारसरणीसे हम अपनी मानवता, अुसके फर्ज और अपना ध्येय भूल जाते हैं, वह तत्त्वज्ञान नहीं, परन्तु बड़ा भारी भ्रम है। जिससे चित्तकी शुद्धि और सद्‌गुणोंका संवर्धन न सध सके, जिसमें अपने-परायेका भाव प्रत्यक्ष आचरणमें कम करनेकी शक्ति नहीं, जिसमें विवेक, नम्रता और सेवावृत्ति जैसे सद्‌गुणोंका महत्त्व नहीं, जिसमें कर्तृत्व और

पुरुषार्थकी वृद्धिकी गुंजाअिश नहीं, वह विचारसरणी या तत्त्वज्ञान या साधन कितना ही दिव्य, आकर्षक या रम्य लगे, तो भी मानव-जीवनको सफल करनेका अुसमें सामर्थ्य नहीं है। मानव-मनमें अनेक प्रकारके मोह प्रकट या सुप्त रूपमें निवास करते हैं। अंतर्मुख हुअे बिना, शुद्ध विवेक सूझे बिना हम अपना मोह जान नहीं सकते। मानव-शरीरमें रहनेवाली सब शक्तियोंकी शुद्धि और वृद्धि करके अपनी पूर्णता प्राप्त करना जीवनका हेतु है। चित्तको शुद्ध करते करते और सद्‌गुणोंकी वृद्धि करते-करते जब तक हमारा अहंकार नष्ट न हो जाय और वे सद्‌गुण ही हमारा स्वभाव न बन जायं, तब तक हमें आगे बढ़ते रहना है। अैसी कल्पनामें न रह-कर कि हम अकेले ही किसी श्रेष्ठ भूमिका पर आरूढ़ हैं, हमें अिस प्रकारका कर्मयोग सिद्ध करना चाहिये, जिससे हम और हमारे आस-पासका मानव-समाज सतत अुन्नत होता रहे। यह कर्मयोग ही मानवधर्म है। अिस कर्मयोगका आचरण करते हुअे हम सब अपनी अुन्नति करें, यही हमारा जीवन-कर्तव्य है।

११

साध्य-साधन विवेक — २

निर्विकारताका भ्रम

मानवताके मार्गमें जैसे धर्मविरुद्ध भोग, लालसा और व्यक्तिगत स्वार्थ बाधक हैं, अुसी तरह वैराग्य और जितेन्द्रियताकी गलत कल्पनायें भी बाधक हैं। सब अिन्द्रियोंके बारेमें मनुष्यको स्वाधीनता प्राप्त करनी है, अिसलिअे हरअेक पहलूका विचार करके अुसके सम्बन्धमें अपने निर्णय विवेकपूर्वक करने चाहिये। खास तौर पर ब्रह्मचर्य-सम्बन्धी हमारे आदर्शमें केवल काल्पनिकता हो तो अुसके अनिष्ट परिणाम होनेमें जरा भी देर नहीं लगती। कारण, अिस बारेमें भूलका पर्यवसान अन्तत: दंभमें होता है। और अिस विषयमें भ्रम और दम्भकी जितनी वृद्धि हो सकती है, अुतनी दूसरे विषयों-सम्बन्धी गलत मान्यताओंके कारण नहीं हो सकती।

ब्रह्मचर्य और जितेन्द्रियत्व सम्बन्धी गलत विचारसरणीसे संपूर्ण निर्विकारता यानी अतिशयताका काल्पनिक ध्येय निर्माण हुआ है। कुछ साधक अिस प्रकारकी कल्पनामें फंसकर अुसे साधनेके पीछे लग जाते हैं। अुनका यह विश्वास होता है कि चूंकि आत्मा निर्विकार है और हमीं आत्मा हैं, अिसलिअे सब तरफसे निर्विकारताका अनुभव हुअे बिना हम मोक्षके अधिकारी नहीं होंगे। अिस विश्वासके कारण वे गलत आदर्शों और साधनोंमें फंस जाते हैं। अुन्हें अिस विषयमें अपने आदर्श तय करनेसे पहले अिस बातका विचार करना चाहिये कि मनुष्यमें काम, क्रोध और लोभ क्या चीजें हैं? ये विकृतियां ही हैं या प्रकृति-स्वभाव हैं? अिनके द्वारा मानवशक्तिका प्रगटीकरण होता है या केवल ह्रास ही होता है? अिन शक्तियोंको अुचित मार्ग पर लगा दिया जाय और अुनका अुचित कार्यमें अुपयोग किया जाय, तो मनुष्य अुन्नत हो सकेगा या नहीं? अुचित विचार और अुचित साधनसे अिन शक्तियोंकी शुद्धि की जा सकती है या नहीं? हम जिसे विकार कहते हैं अुसके पीछे निसर्गका कोअी हेतु है या नहीं? यदि है तो क्या है? अुसे मानव-जीवनके लिअे अुपयोगी और लाभदायक बनाया जा सकता है या नहीं? विकारोंको पूर्णतया नष्ट करनेकी जरूरत है या अुन्हें क्षीण और शुद्ध करके अपने अधीन रखनेकी जरूरत है? अिनमें से कौनसी बात मनुष्यके लिअे प्रयत्नसाध्य है? अैसे प्रश्नों पर गहरा विचार करना चाहिये।

अैसा लगता है कि हम पर विकारोंका प्रभाव कायम हो जाने पर अुनकी धुनमें चाहे जैसा आचरण करनेके कारण होनेवाले अनर्थ और अुनके लिअे होनेवाले पश्चात्तापकी प्रतिक्रिया-स्वरूप जो वैराग्य अुत्पन्न हुआ, अुसमें से हम किसी समय निर्विकारताकी अतिशयताके ध्येय पर आये हैं। अिस बारेमें अनुभवात्मक दृष्टिसे बार-बार विचार करनेकी जरूरत है। फिर भी परम्परागत श्रद्धाके कारण और साथ ही शोधकताके अभावके कारण हम अुस दिशामें सोचते नहीं। अिसलिअे अेक बार मान लिये गये गलत आदर्शोंको हम ज्योंके त्यों मानते आये हैं। संयम, ब्रह्मचर्य और जितेन्द्रियताके पीछे पड़े हुअे प्रामाणिक साधकको अुचित प्रयत्नसे अिस हद तक सफलता प्राप्त हो सकती है कि अुसके विकारोंका बल क्षीण

हो जाय। अुस स्थितिमें भी वह यम-नियम और सदाचारका सतत पालन करके अपना अभ्यास जारी रखे, तो अुसके विकारोंका अवशिष्ट संस्कार भी अत्यन्त क्षीण हो जाता है और अुसका चित्त सहज ही अुसके अधीन रह सकता है। अैसी स्थितिमें भी किसी साधकके चित्तमें किसी अंत-र्बाह्य कारणसे विकारोंका आवर्त अुठे, तो भी अुसे घबराये बिना संयम-शील रहकर चित्तको शांत करना चाहिये। अिस प्रकार वह अपना निश्चय और प्रयत्न जारी रखे, तो अुसके जीवनमें स्वाभाविकता आने लगती है। जीवनमें शुद्ध व्यवहार और अुन्नतिके लिअे अितनी निर्वि-कारता जरूरी है और वह काफी है। परंतु अिससे आगे बढ़कर जो साधक जान-बूझकर प्रतिकूल संयोग निर्माण करते हैं और अुनके द्वारा अपनी निर्विकारताकी परीक्षा और कसौटी करनेके भ्रममें पड़ते हैं, वे यम-नियम, सदाचार और नीतिके पालनमें शिथिल हो जाते हैं और अिसका परिणाम आगे जाकर स्वयं अुनके लिअे और दूसरोंके लिअे भी अनर्थ-कारी ही होता है। अिस प्रकार अतिशयताके पीछे पड़े हुअे साधक अपने साधनमें फंस जाते हैं। फंसनेके बाद अधिकाधिक मोहमें पड़कर दम्भका आश्रय लेते हैं। अिसीमें से कभी-कभी वाममार्गी सम्प्रदाय पैदा होते हैं। अिसमें शक नहीं कि अिन सबका कारण ध्येय-सम्बन्धी हमारी गलत मान्यतायें हैं।

प्रकृतिगत तत्त्वोंकी शुद्धि

मनुष्य जिन मूलभूत तत्त्वोंसे बना है, जिस प्रकृति-धर्मके अनुसार अुसके शरीर, मन, बुद्धि और प्राण बने हुअे हैं और जिस धर्मके अनुसार अुसका पोषण-संवर्धन होता है, वे तत्त्व और वे धर्म किसी न किसी रूपमें अुसकी प्रकृतिमें हमेशा होंगे ही। जो वृत्तियां, जो वासनायें, जो विकार मनुष्यके असंख्य पूर्वजोंसे चले आये हैं और अुसकी अुत्पत्तिका कारण बने हैं, वे अेक न अेक रूपमें अुसमें अवश्य दिखाअी देते हैं। यह समझना भ्रम है कि माता-पिताकी जो वृत्तियां हमारे जन्मका कारण बनी हैं, वे हमारे खूनमें हमेशाके लिअे मिट जायंगी। यह समझना तो महाभ्रम है कि अैसा हो चुका है। अिस भ्रमसे ही दम्भ पैदा होता है। भ्रमका कारण मोक्ष-सम्बन्धी महत्त्वाकांक्षा और दम्भका कारण क्षुद्र

अभिलाषा और अहंकार है। हमारे पूर्वजोंकी तरफसे हमें जिन तत्त्वों और वृत्तियोंका अुत्तराधिकार मिला है, अुनमें से किसीका भी हम संपूर्ण नाश नहीं कर सकते। अुनमें से जो वृत्तियां हमें अनिष्ट लगती हैं, अुन्हें हम ज्यादासे ज्यादा क्षीण कर सकते हैं, शुद्ध कर सकते हैं। चित्त-वृत्तियोंका हम थोड़े समय तक लय कर सकते हैं, परन्तु अुनका संपूर्ण नाश कभी नहीं कर सकते। सृष्टिका यह धर्म नहीं, प्रकृतिका यह नियम नहीं। शुद्ध विवेक, अपने और दूसरोंके अनुभवोंका सूक्ष्म निरीक्षण, परीक्षण, विश्लेषण, वर्गीकरण किये बिना ये बातें हमारे ध्यानमें नहीं आयेंगी।

मानव-मनके शोधनकी जरूरत

निर्विकारताके गलत आदर्श और मोक्षकी अभिलाषाके कारण मानव-मनका जैसा सूक्ष्म संशोधन, निरीक्षण, पृथक्करण आदि होना चाहिये वैसा करनेकी ओर अभी तक हमारे मनकी प्रवृत्ति नहीं हुअी। अिसलिअे निर्विकार या जितेन्द्रिय बननेका प्रयत्न करनेवालोंके सच्चे अनुभवों, अुनके रास्तेमें आये हुअे विघ्नों तथा अुन्हें प्राप्त सफलता-असफलताका हमें कुछ पता नहीं चलता। भ्रम, अज्ञान, दम्भ, शोधकपनका अभाव अित्यादि कारणोंसे अिस विषयका शास्त्र तैयार नहीं हो सकता। अविवाहित अध्यात्मवादी ब्रह्मचारी माना जाता है। और अुसी परसे यह समझकर कि अुसे आत्मप्राप्ति या ब्रह्मप्राप्ति हो गअी है, लोग अुसे मोक्षका अधिकारी मानते हैं। वह भी अैसा ही दिखाता है कि वह निर्विकार है। परन्तु अिससे अुसके सम्बन्धमें निर्विकारताका भ्रम कायम रहता है और दम्भकी गुंजाअिश रहती है। जब तक अपनी और लोगोंकी नीतिमत्ताके बारेमें हमारे चित्तमें सच्ची चिन्ता पैदा न होगी और शुद्ध विवेक करना हम सीख न लेंगे, तब तक वैराग्य, निर्विकारता, ब्रह्मचर्य और जितेन्द्रियत्वके विषयकी हमारी गलत कल्पनायें ज्योंकी त्यों रहेंगी। भ्रम और दम्भ वैसे ही बने रहेंगे। अगर हमें यह लगता हो कि यह स्थिति बदलनी ही चाहिये, तो जीवनके ध्येयके बारेमें हमें परम्परागत दृष्टि छोड़कर विचार करना चाहिये। अैसा ध्येय विवेकसे परखा हुआ और न्याय्य तथा धर्म्य होना चाहिये। वह अितना अुदात्त

होना चाहिये कि अुसकी तरफ जाने पर मानवीय सद्गुणोंका सहज अुत्कर्ष हो। अुसके बारेमें यह विश्वास होना चाहिये कि वह अपना और मानव-समाजका सदा कल्याण ही करेगा। अुसका साधन जनसमाजकी नीति-मत्ताकी भावनाके लिअे किसी भी प्रकारसे बाधक या विघातक न होना चाहिये। बल्कि अुसमें मौजूदा नीतिमत्ताको अधिकाधिक शुद्ध करते रहनेका स्वाभाविक सामर्थ्य होना चाहिये। साधनमें कठिनता हो, मर्यादा हो और नियमन हो तो भी कोअी आपत्ति नहीं, परन्तु अुसमें असभ्यता, अुच्छृंखलता या अशुद्धता न होनी चाहिये। अुसके कारण आलस्य, जड़ता और अहंकार पैदा न होने चाहिये। अुनमें अैसी सरलता होनी चाहिये कि कोअी भी मनुष्य अपनी पात्रताके अनुसार साधन स्वीकार करके ध्येयकी दिशामें प्रगति कर सके। अिस प्रकार ध्येय और साधनके बारेमें स्पष्टता और शुद्धता हो, तो अुसमें भ्रम और दम्भ पैदा होने या बढ़नेका कारण ही नहीं रहता।

मोक्षसिद्धिके बारेमें शंका

मोक्ष-सम्बन्धी कल्पनाका भी विचार करें, तो यह मालूम होता है कि मोक्षसिद्धिको माननेवाले जो अनेक सम्प्रदाय हैं, अुन सबके तात्त्विक विचारों और साधनोंमें अेकवाक्यता नहीं है। अेक कहता है कि सत्य, ब्रह्मचर्यादि पांच महाव्रतोंके निरपवाद पालनके बिना मोक्ष नहीं मिलता। दूसरा निश्चित रूपमें यह मानता है कि निष्काम बुद्धिसे हिंसा करने या अलिप्त होकर सारे भोग भोगते रहने पर भी मोक्षप्राप्तिमें बाधा नहीं पड़ती। कोअी कहता है कि कर्मक्षयके बिना जन्म-मरण नहीं टलते। कोअी दूसरा यह प्रतिपादन करता है कि संसारमें कमलपत्रवत् रहें, तो मोक्षमें कोअी रुकावट नहीं आती। अेक मोक्षके लिअे वैराग्यकी पराकाष्ठा करता है, तो दूसरा यह मानता है कि मोक्ष वाममार्ग द्वारा ही मिलेगा। अेक नैष्ठिक ब्रह्मचर्यको मोक्षप्राप्तिके साधनके रूपमें अत्यन्त महत्त्व देता है, तो दूसरा जीवनभर परिपूर्ण अैश्वर्य और अनेक स्त्री-पुत्रोंके परिवारमें रहकर मोक्षका विश्वास रखता है। अिन सब बातोंसे यह शंका होती है कि मोक्ष किसी खास तरहके रहन-सहन या आचरणसे मरनेके बाद प्राप्त होनेवाली निश्चित अवस्था न होकर

अपनी-अपनी परम्परागत श्रद्धासे मानी हुअी कल्पना तो नहीं है? और, मरनेके बाद किसे मोक्ष प्राप्त हुआ या किसकी क्या गति हुअी, यह जाननेका कोअी साधन या ज्ञान अुपलब्ध न होने पर भी हर सम्प्रदायवाला अपनी-अपनी साधन-प्रणालीसे मोक्षप्राप्तिका विश्वास रखता है, अिसका कारण क्या अुसकी मानी हुअी कल्पनाके प्रति अुसकी श्रद्धा नहीं है? अिन सब शंकाओं पर हमें विचार करना चाहिये। और अपनी मान्यता, ध्येय और साधनमें जो भी वांछनीय परिवर्तन किये जा सकें, कर लेने चाहिये। केवल अपनी कल्पना या अनुभवमें मग्न रहनेसे यह बात सिद्ध नहीं होगी। हमें अनुभवको जाग्रत रखकर, तटस्थ होकर और शोधक बनकर अुसकी जांचका कार्य करना चाहिये। वृत्ति, कल्पना, तर्क, अनुमान, अनुभव आदि सारे भेद हमें जानने चाहिये। जो सत्यकी खोज करना चाहते हैं, धर्ममय जीवनका आग्रह रखनेवाले हैं, अुनका काम आनन्दके अुपासक बनने मात्रसे नहीं चलेगा। साधनके अन्तमें होनेवाले अनुभवमें या अनुभवके आनन्दमें ही जो लीन हो जाता है, अुसके द्वारा सत्य-शोधन नहीं हो सकता। अिसलिअे हमें अिस विषयके शोधक बनना चाहिये।

आस्तिकता और नास्तिकताकी व्याख्यायें

धन, विद्वत्ता, कीर्ति, स्त्री-पुत्र आदि परिवारके द्वारा सुखी होनेके अभिलाषियोंको हम अज्ञानी और मोही मानते हैं। अलग अलग अिन्द्रियों द्वारा सुखानुभव करते रहनेसे जीवन कृतार्थ होगा, अैसा माननेवालोंको हम विषय-वासनाओंके गुलाम मानते हैं। हम यह समझते हैं कि सत्ताकी मददसे सारे सुख अपने हाथमें रखनेकी अभिलाषा या महत्त्वाकांक्षा रखनेवाले सत्ताके मदमें हैं। परन्तु अगर हम यह कहें कि अीश्वर-दर्शन, अीश्वर-प्राप्ति, आत्म-दर्शन, निर्विकार अवस्था आदिके पीछे लगे हुअे लोग परम्पराके कारण या पूर्ण विवेक न करनेके कारण जीवनका ध्येय निश्चित करनेमें भूल करते हैं, तो अिसे लोग मंजूर नहीं करेंगे। अिन सब ध्येयोंमें कहां और किस तरह गलत खयाल घर किये हुअे हैं, अिसकी हम कभी जांच नहीं करते। क्योंकि ये ध्येय और जिसके लिअे ये ध्येय धारण किये जाते हैं वह मोक्ष — सबके प्रति

हमारे मनमें अत्यन्त श्रद्धा होती है। अिसलिअे अुनके बारेमें शंका करनेमें किसीको नास्तिकता लगती है, किसीको श्रद्धाहीनता लगती है, तो किसीको अपनी दुर्गतिका डर लगता है। परन्तु हमें विश्वास रखना चाहिये कि जीवन-सम्बन्धी हमारे माने हुअे ध्येयोंकी जांच कर लेनेमें अनिष्टका कोअी डर नहीं है। ज्ञान और विवेकका जीवनमें बहुत ही महत्त्व है। ध्येयकी जांच करनेसे हमारे ज्ञानमें वृद्धि होती हो, गलत धारणायें या मान्यतायें ध्यानमें आती हों, तो अिसमें दुर्गतिकी संभावनाका डर बेकार है। जब तक हम चित्तशुद्धिको महत्त्व देते हैं; विवेक, नम्रता, क्षमा, दया, संयम आदि गुणोंके आराधक हैं; जब तक अीश्वर-निष्ठा हमारे हृदयमें जाग्रत है; और सबसे महत्त्वकी बात तो यह कि जब तक हम मानवताके अुपासक हैं, तब तक हमें किसी भी अनिष्टका डर नहीं है और न नास्तिकताकी शंका रखनेका ही कोअी कारण है। नास्तिक वह है जो शरीरको ही सर्वस्व मानता है और जो अुसके सुखके लिअे दुष्टता, क्रूरता, अन्याय या किसी भी नीच कामको करनेमें जरा भी नहीं हिचकता। जिसे जीवनकी अपेक्षा जड़का मूल्य अधिक लगता है वह नास्तिक है। फिर भले ही वह किसी धर्मग्रंथको माननेवाला हो, अीश्वर-पूजन करता हो या नहीं। आस्तिकता-नास्तिकताका अिसके साथ कोअी सम्बन्ध नहीं है। जो दूसरेका दुःख नहीं जानता; विवेक, नम्रता, दया, सेवावृत्ति आदि गुण जिसके हृदयमें नहीं; दूसरेका सुख देखकर जिसे संतोष नहीं होता; अुलटे मत्सरसे जिसका हृदय जलने लगता है, वही दरअसल नास्तिक है। मानवताकी दृष्टिसे नास्तिकताकी यह व्याख्या है। अिस पर विचार करके सर्वोच्च और पवित्र माने हुअे हमारे ध्येयोंकी जांच करना चाहिये। अुन्हें शुद्ध, अुदात्त और सत्यपूर्ण बनानेमें हमारा अकल्याण नहीं, परन्तु निश्चित रूपमें कल्याण ही है।

मानव-धर्म

हमें अपना आदर्श और आजका धर्म निश्चित करते आना चाहिये। अिसके लिअे हमें मानव-जातिका अितिहास, मानव-जातिकी आजकी स्थिति और मनुष्यका मानस — अिन सबका विचार करना चाहिये। मनुष्यमें रहनेवाली तमाम शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक शक्तियां; व्यक्तिगत, कौटु-

म्बिक, सामाजिक, धार्मिक या राष्ट्रीय हेतुसे अुन-अुन क्षेत्रोंमें होनेवाला अुन सबका अुपयोग और अुसके परिणाम; मनुष्यके सुख-दुःख, अुसकी आशायें, आकांक्षायें और अभिलाषायें; मनुष्य-मनुष्यके बीचका और अन्तमें बड़े-बड़े मानव-समूहोंके बीचका सहयोग और संघर्ष वगैरा अनेक बातोंको ध्यानमें रखकर मनुष्यमात्रका ध्येय क्या होना चाहिये, अिसका विचार करना हमें आना चाहिये। किस ध्येय और साधनसे मनुष्य-जातिका दुःख कम होगा और अुसे स्थायी सुखकी ओर — कमसे कम लम्बे समय तक टिके रहनेवाले सुखकी ओर — ले जाया जा सकेगा, मनुष्यमात्रकी शक्तिका यथायोग्य विकास होता रहेगा, अुसकी वृद्धिके साथ साथ शुद्धि भी की जा सकेगी; अपनी अुचित जरूरतें अीमानदारीसे पूरी करनेके लिअे हरअेकको अुचित साधन और अवसर मिलते रहेंगे; सबको परस्पर अुन्नति करनेवाला तथा समाधान और प्रसन्नता देनेवाला सहयोग और सहवास मिलता रहेगा; अेक-दूसरेके साथका संघर्ष कम होगा — यह सब हमें ढूंढ़ निकालना चाहिये। आज मानव-समाजको अिस प्रकारकी परिस्थितिकी और अुसे निर्माण कर सकनेवाली योजनाकी जरूरत है। वह योजना ही मानवधर्म है। अुस मानवधर्मका आचरण करनेके लिअे ही हमारा जन्म है। मनुष्यकी शक्तियोंकी वृद्धि और शुद्धि मानवधर्मसे ही होगी। मनुष्यमात्रमें रहनेवाली संघर्ष, द्वेष, वैर आदि दुर्भावनायें नष्ट होकर अुनके स्थान पर सामूहिक प्रेम, सामूहिक कल्याण, सामूहिक अुन्नति वगैरा सद्भावनायें जाग्रत होंगी और अुनका विकास अिस मानवधर्मसे ही हो सकेगा। अिस धर्मका अनुसरण करनेसे ही मनुष्य व्यक्तिगत सुख और अुत्कर्षकी संकुचित कल्पनासे बाहर निकलकर हरअेक बातका व्यापक रूपमें — सामूहिक कल्याणकी दृष्टिसे — विचार करना सीखेगा। मनुष्यमें रहनेवाली विविध शक्ति-बुद्धिका, सद्भावनाओंका और मानव-जीवनके ध्येयका अिस दृष्टिसे विचार करने पर प्रचलित भक्ति, ज्ञान, योग आदि मार्गों और साधनोंसे प्राप्त होनेवाले व्यक्ति-गत लाभ संकुचित और काल्पनिक मालूम होते हैं।

दुःखको टालने और सुख पानेके दीर्घकालीन प्रयत्नसे मनुष्यको पता लगा कि वह सर्वथा दुःखरहित सुख अिस लोकमें या अिस जन्ममें प्राप्त नहीं कर सकता। अिसके लिअे अुसने स्वर्ग या दूसरे लोकोंकी कल्पना की। लेकिन अुससे भी मनुष्यको सन्तोष नहीं हुआ। अिसलिअे वह अिस निर्णय पर पहुंचा कि यदि दुःख नहीं चाहिये, तो मनुष्यको सुख भी छोड़ना चाहिये। यदि सुख न छोड़ा जा सकता हो, तो दुःखको स्वीकार करना ही चाहिये। अैसा लगता है कि अिस प्रकार अपने अुत्तरोत्तर बढ़नेवाले अनुभव परसे मनुष्य अपने निर्णयोंको बदलते-बदलते जन्म-मरणसे मुक्त होनेकी कल्पना तक पहुंचा होगा। कुछ ज्ञानी पुरुषोंने सुख-दुःखको समान माननेका अुपदेश किया है। अुसका आशय यह है कि मनुष्यको केवल वैयक्तिक सुख-दुःखका विचार न करके अपने कर्तव्यका, धर्मका विचार करना चाहिये। व्यक्तिगत सुख-दुःखके हेतुसे ही मनुष्य आचरण करता रहे, तो वह सबके लिअे कल्याणप्रद धर्मका पालन नहीं कर सकेगा। अितना ही नहीं, अन्तमें व्यक्तिगत मानसिक संतोष भी अुसे प्राप्त नहीं होगा। अिसलिअे सुख-दुःखको समान मानना अुसे सीखना चाहिये। अुसका रहस्य ध्यानमें रखकर मनुष्यको तात्कालिक और व्यक्तिगत सुख-दुःखको महत्त्व न देते हुअे सामूहिक सुख-दुःखका विचार करना चाहिये था। चित्तकी शुद्धि और सद्‌गुणोंकी वृद्धिका आग्रह रखकर मानवता प्राप्त करनेका विचार और प्रयत्न करना चाहिये था। सुख-दुःखकी संकुचित कल्पनायें छोड़कर अुसे आत्मीयताकी व्यापक कल्पना धारण करनी चाहिये थी। परन्तु अैसा न करके अुसने अुलटे अपने ही जन्म-मरणसे मुक्त होकर सुख-दुःखसे छूटनेका प्रयत्न जारी रखा। अिस जन्मके मनुष्यत्वका भान नष्ट किये बिना जन्म-मरण नहीं मिटेगा, यह मानकर मनुष्यने अीश्वर-विषयक कल्पनाके साथ तद्रूप होनेका प्रयत्न किया और हम अीश्वरके साथ समरस हो गये अैसा मान लिया। हम आत्मरूप, सत्-चित्-आनन्द स्वरूप हैं, अैसा निश्चय कर लिया। चित्तका लय करके मनुष्यपनका भान भुला दिया। यह धारणा रखकर कि हम ही अनन्त ब्रह्माण्डमें — विश्वमें

मनुष्यत्व ही हमारी स्थायी अवस्था है

—व्याप रहे हैं, अैसा मान लिया कि हम ही ब्रह्मस्वरूप हैं। अपने मनुष्यत्वका विचार छोड़कर अपने बारेमें दूसरी बड़ी-बड़ी विशाल और दिव्य कल्पनायें करके अुन्हें चित्त पर जमानेके लिअे तरह तरहकी कोशिशें कीं। परन्तु अिनमें से अेक भी प्रयत्न द्वारा वह अपने मूल मनुष्यत्वको नहीं भुला सका। अिस विषयमें अुसे अभी तक जरा भी सफलता नहीं मिली। अिसलिअे मानवता ही हमारी सच्ची, स्थायी और कभी न छोड़ी या भुलाअी जा सकनेवाली अवस्था है। अिसलिअे अुसी मानवताको पूर्णता तक ले जानेका प्रयत्न करना हमारा कर्तव्य है और अुसमें सफलता प्राप्त करना ही मानव-जन्मका ध्येय है। अिसमें किसी भी तरहकी केवल मानी हुअी कल्पना नहीं है। अिसमें मरनेके बाद प्राप्त होनेवाले ध्येयकी बात नहीं है। अिसमें किसी तरहका भ्रम भी नहीं है। अिसलिअे अिसमें दम्भके लिअे भी स्थान नहीं, गलतफहमीकी भी गुंजाअिश नहीं। अपनी शक्ति-बुद्धि और मानसिक भावनाओंका अुत्कर्ष करते करते, चित्तकी शुद्धि करते-करते और सद्‌गुणोंकी वृद्धि करते-करते मानवताका विकास करना ही हमारा जीवन-कार्य है।

अिस प्रयत्नमें मनुष्य दुःखसे सर्वथा न बच सके, तो भी निराश होनेका कोअी कारण नहीं। अितनेसे वह मनुष्यतासे ही अूब जाय तो काम नहीं चल सकता। विचार करना चाहिये कि हम स्वयं अज्ञान, मोह, लालच, क्षणिक और क्षुद्र सुखकी भ्रांति, और अपने दोषों तथा दुर्गुणोंके कारण कितने दुःख निर्माण करते हैं। अिसी तरह अिसका भी विचार करना चाहिये कि हमारे जैसी मानसिक स्थितिवाले समाजकी तरफसे कितने दुःख निर्माण होते हैं। हमारे और दूसरोंके दोषोंके कारण तथा मानवताका विकास न होनेके कारण जो दुःख हम सबको भोगने पड़ते हैं अुनका कर्ता कौन है? परमेश्वर है या हम? अुन दुःखोंके हमीं सब मिलकर यदि कर्ता हों, तो अपने ही निर्माण किये हुअे दुःखोंसे डरकर और तंग आकर मर जानेके बाद मोक्षकी अिच्छा और आशा करनेका क्या अर्थ है? अिसलिअे दुःखसे छूटनेके लिअे अीश्वर-स्वरूप, आत्मरूप या ब्रह्मरूप बननेका प्रयत्न करना

मानवताकी शुद्धि और वृद्धि ही ध्येय है

छोड़ दें। हम वैसे हैं यह मान्यता भी छोड़ दें। हमें चाहिये कि जन्मसे प्राप्त अपने मनुष्यत्वको कायम रखते हुअे अुसकी शुद्धि-वृद्धि करनेका प्रयत्न करें। अिससे यद्यपि आजके मानवीय दुःखोंका सम्पूर्ण अन्त नहीं हो सकेगा, फिर भी हमारे ही दोषोंके कारण पैदा होनेवाले कितने ही दुःख नष्ट हो जायंगे, कितने ही दुःख सह्य बन जायंगे और कितने ही दुःखोंमें निहित दुःख-सम्बन्धी कल्पनायें नष्ट हो जायंगी। अज्ञान दूर हो जाय, ज्ञान जाग्रत हो जाय, कर्तव्य-निष्ठा स्थिर हो जाय, चित्तकी शुद्धि हो तथा सद्‌गुण और पुरुषार्थकी वृद्धि होने लगे, तो सुख-दुःख सम्बन्धी हमारी पहलेकी कल्पनायें और व्याख्यायें भी बदल जायंगी। हममें प्रेम और विश्वास, मैत्री और अुदारता, अैक्य और सद्‌भाव बढ़ते जायं, तो अेक-दूसरेके लिअे सहन किये जानेवाले कष्टोंमें भी हमें धन्यताका अनुभव होगा। यह कल्पना हमें छोड़ देनी चाहिये कि मानव-जीवन केवल सुखमय ही होना चाहिये। अीमानदारीसे जीवन बितानेके लिअे जो कष्ट और परिश्रम अुठाने पड़ते हैं, अुन्हें दुःख मानना हमारे लिअे ठीक नहीं। कर्मेन्द्रियों या ज्ञानेन्द्रियों पर पड़नेवाले तनाव और अुसके परिणामस्वरूप होनेवाली कुछ प्रतिकूल संवेदनाओंको हमें दुःख नहीं समझना चाहिये। क्षुद्र अुपायों द्वारा अुनसे बचनेकी हमें कोशिश नहीं करनी चाहिये। हमें देखना चाहिये कि अुस तनावके कारण और साथ ही प्रतिकूल संवेदनाओंके परिणामस्वरूप हम अुन्नत होते हैं या नहीं। अगर अुन्नत विचारोंसे हम अुस तनाव और प्रतिकूल संवेदनाओंको शान्त कर सकें, तो यह निश्चय समझिये कि अुससे हमारी अुन्नति ही हुअी है। अिस प्रकार मानव-जीवनका, अुसके दुःखों और कठिनाअिओंका विचार करके अुसमें से भी अपनी अुन्नति करनेका रास्ता हम निकाल सकें, तो आजके दुःख हमें भयंकर नहीं लगेंगे। हमें अिसका यकीन हो जायगा कि मानवता प्राप्त करना ही हमारा ध्येय है। हम मरणोत्तर दशाके बारेमें निश्चिन्त हो जायंगे। अिस प्रकार हमें सच्चे मानवधर्मका दर्शन होगा। और अुसीका आचरण करके हम सब कृतार्थ होंगे।

१२

व्यक्त-अव्यक्त विचार — १

ज्ञानपूर्वक और अिच्छापूर्वक विश्वकी अुत्पत्ति, स्थिति और लय करनेवाली कोअी संचालक और शासक शक्ति है या नहीं? यदि है तो अुसका स्वरूप क्या है? अुसके लिअे ठीक संज्ञा क्या हो सकती है? अित्यादि प्रश्न बहुत प्राचीन कालसे चले आ रहे हैं। अिस शक्तिके विषयमें विचार करनेवालोंने अीश्वर, परमेश्वर, परमात्मा, ब्रह्म आदि संज्ञायें काममें ली हैं। कुछ विचारक यह कहते हैं कि विश्वमें अनंत शक्ति है जरूर, परन्तु वह ज्ञानपूर्वक या अिच्छापूर्वक कुछ नहीं करती। अुसमें ज्ञान, बुद्धि, भावना, अिच्छा वगैरा न होनेसे अुसके सब काम जड़वत् होते हैं — जैसे पानीके प्रवाह या अग्निसे कुछ कार्य होते हैं, परन्तु वे पानी या अग्नि द्वारा बुद्धिपूर्वक नहीं किये जाते और न अुनके पीछे अुनकी अपनी अिच्छा हो सकती है। यह तो सभी स्वीकार करते हैं कि विश्वमें शक्ति है और वह हमारे शरीरमें समाअी हुअी शक्तिसे बहुत अधिक है, असीम है। यह भी सब मंजूर करते हैं कि अुस अपार शक्तिको अपने अनुकूल बनाये बिना हमारा जीवन सुखरूप नहीं हो सकता। परन्तु बड़ा प्रश्न यह है कि वह शक्ति अपने आप अपनी अिच्छानुसार हमारा जीवन बनाती और विश्वके कार्य करती है या अुसके जड़ होनेके कारण हम अपनी बुद्धि, ज्ञान और सामर्थ्यसे अुसे अनुकूल बनाकर हमें जैसा चाहिये वैसा अपना जीवन बनाते हैं?

संचालक शक्तिके बारेमें शंका और प्रश्न

विचार करने पर प्रतीत होता है कि मनुष्य अपनेको विश्वसे अलग मानकर अिस सवालके हलकी कोशिश करता है। मगर जरा दूसरे ढंगसे विचार करके पहले यह तय करनेका प्रयत्न करना चाहिये कि विश्वकी और हमारी अेकता और भिन्नताकी मर्यादाअें क्या हैं। हमें अपनेमें सदा स्फुरित होनेवाले 'अहं' के कारण अैसा महसूस होता है कि हम

शरीर-सम्बन्धी 'अहं' का विचार

विश्वसे अलग हैं। हमारे शरीर द्वारा होनेवाला सुख-दुःखका ज्ञान हमें अिस 'अहं' के कारण ही होता है। सतत अिसी प्रकारके अनुभवके कारण हम यह समझते हैं कि हमारा शरीर ही हम हैं और वही हमारे अपनेपनकी मर्यादा है। नींदमें वह 'अहं' सुप्त रहता है, अिसलिअे अुतने समयके लिअे हमें अपना भान नहीं रहता। अपने बच्चोंका परिवार ममताके कारण हमें अपना लगता है। अुनके सुख-दुःखका हम पर असर होता है। अितने पर भी सबसे ज्यादा भान हमें अपने देहके लिअे अपनेपनका होता है। दूसरे जानवरोंमें भी अपने शरीरके प्रति ममत्व और अपनेपनकी भावना होती है। अिस दृष्टिसे मनुष्यको अपने शरीरके लिअे अपनापन लगता हो, तो अिसमें अुसकी कोअी विशेषता नहीं। मनुष्य विश्वमें या सृष्टिमें चलनेवाले अव्याहत तथा अनंत व्यापारकी ओर नजर डाले और तब 'अपनेपन' का विचार करे, तो अुसकी दृष्टि कुछ न कुछ विशाल हुअे बिना नहीं रहेगी। जिस शरीरकी मर्यादाके अनुसार हम अपना अपनापन मर्यादित करते हैं, वह शरीर क्या हम किसीसे खरीदकर या मांगकर लाये हैं? खरीद कर या मांगकर लाये हों तो अिससे ज्यादा अच्छा, निरोगी, सुन्दर, बलवान या कार्यक्षम शरीर क्यों नहीं लाये? अगर हमने स्वयं ही अुसे धारण किया हो, तो भी यही सवाल अुठता है कि हमने अिससे अच्छा शरीर क्यों नहीं धारण किया? शरीर द्वारा क्या प्राप्त करनेके लिअे हमने अुसे खरीदा? क्या पानेके लिअे अुसे मांगकर लाये? अथवा कौनसे सुखके लिअे हमने अुसे धारण किया? हमने अुसे किसी भी तरह प्राप्त किया हो अथवा किसी भी कामके लिअे धारण किया हो, तो भी प्राप्त करनेसे पहले हम किस अवस्थामें थे? सृष्टिका क्रम और व्यवहार देखते हुअे हम अपना शरीर खरीदकर नहीं लाये, मांगकर नहीं लाये और अपनी अिच्छासे हमने अुसे धारण भी नहीं किया। विचार करने पर अैसा लगता है कि वह विश्वकी अतर्क्य और अद्‌भुत कलासे निर्माण हुआ है। हम अपने शरीरका प्रारंभ भी किस क्षणसे मानें? जबसे हमें अपने 'अहं' का स्पष्ट भान हुआ तबसे या हम दुनियामें आये तबसे? 'गरभपनेमें हाथ जुड़ाया' की हालत थी तबसे, या माता-पिताके शरीरमें अणुमात्र थे

तबसे? या अुसके भी पहलेसे जब अिस विश्वमें — सृष्टिमें — हमारी अुत्पत्तिका कारण बननेवाले सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्व अगोचर स्थितिमें संचरित होते थे? हम अपने शरीरका आरंभ कबसे समझें? किस स्थितिका निर्देश करके हम मानें कि वहांसे हमारे शरीरके निर्माणका प्रारम्भ हुआ? हम प्रायः यह मानते हैं कि हमारे शरीरमें जो खून बह रहा है, वह सब हमारा ही है। परन्तु क्या हमें अिसका भी पता है कि अिस खूनमें हमारे कितने ही पूर्वजोंका खून रूपान्तरित होते होते हम तक पहुंचा है? क्या हम यह भी जान सकते हैं कि हमारे संस्कार, स्वभाव, गुण, दोष, आरोग्य और व्याधिके साथ कितने व्यक्तियों और बाह्य पदार्थोंका सम्बन्ध है? हम अपनी ही अेक अलग भाषा बोलकर नहीं बता सकते, क्योंकि वह सबकी भाषाओंके अनुकरणका मिश्रण होता है। अिसी तरह हम अपना ही अेक अलग ज्ञान नहीं बता सकते। हमारा शरीर रोज थोड़ा घिसता है। अुसके कुछ परमाणु सतत नष्ट होते रहते हैं, तो सृष्टिमें से अलग अलग द्रव्य सतत आत्मसात् करके हम शरीरको रोज नया भी बनाते रहते हैं। अुसकी धारणा-शक्ति कायम रखते हैं। तात्त्विक दृष्टिसे देखें तो हमारे शरीरमें हर क्षण अुत्पत्ति, स्थिति और लय जारी है। हमारी बुद्धि, भावना या संस्कारमें स्पष्ट या अस्पष्ट सतत परिवर्तन होता रहता है। हम देखते देखते छोटेसे बड़े और बड़ेसे बूढ़े बनते हैं। कुछ ही समयमें काले बाल सफेद होकर हमारा रूप भी बदल जाता है। जबसे हममें 'अहं' का भान शुरू हुआ, तभीसे हम कभी किसी अेक ही स्थितिमें स्थिर नहीं रहे। फिर भी किसी अज्ञात दिशाकी तरफ हमारा गमन दिन-रात जारी रहा है। चंद्र, सूर्य, तारे, ग्रह, नक्षत्र और पृथ्वीमें से अेक भी स्थिर नहीं। हम भी स्थिर नहीं; सतत किसी अेक दिशामें चलते रहते हैं। किसी न किसी समय हमारा रास्ता पूरा हो जाता है। जिस शरीरको हमने अपना माना है, वह विपरीत स्थितिमें जा पहुंचता है और हमारा 'अहं' अेक क्षणमें हमेशाके लिअे लुप्त हो जाता है। और फिर शरीरका कण-कण कहां गया, बादमें अुसका क्या हुआ, अिसका किसीको भी पता नहीं चलता। आगमें से निकला हुआ धुआं थोड़े समय तक दिखाअी देता है; बादमें अुसके कण, अुसके सूक्ष्म द्रव्य विश्वमें कहां गये, कहां

जाकर फैल गये, अुनकी क्या गति हुअी, अिसका पता नहीं चलता। यही हाल अिस शरीरका होता है, जिसे हम 'अहं' मानकर पालते-पोसते हैं, संभालते हैं और संवर्धन करते हैं। हमें न अुसके प्रारंभका पता है, न अुसकी अंतिम गति ही हमें मालूम है। बीचके अल्प समयके 'अहं' के लिअे ही हमें अुसके प्रति अपनेपनका भान होता है।

निमित्तमात्र 'अहं'

अुस 'अहं' की दृढ़ता कम करके, अुसे कुछ सौम्य बनाकर हम सूक्ष्मतासे देखें कि विश्व और हमारे बीचका सम्बन्ध और व्यवहार कैसे होता है। हमें दिखाअी देगा कि विश्वके अपरम्पार अवकाशमें — विश्वव्यापी व्यापारमें — अैसे अशाश्वत शरीरके आधार पर अिस 'अहं' का अनुभव होता है, जिसकी रचनाके बारेमें हमें यह पता नहीं कि वह कब शुरू हुअी, जिसके निर्माणके बारेमें किसीको यह ज्ञान नहीं कि वह किस नियमके अनुसार हुआ और यह भी पता नहीं कि वह कब नष्ट होगा और किस चीजमें मिल जायगा। दीया प्रतिक्षण नये नये द्रव्य जलाता है, तो भी अखंड रूपमें जलता दिखाअी देता है। पानीके परमाणु सतत बदलते रहने पर भी नदीका प्रवाह अेकसा अखंडित बहता जान पड़ता है। अिसी तरह जिस शरीरके आधार पर 'अहं' का स्फुरण होता रहता है, अुसके परमाणु नित्य बदलते रहने पर भी यह महसूस होता रहता है कि वह अखंड रूपमें अेक ही है। दीया और नदी जड़ वस्तु हैं। अुनमें दूसरे द्रव्योंको आत्मसात् करके अपनी वृद्धि करनेका सामर्थ्य नहीं। परन्तु मानव-शरीरमें अेक खास मर्यादामें अिस प्रकारकी विशेष शक्ति है। अिस शरीरकी अुत्पत्ति विश्वसे होती है। अुसके द्रव्योंसे अिसका पोषण होते होते अमुक हद तक अिसकी वृद्धि होती है। बादमें विश्वके द्रव्योंको आत्मसात् करनेकी शक्ति या धर्म मन्द पड़ जाता है और क्षय होते होते आखिर सारी क्रिया बन्द होने पर शरीर नष्ट हो जाता है। अुसके परमाणु विश्वमें विलीन हो जाते हैं। हमारे शरीरका व्यापार जारी रहने — शरीरके केवल जिन्दा रहने — में भी अुसके द्रव्य हर रोज खर्च होते हैं और रोजके खान-पानसे अुसमें नये परमाणु बनते हैं। रोज खर्च होनेवाले तथा शरीरसे बाहर निकलनेवाले द्रव्य रोज अनजाने विश्वमें

मिल जाते हैं और विश्वके नये द्रव्योंसे शरीरकी हड्डियां, मांस और लहू बनते हैं। अिस दृष्टिसे विचार करें तो विश्वका लेन-देनका यह व्यवहार अुसके भीतर ही अखंड रूपसे होता रहता है। विश्वमें अनंत शरीर, अनंत पदार्थ निर्माण हुअे हैं और होते हैं। विश्वकी तुलनामें अेक अणुमात्रमें स्फुरित होनेवाले 'अहं' के कारण अुनमें से अेक शरीरको हम अपना कहते हैं। अुस अणुकी अुत्पत्ति, स्थिति और लय विश्वधर्मके अनुसार जारी है। विश्वके लेन-देनके कारबारमें हमारा शरीर बीचके थोड़े समयके लिअे अेक निमित्तमात्र है।

अिस निमित्तमात्र शरीरमें स्पष्ट दशाको पहुंची हुअी अलग अलग अिन्द्रियां, बुद्धि, मन, चित्त और अुनकी शक्तियां दिखाअी देती हैं। अिसी प्रकार अिन सबको प्रेरणा देनेवाला चैतन्य है।

चित्त और चैतन्य-की विलक्षणता

अिन सबका विचार करें तो विश्वके दूसरे तत्त्वोंकी तुलनामें ये तत्त्व अद्‌भुत मालूम होते हैं। 'अहं' के रूपमें परिचित शरीरमें मन, बुद्धि, प्राण, चित्त और चैतन्यका ही महत्त्व है। चित्तके कारण ही 'अहं' का स्पष्ट भान होता है और चैतन्यके कारण ही बाह्य विश्वके द्रव्योंको आत्मसात् करके शरीर, बुद्धि, प्राण — सबका व्यवस्थित धारण हो सकता है। विश्वके अिस प्रचंड और अखंड व्यापारमें मानव-शरीरको विशेष महत्त्व प्राप्त होनेमें और विश्वकी प्रतीति होनेमें भी ये ही कारण हैं। चित्त और चैतन्यके कारण हम विश्वके व्यापार और अुसमें अपनी निमित्तमात्रताको जान सकते हैं। विश्वकी अपारता जाननेकी महत्त्वाकांक्षा भी अिस अणुमें अिस चित्त और चैतन्यके कारण ही रहती है। नहीं तो कितना विशाल यह अनंत विश्व है, अुसका कितना अपरम्पार व्यापार है! अुसकी तुलनामें मानव तो अणुमात्र है। परन्तु यह अणुमात्र अुसमें रहनेवाले अिस चैतन्यके प्रभावसे ही चित्तादि अिन्द्रियों द्वारा अनंत पर अपना काबू करने या विश्वको अपने अनुकूल बनानेकी महान आकांक्षा रखता है। विज्ञानके बल पर आज अुसकी प्राप्त की हुअी सफलता; जल, स्थल, भूगर्भ, आकाश — सभी जगह अुसका होनेवाला संचार; अुसकी कअी ओरसे बढ़ाअी हुअी अपनी शक्ति; वैसे ही विश्वके जिन तत्त्वोंसे अुसका निर्माण हुआ, अुन

मूल तत्त्वोंकी खोज करने और अपनी अुत्पत्तिका क्रम और अितिहास जाननेकी अुसकी जिज्ञासा; अुन तत्त्वोंके साथ अेकरूप होनेकी दिशामें अुसे कभी कभी होनेवाला आकर्षण और अुत्कंठा आदि बातोंका विचार करें, तो विश्वकी ओर, अुसके अपार व्यापारकी ओर देखकर अुसका अनंतत्व ध्यानमें आने पर हमारा मन आश्चर्यमें डूब जाता है। अिसी तरह अितने छोटे शरीरमें रहनेवाले चित्त-चैतन्यकी विलक्षण शक्ति देखकर भी मन आश्चर्यसे भर जाता है। सूक्ष्मसे सूक्ष्म और महान तत्त्वोंसे भरा हुआ यह विश्व, अुसके छोटे-बड़े स्थलचर-जलचर प्राणियोंकी अुमड़ती हुअी प्राणिसृष्टि, वनस्पति-सृष्टि, अुसकी मृदु, सुन्दर, आकर्षक, महान, भव्य तथा विचित्र और विकराल घटनायें और वस्तुअें, भिन्न भिन्न अिन्द्रियों द्वारा अनुभव किये जानेवाले सृष्टिके परस्पर-विरोधी गुण-धर्म — अर्थात् कुल मिलाकर सूर्यके प्रकाशमें और रातके अंधेरेमें अनंत प्रकारसे होनेवाले विश्वरूप-दर्शनसे जैसे हम आश्चर्यचकित होते हैं, अुसी तरह मानवीय चित्त-चैतन्यकी विलक्षणता, अुसका विश्वको अपने अनुकूल बना लेनेका प्रयत्न, अुसकी ज्ञानशक्तिकी सूक्ष्मता, तीव्रता और व्यापकता देखकर भी मन आश्चर्यसे भर जाता है।

अिस परसे यह भी विचार आता है कि मानवीय शरीरमें चित्त-चैतन्य द्वारा आज जिन गुणों और धर्मोंका दर्शन होता है, वे सारे गुण-धर्म विश्वमें अप्रकट अवस्थामें शुरूसे ही हैं।

आदि-कारणसे विश्वका विकास

शरीर, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, चैतन्य आदि सब विश्वमें से ही किसी खास क्रमसे अगणित संयोगोंमें भिन्न-भिन्न रूप लेते लेते आजके स्वरूपमें आये होंगे। अितना ही नहीं, विश्व भी अपने अुस पारके अव्यक्त और अगोचर आदि-कारणमें से अगणित समय बाद व्यक्त और गोचर स्थितिमें आया होगा। आजके ज्ञात विश्वमें सबसे आश्चर्यजनक वस्तुयें चित्त और चैतन्य ही हैं। अिनके कारण ही विश्वका विश्वपन है, वस्तुका वस्तुपन है। चित्त और चैतन्य आजके स्वरूपमें न होते, तो विश्वकी चर्चा भी कौन करता? चित्त-चैतन्यकी अिस जोड़ीको विश्वके विकासका अद्भुत प्रकार मानें, तो तर्ककी दृष्टिसे लगता है कि अुसमें आज स्पष्ट दिखाअी देनेवाले गुण-धर्म

सुप्त रूपमें विश्वमें और अुसके अव्यक्त अगोचर आदि-कारणमें भी होने चाहिये। विश्वमें रहनेवाले तत्त्वोंका विकास होते होते अुसके चैतन्य दशामें आ पहुंचनेके बाद भी अैसा अनुभव होता है कि अभी तक अुसकी प्रकट अवस्थाका विकास हो रहा है। अनंत कालसे विश्वकी यह सुप्तावस्था टूटते टूटते आज प्रकट दशामें आअी है।

विश्व और हमारे बीच भेद और अभेद

दुनियामें जो पदार्थ जड़ मालूम होते हैं, अुनमें भी जीवमें रहनेवाले तमाम गुण-धर्म, शक्ति, बुद्धि, मन, प्राण, चैतन्य वगैरा सुप्त और सुप्ततर अवस्थामें होने चाहिये। अुन पदार्थोंमें से ही हमें ये तत्त्व हर रोज मिलते हैं। वे हमारे शरीरके साथ घुलमिल जाते हैं और अुनके सुप्त गुण-धर्म हमारे द्वारा प्रगट होते हैं। बाहरके पदार्थोंका हम खान-पानके रूपमें अुपयोग न करें और प्राणवायु न लें, तो हमारा शरीर टिक नहीं सकेगा। हमारे शरीरका जितना अंश प्रतिदिन नष्ट होता है, अुसकी पूर्ति बाहरके पदार्थोंके गुण-धर्मोंसे हो जाती है। हर रोज शरीरका नाश और पूर्ति-वृद्धि — अिस नियमसे हमारा शरीर चलता है। अिनमें से अेकमें भी कोअी बिगाड़ हो जाय, तो शरीरका स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। वह बिगाड़ अधिक समय तक रहे, तो शरीर अनेक व्याधियोंसे पीड़ित होता है और अन्तमें अुसका नाश हो जाता है। अिस तरह विचार करने पर मालूम होता है कि गेहूं और चावलके दानेमें भी हमारी तरह तमाम गुण-धर्म सुप्तावस्थामें होने चाहिये। अुनमें भी चेतन तत्त्व होना चाहिये। जिस प्राणीके शरीरमें गेहूं या चावलके रूपमें वह जाता है, अुसके रंग, रूप, आकार और गुण-धर्मका पोषक बनकर वह अुसके द्वारा प्रगट होता है। घास, लकड़ी और मिट्टीमें भी ये सारे गुण-धर्म और चेतन तत्त्व होने चाहिये। जिससे किसी भी जीवका पोषण होता है, अुसमें अवश्य ये तत्त्व होने चाहिये। फिर वह जीव मनुष्य हो, अन्य प्राणी हो या वृक्ष-वनस्पति हो। जिनमें क्षय और वृद्धिकी अवस्थायें हैं, अुनमें लेन-देनका और अपनी विशेषता मर्यादित काल तक बनाये रखनेका धर्म जरूर है। ये सब बातें और अुनके धर्म और क्रम ध्यानमें रखनेसे मालूम होता है कि विश्वके ही गुण-धर्म और

चेतन हममें आनेसे हमारा अस्तित्व बना रहता है। हममें से जो कुछ बाहर निकलता है, अुसका भी विश्वमें पोषणके तौर पर अुपयोग होता है और वही दूसरे जीवोंके गुण-धर्म और चैतन्यका पोषक और पूरक बनता है। विश्वके अिस अखंड व्यापारमें हरअेक जीव अपने 'अहं' के कारण अपनी भिन्नता अनुभव करता है। अुसका शरीर नष्ट हो जाय तो भी अुससे पैदा होनेवाली संतानके रूपमें, अुसकी जातिके रूपमें अुसकी परम्परा कायम रहती है। अुसके 'अहं' की विरासत भी जारी रहती है। विचार करनेसे मालूम होता है कि यह 'अहं' भी विश्वके सुप्त गुण-धर्मोंका अेक स्पष्ट स्वरूप होना चाहिये। अिस 'अहं' में ही वह विशेषता बनाये रखनेका धर्म और शक्ति है। अिस 'अहं' में ही वंश-तंतु आगे चलानेका धर्म होना चाहिये और वह जीवके द्वारा प्रगट होता होगा। अिस दृष्टिसे देखें तो जो विश्वमें है वही हममें है और जो हममें है वही विश्वमें है। जैसे गर्भमें रहनेवाले सुप्ततर अवयव और गुण-धर्म यथासमय प्रगट होते होते अपने पूर्ण स्वरूपमें मनुष्यमें दिखाअी देते हैं, अुसी तरह विश्वमें रहनेवाले गुण-धर्म चैतन्यमें और अुसके बढ़ते हुअे प्रभावमें दिखाअी देते हैं। अतः विश्वमें और हममें अितना ही फर्क समझना योग्य होगा कि अेक सुप्त चेतन है और दूसरा प्रकट चेतन अर्थात् चैतन्य है। तत्त्वतः अिसमें कोअी फर्क मालूम नहीं होता। अेकमें सुप्त चेतन तत्त्वका अगाध और अनंत संग्रह है और दूसरेकी प्रकट अवस्था कितनी ही बढ़ जाय तो भी अुसकी मर्यादा है। हमारी बढ़ती जानेवाली प्रकट अवस्थाको किसी भी समय मूल संग्रहमें से ही पोषण मिलता है। मेघ-मंडलमें रहनेवाला अगाध जलतत्त्व और अुसमें से गिरा हुआ हमारे घरमें सुन्दर चांदीके पात्रमें रखा हुआ बरसातका पानी — यह दृष्टान्त विश्वकी और हमारी अेकता और भिन्नताको समझनेमें किसी हद तक अुपयोगी हो सकता है। अिन सब बातों पर विचार करनेसे हम अिस निर्णय पर आते हैं कि अेक ही महान शक्तिमें से हमारा और विश्वका निर्माण होकर मूल सुप्ततर अवस्थामें से विकसित होते होते हमारे भीतर 'अहं' प्रकट दशाको प्राप्त हुआ। अिस अहंके कारणसे ही हमें असा लगता है कि हम अेक-दूसरेसे भिन्न हैं। शायद

अिस भिन्नतामें ही हमारे कल्याणके बीज छिपे हों। अिस भिन्नताके कारण ही हमारे भीतर पुरुषार्थ, कर्तृत्व, ज्ञान बढ़ानेकी महत्त्वाकांक्षा आदि सद्गुण जाग्रत होकर वृद्धि पाते होंगे। और शायद अिन सबके पूर्णावस्थाको पहुंचनेके बाद वह 'अहं' अपना कार्य पूर्ण करके यथासमय अपनी मूल स्थितिमें विलीन हो जाता होगा।

विश्वका अखंड व्यापार

विश्वकी मूल अव्यक्त स्थितिमें कुछ न कुछ स्पन्दन चालू ही होगा। अिस स्पन्दन-प्रतिस्पन्दनकी अवस्थामें से विश्वके व्यक्त दशामें आनेके बाद, अुसी स्पन्दनके अधिक स्पष्ट दशामें आते आते अुसका रूपान्तर स्फुरणमें हुआ होगा। अुस स्फुरण-प्रतिस्फुरणमें से कालान्तरमें अस्पष्ट चेतन और अुसीमें से स्पष्ट चेतन आविर्भूत हुआ होगा। आगे जाकर चैतन्यकी ज्ञानशक्तिका विकास होते होते अुसके अनुरूप चित्त और दूसरी अिन्द्रियां निर्माण हुअी होंगी। अिन्द्रियोंके साधन द्वारा ज्ञान-शक्तिकी वृद्धि और ज्ञानशक्तिके अनुरूप अिन्द्रियोंकी क्षमता, अिस प्रकार अेक-दूसरेकी मददसे जीवमें और मनुष्यमें विश्वको अपने अनुकूल बना लेनेकी आकांक्षा पैदा हुअी है। बढ़ते-बढ़ते वह आजकी हालतमें आ पहुंची है। अिस तरह देखा जाय तो विश्वमें और हममें भिन्नता नहीं है। अप्रकटसे प्रकट और प्रकटसे फिर अप्रकट, अैसा यह प्रकार है। विश्वमें सुप्त रहनेवाले तत्त्व और गुण-धर्म हम तक अैसी प्रकट अवस्थामें पहुंचते हैं और फिर अुसीमें से भिन्न स्वरूप पाकर हमारी नित्यकी शरीर-यात्रा चलाते हैं। बादमें फिर रूपान्तर पाकर रोज-रोज विश्वमें विलीन होते हैं। वहां भी स्थायी रूपमें विलीन न होकर प्रकट दशामें आनेका अुनका क्रम पहलेकी तरह ही जारी रहता है। अिस प्रकार यह विश्वचक्र, विश्वका यह व्यापार सतत — अखंड रूपमें — चलता रहता है।

विश्वका और हमारा अिस प्रकार अखंड सम्बन्ध है। हम अेक-दूसरेमें मिले हुअे या भरे हुअे हैं। 'अहं' के कारण ही हमें कुछ भिन्नता महसूस होती है। बाकीका सब व्यवहार देखते हुअे दोनोंके लिअे कहीं भी भिन्नताकी मर्यादा नहीं बांधी जा सकती। पृथ्वीसे लाखों करोड़ों मील दूर रहनेवाले सूर्य, चंद्र और नक्षत्रोंका भी हम पर सतत असर

होता रहता है। अलग-अलग ऋतुओंका भला-बुरा असर होता है। वृक्ष, बेल और वनस्पतिका अनजाने असर होता है। कुटुम्ब, समाज, देश, राष्ट्र, मानवजाति — अिन सबका हम पर और हमारा अिन सब पर अर्थात् सबका सब पर थोड़े-बहुत अंशमें अच्छा-बुरा सतत असर होता ही रहता है। केवल शरीर-सम्बन्धी अपने 'अहं' को थोड़ा भूलकर हम सूक्ष्म और व्यापक दृष्टिसे विश्वके व्यापार और हमारे अपने शरीर, मन, बुद्धिके व्यवहार, अिन दोनोंके सम्बन्धकी जांच करके देखें, तो यह निश्चित प्रतीत होता है कि हमें अिसी प्रकारका ज्ञान होगा।

१३

व्यक्त-अव्यक्त विचार — २

विश्वसे संकल्प-सिद्धि तक आया हुआ चैतन्य

विश्वसे निर्माण हुअे मनुष्यको 'अपनेपन' का भान चैतन्य और चित्तके कारण है। चैतन्य और चित्तके प्रकट होनेसे पहले विश्वकी क्या स्थिति रही होगी, अिसकी थोड़ीसी कल्पना गाढ़ निद्रावस्थासे की जा सकती है। चैतन्य और चित्तके प्रादुर्भावसे सृष्टिकी क्रियाशक्तिमें कुछ विशेष प्रकारका संकल्पपूर्वक और ज्ञानपूर्वक फर्क पड़ने लगा। जैसे-जैसे मनुष्यके चित्तका मन और बुद्धिके धर्मों द्वारा विकास होने लगा, वैसे-वैसे सृष्टिकी ज्ञान और क्रियाशक्ति तेजीसे बढ़ने लगी। अैसा लगता है कि विश्वके मूलके स्पन्दन और स्फुरण मानव-जगतमें विशेष तीव्रता, दृढ़ता और व्यापकतासे चालू हुअे होंगे। चित्त और चैतन्यकी अधिक स्पष्ट और जाग्रत दशाके कारण ही मनुष्यको अिस सृष्टिमें महत्त्व और विशेषता मिली है। ज्ञान, भाव, क्रिया आदिकी दृष्टिसे अुसके चित्त-चैतन्यकी व्यापकता बढ़ती जाती है। विश्वमें से विकसित होते-होते चेतनताको प्राप्त करके चित्तकी स्पष्ट दशा प्राप्त होने पर मनुष्यका 'अहं' दृढ़ हुआ है। अिसलिअे अुसका अलगाव अुसे अधिक स्पष्ट रूपमें विदित होने लगा है। चित्तकी स्पष्ट दशाके कारण अुसमें संवेदना और संकल्प-शक्ति जाग्रत हुअी है। ज्ञान और क्रियाशक्तिकी

मदद से वह अपने कोअी-कोअी संकल्प सिद्ध कर सकता है। अपनी भावना-शक्तिसे समुदायको अनुकूल बनाकर कोअी महान संकल्प भी पूरा कर सकता है। अिसे पूरा करनेके काममें अुसे समुदायके सब लोगोंके ज्ञान, क्रिया, भाव और संकल्प-शक्तिकी मदद मिलती है। परिणामस्वरूप मनुष्यको जबसे यह महसूस होने लगा कि अुसमें अपनी और समुदायकी अिच्छायें और हेतु पूरे करनेकी शक्ति आअी है, तबसे अुसके मनमें ये शंकायें और सवाल अुठने लगे कि दुनियामें अीश्वर जैसी कोअी 'कर्तुम-कर्तुम्' समर्थ शक्ति है या नहीं? विश्वमें रहनेवाली शक्ति जड़ है या चेतन और ज्ञानपूर्ण?

विश्वके पोष्य-पोषक धर्म

चैतन्य, चित्त और अिन्द्रियोंकी बढ़ती हुअी शक्तियां और अुनके लिअे आवश्यक विद्या, कला, संगठन आदि बाह्य तथा भाव, गुण, ज्ञान और संकल्प-शक्ति आदि आन्तरिक साधनोंकी सहायतासे मनुष्य खुदको ही अपने सुख-दुःखका कर्ता मानने लगा हो तो अुसमें आश्चर्य नहीं। संकल्प-शक्ति मनुष्यको प्राप्त हुअी अेक महान शक्ति है। अुसके आधार पर मनुष्य कुछ कठिन हेतु पूरे कर सकता है। अिसलिअे अुसमें आत्म-विश्वास पैदा हो गया है। अुसके कारण यद्यपि अुसे अपनी भिन्नता और कर्तापन महसूस होने लगा हो, तथापि अुसे अपने 'अहं' को थोड़ा भुलाकर विश्वके व्यापारका और अपनी सब शक्तियोंका विचार करना चाहिये। अिनके कार्यकारण-भावकी जांच करनी चाहिये। मनुष्यको अपना चित्त, चैतन्य और संकल्प-शक्ति अलग लगते हों, तो भी अुसे समझना चाहिये कि मूल विश्वके ही कुछ-कुछ सचेतन और स्पष्ट दशामें आनेके बाद अुसीमें से अधिक जाग्रत और सचेतन होकर वे हमारे हिस्सेमें आये हैं। अुनका प्रकटीकरण हमारे शरीर द्वारा होता है और अुस शरीरके लिअे हममें 'अहं' भाव स्फुरित होता है। अिसलिअे हमें लगता है कि यह सारी कमाअी और पुरुषार्थ केवल हमारे अकेलेके ही हैं। परन्तु अैसा लगना सत्य और ज्ञानकी दृष्टिसे अधिकांशमें अज्ञान भी सिद्ध हो सकता है। जब माताके पेटमें गर्भ बढ़ता है, तब अुसमें आकार-विकार दिखाअी देने लगते हैं। माताके शरीरसे अुसका पोषण

होता है। अुस समय माता अुसका पोषण करती है या वह अपना पोषण आप कर लेता है? अेकाअेक अिस प्रश्नका जवाब देना कठिन है। कोअी अिकतरफा जवाब गलत भी हो सकता है। अुस समय माताका अुदर ही अुसका ब्रह्मांड होता है। अिस ब्रह्मांडसे दूसरे स्वतंत्र जीवके रूपमें बाह्य जगतमें आनेके बाद भी वह अपनी शक्तिके जरिये बढ़ता है या विश्वकी परिपालन शक्ति, धर्म और भावनाके द्वारा अुसका पोषण और संगोपन होता है, यह तय करना भी कठिन है। फिर वह जीव अर्थात् मनुष्य बड़ा होकर ज्ञान और कर्तृत्वमें मातासे बढ़ जाय और अुसकी परवाह न करे, तो अितनेसे यह साबित नहीं होता कि वह मातासे श्रेष्ठ है। तब अितना ही कहा जा सकता है कि अुसका 'अहं' बहुत दृढ़ हो गया है। अकेला बीज पेड़की अुत्पत्ति और वृद्धिका कारण नहीं होता। पानी, खाद, हवा, मिट्टी, संभाल और दूसरी अनुकूलतायें भी अुसका कारण होती हैं। जैसे अिन सबके सुप्त गुण-धर्मोंका पेड़के रूपमें पूरी तरह प्रकटीकरण होता है, वैसे ही यह कहना योग्य होगा कि गर्भ और माता, बीज तथा पेड़ — अिन सबकी अुत्पत्ति और वृद्धि मूल विश्वशक्तिसे और विश्वमें रहनेवाले गुण-धर्मोंके कारण ही होती है। सबकी अुत्पत्ति विश्वकी सृजन-शक्ति और धर्मसे होती है। सबका पोषण और संगोपन पालन-शक्ति और वात्सल्य-भावनासे होता है। विश्वशक्तिसे प्रकट दशामें आये हुअे धर्मोंकी मददसे हम सबका विकास होता है। विश्वमें रहनेवाले पोष्य-पोषक धर्म माता और गर्भमें आते हैं और अुनके द्वारा अिन धर्मोंका दर्शन और कार्य होता है। परस्परावलम्बी धर्मोंमें किसका महत्त्व ज्यादा और किसका कम माना जाय? अैसी स्थितिमें अिन दोनों गुण-धर्मोंका मूल जिस विश्वशक्तिमें है, अुस विश्व-शक्तिको ही महत्त्व देना अुचित और न्याय्य है।

हमारे कर्तृत्वके कारण यदि हमारा अहंकार बढ़ा हो, तो हमें देखना चाहिये कि वह कर्तृत्व सचमुच हमारा अपना है या नहीं। हमारा शरीर विश्वके व्यापारमें अेक निमित्तमात्र वस्तु है। अुसमें कुछ भरा जाता है, और अुसमें से कुछ न कुछ रोज विश्वमें फेंका भी जाता है। अिस व्यवहारमें शरीर

'अहं' की मर्यादा

बीचमें केवल अेक सचेतन कोठी जैसा लगता है। चैतन्यके कारण यह कोठी कुछ समय तक बढ़ती है और फिर क्षीण होकर संपूर्ण नाशको प्राप्त हो जाती है। अुसमें बीचमें जो अपनापन लगता है वह नाममात्रका है; असलमें तो वह विश्व-प्रकृतिका अेक धर्म है। अिसी तरह हमारे चित्त, चैतन्य, प्राण, संकल्प, ज्ञान, विवेक, भाव, संस्कार, गुण, विचार आदि विशेष रूपसे अनुभवमें आनेवाले सब गुण हमें विश्वसे ही प्राप्त हुअे हैं। वे हम तक मानव-जातिकी विरासतसे पहुंचे हैं। अुन सबका पोषण-वर्धन भी विश्वके अुन्हीं तत्त्वोंसे होता है और हमारे द्वारा अुनका अधिक स्पष्ट दशामें प्रकटीकरण होता है। विश्वके कुल मिलाकर अपरंपार व्यापारकी तुलनामें यह बिलकुल नगण्य बात है। परन्तु 'अहं' के कारण हमारा कर्तृत्व हमें अितना महान और भव्य लगता है कि अुसके आगे विश्वका अगाध कर्तृत्व हमें दिखाअी ही नहीं देता। यों विश्वके कर्तृत्वके सामने हमारा अहं और कर्तृत्व अणुके बराबर भी होगा या नहीं, अिसमें संदेह है।

विश्वके आन्दोलनोंके परिणाम

हमारे प्राण, संकल्प, ज्ञान आदि अूपर बताअी हुअी सभी बातें हमें विरासतमें मिलती हैं। अिसलिअे अैसा अहंकार रखना अुचित नहीं कि वे सब हमारी ही कमाअी हैं। अिसी तरह हममें अुनका जो वर्धन या विकास होता है, वह भी केवल हमारा ही कर्तृत्व है, अैसा भी नहीं कह सकते। फेंफड़ोंकी खराब हवा बाहर निकालकर और बाहरकी अच्छी हवा लेकर ही हम जीते हैं। अिसके लिअे बाहर अच्छी हवाका होना जरूरी है। अिसी प्रकार विश्वमें भी अच्छे तत्त्व हों तो ही वे हममें प्रविष्ट होकर हमारे द्वारा प्रगट हो सकते हैं। हमारे शरीरमें चैतन्य, चित्त, प्राण और संकल्पकी केवल स्पष्ट दशा है। परन्तु अुनका संचय हमारे पास बहुत थोड़ा है। शरीरको रोज अच्छे और अनुकूल द्रव्योंका पोषण न मिले, तो वह कायम नहीं रह सकता। अिसी तरह हमारे चैतन्य, चित्त, प्राण वगैराको भी बाहरसे पोषण न मिले, तो अुनकी स्थिति भी कायम नहीं रहेगी। हममें दिखाअी देनेवाले ये सारे स्पष्ट तत्त्व विश्वमें हमेशा अस्पष्ट दशामें अपरंपार

मौजूद ही रहते हैं। ये तत्त्व आंखसे दिखाओ देनेवाले या किसी भी अिन्द्रिय-गोचर व्यक्त पदार्थमें अव्यक्त रूपमें रहते हैं। पदार्थोंमें कितने विलक्षण गुण-धर्म अव्यक्त रूपमें निवास करते हैं, यह वनस्पति और औषधिका थोड़ासा अध्ययन करने पर मालूम हो जाता है। वायरलेस, रेडियो या ध्वनिशास्त्रसे अब हमें यकीन हो गया है कि ध्वनिकी तरंगें हजारों मील दूर तक जाती हैं, और बिजलीकी तथा विशेष यंत्रोंकी मददसे वे हमें गोचर हो सकती हैं। अिससे साबित हो जाता है कि हमें दिखाओ न देनेवाली अव्यक्त तरंगोंके अपार आन्दोलन पृथ्वी पर सतत जारी रहते हैं। अिसी प्रकार विश्वमें सर्वत्र प्राणतत्त्व, मनतत्त्व, बुद्धितत्त्व, चेतन, संकल्प, संस्कार, ज्ञान, विचार — अिन सबकी तरंगोंके आन्दोलन भी सतत जारी रहते हैं। ये आन्दोलन अच्छे-बुरे दोनों प्रकारके होते हैं। सृष्टिमें जैसे सुगंध और दुर्गंध है वैसे ही सत्संकल्प और असत्संकल्प, सद्विचार और दुर्विचार, सद्‌गुण और दुर्गुण, सत्कर्म और असत्कर्म, अिन सबके आन्दोलन सतत चलते रहते हैं। विश्वमें ही अुत्पत्ति, स्थिति और लयका धर्म होनेसे अुसमें सदा संक्रमण होता रहता है। विश्वका यही धर्म चित्त और चैतन्ययें अलग-अलग सत्-असत् कर्म, विचार और संकल्पके रूपमें मानव-जगतमें प्रकट रूपसे दिखाओ देता है। विश्वमें सतत होनेवाले संक्रमणोंके अव्यक्त आन्दोलन, मनुष्य तथा अन्य चेतन जगत द्वारा होनेवाले भिन्न-भिन्न कर्म, संकल्प, विचार और संस्कारके असंख्य आन्दोलन और अिन सबकी अनंत प्रकारकी तरंगें विश्वमें सतत जारी ही रहती हैं। अैसी कल्पनातीत असंख्य तरंगोंमें से हरअेक जीव अपनी अपनी जीवदशाके अनुसार अनुकूल तरंगें धारण करके अपने चित्त, चैतन्य, प्राण और संकल्पका पोषण करता है। यह क्रिया अुसके द्वारा ज्ञानपूर्वक न होती हो तो भी जिस तरह पेड़ अपने लिअे अनुकूल तत्त्व सृष्टिमें से — मिट्टी, जल, वायुमेंसे कुदरतके नियमानुसार खींचकर अपनी वृद्धि करता है या भिन्न भिन्न स्वाद तथा गुण-धर्मसे युक्त वनस्पति अेक ही जमीन और पानीमें से अनुकूल द्रव्य खींचकर अपने अपने स्वाद व गुणधर्मकी वृद्धि करती है अथवा गर्भ जिस तरह माताके शरीरसे खुदके लिअे आवश्यक तत्त्व, संस्कार, अन्य गुण-धर्म व मानव-जातिकी विरासत अनजानमें ग्रहण करता

है और अपने व्यक्तित्वकी वृद्धि करता है, अुसी तरह मनुष्य अपनेमें प्राण, चित्त, चैतन्य, संकल्प, विचार आदिके लिअे आवश्यक व अनुरूप तत्त्वोंको विश्वमें चलनेवाले कल्पनातीत आन्दोलनोंकी सजातीय तरंगोंसे आत्मसात् करता है। यह व्यापार अनजानमें व कुदरती तौरसे विश्वमें चलता रहता है। हम शुद्ध-चरित्र होनेका संकल्प कर लें, तो विश्वमें आन्दोलित होनेवाली अुसी किस्मकी तरंगें हमारे चित्तकी ओर मुड़ेंगी, हममें अेकरस होंगी और हमारे मूल संकल्पको बल पहुंचायेंगी। हमारे संकल्प, विचार, हेतु अशुद्ध और हीन होंगे, तो विश्वकी अपवित्र तरंगें हमारे चित्तको ढूंढ़ती आयेंगी और हममें घुलमिल कर हमें अधिक हीन बना देंगी। विश्वके अिसी नियमके अनुसार हमारे शुद्ध-अशुद्ध विचारों और संकल्पोंकी तरंगें भी सतत बाहर फैलती रहती हैं और विश्वके शुद्ध अशुद्ध आन्दोलनों और तरंगोंमें वृद्धि करती हैं। अिस पर विचार करनेसे स्पष्ट हो जाता है कि शुद्ध या अशुद्ध विचार और संकल्प धारण करनेवाला और कर्म करनेवाला मनुष्य स्वयं शुद्ध या अशुद्ध होता रहता है, और विश्वमें भी अुसी प्रकारके आन्दोलनों और तरंगोंकी वृद्धि करता है। विश्वका यही नियम है। सृष्टिका यही धर्म है। परमेश्वरका यही कानून है। अिस दृष्टिसे देखते हुअे विश्वमें सदैव होनेवाले आन्दोलनोंमें से ही शुद्ध या अशुद्ध तरंगें हममें आती हैं और वहां अधिक स्पष्ट रूप धारण करके हमारे द्वारा बाहर निकलती हैं। अिस समय, अिस क्षण मेरे द्वारा प्रकट होनेवाले ये विचार केवल मेरे ही हैं, यह नहीं कहा जा सकता। असंख्य लोगोंके अस्पष्ट संकल्पों और विचारोंकी तरंगें विश्वके आन्दोलनोंमें से कुदरती तौर पर मुझ तक आकर शायद मेरे द्वारा अधिक स्पष्ट रूपमें बाहर निकलती होंगी। परन्तु यह कार्य मेरे हृदयमें कोअी न कोअी शुभेच्छा हो, तो ही विश्वके नियमानुसार अिस तरह हो सकता है।

संत तुकारामने कहा है:

आपुलिया बळें नाहीं मी बोलत।
सखा कृपावंत वाचा त्याची।
काय म्यां पामरें बोलावीं अुत्तरें।
परि त्या विश्वंभरें बोलविलें॥

(मैं अपनी खुदकी ताकतसे नहीं बोलता । मेरा सखा कृपालु हरि है, अुसकी यह वाणी है । मेरे जैसा पामर क्या बोल सकता है? परन्तु अुस विश्वंभर प्रभुने मुझसे कहलवाया है ।) अिन अनुभवपूर्ण अुद्‌गारोंमें विश्वका यही नियम — परमेश्वरका यही कानून — दिखाअी देता है।

मानवताका प्रारम्भ

विश्वके व्यापारमें हम केवल निमित्तमात्र हों, तो भी अुस विश्व-शक्तिमें से हमारे चित्त-चैतन्यमें कुछ विशेष शक्तियां आअी हैं। वे शक्तियां हैं विवेक, संकल्प, संयम और निग्रह। हममें रहनेवाले 'अहं' के कारण अिन विशेष शक्तियोंका हमें भान होता है। अिन विशेष शक्तियोंका पोषण विश्वके अुन्हीं अव्यक्त तत्त्वोंसे होता हो, तो भी हम किसी हद तक अपनी अिच्छानुसार अिनका अुपयोग कर सकते हैं — अितनी छूट और स्वतंत्रता हमें विश्वशक्तिके किसी निश्चित नियमसे मिली हुअी है। अगर हम अुसका अुपयोग करके अपना चित्त शुद्ध रखनेका प्रयत्न करते रहें, तो हमारे हृदयमें विश्वकी शुद्ध तरंगें दाखिल होंगी और वे हमसे सत्कर्म करानेमें सहायक होंगी। विश्वकी अवस्थामें सदैव संक्रमण होते होते और अुसीसे विकसित होते-होते हमें मानव स्वरूप प्राप्त हुआ है। अिस स्वरूपकी रचनाका कोअी निश्चित क्रम है। विशेष परम्परासे वह अिस स्थिति तक पहुंचा है। अुसके पीछे विश्वका कोअी अटल नियम है। अुससे अिस प्रकार निर्माण होनेवाले मानवके चित्त-चैतन्यमें कोअी विशेष सामर्थ्य आया है। अुस सामर्थ्यका अुपयोग करनेकी अुसे थोड़ी स्वतंत्रता है। वह सामर्थ्य और वह स्वतंत्रता अिस विश्व-व्यापारका विशेष परिणाम है। विश्वके गुण-धर्मोंसे ही अुस सामर्थ्यका पोषण होता है। मानव-चित्तमें संस्कारोंके अनुसार विचार पैदा होनेका स्पष्ट धर्म दिखाअी देता है। अुनमें से किसी विचारको संकल्पका रूप प्राप्त होने पर दृढ़तासे अुस पर डटे रहनेकी शक्ति भी अुसमें आ गअी है। अुस शक्तिके साथ ही विवेक, संयम आदि अपनी दूसरी शक्तियोंका अुपयोग करके मानवताका पोषण करते रहना विश्वके नियमानुसार मानवका सहज धर्म बन गया है। हम अपने चित्तको सदा सत्-

संकल्पमय रखें और सत्कर्मरत रहें, तो विश्वके अुसी प्रकारके शुद्ध आन्दोलनोंकी तरंगोंको ग्रहण करनेके लिअे वह हमेशा तैयार और योग्य बना रहेगा। विश्वके नियमानुसार यह अुसका धर्म हो जायगा। अुस अवस्थामें अशुद्ध संकल्प या अशुद्ध कर्म हमारे चित्तको स्पर्श भी नहीं कर सकेगा। जिस तरह सृष्टिमें से अमुक विशिष्ट सुगंधित तत्त्व चंदन-केशरके रूपमें अेकत्र होते हैं और अुन्हींमें से फिर सृष्टिमें वे सुगंधके रूपमें हवामें फैलते रहते हैं, अुसी तरह हमारा चित्तशुद्धिका संकल्प हो तो हमारे अुस संकल्प और ग्रहणशीलताके कारण विश्वके आन्दोलनोंमें से केवल अच्छे संकल्पों तथा सत्कर्मोंकी तरंगें हममें प्रवेश करेंगी और वहीं पर प्रकट रूप लेंगी। और फिर अुसी प्रकारकी तरंगें हममें से बाहर निकलती रहेंगी। मानव-चित्तमें विशेष रूपसे रहनेवाली संकल्प-शक्तिका मनुष्य विवेकपूर्वक अुपयोग करे, तो अुसमें मानवोचित तत्त्व आते रहेंगे और अुनका शुद्ध प्रकटीकरण होता रहेगा। पिचकारीमें कोअी भी पतला या प्रवाही पदार्थ खिंचकर अन्दर आ जाता है। परन्तु यह तो हमारे ही विवेक पर निर्भर करता है कि कौनसा प्रवाही पदार्थ अुसके अन्दर खींचा जाय। स्वच्छ और अस्वच्छ दोनों तरहका पानी खींचा जा सकता है और दुनियामें दोनों तरहका पानी है। साधारणतः हमारी संकल्प-शक्तिमें पिचकारी जैसा ही गुण-धर्म है। अिसलिअे मानवताकी दृष्टिसे हममें केवल संकल्पकी दृढ़ताका होना ही काफी नहीं है। साथ ही साथ विश्व-शक्तिकी शुद्ध तरंगोंको खींचनेमें हमें अपनी संकल्प-शक्तिका अुपयोग करना चाहिये। अिस प्रकार हमें हमेशा मानवोचित गुणोंको अपनाकर अपनेमें और दुनियामें अुनकी वृद्धि करनी चाहिये। हमारा अैसा संकल्प और हेतु हो, तो विश्वके नियम और गुण-धर्म हमें सदा सहायता देते रहेंगे। हम अपनी मानवता बढ़ाते रहें और अुन्नतिका प्रयत्न करते रहें, तो दुनियामें अेक तरफ प्रत्यक्ष मानवता बढ़ती रहेगी — विश्वशक्तिके सुप्त गुणों और धर्मोंका अुसके द्वारा प्रकटीकरण होता रहेगा और दूसरी तरफ हमारे शुद्ध संकल्पों और सत्कर्मोंके कारण विश्वके शुद्ध आन्दोलनोंमें वृद्धि होकर अुन्हें गति मिलती रहेगी। अुन सबका परिणाम हम सबके लिअे शुभदायक होगा।

विश्वमें अशुद्ध संकल्पों और अशुद्ध कर्मोंकी तरंगों और आन्दोलनोंका बहुत जोर है। फिर भी जिनको अपनी मानवता गौरवरूप लगती हो,

परमशक्तिके प्रति कृतज्ञता

जिन्हें यह महसूस होता हो कि विश्वके अनंत सर्जन-विसर्जनमें से मानव अेक विशेष सामर्थ्यशील प्राणी निर्माण हुआ है, अुन सबको विश्वमें मानवता बढ़ानेका सतत प्रयत्न करना चाहिये। अिस विश्वमें हमारा अकेलेका अलग कर्म नहीं है। विश्वमें सबके कर्म, सबके संकल्प, सबके लिअे — अेक दूसरेके लिअे — सुखद या दु:खद, अुन्नतिकारक या अवनति-कारक होते हैं। तत्त्वत: किसीका कर्म अलग नहीं है। हम सब विश्व-शक्तिसे पैदा हुअे हैं। अुसीसे हम सबके शरीर पाले-पोसे जाते और बढ़ते हैं। अन्तमें अुसीमें ये सब मिल जायेंगे। हम सबको अिसी विश्व-शक्तिके चेतन, प्राण, चित्त, मन आदि सुप्त तत्त्वोंमें से ये तत्त्व मिलते हैं। हमारे द्वारा अुनका स्पष्ट प्रकटीकरण होता है। हमारे तमाम गुण-धर्म अिसी विश्वशक्तिके स्पष्ट स्वरूप हैं। जो विश्वमें है वही हममें प्रगट रूपसे दिखाअी देता है और जो कुछ हममें है सो सब विश्वमें सुप्त दशामें है। हमारा और विश्वकी अनंत शक्तिका अन्योन्य सम्बन्ध है। अिसमें मानवकी विशेषता अितनी ही है कि अुसमें विश्वके कुछ नियम जानने लायक ज्ञानशक्ति प्रकट हो गअी है। वह अपनी अपूर्णता अुस विश्वशक्तिकी आराधना, श्रद्धा, भक्ति और निष्ठासे दूर कर सकता है। अिस श्रद्धा, भक्ति और निष्ठाका सूत्र हमारी संकल्प-शक्तिमें है। अिस संकल्प-शक्तिकी मददसे मनुष्य अपने लिअे आवश्यक तत्त्व, आवश्यक गुण-धर्म विश्वमें से अपनेमें पैदा कर सकता है, यह भी अुसकी विशेषता है। जो तत्त्व हमारे लिअे आवश्यक हैं अुन सबका अपार संचय अनंत शक्तिमें भरा हुआ है। अुसमें से जो भी आवश्यक हो सो लेकर हमें सबके दु:खका नाश करके सबकी मानवताकी वृद्धि करनी है। विश्वका क्रम और धर्म हमारे अनुकूल है। अिस धर्मकी मददसे यह सब हमारे संकल्पके अनुसार होगा। अिस सबमें हम केवल निमित्तमात्र हैं। यह ज्ञान केवल मनुष्यको ही हो सकता है। अिसलिअे जिससे हमें अिस ज्ञान, शक्ति, मति, गुण, धर्म वगैराकी प्राप्ति होती है और जिससे हम सबका निर्माण

हुआ है, अुस विश्वशक्तिके प्रति — परमशक्तिके प्रति — सदा कृतज्ञ और भक्तिपूर्ण रहना, अुस पर निष्ठा रखना हमारा मुख्य कर्तव्य है। अिस निष्ठामें कल्पनातीत सामर्थ्य है। अनंत शक्तिके साथ समरस होकर अुसके गुणोंका हमारे द्वारा प्रकटीकरण करनेका सामर्थ्य अिसी निष्ठामें है। जिस शक्तिमें से चित्त और चैतन्य स्पष्ट दशामें आये और सारी जलस्थल सृष्टि असंख्य छोटे-बड़े प्राणियोंसे भर गअी है और अुन सबका भरण-पोषण होता है; जिस शक्तिमें से चित्त और चैतन्य अधिकाधिक विकसित होते-होते मानव पैदा हुआ और आजकी स्थितिमें आ पहुंचा है; जो सबकी तमाम शक्तियोंका पोषण करनेवाली और अुनकी नियामक है; जिस शक्तिके कारण मानवके चित्त-चैतन्यका प्रभाव अधिकाधिक विशाल क्षेत्र पर पड़ता जा रहा है, वह शक्ति जड़ है या चेतन? अुसमें ज्ञान, गुण, भाव और कर्तृत्व है या नहीं? अिसका निर्णय करना मनुष्यकी नम्रता, कृतज्ञता, प्रेम, भक्ति और निष्ठा आदि पर अवलंबित है। मातृभक्त और पितृभक्त पुत्र माता-पितासे कितना ही अधिक ज्ञानी और पुरुषार्थी हो जाय, तो भी अुनके साथ नम्रताका बरताव करके अुनके प्रति कृतज्ञ और निष्ठावान रहता है; और अुसीको हम आदरणीय मानते हैं। विश्वकी अनंत शक्तिके साथ हमारे सम्बन्ध माता-पिता और पुत्रके सम्बन्धसे अनंत गुने गाढ़, अेकरस, जीवनव्यापी और सनातन हैं। अैसी स्थितिमें अुस परमशक्ति — परमात्माके लिअे हमारे हृदयमें कृतज्ञता, नम्रता और पूज्यताके भाव रहें तो अुसमें हमारी क्या विशेषता है?

१४

सामूहिक कर्म और कर्मफल

पिछले दो अध्यायोंकी व्यक्त-अव्यक्त विचारसरणीसे पाठकोंके ध्यानमें आया होगा कि हम और विश्व तथा हमारे द्वारा किये जानेवाले कर्म, संकल्प,

वैयक्तिक मोक्षकी अशक्यता

विचार और विश्वका व्यापार, अुत्पत्ति, स्थिति और लय आदि अितना मिलाजुला और अेकत्र होता है कि अुसमें से अैसी कोअी चीज अलग नहीं की जा सकती जिसे हम अपनी कह सकें। शरीरसे लेकर चैतन्य तक जो कुछ भी हम अपना समझते हैं, अुस सबका निर्माण विश्वशक्तिसे होता है। अुस शक्तिकी पूरी मददसे ही अुसका पोषण होता है। और अंतमें अपने गुण-धर्मके अनुसार सबका अुसी शक्तिमें लय होता है। जिसे हम अुत्पत्ति, स्थिति और लय कहते हैं, अुसका थोड़ासा विचार करने पर मालूम होगा कि अुत्पत्ति किसी न किसीका लय है और लय किसी न किसीकी अुत्पत्ति है। और क्षण क्षणमें होनेवाली संक्रमण-अवस्थामें स्थिति किसे कहा जाय, यह अेक सवाल ही है। बीजके नष्ट हुअे बिना पेड़ नहीं होता। लकड़ीके जले बिना अग्नि प्रकट नहीं होती और अुसके बुझे बिना कोयला या राख नहीं बनती। असलमें अिस विश्वमें कुछ भी नष्ट नहीं होता, अेक ही वस्तुके केवल रूपान्तर-मात्र होते हैं। विश्वमें ये रूपांतर सतत होते रहते हैं। विश्वका यही व्यवहार है। अिसीमें से — अिसी संक्रमण-अवस्थामें से — मानवका निर्माण हुआ है। अज्ञान अवस्थामें अिसी सृष्टिकी किसी शक्तिको वह देवता मानने लगा। आगे जाकर अिसके प्रति अुसमें सद्भाव पैदा हुआ। अुसमें से अुसने भक्ति, आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान वगैराकी कल्पना करके बन्ध-मोक्ष निर्माण किये। जीव-शिव, आत्मा-परमात्मा, ब्रह्म-परब्रह्म आदि विचारोंसे अुसने शान्ति प्राप्त करनेकी कोशिश की। कर्मवाद, पुनर्जन्मवाद निर्माण किये। चौरासी लाख योनियोंकी कल्पना की। परन्तु विश्वशक्ति और मनुष्यके बीचके व्यक्त-अव्यक्त संबंधका विचार करने पर यह नियम विश्वमें होना संभव नहीं लगता कि हरअेक मनुष्यके अलग अलग कर्म माने जायं और अुनके फल भोगनेके लिअे अुसे पुनर्जन्म क्रमप्राप्त हो।

हमारे सबके और विश्वके कर्म अितने ज्यादा मिले-जुले और अेक-दूसरेके साथ गुंथे हुअे हैं कि किसी भी तरह यह देख सकना संभव नहीं लगता कि अुनमें से कौनसा कर्म हमारा अकेलेका है और अुनमें से किस कर्मका कौनसा परिणाम है। कोअी भी कर्म स्वतंत्र, अकेला या अलग नहीं होता, वह अनेक छोटे बड़े कारणों यानी भिन्न-भिन्न कर्मों और क्रियाओंका परिणाम होता है। वे कारण और कर्म भी अुनसे पहलेके अनेक कारणोंके परिणाम होते हैं। अैसी स्थितिमें कोअी भी कर्म तत्त्वतः किसी अकेलेका नहीं हो सकता। जिस शरीरको हम अपना मानते हैं, वह भी हमारा अकेलेका नहीं है। अुसका धारण, पोषण और रक्षण हमारे अकेलेसे नहीं हो सकता। अुसमें प्रकृति, प्राणियों और अनेक मनुष्योंके कार्य, परिश्रम, ज्ञान और भावनाओंका हिस्सा है। यह काम कअी कारण-संयोगोंके मिलनेसे होता है। वे सारे कारण-संयोग हमारे अकेलेके हाथमें नहीं होते। अिसी न्यायसे कर्मके फलों और कर्मके परिणामोंका तत्त्वतः विचार करें, तो किसी भी कर्मके परिणाम सृष्टिमें अनंत रूपोंमें परंपरासे जारी ही रहते हैं। अुन सबको हम कर्मके फल नहीं मानते। परन्तु हम कर्मका जो परिणाम चाहते हैं अथवा अुसका सुख-दुःखात्मक जो तात्कालिक परिणाम हम पर होता है, अुसीको हम अुसका फल कहते हैं। अथवा विशेष तीव्र रूपमें अनुभव होनेवाली किसी भी सुख-दुःखात्मक घटनाके आ पड़ने पर जब अुसके तात्कालिक कारण समझमें नहीं आते, तब हम यह मानते हैं कि वह अुससे पहलेके कर्मका या अुससे भी आगे जाकर पूर्वजन्मके कर्मोंका फल है। हमने यह न्याय ठहरा रखा है कि पुण्यका फल सुख और पापका फल दुःख है; और अुसका अमल अिस जन्ममें न हो सके तो अुसके लिअे नये जन्मकी कल्पना अुपयोगी साबित हुअी है। सामाजिक नीतिके रक्षकोंको भी समाजकी सुव्यवस्था रखनेमें अिस लोकश्रद्धासे कुछ सहायता मिलती रही है; अिसलिअे अुन्होंने भी अिस कल्पना और श्रद्धाका पोषण किया है। परन्तु संसारके भिन्न-भिन्न मानव-समूहोंकी पाप-पुण्यकी कल्पनायें भिन्न-भिन्न हैं। अैसी हालतमें पाप-पुण्यके फलका न्याय अुन मानव-समूहोंकी अपनी-अपनी कल्पना या श्रद्धाके अनुसार होता है या अुसके पीछे मनुष्यमात्र पर लागू होनेवाला कर्म-फल-सम्बन्धी सृष्टिका

कोअी निश्चित और अटल धर्म या अीश्वरी कानून है, अिसकी खोज अभी तक नहीं हुअी। अिसी प्रकार मनुष्यको अिस जन्ममें जो सुख-दुःख भोगने पड़ते हैं, वे पूर्वजन्मके अुसके किस कर्मके परिणाम हैं, यह भी अभी तक कोअी खोज नहीं सका है। अितने पर भी हममें यह विश्वास पीढ़ी-दर-पीढ़ी चला आ रहा है कि अिस जन्मके कर्म आगेके जन्ममें भोगने पड़ते हैं; बल्कि हमारा विश्वास है कि यह जन्म अिससे पहलेके जन्मोंके कर्मों पर चलता है। परन्तु विचार करने पर लगता है कि कर्म और अुसके फल-सम्बन्धी यह दृष्टि बहुत संकुचित है। मानव-जातिकी विशालताका, मनुष्य-मनुष्यके बीचके परस्पर गुंथे हुअे और साथ ही सबके अेक-दूसरेके साथ मिले-जुले और अुलझे हुअे सम्बन्धका और वास्तविक स्थितिका अुसमें विचार नहीं किया गया है। हमें अपने ही कर्मका फल मिलता है, अिस कल्पना और विश्वासमें 'स्व' सम्बन्धी हमारी कल्पना अपने शरीरको छोड़कर जरा भी व्यापक हुअी नहीं दीखती। मनुष्यके व्यापक मनकी, सम्बन्धकी और वास्तविक स्थितिकी दृष्टिसे वह मान्य नहीं हो सकती। असलमें कोअी भी कर्म हमारा अकेलेका नहीं और हमारा चाहा हुआ परिणाम या अुसका तात्कालिक होनेवाला परिणाम ही अुसका फल भी नहीं है। हम सबके कर्म, संकल्प, भावनायें, विचार वगैरा सबके आन्दोलन विश्वमें अव्यक्त रूपमें सतत होते रहते हैं और अिन आन्दोलनोंके परिणाम सब पर होते हैं। अिस दृष्टिसे देखने पर मालूम होगा कि हमारे कर्म सामूहिक हैं और अुनके फल या परिणाम भी सामूहिक हैं तथा अुनकी परम्परा विश्वमें सतत जारी रहती है। अिसलिअे हमारा अकेलेका ही कर्मक्षय हो जायगा और केवल हमें ही मोक्ष मिल जायगा, यह आशा करनेके लिअे कोअी आधार या गुंजाअिश नहीं है।

'अहं'के कारण अमरत्वकी अिच्छा

अितने पर भी मनुष्यमें स्पष्ट दशामें प्रकट हुआ 'अहं' अितना जबरदस्त है कि अुसे अेक वस्तु परसे निकालें तो वह दूसरीको दृढ़तासे पकड़ लेता है। स्थूल शरीर हमारा नहीं है, यह अच्छी तरह समझ लेने पर स्थूल परका 'अहं' सूक्ष्मसे चिपट जाता है। अुसे वहांसे हटा दिया जाय तो वह कारण पर, वहांसे महाकारण पर और

अन्तमें अिस विचार या कल्पना पर आकर अुसीसे मजबूतीके साथ चिपट जाता है कि हमारी 'आत्मा' सबसे अलग है। और अुसकी मुक्तिका आग्रह रखता है। और मुक्तिमें भी विशेषताकी अपेक्षा रखता है। हमारे भीतरके 'अहं'का अैसा प्रभाव है। अेक बार निर्माण हुआ 'अहं', आत्म-विचारसे ही क्यों न हो, अमरत्वकी ही अिच्छा रखता है। मनुष्यको अपने 'न होनेकी' कल्पना बरदाश्त नहीं होती। 'आत्मा' सचमुच अमर, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त है या नहीं, अिस बारेमें शंका हो, तो भी अिसमें शक नहीं कि मनुष्य 'स्व' सम्बन्धी किसी भी कल्पनासे अमर, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त रहनेकी अिच्छा रखता है।

सामुदायिक न्याय

दुनियाका न्याय देखते हुअे अैसा नहीं कहा जा सकता कि कर्मका फल कर्म करनेवालेको ही मिलता है। मेहनत अेक करता है और अुसका फल सुख-स्वास्थ्यके रूपमें दूसरोंको भी मिलता है। संपत्तिका सुख अुसका कमानेवाला ही नहीं भोगता। व्यक्तिका धन बच्चों या अुसके वारिसोंको भी मिलता है। यही नियम दुःखके बारेमें भी दिखाअी देता है। भौतिक सुखके मामलेमें अैसा जान पड़ता है कि सबके अच्छे-बुरे कर्मोंका फल सभीको भुगतना पड़ता है। अिसमें देश, काल आदिकी मर्यादा जरूर रहेगी। अुसमें भी न्याय अन्तमें सामूहिक ही होगा। सत्कर्मका आत्म-प्रसादरूपी फल जिसका अुसे ही मिलता है; परन्तु किसी भी मनुष्यके हाथों सत्कर्म हों अिसके लिअे विश्वके आन्दोलन, तरंगें, अिच्छाअें, संकल्प, अनेक लोगोंके तत्सम्बन्धी प्रयत्न आदि कारणभूत होते हैं। अिस दृष्टिसे सत्कर्मका आत्म-प्रसादरूपी फल भी दूसरे अनेक कारणोंका फल होता है। भौतिक सुखोंके विषयमें अनेकोंके स्थूल कर्म और प्रयत्न हमें जितने स्पष्ट और स्थूल दिखाअी देते हैं, अुतने स्पष्ट और स्थूल रूपमें आत्म-प्रसादरूपी फलके विषयमें दिखाअी नहीं देते। अिसमें यही अंतर है। कर्मका फल जिसका अुसे ही मिलना चाहिये, यह न्यायदृष्टि अेकाकी रहनेवाले प्राणीके लिअे ठीक है। परन्तु जो प्राणी समूह बनाकर रहते हैं, जिनका जीवन सामूहिक होता है, अुनमें वैयक्तिक ढंगका न्याय संभव नहीं। जो पशु-पक्षी और प्राणी अकेले रहते हैं, अुनमें यह नियम है कि हरअेकको

अपने परिश्रमके अनुसार खाने-पीनेको मिलता है। परन्तु मानव-जीवन केवल निसर्ग पर नहीं चलता। अुसमें मानवीय शक्ति, बुद्धि, भाव आदि सबका समावेश है। हमारे हरअेक प्रयत्नके साथ हमसे पहलेकी अनेक पीढ़ियोंके ज्ञान और पुरुषार्थका सम्बन्ध है। हमारे शरीरमें अपने कअी पूर्वजोंका खून है। हमारे कर्मके साथ बहुतसे व्यक्तियों, प्राणियोंके ज्ञान और परिश्रमका सम्बन्ध है। भावना, प्रेम, मैत्री आदिके कारण सबके साथ हमारे सामाजिक सम्बन्ध हैं। मनुष्यके बिना कुटुम्ब नहीं। कुटुम्बके बिना गांव नहीं। गांवके बिना प्रान्त नहीं। अिस तरह अेकसे अेक बढ़कर और अलग-अलग प्रकारके सम्बन्धोंसे हम सब अेक-दूसरेके साथ अेकत्र बंधे हुअे हैं। मनुष्य समाजसे अलग नहीं है। अिसलिअे अुसका अपना अलग कोअी महत्त्वपूर्ण कर्म नहीं है। वह विश्वसे पैदा हुआ है और अुसीमें मिला हुआ है। 'अहं' के कारण किसी समय अपनेमें पैदा हुअी भिन्नताकी भावनाको वह कअी तरहसे बढ़ाता और दृढ़ करता रहा है। अिस 'अहं' की शुद्धि करके वह अपनी ओर देखेगा, विश्वका सारा व्यापार जानेगा, तो सामूहिक भावना पर आ जायगा और व्यक्तिगत 'आत्मत्व' और मोक्ष आदिकी कल्पनाओंके बंधनसे छूटकर अपनी सच्ची स्थिति पर पहुंच जायगा।

कर्मकी परिणाम-परम्परा

कर्मके फल या परिणामके लिअे कर्ताके अगले जन्म तक प्रतीक्षा करनेका सचमुच कोअी कारण नहीं; क्योंकि कर्मके संकल्पके साथ ही कर्ताके चित्त पर अुसके परिणाम शुरू हो जाते हैं। तभीसे अुसकी तरंगें भी विश्वमें फैलने लगती हैं। कर्म हो जानेके बाद अुसके भले-बुरे परिणाम भी कर्ताको और जहां जहां वे पहुंचते हैं वहांके सब लोगोंको प्रत्यक्ष भोगने पड़ते हैं। अुन परिणामोंसे पैदा होनेवाले कअी तरहके परिणामोंकी परम्परा दुनियामें जारी रहती है। विश्वका व्यापार अिसी तरह अखंड रूपमें चलता रहता है। कर्मके संकल्प और भाव विश्वकी अुसी प्रकारकी तरंगों और आन्दोलनोंमें तुरन्त मिलकर अुन तत्त्वोंमें वृद्धि करते हैं। प्रत्येक मनुष्य या दूसरा कोअी प्राणी अपने-अपने संकल्पके अनुसार या चित्तके धर्मके अनुसार अुन आन्दोलनोंके तत्त्वोंको आत्मसात् करके अुन्हें

अुसी प्रकारके संकल्प या कर्म द्वारा पुनः प्रकट करता है। अुसमें से भी नअी तरंगें अुठती हैं और फिर विश्वमें फैलने लगती हैं। स्थूल कर्म और अुनके भौतिक परिणाम विश्वमें व्यक्त रूपमें होते हैं और कर्मोंके संकल्प तथा भावके तरंग विश्वके व्यक्त-अव्यक्तको मदद देते हैं। अिस प्रकार क्रिया-प्रतिक्रियाके न्यायसे कर्म, संकल्प और भावका चक्र व्यक्त-अव्यक्तके आधार पर विश्वमें सतत जारी ही रहता है। व्यक्तिके मरनेसे यह चक्र बन्द नहीं हो जाता। वह विरासतके आधार पर आगे जारी रहता है। विरासतका अर्थ यहां केवल वंश-परम्परा या रक्तका सम्बन्ध न मानकर कर्म और संकल्पकी सजातीयता समझना चाहिये। मनुष्यकी मृत्युके समय अुसके चित्तमें जो संकल्प तीव्र रूपमें बसे होंगे, जो अिच्छायें, भावनायें और हेतु अुत्कट रूपमें रहे होंगे, अुनकी तरंगों और आन्दोलनोंका मृत्युके बाद विश्वमें अधिक तीव्रतासे फैलना या जारी रहना संभव है। शरीरका कण-कण जैसे पंच-महाभूतमें मिल जाता है, अुसी तरह सारे जीवनमें अुसने जो सत्त्व या तत्त्व प्राप्त किया होगा, वह विश्वमें रहनेवाले सजातीय सत्त्व या तत्त्वमें मिल जाता है।

विचार-संशोधनकी जरूरत

हमारे भले-बुरे कर्मोंका फल अिस जन्ममें नहीं तो दूसरे जन्ममें भी सुख-दुःखके रूपमें हमींको भुगतना पड़ता है, लोगोंकी अैसी श्रद्धा है। अिस कारण समाजमें कुछ समय तक नीतिके संस्कार टिके और बढ़े भी। अिस श्रद्धाके मूलमें लोगोंकी यह समझ थी कि अीश्वरके घर या कुदरतमें न्याय है। कुछ समय तक समाज पर अिसका अच्छा असर भी हुआ। परन्तु बादमें यह हालत नहीं रही। अब अिस मान्यतामें संशोधनका समय आ गया है। अब प्रश्न खड़ा हुआ है कि हमारे कर्मोंका फल खुद हमीको भोगना पड़ता है या नहीं? कअी लोगोंका यह खयाल भी होने लगा है कि पुनर्जन्म, कर्मवाद वगैरा तमाम मान्यतायें गलत हैं। अिसका बहुजन-समाज पर जल्दी ही बुरा असर होना संभव है। अैसे समय अीश्वर, भक्ति, पुनर्जन्म, मोक्ष आदि परसे लोगोंकी श्रद्धा मिटे, अिसके पहले ही विचारवान और जनहित-चिन्तक व्यक्तियोंको चाहिये कि वे समाजके सामने सही विचार रखकर अुनमें नीति और सदाचारकी

भावनायें जाग्रत करें और अुन्हें दृढ़ करें। अन्यथा पूर्वश्रद्धासे छूटे हुअे लोक-समाजके नास्तिकतामें फंस जाने और स्वैराचारी होनेका बड़ा भय है। अिस अवस्थामें यदि कुछ लोग यह महसूस करें कि अैसा होनेके बजाय धर्मकी गलत और भ्रामक मान्यतायें होना भी अच्छा है तो आश्चर्य नहीं।

कर्म और अुसके फलकी विशाल कल्पना

हमारे कर्मका फल खुद हमें तो भोगना ही पड़ता है, साथ ही साथ दूसरोंको भी भोगना पड़ता है। अिस नियम पर अब हमें विश्वास रखना चाहिये। मानव-जगतका न्याय सामूहिक पद्धति पर चलता है। अिसलिअे हमारे कर्मोंका फल हमें न मिलकर समूहको भी मिलेगा और समूहके कर्मोंका फल समूहके साथ हमें भी मिलेगा। अपने कर्मोंका फल हमें अिस जन्ममें या दूसरे जन्ममें भोगना पड़ता है, अिस मान्यतामें अपनेपनकी कल्पना अिस जन्म और दूसरे जन्मके 'अपने' तक ही अर्थात् अपने जीव तक ही सीमित रहती है। अिसमें संकुचितता और अवलोकन-शक्तिकी अपूर्णता मालूम होती है। अिसलिअे यह संकुचित कल्पना छोड़कर हमें अपनेपनकी विशाल कल्पना धारण करनी चाहिये। अिसीमें मानवताका विकास है, अिसीमें न्यायकी विशाल भावना है। हमारा आत्मभाव जैसे-जैसे व्यापक होता जायगा, वैसे-वैसे यह न्याय हमें अुचित दिखाअी देने लगेगा। मानव-जीवन, मानव-सम्बन्ध, मानव-संकल्प और विश्वके व्यक्त-अव्यक्त व्यापार — सबकी दृष्टिसे यह मान्यता और यह न्याय अधिक अुदात्त, सत्य और श्रद्धेय है। अिस न्याय-निष्ठासे रहेंगे, तो हममें आपसी प्रेम, विश्वास और अेकता बढ़ेगी, समभाव पैदा होगा और कुल मिलाकर हम सब मानवताकी दिशामें प्रगति करेंगे। अिसके लिअे हमें अपने कर्मों और संकल्पोंका विचार करके अुनमें रहनेवाली अशुद्धता दूर करनी चाहिये। हमें शुभ कर्म करने चाहिये और शुभ संकल्प धारण करने चाहिये। सबकी शुद्धि और अुन्नतिके लिअे हमें सत्कर्मरत और सद्गुणी बनना चाहिये। प्रेमी और कल्याणेच्छुक माता-पिता अपनी संतान पर अच्छे संस्कार डालने और अुसकी अुन्नतिके लिअे खुद संयमी, सद्गुणी और सदाचारी रहते हैं। अिसी

प्रकार सारी मानव-जाति पर हमारा प्रेम हो, सबके प्रति हमारे मनमें सहानुभूति हो, तो समस्त मानव-जातिके लिअे धर्म्य मार्गसे कष्ट सहन करनेमें हमें धन्यताका अनुभव होगा। केवल अपने विषयकी संकुचित भावनासे कष्ट सहन करनेके बजाय मानवता और अेकताकी विशाल भावनासे कष्ट सहन करनेमें जीवनकी सच्ची सार्थकता है।

१५
ध्येय-निर्णय

जीवनका ध्येय क्या हो, यह मानव-जीवनका सबसे बड़ा प्रश्न है। मनुष्यके आचरण और अुसके जीवनकी छोटी-बड़ी बातोंका रुख तथा अुसका पुरुषार्थ और अुसके सामाजिक सम्बन्ध — अिन सबका आधार अुसके जीवनके ध्येय पर होता है। अिसलिअे ध्येय निश्चित करनेमें भूल या दोष न रहना चाहिये।

ज्यों-ज्यों समय बीतता है, दुनियाके बारेमें हमारा अनुभव बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों अनेक विषयोंकी हमारी कल्पनाओं और विचारोंमें परिवर्तन होते रहते हैं। अिसी प्रकार जीवनके ध्येयके बारेमें भी अुचित परिवर्तनकी जरूरत है। ये परिवर्तन ठीक समय पर न हों, तो अुसके दु:सह परिणाम व्यक्ति और समाज दोनोंको भोगने पड़ते हैं। अिसलिअे जीवनका ध्येय तय करते समय मनुष्यको देश, काल, परिस्थिति, अपनी जरूरतें, अपनी भावनायें, अपना मन और अन्तमें अपना और मानव-जातिका कल्याण — अिन सब बातोंका जितना व्यापक, दीर्घ और सूक्ष्म विचार किया जा सके अुतना करना चाहिये।

सुख-दु:खसे छूटनेकी कल्पना

सुखसे प्रीति और दु:खसे अप्रीतिकी भावना मानव-जातिमें शुरूसे आज तक ज्योंकी त्यों चली आ रही है। मनुष्यके लिअे सुखकी अिच्छा बिलकुल स्वाभाविक है। अिस अिच्छाको पूरी करनेके लिअे वह अनेक संकटोंका सामना करता है। अत्यन्त दु:खमय स्थितिमें भी मनुष्य किसी न किसी आशा

पर ही जीता है। वर्तमान या भविष्यके किसी भी सुखके साथ चित्तका सम्बन्ध जुड़ा हुआ न हो, तो मानव-जीवनका चलना संभव नहीं है। भविष्यके सुखके साथ चित्तका जो सम्बन्ध होता है वही आशा है। मानव-मनका कहीं न कहीं और कभी न कभी सुखके साथ सम्बन्ध होना ही चाहिये। मनका यह धर्म है। अिसी धर्ममें से स्वर्गकी, सुखमय परलोककी और पुनर्जन्मकी कल्पना निर्माण हुअी है। अन्याय, दुष्टता और दुराचरण करनेवालेको कभी न कभी जरूर सजा मिलनी चाहिये। अिस न्यायवृत्तिमें से नरककी कल्पना निकली है। जैसे दुःखनाश, सुखप्राप्ति आदि बातें हमारे अिच्छानुसार अिस जन्ममें नहीं होतीं, अुसी प्रकार सब जगह यह नहीं दिखाअी देता कि सत्कर्मके अच्छे और दुष्कर्मके बुरे फल जगतमें मिलते रहते हैं। अिसलिअे अिन सब बातोंके बारेमें मनुष्यने स्वर्ग, पुण्यलोक, नरक और पुनर्जन्म वगैरा कल्पनाओंके द्वारा अपने मनसे व्यवस्था और न्याय निश्चित कर दिये हैं। यह व्यवस्था करनेके बाद भी मनुष्यके ध्यानमें आया कि जीवमात्रके साथ सुख-दुःख लगे ही हुअे हैं। कितनी ही अुत्तम परिस्थितिमें जन्म हुआ हो, तो भी संपूर्ण दुःखनाश और सब प्रकारसे सुखप्राप्तिकी स्थिति मनुष्यको प्राप्त नहीं हो सकती। तब मनुष्यके विचारी मनने यह बात स्वीकार की कि दुःख नहीं चाहिये तो सुख भी छोड़ना होगा; अेक न चाहिये तो दूसरी प्रिय वस्तुका भी त्याग करना होगा; जन्मके साथ ही सुख और दुःख दोनों मनुष्यके पीछे लगे हुअे हैं, अिसलिअे दुःखसे छूटनेके लिअे सुख छोड़नेको तैयार हुअे सिवा दूसरा कोअी चारा नहीं; अुन दोनोंको टालना हो तो जन्मको टाले सिवा दूसरा मार्ग नहीं; अिसके लिअे जन्म से बचना यानी मोक्ष प्राप्त करना चाहिये। अिस तरह मोक्ष ही जीवनका ध्येय बन गया। मनुष्यका यही ध्येय है और वह योग्य है, यह सिद्ध करनेके प्रयत्नमें अलग-अलग शास्त्र निर्माण हुअे, प्रवृत्ति-निवृत्तिके वाद पैदा हुअे, कर्मवाद भी निर्माण हुआ और तत्त्वज्ञानका भी आरम्भ हुआ। अुस ध्येयको प्राप्त करनेके साधनोंके विचारसे कर्मक्षय, संन्यास आदि बातें अेकके बाद अेक निर्माण हुअीं और अिस तरह वह ध्येय सशास्त्र बना। अिसी परसे तथा संन्यासी, त्यागी और ज्ञानी लोगोंके

सद्व्यवहार तथा संयमशील और शान्त जीवनके कारण मोक्ष और अुसके साधनोंके बारेमें साधारण जनतामें श्रद्धा फैली और परम्परासे दृढ़ हुअी।

गृहस्थाश्रम और कर्ममार्गकी अुपेक्षा

अिसमें शक नहीं कि जिस समय समाजके सदाचारी व्यक्तियोंने मोक्षकी कल्पना या ध्येय स्वीकार किया, अुस समय व्यक्ति और समाजका अुससे कुछ न कुछ कल्याण हुआ होगा। परन्तु अिस विषयमें यह अनुमान होता है कि अिस कल्पनाके कारण जबसे गृहस्थाश्रम और अुसके कर्तव्योंके प्रति अनादर पैदा होने लगा और कर्ममार्गके बारेमें समाजमें शिथिलता आअी, तबसे हमारी अवनति शुरू हुअी होगी। मोक्षकी कल्पना बहुजन-समाजके मनमें दृढ़ हो जानेके बाद और व्यक्ति तथा समाज पर अुसके अनिष्ट परिणाम शुरू होनेके बाद ध्येयके संबंधमें विचारवान लोगोंको अधिक विचार करना चाहिये था। लेकिन अैसा नहीं हुआ। गृहस्थाश्रमके बारेमें अुत्पन्न अनादर जैसेका तैसा कायम रहा। अिस अनिष्टसे बचानेके लिअे किसी महापुरुषने समाज पर निष्काम कर्म-योगका सिद्धान्त और विचारधारा जमानेकी कोशिश की। परन्तु अिसका भी अन्तिम ध्येय मोक्ष ही रहा। अतः गृहस्थाश्रम और कर्ममार्ग-सम्बन्धी अुदासीनता कम न हुअी और अुसका गया हुआ महत्त्व फिर नहीं लौटा। आज हमारा रहन-सहन और बर्ताव आदि संन्यास-परायण नहीं है। फिर भी गृहस्थाश्रमके बारेमें हमारे मनमें सच्चा आदर और सद्भाव नहीं है। गृहस्थाश्रममें रहते हुअे भी हम सबका यह दृढ़ खयाल बना हुआ है कि गृहस्थाश्रम दोषमय और पापमय है और अैसा ही रहेगा। गृहस्था-श्रमके सुखकी आसक्ति हमसे छूटी नहीं है। अुसके बारेमें हमारा कोअी भी रस कम नहीं हुआ है। अपनी आसक्तिसे हम अपनेमें और समाजमें कितने ही दोष और दुःख बढ़ाते रहते हैं। फिर भी हमारी अिस समझके कारण कि संसार दोषरूप और दुःखरूप ही रहेगा, अुसके बारेमें कोअी दुःख न माननेकी वृत्ति हममें दृढ़ हो गअी है। गृहस्थ-जीवन अैसा ही रहनेवाला है, अैसा हम मानते आये हैं। अिसलिअे हमें अुसके बारेमें विचार करनेकी बात कभी नहीं सूझती। अितनी भारी जड़ता हममें आ गअी है। गृहस्थ-जीवनमें पवित्रता, प्रामाणिकता, सत्य, अुदारता, संयम

और निःस्पृहतासे रहनेकी कल्पना ही समाजसे लगभग नष्ट हो गअी है। व्यक्तिगत स्वार्थ-साधन ही संसारका ध्येय बन गया है। किसी दुःख, आघात या अपयशके परिणामस्वरूप संसारके विषयमें वैराग्य या विरक्ति आये या अुससे मन अूब जाय तो संन्यास लेकर मोक्षके पीछे लग जाना चाहिये, अैसी समझ और मनोवृत्ति आम तौर पर जन-समाजमें है। यही कारण है कि हम नैतिक और भौतिक दृष्टिसे बहुत हीन दशाको पहुंच गये हैं। भक्तिमार्गी सन्तोंने समाजमें भक्तिका प्रचार करके लोक-मानसको शुद्ध करनेका प्रयत्न किया। परन्तु अुनका ध्येय भी मोक्षकी तरह अीश्वरके साथ तद्रूप होनेका, निवृत्ति-परायण ही था। अिसलिअे गृहस्थाश्रमका गया हुआ महत्त्व, पावित्र्य और पुरुषार्थ वापस नहीं आ सका।

सामाजिक वृत्तियोंका अभाव

मोक्ष जैसे वैयक्तिक ध्येयके कारण सामूहिक लाभ और कल्याणके लिअे जिन सामूहिक विचारों, वृत्तियों और सद्‌गुणोंकी जरूरत है, वे हममें अभी तक नहीं आये हैं। हरअेक मनुष्य अपने-अपने कर्मके अनुसार सुख-दुःख भोगता है, हम किसीको सुखी या दुःखी नहीं कर सकते; वैसा हम करते हैं, अिस मान्यतामें भ्रांति है। अिस प्रकारकी शिक्षा हमें कितने ही समयसे मिलती रही है। यह शिक्षा व्यक्तिगत श्रेयकी दृष्टिसे कितनी ही श्रेष्ठ मानकर दी गअी हो, तो भी वह हमें अत्यन्त स्वार्थी बनानेका कारण सिद्ध हुअी है। अैसा लगता है कि वर्तमान अनर्थोंके बहुतसे बीज अिसी शिक्षामें हैं। धन, विद्वत्ता, वैभव या अन्य किसी भी विशेष प्राप्तिसे खुद सुखी होना और किसी तरह मोक्ष प्राप्त करके अपना कल्याण साधना — अिस सबमें किसी भी तरह सामूहिक कल्याणका प्रश्न, विचार या अुद्देश्य दिखाअी नहीं देता। अिससे मालूम होता है कि व्यक्तिगत लाभकी अिस शिक्षाके कारण ही हममें सामाजिक या सामूहिक वृत्तिका अभाव है। हमारे आचार-विचारमें व्यापकता नहीं है और सभी जगह संकुचितता दिखाअी देती है। अिसके अन्य कअी कारण हों तो भी यह शिक्षा भी अिसका अेक महत्त्वपूर्ण कारण है।

अिसका हमारी आजकी व्यक्तिगत, कौटुम्बिक, सामाजिक औ राष्ट्रीय स्थिति पर अनिष्ट परिणाम नजर आता है, या यों कहें कि अि

सबका परिणाम ही हमारी आजकी स्थिति है। यह अत्यन्त दुःखकी बात है कि हमारी ध्येय-सम्बन्धी कल्पनामें समयानुसार जो परिवर्तन होना चाहिये था वह नहीं हुआ। मोक्षका ध्येय जिस समय माना गया, अुस समय विचारशील मनको वही योग्य लगा होगा। अुस समयकी वैयक्तिक और सामाजिक स्थिति, धार्मिक और आध्यात्मिक कल्पना आदि सबमें अुसी प्रकारके ध्येयकी कल्पना सूझना स्वाभाविक रहा होगा। परन्तु कालांतरमें अिन सब बातोंमें परिवर्तन होने पर भी अगर हम अुसी कल्पना और अुसी ध्येयको पकड़े रखें और अुसके दुष्परिणाम भोगते रहें, तो यही कहना होगा कि आजकी स्थितिसे हमारा अुद्धार होनेकी कोअी आशा नहीं।

सामूहिक हित ही अेकमात्र ध्येय

अगर हमें वास्तवमें अैसा लगता हो कि यह स्थिति अवनत और शोचनीय है, तो अुसे बदलनेका हमें निश्चयपूर्वक प्रयत्न करना चाहिये। अिसके लिअे हमें कोअी अुदात्त और योग्य ध्येय स्वीकार करना होगा, अिसके बिना चारा नहीं। हम मनुष्य हैं और मनुष्यकी तरह हमें जीना है, तो यह बात पहले हमारे हृदयमें पूरी तरह जम जानी चाहिये कि मानवीय सद्गुणोंसे युक्त हुअे बिना हम अैसा कभी नहीं कर सकेंगे। मनुष्य अकेला रहनेवाला प्राणी नहीं; वह समूहमें और अेक-दूसरेके साहचर्यमें रहनेवाला प्राणी है। अिसलिअे व्यक्तिगत कल्याण या हितकी कल्पनाको हमें दोषास्पद समझना चाहिये। हमें निश्चयपूर्वक समझ लेना चाहिये कि अकेलेका हित वास्तवमें हित नहीं है, बल्कि वह अेक व्यक्तिकी स्वार्थपूर्ण क्षुद्र या महान अभिलाषा ही है। अुससे आज नहीं तो कल सामूहिक दृष्टिसे हानि हुअे बिना नहीं रहेगी। प्राप्त धन, विद्या और सत्ताका अुपयोग सबके हितमें किया जाय, तभी अुसका सदुपयोग या धर्म्य अुपयोग हुआ, अैसा समझना चाहिये। सब तरफसे और सब दृष्टियोंसे सामाजिक बने बिना हममें मानवता नहीं आयेगी। जिससे मानवमात्रका कल्याण होता हो वही हमारा धर्म है। मानवमात्रमें हम आ ही जाते हैं। हममें यह श्रद्धा होनी चाहिये कि हमारा धर्म हमारा अहित न करेगा, बल्कि सबके साथ हमारा भी हित ही करेगा। मानव-सद्गुणों पर ही मनुष्यका — हम सबका —

जीवन चल रहा है। जहां-जहां हमें सद्‌गुणोंकी कमी दिखाअी दे, वहीं दुःखका प्रसंग आता है; फिर वह सद्‌गुणोंकी कमी हमारी अपनी हो या दूसरोंकी। अुस कमीसे हम या दूसरे अवश्य दुःखी होंगे। अिसलिअे सुखी होना चाहते हैं तो हम सबको अवश्य सद्‌गुणी बनना चाहिये। यह बात हमें दृढ़तासे माननी चाहिये और अुस दिशामें हमें सतत प्रयत्न-शील रहना चाहिये। हम समाजकी अेक अिकाअी हैं और हम सबसे मिलकर ही समाज बना है। सबके भले बुरे व्यवहारों, अिच्छाओं और भावनाओंका परिणाम हम सब पर होता ही रहता है। संसारका यह नियम नहीं है कि हर व्यक्तिके हर कर्मका अच्छा-बुरा परिणाम केवल अुसे ही अलग-अलग भोगना होता है। हम अैक्यके सामाजिक सम्बन्ध और न्यायसे अिस तरह बंधे हैं कि हम सबके कर्मोंका फल हम सबको भुगतना पड़ता है। अस्वच्छता, अव्यवस्थितता दोष हैं और अुनके परिणाम बीमारीके रूपमें या दूसरी तरह मनुष्योंको भुगतने पड़ते हैं। मनुष्य समाज बनाकर अेकत्र रहता है। अैसी हालतमें हम अकेले स्वच्छ रहें या हम अपने ही घरको साफ रखें, तो हम बीमारियोंसे बच नहीं सकेंगे। हम, हमारा घर, अन्य लोग और हमारा गांव — सब साफ न हों, तो अिससे पैदा होनेवाले रोगरूपी अनर्थसे हम बच नहीं सकेंगे। गांवमें महामारी फैल जाने पर अुसके दुष्परिणाम सभीको भोगने पड़ते हैं। जैसा यह प्रकृतिका नियम है, वैसा ही नियम मनुष्यके दूसरे व्यवहारमें भी है। मनुष्यको विचार करके अेक-दूसरेके साथके मानव-सम्बन्धों, कर्मों और अुनके परिणामोंके नियम खोजने चाहिये; कार्य-कारणभावकी जांच करनी चाहिये। अैसा करने पर अुसे विश्वास हो जायगा कि हम सब अेक-दूसरेके कर्मसे बंधे हैं। आज भी समाजमें जो बड़े-बड़े झगड़े होते हैं, अुन्हें पैदा करनेवाले कौन हैं? अुनके अतिशय दुःखद परिणाम किसे भोगने पड़ते हैं? युद्ध कौन निर्माण करते हैं और अुनमें प्राणों तकका सर्वनाश किसका होता है? विचार करने पर मालूम होता है कि कर्मका परिणाम केवल करनेवालेको ही नहीं भुगतना पड़ता, परन्तु अेकके कर्मोंका दूसरेको, अनेकोंको अथवा सबके कर्मोंका सबको भुगतना पड़ता है। दुनियामें यही व्यवस्था या न्याय जारी है। परन्तु चूंकि जीवनका व्यक्ति-

गत ध्येय अेक बार हमने श्रद्धापूर्वक मान लिया है, अिसलिअे अुसे छोड़कर हम नअी दृष्टिसे विचार करनेको तैयार नहीं होते। दुनियामें जो न्याय प्रत्यक्ष चल रहा है अुस पर ध्यान न देकर पूर्वजन्म-पुनर्जन्मकी कल्पनासे कर्मवादका आश्रय लेकर हम अपनी पूर्वश्रद्धाको कायम रखनेका प्रयत्न करते आये हैं। व्यक्तिगत ध्येयकी कल्पनासे आज तक हमारा जो अहित हुआ है और अुस कल्पनाके कारण बने हुअे हमारे अेकांगी स्वभावके फलस्वरूप आज भी हमारा और हमारे समाजका जो अहित हो रहा है, अुसे ध्यानमें रखकर हमें समाज, राष्ट्र, मानव-जाति वगैरा सबके हितकी दृष्टिसे अपने ध्येयका विचार करनेकी जरूरत है।

सद्‌गुण-संपन्नतामें आत्मत्वका विकास

प्रचलित धर्मोंकी योग्यता अिस बात परसे निश्चित करनी चाहिये कि अुनमें सद्‌गुणोंको कितना महत्त्व दिया गया है। सद्‌गुणोंके बिना धर्म नहीं है। सद्‌गुणोंके बिना मानवता नहीं है। धर्मकी योग्यताका आधार परमेश्वरकी शरणमें जानेकी बताअी गअी पद्धति नहीं है, अीश्वरकी आराधना करनेका कर्मकांड नहीं है, पाप-पुण्यकी सूक्ष्म समीक्षा नहीं है, मरणोत्तर गति-सम्बन्धी कल्पना नहीं है और न अुसकी लोकसंख्या है। धर्मकी योग्यता तो अिस बात पर निर्भर है कि अुसमें सद्‌गुणोंका, संयमका और मानवताका कितना महत्त्व है। मनुष्यको जीवनभर प्रयत्न और कष्ट सहन करके अपना 'आत्मत्व' विकसित करना है, और यही मनुष्य-जन्मकी परम सिद्धि है। धारण किये हुअे शरीरमें ही संपूर्ण 'आत्मत्व' है, यह मानकर अुसकी हर तरहसे रक्षा करना प्राणिमात्रका स्वभाव होता है। परन्तु सब जगह आत्मभाव और समभाव देखना, अनुभव करना और अुसके अनुसार आचरण करना सिर्फ मनुष्यको ही कभी न कभी सिद्ध हो सकता है। जिस आचरणसे यह सिद्धि प्राप्त हो सकती है, अुसीको मानव-धर्म कहा जा सकता है। मानव-धर्मका आधार समताके आचरण पर है। जिस मात्रामें यह समता हमारे आचरणमें आयेगी, अुतनी ही मात्रामें हममें मानवता प्रकट होगी और अुतनी ही मात्रामें हमारा 'आत्मभाव' व्यापक बनेगा। हमारी धर्मबुद्धिके परिणामस्वरूप हमारा

'आत्मत्व' कमसे कम मानव-जाति और हमारे संपर्कमें आनेवाले प्राणियों तक तो व्यापक होना ही चाहिये। अिस आत्मत्वको विशाल करने तथा समभावका विकास करनेके लिअे हमें सद्‌गुणोंका अनुशीलन करना चाहिये। सद्‌गुणोंके बिना समभाव न तो आयेगा और न टिकेगा। दया, मैत्री, बंधुता, वात्सल्य, सत्य, प्रामाणिकता, अुदारता, क्षमा, परोपकार आदि सद्‌गुणोंसे समभाव पैदा होता है और बढ़ता है। सद्‌गुण सद्‌गुणोंके सहारे ही बढ़ सकते हैं या टिक सकते हैं। अिसलिअे मनुष्यको अनेक गुणोंका आसरा लेना पड़ता है। सब गुणोंकी अुपासनाके बिना मानवता आ नहीं सकती। दया, मैत्री आदि गुण संयम, त्याग, वैराग्य, निर्भयता और निःस्पृहता आदि सद्‌गुणोंके बिना रह नहीं सकेंगे। प्रेमभावके बिना सद्‌गुणोंमें माधुर्य नहीं आयेगा। अिसलिअे तमाम सद्‌गुणोंको हृदयमें आश्रय देकर हमें अुनका विकास करना चाहिये।

मानवताका प्रारम्भ विवेक और चित्तशुद्धिके प्रयत्नसे और अन्त सद्‌गुणोंकी परिसीमामें होता है। चित्तशुद्धिके लिअे संयमकी जरूरत है और सद्‌गुणोंकी परिसीमाके लिअे पुरुषार्थकी आवश्यकता है। मानव-सद्‌गुणोंमें किस गुणकी कब, कहां और कितनी जरूरत है, अिसका निर्णय करनेवाले विवेककी आवश्यकता जीवनमें शुरूसे लेकर आखिर तक रहती ही है।

विवेक, संयम, चित्तशुद्धि और पुरुषार्थ अिन मुख्य साधनों द्वारा हमारा और समाजका कल्याण साधकर मानवताकी परम सिद्धि प्राप्त करना ही मानव-जीवनका ध्येय है।

१६

मानवताकी सिद्धिकी दिशा*

पहले आत्म-सन्तोषके विषयमें लिखता हूं। अिससे स्पष्ट होगा कि केवल निवृत्ति-परायणतासे मिलनेवाले आत्म-सन्तोष और सद्भावनापूर्ण तथा अुचित कर्माचरणसे प्राप्त होनेवाले सन्तोषमें कितना अन्तर है।

निवृत्तिके आत्म-संतोषकी स्थिरताके बारेमें शंका

अगर मानव-जीवनका ध्येय यही मान लिया जाय कि मनुष्य अपने भीतरी शत्रुओंको जीतकर और वासनाका क्षय करके आत्म-सन्तोष साध ले और मोक्ष प्राप्त कर ले, तो अुस (ध्येय) के लिअे निवृत्ति-परायण विचारसरणी, कर्मत्याग और निरुपाधिक रहन-सहन अुचित है। 'सुख-दुःख क्रर्माधीन हैं — कर्मका फल जिसका अुसको ही भोगना पड़ता है — अुसमें कोअी कम-ज्यादा नहीं कर सकता।' अिस दृढ़ श्रद्धासे मनुष्य अपने और दूसरोंके सुख-दुःखके प्रति अुदासीन रहनेकी कोशिश करता रहे, या अधिकसे अधिक विशेष अुपाधिमें न पड़कर सहज ही दूसरेके लिअे कुछ किया जा सकता हो तो करनेकी वृत्ति रख सके, और जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि वगैरा संबंधी भय और दुःखको "मैं ही शुद्ध, बुद्ध, नित्य, निर्विकल्प हूं" अैसी आत्म-विषयक धारणासे शान्त करनेमें सफल हो जाय, तो अैसा लगता है कि अुसे आत्म-संतोष मिल सकेगा।

फिर भी भीतरी शत्रुओंके दमन, वासनाक्षय, कर्म और सुख-दुःख सम्बन्धी विशेष प्रकारकी श्रद्धा और आत्मा-सम्बन्धी धारणा आदिसे या अैसे ही किसी अभ्यास या धारणासे प्राप्त आत्म-सन्तोष हमेशा कायम रहेगा या नहीं, अिसमें मुझे शंका है। जिस मनुष्यमें शुरूसे ही भावना-शीलता, क्रियाशक्ति और पुरुषार्थ वगैराकी कमी हो, अुसे अिस प्रकारके अभ्यास और धारणासे आत्म-सन्तोष जल्दी मिल तो सकता है; परन्तु अिसमें शक है कि वह संतोष हमेशा कायम रहेगा ही। क्योंकि यह बात सत्य मान लें कि दीर्घ प्रयत्नसे मनुष्य अपने षड्रिपुओंको जीतनेमें पूरी सफलता हासिल कर सकता है, तो भी अुसके लिअे यह सिद्ध कर सकना

---

* अेक साधकको पत्र द्वारा दिया हुआ अुत्तर (१९४२)।

संभव नहीं मालूम होता कि किसी भी मौके पर और किसी भी परिस्थितिमें चित्तमें शुभ वृत्तियोंको अुठने ही न दे अथवा अुनका जोर न बढ़ने दे। मनुष्य अपने चित्तमें अुठनेवाले विकारोंको शम, दम वगैरासे शान्त करनेमें सफलता प्राप्त कर ले, तो भी दुनिया पर रोज-रोज आ पड़नेवाली अनेक आपत्तियों — बाढ़, भूकम्प, अग्नि-प्रलय, महायुद्ध, अकाल, व्याधि, दारिद्रय जैसी मानव-जाति पर टूट पड़नेवाली आपत्तियों और विपत्तियों — और अिसी तरह हमारे आसपास और हमारे सामने होनेवाली अन्याय, क्रूरता, दुष्टता, जुल्म आदिकी घटनाओंको देखते हुअे भी, चारों तरफ दयाजनक स्थिति दीखने पर भी मनुष्यके चित्तमें कोअी शुभ और सात्त्विक भावना अुत्पन्न न हो, अैसी चित्तकी अवस्था वह साध सके यह संभव नहीं लगता। और चित्तकी अैसी अवस्था हुअे बिना यह असम्भव लगता है कि अुसका आत्म-सन्तोष कायम रहे। अेक तरफ वह अैसी अवस्था प्राप्त नहीं कर सकता और दूसरी तरफ क्रियाशीलता और पुरुषार्थका अभाव होनेकी हालतमें अुसे चित्तमें अुठनेवाली सद्भावनाओंके कारण पैदा होनेवाले असन्तोष और व्याकुलताको कर्म-सिद्धान्त (सुख-दुःख अपने अपने कर्मोंके अधीन हैं) की विचारसरणीका आश्रय लेकर शान्त करनेका प्रयत्न करना पड़ता है। अिसलिअे आपत्तिके हर मौके पर — दया, न्याय, अन्यायका प्रतिकार आदि शुभ सात्त्विक भावनायें चित्तमें अुठनेके प्रत्येक अवसर पर — चित्तकी संतोष-स्थिति कायम रखनेके लिअे कर्तृत्वके अभावमें किसी भी विचारसरणीसे चित्तको जड़ बनानेके प्रयत्नके सिवा अुसके पास और कोअी अुपाय नहीं रहता।

अिस प्रकार मनुष्य अपने मनको जड़ बनानेकी कितनी ही कोशिश करे, तो भी यह संभव नहीं दीखता कि वह सदाके लिअे जड़ बन जायगा। क्योंकि मनुष्य-प्राणी अिस तरहकी जड़ता और अज्ञानका त्याग करते-करते आजकी मानवता तक — चेतनता तक — आ पहुंचा है। जिन व्यक्तियोंमें यह मानवता और चेतनता भरपूर थी और अिनके कारण जिनमें भावनाशीलता, क्रियाशक्ति और पुरुषार्थका अभाव नहीं था, अुन्होंने संन्यास या भक्तिमार्गको

निवृत्तिमार्गी लोगोंका अुचित कर्माचरण द्वारा प्राप्त किया हुआ सन्तोष

अंगीकार करके निवृत्ति-परायण जीवन स्वीकार करनेके बाद भी, बाहरसे निवृत्तिका प्रतिपादन करनेके बावजूद, कितनी ही प्रवृत्ति की है। सारांश यह कि बाहरसे वे कुछ भी प्रतिपादन करते रहे, लेकिन अुनमें जो भावनाशीलता और पुरुषार्थ था, अुन्होंने अपना-अपना रास्ता निकाल लिया। अिस दृष्टिसे अुनके जीवनका विचार करने पर अैसा नहीं मालूम होता कि अुन्होंने केवल किसी खास तरहकी धारणासे या किसी निवृत्ति-परायण विचारसरणीसे आत्म-सन्तोष प्राप्त किया और अुसे कायम रखा। अुनके चरित्र परसे तो यही मालूम होता है कि अुन्होंने अपनी भावनाशीलता, क्रियाशक्ति और पुरुषार्थको अुचित कर्माचरणमें लगाकर और अुनका विकास करके ही आत्म-सन्तोष प्राप्त किया और अुसीके कारण अुनका वह सन्तोष टिका रहा।

शाश्वत आत्म-संतोष

सद्भावना और पुरुषार्थका अधिकांश अभाव, निरुपाधिक रहन-सहन, निवृत्ति-परायण विचारसरणी, मोक्षकी अुत्कंठा आदिके कारण किसीको आत्म-सन्तोष मिला हो, तब भी कुछ अन्तर्बाह्य प्राकृतिक कारणों और नियमोंसे अथवा बाह्य सात्त्विक संस्कारों या विवेकसे अुसकी भीतरी जड़ता ज्यों-ज्यों कम होगी, त्यों-त्यों अुसके चित्तमें परिवर्तन होता जायगा और पहली धारणाका चित्त पर जो परिणाम हुआ वह नष्ट होता जायगा। अैसी स्थितिमें अपना आत्म-संतोष बनाये रखना अुसके लिअे कठिन होगा। लम्बे समयके निरुपाधिक रहन-सहनके कारण, कर्म-शिथिलताके कारण और धारणाके विशेष प्रकारके अभ्यासके कारण यदि वह विकलांग मनुष्य जैसा हो गया होगा, यानी सद्भावना जाग्रत हो जाने पर भी अुसे कार्यमें परिणत करनेकी अुसकी शक्ति नष्ट हो गअी होगी, तो अुस स्थितिमें अुसका सन्तोष टिका रहना लगभग असम्भव है। परन्तु सद्भावनाके साथ ही जिसकी कर्तृत्व-शक्ति भी जाग्रत हो अुठेगी, वह किसी भी स्थितिमें से अपना मार्ग निकाले बिना नहीं रहेगा। जो श्रेयार्थी होगा और जीवनका सच्चा ध्येय समझमें आते ही अुसे प्राप्त कर लेनेकी जिसमें अुत्कट अिच्छा होगी, वह कदाचित् किसी कारणसे ध्येय तक न पहुंच सके, तो भी जहां तक अपने प्रयत्नसे पहुंचेगा अुसीसे अुसे सन्तोष

होगा। वह सन्तोष अुसके पहलेवाले आत्म-सन्तोषकी अपेक्षा निश्चित रूपसे अधिक सच्चा और स्थायी होगा।

विचारवान मनुष्यके मनमें समय-समय पर अैसे और भी कुछ प्रश्न और शंकायें अुठती हैं। पराये दुःखसे दुःखी होकर सतत कर्मरत रहनेवाले मनुष्यकी भी संसारकी महान प्रवृत्तियों और कार्योंके फैलावसे वह खुद और दुनियाके लोग सुखी न होकर अकसर दुःखी दिखाअी देते हैं। तो फिर केवल परदुःख-भंजनकी वृत्तिसे प्रवृत्ति-परायण होनेके बजाय निवृत्ति-परायणतासे स्व-संतोष प्राप्त करनेको ही जीवनका ध्येय मान लें तो क्या हर्ज है? संसारके दुःखका नाश करनेके लिअे और अुसे सुधारनेके लिअे बहुतसे व्यक्तियोंने भयंकर कष्ट और यातनायें सहन कीं और मौका पड़ने पर अपने प्राण भी अर्पण कर दिये। फिर भी अैसा लगता है कि दुनियाका दुःख अभी तक ज्योंका त्यों है और अुसमें अभी तक कोअी सुधार नहीं हुआ है। तो फिर कर्मरत होनेमें भी क्या लाभ है?

कर्मरत रहनेके बारेमें शंका

अिस तरहके प्रश्न और संदेह विचारशील मनुष्यके मनमें अुठना स्वाभाविक है। परन्तु केवल परदुःख-भंजनकी वृत्तिके पीछे पड़नेसे वह या दुनिया सुखी ही होगी, यह मानना ठीक नहीं। अिस वृत्तिके साथ विवेक, तारतम्य, औचित्य, योजकता आदि आवश्यक सद्गुण मनुष्यमें होने चाहिये। ये सद्गुण न हों, आवश्यक सद्गुणों और कर्तृत्व-शक्तिका सहयोग न हो, अपनी पात्रताकी अपेक्षा — शक्तिकी अपेक्षा — कार्यका अधिक विस्तार कर लिया जाय, कार्य अथवा योजनामें कहीं न कहीं दोष हो या परदुःख-भंजनकी वृत्तिका केवल व्यसन अथवा तृष्णा ही हो, तो अिस वृत्तिसे कोअी सुखी न होगा; अुलटे अुसके और दूसरोंके दुःखी होनेकी ही संभावना है। पात्रता न होने पर भी केवल धनतृष्णासे बढ़ाये हुअे व्यापारका विस्तार जैसे कर्ता अथवा अुसके वारिसोंके दिवालेका कारण बन जाता है, वैसे ही परदुःख-भंजनकी वृत्तिकी केवल तृष्णासे होना संभव है। भले किसी शुभ वृत्तिका ही व्यसन क्यों न हो, वह व्यसन और अुस वृत्तिकी अतिशयता कभी किसीके लिअे कल्याणप्रद नहीं हो सकती।

शक्तिसे अधिक प्रवृत्तिका परिणाम

अिस प्रकारकी अतिशयता और निवृत्ति-परायणताकी केवल निरुपाधिकता, अिन दोनोंसे बचकर मनुष्यको अपने कल्याणका मार्ग निकालना है। सद्‌गुणोंका सामंजस्य सिद्ध न हो, अुनका सुमेल साधना न आता हो, तो सद्‌गुणोंका प्रभाव नष्ट हो जाता है। अितना ही नहीं, ये सद्‌गुण ही किसी समय अपने और दूसरोंके नाशका कारण बन जाते हैं। अिस प्रकार अगर सद्‌गुण दुर्गुणोंका परिणाम लायें, तो अुन्हें सद्‌गुण भी किस तरह कहा जाय?

चैतन्यका शुद्ध प्रकटीकरण

मनुष्यका ध्येय क्या है? किसी भी मार्गसे आत्म-संतोष प्राप्त करना है या अपनी जड़ताका नाश करके मानव-सद्‌गुणोंसे युक्त होना है? ध्येयकी भिन्नताके अनुसार साधन, मार्ग और विचारसरणीमें भी भिन्नता रहेगी। अपनी जड़ताको मिटाकर जीवनमें सब तरहसे सात्त्विकता लानेको अपना ध्येय मानें, तो हमें शरीर, बुद्धि और मनको क्रियाशील बनाना चाहिये। चित्तमें अुत्पन्न होनेवाले आवेगोंसे क्रियाशीलता पैदा होती है। चित्तमें शुद्ध और अशुद्ध दोनों प्रकारके आवेग अुठते हैं। अशुद्ध आवेगोंका निग्रह करके और अुन्हें क्षीण करके मनुष्यको शुद्ध आवेगोंको गति और पोषण देना चाहिये। सद्‌भावना और सद्‌गुण शुद्ध आवेगोंके लक्षण हैं। अिन भावनाओं और सद्‌गुणोंको अुचित कार्यमें परिणत करनेसे या लगानेसे अुनकी गति और शक्ति बढ़ती है। अिस प्रकार अुनकी गति और शक्ति और साथ ही शुद्धि बढ़ती रहे तो हमारी जड़ताका नाश होता रहेगा। जब तक शरीर, बुद्धि और मनमें कहीं भी जड़ताका अंश रहता है तब तक हमारे विकासके लिअे गुंजाअिश है; तब तक हमारे लिअे आगे बढ़नेका, अुन्नत होनेका मार्ग है। अिस प्रकार जड़ताका जब पूरी तरह नाश हो जायगा, तब हमारे शरीर, बुद्धि और मन तीनोंके द्वारा सात्त्विकता और चेतनता ही प्रगट होती रहेगी। क्या सब अंगोंसे, सभी तरफसे चेतन-स्वरूप होनेका यही अुचित मार्ग नहीं है? और अगर यह मार्ग मनुष्यको मिल जाय और सिद्ध हो जाय तो "मैं ही नित्य, निर्विकल्प, चेतन-स्वरूप आत्मा हूं" अिस तरह रटते रहनेकी और अध्याससे अैसी भावनाको दृढ़ करते रहनेकी कोअी जरूरत है? अिस दृष्टिसे विचार करने पर वह पहलेकी

आत्म-सन्तुष्ट स्थिति, जिसमें जड़ता रह सकती है और सहन हो सकती है, क्या पूर्ण चेतन स्थिति कही जा सकती है?

मानव-ध्येयका अेक और दृष्टिसे भी विचार किया जा सकता है। मनुष्यके सम्बन्ध ज्यों-ज्यों विशाल और व्यापक होते जायं, त्यों-त्यों अुनमें सद्भावनाओं, सद्गुणों और पुरुषार्थकी अनेक प्रकारसे विशालता और व्यापकता आना जरूरी होता है। अगर वह अिस तरह न आये, तो मानव-जीवण पूर्ण नहीं हो सकता। जिस समय मनुष्यके सम्बन्ध संकुचित क्षेत्रमें सीमित रहे होंगे, अुस समय सद्गुणों और पुरुषार्थके व्यापक बननेका अवसर ही नहीं मिला होगा। अैसे समयमें मनुष्यकी धर्म-कल्पनाका स्वरूप भी संकुचित ही रहा होगा। अुस संकुचित धर्म-कल्पनासे अुसका और अुसके समाजका काम अुस वक्त चल गया होगा। परन्तु मित्र या शत्रुके नाते मनुष्यका सम्बन्ध पहलेकी अपेक्षा अधिक व्यापक मानव-जातिके साथ कअी तरहसे आने लगनेके बाद भावना, सद्गुण, धर्म, कर्तव्य वगैराके बारेमें अुसकी पहलेकी समझमें परिवर्तन हुअे बिना और अुन सभीमें विशालता और व्यापकता आये बिना काम नहीं चलेगा। मनुष्यके धर्म और कर्तव्यकी मर्यादा संसारके साथ अुसके सम्बन्धके अनुसार सहज ही व्यापक और विशाल माननी पड़ेगी। परन्तु जो समाज यह बात नहीं जानता या जानते हुअे भी अिस बातकी ओर ध्यान नहीं देता और अपने बढ़ते जानेवाले सम्बन्धोंको खयालमें रखकर अपनी धर्म-कल्पनामें और अपने स्वभावमें परिवर्तन नहीं करता, वह समाज अधिकाधिक दीन, लाचार और आत्म-विश्वासहीन बनता जाता है। संकीर्णता न छोड़नेके कारण अुसे कअी तरफसे दुःख और अपमान सहने पड़ते हैं और मानवताकी दृष्टिसे व्यक्ति और समाज दोनों कुल मिलाकर अधोगतिकी तरफ जाते हैं।

विशालताकी ओर प्रयाण

जबसे भारतवर्षके लोगोंका पतन शुरू हुआ, तबसे अुसका अितिहास देखें तो यही बात साफ तौरसे दिखाअी पड़ेगी। ज्यों-ज्यों हमारा अलग-अलग मानव-समूहोंके साथ सम्बन्ध होता गया, त्यों-त्यों हमारा पतन ही होता गया। नहीं तो जनसंख्याकी अितनी बहुतायत और धारण-पोषणके लिअे

आवश्यक वस्तुओंकी अितनी समृद्धि होने पर भी अितने बड़े राष्ट्रकी अैसी दीन अवस्था क्यों हो गयी? विचार करने पर लगता है कि संकुचित परिस्थितिसे निकलकर व्यापक परिस्थितिके साथ सम्बन्ध होनेके बाद हमें अपनेमें जो व्यापकता पैदा करनी चाहिये थी, अुसे पैदा न करनेका ही यह सारा परिणाम है।

अब यह विश्वासके साथ नहीं कहा जा सकता कि संकीर्णतासे निकलकर व्यापकता पैदा करनेसे मनुष्य अेकदम सुखी ही हो जायगा। मानव-जाति कभी भी दुःखसे छूटकर पूरी सुखी हो सकेगी या नहीं, या कभी होगी तो किस अुपायसे होगी, यह कहना कठिन है। फिर भी अितनी बात हम साफ तौर पर समझ सकते हैं कि दीन, हीन और असहाय अवस्थाके सुख-दुःखोंसे मानवताकी विशालताकी ओर जानेसे प्राप्त होनेवाले सुख-दुःखमें कुछ न कुछ विशेषता है। जिस स्थितिके दुःखोंमें दीनता, विह्वलता, अुद्वेग और पश्चात्ताप हो, अुस स्थितिके बजाय जिस स्थितिमें दुःखके साथ ही मनकी दृढ़ता और निश्चय भी कायम रहे, जिसमें दुःखमें भी अुद्वेग और पश्चात्ताप न हो और जिसमें निष्ठा, आत्म-विश्वास और धन्यता दुःखमें भी मनुष्यको न छोड़ती हो, वह स्थिति दुःखरहित न होते हुअे भी क्या पहलीसे निःसन्देह गौरवास्पद नहीं है? जिस स्थितिके सुखमें लोलुपता या अुन्माद न हो और जिसमें स्वार्थ, तृष्णा, मोह या दूसरी कोअी भी हीन वृत्ति न हो और जहां सुखमें भी धर्मनिष्ठा न छोड़नी पड़ती हो, वह स्थिति भले ही पूर्ण सुखमय न हो तो भी क्या अुसमें कोअी विशेषता नहीं है? क्या यह संभव नहीं कि मानव-जातिको शुद्ध, सात्त्विक और सुखमय जीवन कभी न कभी अिसी मार्गसे प्राप्त होगा? अैसा लगता हो कि दुनियाकी हालत जैसी पहले थी वैसी ही अब भी है या स्थूल रूपमें यह दिखाअी न पड़ता हो कि अुसके दुःख दूर होकर सुखकी वृद्धि हुअी है, तो भी अिस स्थितिमें कहीं-कहीं मानवताका योग्य रूपमें विकास हो रहा है यही अुसकी विशेषता है। हर युगमें अुस समयकी परिस्थितिके अनुसार अिस प्रकारकी विशेषता पाअी गअी है। यह बात सही है कि मनुष्यके लिअे अभी तक मानव-जीवन पूरी तरह साध्य नहीं हुआ है; फिर भी अुसे सिद्ध करनेकी अुसकी कोशिश जारी है।

मानव-जीवनके विकास-क्रमका अेक और प्रकार हमारे ध्यानमें आ जाय, तो संभव है कि मनुष्यका ध्येय निश्चित करनेमें हमें मदद मिल सकेगी। हरअेक जीवमें 'मैं' पनका अेक भाव होता है। मनुष्यमें वह ज्यादा स्पष्ट रूपमें दिखाअी देता है। अिस भानके साथ ही अेक प्रकारकी सत्तावृत्ति भी मनुष्यमें है। अिस 'आत्मभान' और 'सत्तावृत्ति' की वृद्धिकी स्वाभाविक प्रेरणा मनुष्यमात्रमें है। जैसे आत्मभान-रहित कोअी मनुष्य नहीं मिल सकता, अुसी तरह अिस प्रेरणासे मुक्त भी कोअी दिखाअी नहीं देता। अपना अल्पत्व छोड़कर महानता प्राप्त करना अिस सत्तावृत्तिका अेक सहज लक्षण है। अपनी पात्रता, सामर्थ्य और स्वभावके अनुसार सात्त्विक अथवा राजस अुपायोंके जरिये हर मनुष्य महानता प्राप्त करनेमें लगा हुआ है। स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, परिवार, राज्य, धन, मान, अैश्वर्य वगैराकी प्राप्तिके द्वारा मनुष्य अपनी 'सत्ता' और अपनी 'आत्मता' बढ़ाकर महान बननेका प्रयत्न कर रहा है। यही महानता कोअी सेवाके, कोअी भक्तिके और कोअी ज्ञानके साधनसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करता है। कोअी अपने सामर्थ्यके द्वारा बाहरी दुनियाको अपने वशमें करके अपनी 'आत्मता' बढ़ाकर महान बननेका प्रयत्न करता है; तो कोअी जगतके मूलभूत तत्त्वके साथ — आदि तत्त्वके साथ — तद्रूप होकर महान बननेका प्रयत्न करता है। छोटे बच्चेसे लेकर महापुरुष तक और रंकसे लेकर राजा तक सब अल्पताका त्याग करके महानताकी ही अिच्छा करते हैं। मनुष्यकी गति स्वाभाविक तौर पर अुसी दिशामें दिखाअी देती है। संत तुकारामने कहा है — "लहानपण देगा देवा। मुंगी साखरेचा रवा"। (हे भगवान, तू मुझे छोटापन दे, क्योंकि शक्करका कण चींटीको ही मिलता है।) अिसमें अूपरसे देखने पर छोटेपनकी — अल्पत्वकी — मांग दिखाअी देती है। लेकिन अुनकी असली दृष्टि छोटेपन पर नहीं, परन्तु नम्रता द्वारा प्राप्त होनेवाली 'शक्कर' के लाभ पर यानी महानताकी प्राप्ति पर ही थी, अैसा थोड़ा विचार करने पर मालूम होता है। भक्ति द्वारा अीश्वरके साथ तद्रूप होना क्या और ज्ञान द्वारा विश्वके साथ समरस होनेका प्रयत्न करना क्या, दोनोंमें महानताकी प्राप्तिकी ही कल्पना है। सात्त्विक या राजस अुपायों द्वारा मनुष्य जहां

महानताकी ओर गति

तक अपनी सत्तावृत्ति, अपना आत्मत्व सक्रिय और प्रत्यक्ष रूपमें बढ़ा सकता है, वहां तक बढ़ाकर आगेका ध्येय पूरा करनेके लिअे वह कल्पना, भावना या धारणाका आश्रय लेकर अपने मनके समाधानकी कोशिश करता है। मनुष्यके सद्गुण और पुरुषार्थ मर्यादित होनेके कारण सक्रिय रूपमें सारे विश्वके साथ समरस होना अुसके लिअे संभव नहीं; अिसलिअे मनुष्य "सब चराचरका अधिष्ठान ब्रह्म मैं ही हूं" अिस धारणा और चिन्तनसे अपनेको समाधान देनेका प्रयत्न करता है। अपार आत्मता और महानताकी प्राप्तिके ये काल्पनिक प्रकार हैं। अिन तमाम बातों परसे हम अितना साफ समझ सकते हैं कि अल्पता किसीसे भी सहन नहीं होती। प्रत्यक्ष न सध सके तो कल्पनासे ही मनुष्य महानता प्राप्त करनेका समाधान चाहता है।

सद्गुणों द्वारा जगतके साथ समरसता

अिन सब भावनाओं और कर्तृत्वमें से राजस अुपाय और कल्पनाजन्य धारणा और भावनाका भाग निकाल दें, तो यह कहा जा सकता है कि शेष बची हुअी प्रत्यक्ष सात्त्विक भावना और कर्तृत्वके जरिये मनुष्यका आत्मीय-भाव जितना सक्रिय दिखाअी दे अुतनी ही अुसकी प्रगति हुअी है। और यह सिद्ध होगा कि अुतनी ही सच्ची महानता अुसमें है। राजस वृत्तिके प्रभावसे जो सत्ता या जो महानता बढ़ती है, अुससे व्यक्ति और समाज किसीका भी कल्याण संभव नहीं। जिस सत्ताको प्राप्त करनेके लिअे दुष्ट मनोवृत्तियों और साधनोंका सहारा लेना पड़ता है और जिसकी जड़में केवल अैहिक स्वार्थके सिवा दूसरा कोअी हेतु नहीं, अुस सत्ताको हमेशा बाहरके विरोधका भय रहता है और वह कभी स्थायी नहीं रह सकती। परन्तु दया, क्षमा, बन्धुता, वात्सल्य, मित्रता, अुदारता, सत्य, प्रामाणिकता, समता आदि सद्भावनाओंके प्रत्यक्ष आचरणसे जो सत्ता और आत्मता बढ़ती है, अुसे व्यक्ति और जगतके लिअे कल्याणप्रद होनेके कारण विरोधका भय कभी नहीं होता। सारी दुनिया अपनी सत्तावृत्तिका विकास करके अिस तरह अपनी महानता साधे, तो जगतमें संघर्षका कोअी कारण ही न रह जाय। वह महानता अशाश्वत नहीं, शाश्वत होगी। क्या संसारके साथ सक्रिय रूपमें समरस होनेका यही कल्याणप्रद मार्ग नहीं है? जैसा पहले कहा जा चुका है, हरअेक व्यक्तिको अपनी जड़ता दूर करके सब पह-

लुओंसे, सब तरफसे कर्मों द्वारा हमेशा शुद्ध चेतनरूपमें प्रकट होते रहना चाहिये और जगतके साथ क्रियात्मक रूपमें अेकरूपता और समरसता साधनी चाहिये। अिसीको हम मानव-जीवनका ध्येय और साध्य क्यों न मानें?

१७

सन्त-सज्जनोंके अुपकार

सन्त-सज्जनोंका प्रयत्न

हर विवेकी और श्रेयार्थी मनुष्य अपने साथ दूसरोंकी मानवताकी वृद्धि करता है। विवेकी सन्त-सज्जनोंने अत्यन्त कष्ट अुठाकर, मौका पड़ने पर अपनी जान देकर भी मानवताकी वृद्धि की है। अैसे सन्त-सज्जनोंके मानव-जाति पर अनन्त अुपकार हैं। मनुष्यकी पशुता, जड़ता, अज्ञान, क्रूरता वगैरा महान दुर्गुण दूर करके अुसमें मानवता जाग्रत करनेकी अुन्होंने जिन्दगीभर कोशिश की है। आपसके लौकिक भेद भुलाकर, अूंच-नीचका भाव छोड़कर, धन, विद्या, बल अथवा जाति सम्बन्धी क्षुद्र अहंकार और मान, प्रतिष्ठा वगैराका मोह छोड़कर सब अेक-दूसरेके साथ प्रेम, सरलता और समतासे रहें और आपसमें कलह, मत्सर या वैर न करें, अिस तरहका अुपदेश अुन्होंने मानव-जातिको समय-समय पर दिया है। यह अुपदेश सबके हृदयमें अंकित करनेके लिअे कुछ संतोंने कहा कि हम सबमें अेक ही 'आत्मतत्त्व' खेल रहा है, तो कुछने हमें यह समझाया कि हम सब अेक ही परमेश्वरकी सन्तान हैं। कुछने कहा कि हम सब भाअी-भाअी हैं, तो कुछने यह अुपदेश दिया कि घट-घटमें अेक ही राम रम रहा है। अिस सबका सार यही था और है कि हम सबकी मानवता जाग्रत हो, वृद्धिगत हो, हम सब निर्दोष हों और सबमें समभाव पैदा हो। अुन्हें विश्वास था कि यह समभाव ही मानव-जातिकी सच्ची सिद्धि है। अिसीके लिअे अुन्होंने अपने मनकी पवित्रता सिद्ध की, अपनेमें सद्‌गुणोंकी वृद्धि की और सारी मानव-जातिको अपने समान बनानेका प्रयत्न किया।

मान लीजिये कि द्वैतबुद्धि दूर करके समता प्राप्त करना ही मानव-जीवनकी अंतिम सिद्धि है। तो भी अुसे प्राप्त करनेके लिअे देश-काल-परिस्थितिके अनुसार आचार, व्यवहार, आपसके बरतावके नियम आदि साधनोंमें परिवर्तन करना पड़ता है। यह बात जानकर संत-सज्जन वैसा प्रयत्न करते आये हैं। समाजकी सुस्थितिके लिअे अेक बार की गअी व्यवस्थामें दीर्घ काल बीतने पर स्थायी वर्ग या वर्णभेद पैदा होते हैं, जिससे सत्ता और संपत्ति कुछ विशेष वर्गोंके हाथमें चली जाती हैं। सत्ता और संपत्तिके अनर्थोंसे समाजको बचाकर मानवताकी तरफ मोड़नेके लिअे सन्तोंको अपने-अपने जमानेमें बहुत सहना पड़ा है। अिन सबकी तहमें अुनका अितना ही अुद्देश्य था कि मानव-जातिकी क्षुद्रता और हीनताका नाश हो और वह अपनी अंतिम सिद्धि प्राप्त करे। अिसके लिअे अुन्होंने कभी भक्तिको तो कभी ज्ञानको, कभी योगको तो कभी कर्मको महत्त्व देकर भाव, ज्ञान, धारणा और कर्म-कौशल द्वारा मनुष्यमें पवित्रता और सद्‌गुणोंका विकास किया। नीति, सदाचार, शील और चारित्र्य ही जीवनको शोभा देनेवाली सच्ची संपत्ति है, यह बात हर आदमीके दिल पर जमानेके लिअे अुन्होंने भरसक प्रयत्न किया। अपने माधुर्य और वैराग्य द्वारा, भक्तिभाव और प्रेम द्वारा जगतकी कटुता और संताप, स्वार्थ और कपट कम करनेमें अुन्होंने अपना जीवन खपा दिया। अुन्होंने अपनी शान्ति और सौजन्यसे संसारके त्रिविध ताप हलके किये; भोगाधीन और भोगलुब्ध जगतको संयमका पाठ पढ़ाया; विलाससे वैराग्यकी तरफ मोड़ा तथा मोहसे कर्तव्यके मार्ग पर लगाया। पापियोंको अुन्होंने पुण्यवान बनाया; पतितोंको पावन किया। खुद मानव बनकर संसारको मानवता सिखाअी। आज दुनियामें जो थोड़ी-बहुत मानवता दिखाअी देती है, जो सद्‌गुण पाये जाते हैं, वे सब अुन्हींके पुरुषार्थके फल हैं। अेक सज्जनताको निकाल दें तो धन, बल, विद्या, सत्ता, अैश्वर्य या और किसी भी सिद्धिमें मनुष्यकी पशुता, अज्ञान, मोह, जड़ता वगैरा दुर्गुणोंका नाश करनेका सामर्थ्य नहीं। सत्य, ब्रह्म-चर्य, अहिंसा वगैरा महाव्रत धारण करनेका सामर्थ्य सज्जनताके सिवा और किसीमें नहीं, यह बात अुन्होंने हमारे गले अुतारी। अिसके लिअे हम सब अुनके अत्यन्त अृणी हैं। यह शंका अुठती है कि यदि अैसे सन्त-सज्जनोंका

जन्म न हुआ होता, तो क्या आज हमारी हालत हिंस्र प्राणियों जैसी ही नहीं होती? सन्त कबीरने अिसी परसे कहा होगा कि हरिभक्त संत-सज्जन पैदा न हुअे होते, तो 'जल मरता संसार'— संसारके लोग ताप-त्रयसे जलकर मर गये होते। आज भी आध्यात्मिक क्षेत्र और मार्गमें पैर रखने और अपने तापत्रयको कम करनेके लिअे अुनके ग्रंथों और वचनोंके सिवा हमारे पास और कोअी अवलंबन नहीं है।

जिन्हें अैसे सज्जनोंका सहवास मिला हो और मिलता हो, वे धन्य हैं। हम भाग्यशाली हैं कि भारतवर्षमें अनेक सन्त-सज्जन हो गये हैं।

संतोंकी अुन्नतिका क्रम और विवेक

अुनके ग्रंथोंमें पाये जानेवाले अुनके स्वानुभवके वचन, अुनके अुद्‌गार, साधककी बहुमूल्य संपत्ति हैं। देश, काल, हमारी वर्तमान परिस्थिति, हमारे आदर्श और हमारी कठिनाअियां — अिन सबका विचार करके हमें अुनका अुपयोग करना चाहिये। वे तमाम वचन समान महत्त्वके नहीं हैं। वे अेक ही सर्वश्रेष्ठ भूमिकासे नहीं कहे गये हैं। अेक ही स्थितिके अनुभवसे निकले हुअे सर्वमान्य सिद्धान्त भी वे नहीं हैं। संत-सज्जन भी भिन्न-भिन्न अवस्था-ओंसे, अलग अलग अनुभवोंसे बोध लेते-लेते, जीवनको सही दिशामें मोड़ते-मोड़ते मानवताके विकास तक पहुंचे होते हैं। अुनके वचनोंमें से कुछ अुनकी साधक-दशाके आरंभ-कालके होते हैं। अुस समय प्रत्यक्ष अनुभवकी अपेक्षा कल्पना, भावना या श्रद्धाका ही अुनके चित्त पर ज्यादा प्रभाव होता है। अिसलिअे अुस समयके अुनके वचनोंमें ये ही चीजें ज्यादा दिखाअी देती हैं। अुस वक्त वैराग्य, दुनियासे अरुचि, 'हमारा कोअी नहीं' की भावना, क्रियाकांड, मनकी व्याकुलता, साधन सम्बन्धी कट्टरता, अेकान्त-प्रियता आदि पर जोर रहता है और चित्तमें ज्ञानकी अपेक्षा अज्ञान ही ज्यादा होता है। अुसके बादके मध्यकालमें कल्पना, भावना वगैराका वेग मन्द पड़ जाता है। मनुष्यमें शोधक-वृत्ति आ जाती है। सत्य-असत्यकी निर्णायक बुद्धि जाग्रत हो जाती है। संयम सिद्ध होने लगता है। चंचलता कम हो जाती है। थोड़ी स्थिरता भी आती है। दुनियाकी तरफ देखनेकी दृष्टि बदल जाती है। अैसा लगने लगता है कि जगतके दुःखका, अुसकी विपरीत परिस्थितिका कोअी अुपाय मिले तो अच्छा। लोगोंके प्रति अरुचि कम हो जाती है।

किसी भी अेक ज्ञानकी भूमिका दृढ़ करनेका प्रयत्न जारी रहता है। और फिर अंतिम कालमें मन स्थिर और शान्त हो जाता है। अुचित विवेक सूझता है। कल्पनायें मिट जाती हैं। भावनायें विवेकका अनुसरण करती हैं। श्रद्धामें रहनेवाला अज्ञान और भोलापन नष्ट हो जाता है। सन्देह कम हो जाते हैं। जगतके प्रति आत्मीयता प्रतीत होने लगती है। क्रियाकांडका अन्त आ जाता है। वैराग्य-सम्बन्धी अतिशयता और कट्टर-पन चला जाता है और संयममें स्वाभाविकता आ जाती है। अुग्रता नष्ट हो जाती है। करुणा पैदा होती है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की व्यापकता आ जाती है। समता स्थिर हो जाती है। और अिन सबके द्वारा प्राप्त करनेकी चीज — मानवता — मिल जाती है। अिस प्रकार भिन्न-भिन्न भूमिकाओं और अवस्थाओंको पार करते हुअे सन्तोंकी अुन्नति हुअी होती है। अिसलिअे अुनके सभी वचनोंको प्रमाण या सिद्धान्तरूप न मानकर अुनमें से अैसे वचन विवेकपूर्वक ढूंढ़ निकालने चाहिये, जो हमारे साध्य और साधनकी दृष्टिसे अुपयोगी हों। अगर अिस तरह हम न कर सकें, तो संभव है अुनके अनुभव और ज्ञानका हमें सच्चा लाभ न मिले और हम अुनके अज्ञानको ही ज्ञान समझकर समाधान मान लें। अिसलिअे विवेकको जाग्रत करके, बुद्धिको कुशाग्र बनाकर, हमें अुनके वचनोंका अपने कल्याणके लिअे अुपयोग करना आना चाहिये। हमें यह निर्णय भी कर सकना चाहिये कि हमें खुदको और समस्त मानव-जातिको मौजूदा परिस्थितिसे श्रेष्ठ आदर्शवादकी तरफ पहुंचनेके लिअे किस साधनकी जरूरत है। भाव-भक्तिसे केवल ग्रंथ-प्रामाण्य या चली आ रही परम्पराको मान लेनेसे हमारा काम नहीं चलेगा। हरअेक संत-सज्जनने अपने समयकी परिस्थितिमें से विवेकपूर्वक अपना रास्ता निकाला है। अिसीलिअे अुन्होंने विवेक और विचारकी महिमा गाअी है। 'विवेकासहित वैराग्याचें बळ' (विवेकके साथ वैराग्यका बल) प्राप्त हो, अैसी अिच्छाके साथ संत तुकारामने यह निश्चय किया था कि 'सारीन विचारें आयुष्या या' (यह जिन्दगी विचार द्वारा पूरी करूंगा)। और लोगोंको भी वे यह अुपदेश देते थे कि 'न धरावी चाली करावा विचार' (रूढ़िसे न चिपटे रहकर विचार करना चाहिये)। समर्थ रामदासने भी विवेकको ही जीवनका सर्वश्रेष्ठ गुण माना है। संत ज्ञानेश्वर कहते हैं कि पूर्ण सत्त्वगुणी पुरुषकी

'सर्वेन्द्रियां अंगणीं। विवेक करी राबणी' (अुसकी सब अिन्द्रियोंमें विवेक काम करता है), अैसी स्थिति होती है। वे संत और विवेकका नित्य-सम्बन्ध अिस तरह बताते हैं 'संत तेथ विवेक' (जहां संत वहां विवेक)। अिसलिअे हमें भी विवेकको जीवनका प्रधान गुण मानकर सारे जीवनमें अुसका अुपयोग करनेकी आदत डालनी चाहिये।

तत्त्वज्ञान, भक्ति और मोक्षके विषयमें हमारी और किसी सन्तकी मान्यतामें अंतर हो, तो भी अुससे अुनके प्रति हमारा आदर जरा भी कम न होना चाहिये। जो लोग नीति, सदाचार, चारित्र्य, शील, पवित्रता आदिके अुपासक होते हैं, जिन्हें सत्यकी जिज्ञासा होती है, जिन्हें लोकहितकी आतुरता होती है, जिनके मनमें भूतमात्रके प्रति जबरदस्त करुणा होती है, जिनके हृदयमें अपने-परायेका भाव नहीं होता, जिनके अंतरमें अीश्वरके प्रति अपार निष्ठा होती है, अैसे वैराग्यशील संत-सज्जन किसी भी समय सबके लिअे परम वन्दनीय ही हैं। अुन्होंने अपने-अपने समयमें अुपलब्ध साधनों द्वारा यथाशक्ति ज्ञान प्राप्त करके निःस्वार्थ भावसे सबको दिया है। अैसा महान कार्य करते हुअे भी अुसका अभिमान न रखकर अुन्होंने अिस प्रकार नम्रतासे विनती की है: 'सकळांच्या पायां माझे दंडवत। आपुलालें चित्त शुद्ध करा।'* अिस प्रकार निरहंकार होकर मानव-जातिकी सेवा करते समय अुन्होंने धन, मान, कीर्ति, प्रतिष्ठा किसीकी भी अपेक्षा नहीं रखी। अपने सुखकी परवाह नहीं की। दुःखका खयाल नहीं किया। लोकलाज नहीं मानी। अपने ज्ञानका आडम्बर नहीं किया। गुरुत्वका दम्भ नहीं किया। परमात्माका स्मरण करके अुन्होंने लोकसेवा की और की हुअी सेवा अुस परमेश्वरको ही अर्पण कर दी। गरीबी, अपमान, विडम्बना, भूख, प्यास, तकलीफ, मौत — सब कुछ अुन्होंने अपने और मानव-जातिके कल्याणके लिअे सहन किया। अुन्होंने अिस तरह कष्ट सहन न किया होता, अुनके चरित्रों और वचनोंकी हमें जानकारी न होती, तो संकटके समय धीरजके साथ शीलकी रक्षा करते हुअे आचरण करनेके लिअे हमें कौनसा आधार था, और आगे भी रहेगा? अिस प्रकार

---

* सबके चरणोंमें मेरा दण्डवत् प्रणाम है। सब अपना चित्त शुद्ध करें।

विचार करनेसे हम पर और सारी मानव-जाति पर अुनके अनंत अुपकारोंका खयाल होता है और कृतज्ञतासे गद्‌गद होकर संत तुकारामकी तरह हमारे हृदयोंसे भी यही अुद्‌गार निकलते हैं :

काय द्यावें त्यांसी व्हावें अुतराअी ।
ठेवितां हा पायीं जीव थोड़ा ।।

अुनके अृणसे मुक्त होनेके लिअे अुन्हें क्या दें? ये प्राण अुनके चरणोंमें अर्पण कर दें तो भी कम ही है।

विवेक और साधना

पहला भाग

विभाग २ : साधन-विचार (चित्तका अभ्यास)

१

ध्यानाभ्यासका मार्गदर्शन — १

मानव-चित्त बड़ी अद्‌भुत वस्तु है। अुसमें सुप्त रूपमें कितनी शक्ति है, अिसका अभी तक किसीको पूरा पता नहीं लगा है। जीवनके सुख-दुःख लाभ-हानि, अुन्नति-अवनति, सद्‌गुण-दुर्गुण आदि सबका सम्बन्ध चित्तके साथ है। अिस चित्तको यदि हम सब प्रकारसे अच्छा बना सकें, सर्व सद्‌गुणोंका भण्डार बना सकें, तो जीवनके तमाम सवाल हल हो जायंगे और जीवन कृतार्थ होनेमें देर न लगेगी। अिसके लिअे हमें अपना चित्त स्थिर करना चाहिये, शुद्ध करना चाहिये। अुसे दृढ़ और बलवान बनाना चाहिये।

अन्तःकरणका स्वरूप और कार्य

यहां चित्त, बुद्धि और मन अिन शब्दों और अुनके कार्योंके बारेमें थोड़ा स्पष्टीकरण कर लें। क्योंकि अिस विषयके निरूपणमें अिन शब्दोंका बार-बार अुपयोग करना पड़ेगा। अिन तीन नामोंसे यह न समझा जाय कि ये तीन अलग-अलग सूक्ष्म अिन्द्रियां हैं। कार्य करनेके साधन होनेके कारण अिन्हें 'करण' कहते हैं। वास्तवमें यह करण अेक ही है, परन्तु अुसकी अलग-अलग कार्यशक्तियों परसे अुसे अलग-अलग नामोंसे पहचाना जाता है। जागृतिमें यह करण सतत कार्यरत रहता है। स्वप्नमें अुसका काम अधूरे रूपमें जारी रहता है। सुषुप्ति यानी गाढ़ निद्रामें अुसका काम बन्द हो जाता है। अिस प्रकार जागृति और स्वप्नकी दो अवस्थाओंमें वह कभी कार्यरहित नहीं होता। सवेरे जागृतिके पहले क्षणसे अुसके कार्यका स्पष्ट रूपमें प्रारम्भ होता है और गहरी नींद आने तक अुसका काम जारी रहता है। यह 'करण' बाहर दिखाअी नहीं देता, अिसलिअे अुसे अन्तःकरण कहते हैं। किसी भी विचारका आरम्भ, अस्पष्ट स्फुरण, स्मृति, तर्क, कल्पना, अनुमान, संकल्प, अवलोकन, निरीक्षण, परीक्षण, तारतम्य, विवेक, योजना, समय-सूचकता, प्रसंगावधान, ज्ञान;

काम, क्रोध, लोभ आदि विकार; चिंता, भय, शोक, दुःख और प्रेम, वात्सल्य, दया, अुदारता आदि भाव — ये सब अुसी अेक करणके कार्य हैं। अिनमें से कुछ कार्य अुसकी ओरसे चलते हों तब हम अुसे चित्त कहते हैं, कुछ कार्योंके समय अुसे बुद्धि कहते हैं, तो कुछ और कार्योंके अवसर पर अुसीको मनके रूपमें पहचानते हैं। वास्तवमें ये सब काम करनेवाला करण अेक ही है। अुसी अेक करणमें भिन्न-भिन्न कार्यशक्तियां हैं। अिन शक्तियोंका अिस करण द्वारा स्पष्ट मालूम होनेवाला जो पहला स्वरूप या स्फुरण है, अुसे हम आम तौर पर वृत्तिके नामसे जानते हैं। जागृतिमें अैसी अनेक वृत्तियोंका संमिश्र प्रवाह अेकसा जारी रहता है। प्राकृतिक धर्म, अपने संस्कार और पूर्वजीवनके आधार पर यह प्रवाह चलता है। कभी वह हमारे व्यवहारके कार्योंके अनुसार होता है, तो कभी अुस प्रवाहकी वृत्तियां हमारे व्यवहारको दिशा प्रदान करती हैं। यह विषय ध्यानमें आनेके लिअे अितना समझमें आ जाय तो काफी है।

अन्तःप्रवाहकी शुद्धि

हमारे अन्तरमें दिनभर चलनेवाला वृत्तियोंका प्रवाह शुद्ध नहीं होता। अुसमें कअी अनिष्ट और अहितकर वृत्तियोंका भी मिश्रण होता है। अुन वृत्तियों और अुसी प्रकारके कर्मोंके कारण हम स्वयं दुःखी और अवनत होते हैं; और वही वृत्तियां और कर्म दूसरोंके दुःख और अवनतिके भी कारण बनते हैं। अिसलिअे यदि हम चाहते हैं कि सब दुःखोंसे छूट जायं और सबको शांति प्राप्त हो, तो हमें अपनी वृत्तियोंका प्रवाह शुद्ध करना चाहिये। अुस प्रवाहको शुद्ध न करके दुःखसे बचने और सुख प्राप्त करनेके लिअे हम अकेले या सब मिलकर कितने ही अुपाय करें, तो भी अुससे कोअी लाभ नहीं होगा — यह अिस दृष्टिसे विचार करने पर निश्चित प्रतीत होता है।

जैसे अुत्कृष्ट रसानुभव केवल हमारी रसनेंद्रिय पर अवलंबित नहीं रहता, वैसे ही वह बाह्य वस्तु पर भी आधारित नहीं है। परन्तु हमारी रसनेंद्रियकी शुद्धि और तीक्ष्णता तथा पदार्थकी शुद्धि और स्वादिष्ठता दोनों पर अुसका आधार होता है। वैसे ही हमारे और दूसरोंके सुख-दुःख केवल हमारी और दूसरोंकी वृत्ति और कर्म पर अवलंबित नहीं होते,

लेकिन हमारी अपनी और दूसरोंकी वृत्ति और कर्म पर तथा बाह्य परिस्थिति आदि पर अवलम्बित होते हैं। अिसलिअे हमें अपने और दूसरोंके सुख-दुःखका विचार करते समय सिर्फ बाहरी स्थितिका विचार न करके अपनी और दूसरोंकी वृत्तियोंका भी विचार करना चाहिये। दुःखके समय या सुखमें बाधा डालनेवाला अवसर आने पर हम ज्यादातर केवल बाह्य परिस्थितिका ही विचार करते हैं। बहुत हुआ तो अुस वक्त दूसरोंके दोषोंका भी विचार कर लेते हैं। परन्तु अिस बातका शायद ही विचार करते हैं कि हमारी किस वृत्तिके कारण दुःखका यह प्रसंग आया है, कौनसे सद्गुणके अभावके परिणामस्वरूप हमें यह दुःख होता है या हमारे सुखमें रुकावट आअी है; अथवा कौनसी सद्वृत्ति धारण करनेसे अिन सब दुःखोंका निवारण हो सकता है। हम यह चाहते हैं कि बाह्य वस्तुअें और दूसरोंकी मनोवृत्तियां तथा स्वभाव सदा हमारी सुख-सुविधाके अनुकूल रहें। हम अिस तरहकी कोशिश भी करते हैं। परन्तु अन्तर्मुख होकर स्वयं अपनेमें ही रहनेवाले दुःखके कारणोंको हम कभी नहीं खोजते। हमारा मन हमेशा बाहर दौड़नेवाली वृत्तयोंके प्रवाहमें ही मग्न रहता है। अुसमें भी दुःख, शोक, भय, चिन्ता, अुद्वेग आदिके मौके पर हमारी वृत्तियां क्षुब्ध हो जाती हैं। अिससे अुस प्रवाहको वेग मिलता है। अैसे वक्त चित्तको प्रवाहसे निकालकर परिस्थितिका, अपनी मनोवृत्तियोंका और अिच्छाओंका अलिप्त होकर, स्थिर होकर और शांत होकर विचार करना हमारे लिअे बड़ा मुश्किल हो जाता है। वृत्तियोंका प्रवाह हमारी अिच्छाओंके अनुसार होता है। अिच्छाअें हमारी अिन्द्रियोंमें रहनेवाले रसोंके अनुसार चलती हैं। अैसी स्थितिमें सारी परिस्थितिका और अपना अवलोकन करके, निरीक्षण-परीक्षण करके, अुचित निर्णय देनेवाला विवेक हमें नहीं सूझता। अुलटे, दुःखका नाश करनेके लिअे अविवेक और अुद्वेगसे तत्काल कुछ न कुछ करके हम अपनी पहली स्थितिको अधिक कठिन और अपने मनको अधिक दुर्बल बना लेते हैं। अविवेकपूर्ण प्रयत्नमें कभी-कभी तात्कालिक सफलता भी मिलती-सी दिखाअी देती है और क्षुब्ध मनोवृत्तियां कभी-कभी थोड़े समयके लिअे शान्त भी हो जाती हैं। परन्तु अनुचित अुपायोंसे सफलता पानेके प्रयत्नमें दूसरोंकी न्याय्य मनोवृत्तियोंको

पहुंचाये गये आघातोंकी प्रतिक्रिया तभीसे शुरू हो जाती है। अुसके अनिष्ट परिणाम हमें कभी-न-कभी भोगने ही पड़ते हैं। अिसके अलावा अुस मार्गसे दुःखमुक्त होनेके प्रयत्नकी आदत हमें धीरे-धीरे अवनतिकी ओर ले जाती है। जिस मात्रामें वह हममें घर करके बैठ जाती है, अुस मात्रामें अुसे निकाल डालना हमारे लिअे बादमें मुश्किल हो जाता है। अिसलिअे दुःखके मौके पर हम अपनी चित्तवृत्तियोंकी जांच करके अुन्हें अुचित रुख देकर दुःखसे छूटनेकी कोशिश करते रहें, तो हमारे दुःख ठीक अुपायसे दूर हो जायेंगे ; हमारी और दूसरोंकी भी अवनति टल जायगी और हमारी अुन्नति होगी। किसी भी दुःख या विशेष सुखके मौके पर हमारा चित्त स्थिर, शुद्ध और दृढ़ रहे, हमारी विवेक-बुद्धि जाग्रत, तीक्ष्ण और प्रखर रहे, तो हमारी तरफसे अपनी और दूसरोंकी अुन्नतिके लिअे बाधक और प्रतिबंधक बातें कभी नहीं होंगी। अुस समय हमें अपनी और दूसरोंकी अुन्नतिके लिअे साधक और पोषक विचार और अुपाय सूझेंगे।

चित्तकी अैसी स्वाधीनता जीवनकी अुन्नतिकी दृष्टिसे बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। परन्तु दुःखमुक्त होनेके लिअे अथवा सुखमय शान्ति प्राप्त करनेके लिअे संयम, चित्तकी स्वाधीनता आदि शक्तियां प्राप्त करनेकी बात अधिकतर किसीको नहीं सूझती। कदाचित् किसीके ध्यानमें अैसा विचार आ भी जाय, तो दूसरोंकी तरफसे पुष्टि या मार्गदर्शन नहीं मिलता। अैसी हालतमें कोअी अपनी बुद्धिसे थोड़ी-बहुत कोशिश करे, तो भी वह काफी नहीं होती। अिसलिअे जब अुसे अैसा अनुभव होता है कि अपने अन्तरके पूर्वसंस्कारों और बाह्य प्रतिकूल परिस्थितिकी ताकतके सामने अुसकी कुछ चलती नहीं, तो वह अैसा करनेका प्रयत्न छोड़ देता है और पहलेके ही विकारवशताके मार्गमें पड़कर पहले जैसे ही जीवन पर आ जाता है। परन्तु जिसके चित्तमें अपने श्रेयकी प्रबल अिच्छा और दृढ़ संकल्प हो, अुसे कैसा ही संकट और कठिनाअियां आने पर भी चित्तकी स्वाधीनताका प्रयत्न कभी नहीं छोड़ना चाहिये। परमात्मा और अपने शुद्ध संकल्प पर निष्ठा रखकर अपने ज्ञानकी मददसे अुसे अपने मार्गमें स्थिर और दृढ़ रहना चाहिये। अपना अभ्यास लगनके साथ बराबर जारी रखना चाहिये और अुसके लिअे प्रयत्नकी पराकाष्ठा करनी चाहिये।

चित्तकी स्वाधीनताके लिअे अभ्यासकी जरूरत

हमारा चित्त स्थिर, दृढ़ और पवित्र हो जाय, तो अुसकी सुप्त शक्तियां अपने आप जाग्रत हो जाती हैं। अुन शक्तियोंकी मददसे श्रेयार्थी साधकको आगेके मार्गका ज्ञान हो जाता है। ज्ञानके साथ धैर्य और धैर्यके साथ शान्ति तथा प्रसन्नता मिलने लगती है। तब वह किसी भौतिक सुखसे लुब्ध होकर अुसके अधीन नहीं होता; अथवा किसी दुःखसे अुद्विग्न होकर अुसके आगे हार नहीं मान लेता। अुसके शरीर पर शारीरिक दुःखके परिणाम थोड़े-बहुत दिखाअी दें, तो भी अुसके चित्तमें दीनता नहीं आती या अुसके चित्तकी स्थिरता भंग नहीं होती। कोअी भी प्रयत्नशील मनुष्य चित्तकी यह अवस्था प्राप्त कर सकता है। परन्तु यह बात कभी हमारे ध्यानमें ही नहीं आती। यह धारणा गलत है कि चित्तको अपने बसमें रखनेकी कोशिश करना, अिस दृष्टिसे अुसका अभ्यास करना केवल साधु-संतों या योगी-महात्माओंका काम है। क्या कभी अैसा कहा जा सकता है कि दुनियामें अन्न-पचनकी जरूरत कुछ खास आदमियोंको ही है या अुनसे ही वह बात हो सकती है और दूसरोंको अिसकी बिलकुल जरूरत नहीं या अुनसे यह बात नहीं हो सकती? भोजन करनेवाले प्रत्येक मनुष्यको जैसे अुसे पचानेकी और शरीर धारण करनेवाले हरअेकको शरीर अच्छा रखनेकी जरूरत है, वैसे ही प्रत्येक मनुष्यको अपना चित्त शुद्ध रखनेकी भी आवश्यकता है। जिसके चित्तमें काम, क्रोध और लोभ पैदा हो सकते हैं, जिसके चित्तमें आशा, तृष्णा और वासनाका विद्रोह होता है, जिसके चित्तमें अनेक मलिन वृत्तियां अुठकर अुसे कुमार्गमें ले जा सकती हैं, अुस आदमीको, चाहे वह साधु, संत, योगी और महात्मा हो या साधारण आदमी हो, अपना चित्त स्वाधीन, शुद्ध और दृढ़ रखना आना ही चाहिये। साधु-संत तो चित्त स्वाधीन रखकर शान्ति प्राप्त करें और साधारण लोग अपनी मलिन वृत्तियोंके कारण अपने और दूसरोंके जीवनका नाश करें, अैसी अीश्वरकी आज्ञा, योजना या अिच्छा नहीं है, यह बात हमें निश्चयपूर्वक समझ लेनी चाहिये और हममें से हरअेकको अपना शरीर निरोगी और चित्त शुद्ध और दृढ़ करनेका प्रयत्न करना चाहिये। चित्तकी मलिनता, पंगुता, पराधीनता, अस्थिरता

और सद्गुणोंकी न्यूनता मानवताको शोभा नहीं देगी। अिन दोषोंके लिअे हमें शर्म आनी चाहिये और अुन्हें नष्ट करनेका हमें निश्चय करना चाहिये। अिसके लिअे हमें अुचित अभ्यास करना चाहिये और अैसा आत्म-विश्वास रखना चाहिये कि हम अपने अभ्यासकी सहायतासे अिस मार्गमें निश्चित सफलता प्राप्त करेंगे।

अभ्यासकी पूर्व तैयारी

प्रत्यक्ष रूपसे यह अभ्यास शुरू करनेसे पहले मनुष्यको अंतर्मुख होकर आत्म-परीक्षण करनेकी आदत डालनी चाहिये। अुसे अपने अंतर्बाह्य जीवनका निरीक्षण कर लेना चाहिये। पहले अुसे यह देखना चाहिये कि चित्तको सहज ही अस्थिर, चंचल और मलिन करनेवाली अंतर्बाह्य बातें और कारण कौनसे हैं। अपने व्यवहारोंको अच्छी तरह परख लेना चाहिये। फिर अुन कारणों और व्यवहारोंमें दिखाअी देनेवाली अनुचित बातें पहलेसे ही छोड़ देनी चाहियें। असत्य, अप्रामाणिकता, दुष्टता, कपट, दंभ आदि दुर्गुणोंको त्याग देना चाहिये। व्यसन, बुरी आदतें, आलस्य, जड़ता, कुमित्र और समय खराब करनेवाली और बार-बार लालचमें फंसा-नेवाली सब बातोंका त्याग करना चाहिये। अुनका मोह कम न किया जा सके, तो भी अुसमें वृद्धि हो अैसा कुछ नहीं करना चाहिये। सद्व्यवहारसे आजीविका चलाकर अपनी जिम्मेदारियां पूरी करनेकी कोशिश करनी चाहिये। शरीर, कपड़े, काममें आनेवाली चीजें, अपनी जगह वगैरा साफ रखनेका आग्रह रखना चाहिये। बोलनेमें विवेक रखा जाय, सत्य और परिमितता रखी जाय और वाणी मधुर रखी जाय। अति वाचालता, कर्कशता तथा अमर्यादित, कठोर, तीव्र, आक्रोशयुक्त, असत्य, अविवेकी, निष्कारण और अप्रिय भाषण — वाणीके ये सब दोष दूर कर दिये जायं। खान-पान शुद्ध, सात्त्विक और पौष्टिक रखा जाय; अुसमें भी परिमितता रखी जाय। अुग्र और तीव्र स्वादवाला और मादक खान-पान न किया जाय। हमेशा थोड़ी भूख रखकर खाया जाय। हम पेटू न बनें। भोजन करते समय और बादमें प्रसन्न रहें। संतापमें, अुद्वेगमें और क्षुब्ध तथा अप्रसन्न स्थितिमें अन्न-ग्रहण न किया जाय। अिसी तरह सारा चित्त भोजनमें ही रखकर या असंतुष्ट होकर अुसकी चर्चा या छानबीन करते

हुअे भोजन न किया जाय। आहारकी शुद्धि पर शरीर, प्राण और चित्तकी शुद्धि आधारित है। अन्नकी शुद्धि तथा भोजनके समयके संकल्पके अनुसार शरीरमें रस बनते हैं। अिसलिअे भोजनके समय चित्तमें अैसे संकल्प रखने चाहिये, जिनसे अमृततुल्य प्राणदायक सात्त्विक परिणाम पैदा हों। हम स्वयं परिश्रमी बनें। सेवा या कोअी भी सत्कर्म करनेमें हमें आलस्य या शर्म न मालूम हो। निन्दा और कुसंगसे बचें। सदा अच्छा पठन, मनन और चिन्तन करते रहें। सबसे महत्त्वकी बात यह है कि सत्संग रखा जाय। सत्संगका अर्थ किसी महान साधुका संग नहीं है। जिसकी संगतिमें हमारा मन पवित्र रहे तथा पवित्रताके लिअे हमारी अिच्छा और रुचि बढ़ती रहे वही सत्संग है। यह काम पठनसे हो सकता है, मननसे हो सकता है और रोजका नित्य कर्म सद्‌भावना और कर्तव्य-बुद्धिसे करते रहनेसे भी हो सकता है। हमारे बन्धु, पुत्र, मित्र, पड़ोसी, नौकर, मां, बाप, बहन, पत्नी वगैरामें से जिसकी संगतिसे हमारा चित्त निर्मल रहे और अुसकी निर्मलता बढ़ती रहे, अुसे सत्संग कहनेमें कोअी हर्ज नहीं। अगर साधु-महात्माओंकी संगतिसे हममें मोह और चंचलता बढ़ती हो, तो अुस संगको कमसे कम हम अपने लिअे वर्ज्य मानें। नियमित और व्यवस्थित बनें। दया, स्नेह, सरलता, सत्य, अुदारता, कर्तव्य-निष्ठा, संयम और औचित्य हमारे व्यवहारमें स्वाभाविक रूपमें ही दीखने चाहिये। हमारा शरीर, हमारी कर्मेन्द्रियां, ज्ञानेन्द्रियां और मन सबके चौबीसों घंटेके व्यापारकी तरफ हमारा पूरा ध्यान होना चाहिये। अुनकी अनुचित क्रियाओंको दृढ़तापूर्वक रोकना चाहिये। अपने आचार और विचारमें मेल रखना चाहिये। सवेरे जल्दी अुठकर, विशुद्ध होकर भावपूर्वक प्रार्थना या स्तोत्र बोलनेकी आदत रखें। खास तौर पर ध्यानमें रखनेकी बात यह है कि हृदयमें सदा विवेकको जाग्रत रखें।

हमें अिस प्रकार अपनी आदतें बनानेकी कोशिश करनी चाहिये। अिस कोशिशसे हमारी चित्तवृत्तिमें ज्यादा फर्क न पड़े, तो भी अनुचित व्यवहारका बलपूर्वक त्याग और आग्रहपूर्वक अच्छा बरताव तो हम निश्चित रूपसे कर ही सकेंगे। हम अपने श्रेयकी अिच्छा रखते हों, तो अिसमें हमें बलात्कारकी कोअी बात नहीं लगेगी। जीवनकी

अिस अवस्थामें हमारा चित्त अपने अधीन नहीं होता, अिसलिअे कुछ आदतोंमें आग्रह रखना पड़ेगा। अिससे हमारे पूर्वसंस्कारोंमें और चित्तमें धीरे-धीरे परिवर्तन होता रहेगा। कुछ बुराअियोंसे हम सहज ही बच जायंगे और कुछ अच्छे परिणाम भी जीवन पर होते दिखाअी देंगे और अुनके कारण हमें अिस मार्गमें रस आने लगेगा। अिससे हमारे शुभ संकल्पमें बल आयेगा। बुरी आदतें, व्यसन, फिजूल खर्च आदि अनुचित बातें जीवनमें मिटने लगेंगी। व्यर्थ बीतनेवाला जीवन अच्छे रास्ते और अच्छे कार्यमें लगने लगेगा। अपना समय व्यर्थ खोनेवाले लोग हमसे दूर हो जायंगे। कुमित्र हमें अपने आप छोड़ देंगे। दोष निकल जायंगे। हमारा रास्ता साफ हो जायगा। सन्मित्र मिलने लगेंगे। भले आदमी हमें ढूंढ़ते हुअे आयेंगे। अिस समय हमारे बाह्य कार्यके समान हमारा अन्तर शुद्ध न हुआ हो, तो भी हमारी यह अिच्छा और कोशिश बनी रहेगी कि वह शुद्ध हो जाय।

आसन और प्राणायामका अभ्यास

अैसी बाहरी तैयारी हो जानेके बाद हम अुसके आगेकी कोशिश शुरू करें। जब शरीर-शुद्धि, आचरण-शुद्धि और व्यवहार-शुद्धि जारी हो, तभी हमें प्राणशुद्धिकी तरफ मुड़ना चाहिये। अिसके लिअे प्राणायाम जरूरी है। थोड़ेसे आसन सीख लें। यह ध्यानमें रखें कि हमें प्राणायाम और आसनों द्वारा प्राणकी और शरीरकी भी शुद्धि करनी है। प्राणायामसे फेफड़ोंकी अशुद्ध हवा बाहर निकाली जाती है और हरअेक दीर्घ श्वासके साथ बाहरकी शुद्ध हवा भीतर ली जाती है। जब यह क्रिया जारी हो तब हर बार जो भीतरी और बाहरी कुंभक होगा अुससे चित्तकी चंचलता कम होगी। प्राण और सूक्ष्म वायुवाहिनियों पर अिसका अच्छा असर होता है। आसन और प्राणायामके अभ्याससे पाचन-क्रिया सुधरती है। जठराग्नि ठीक तरह काम करने लगती है। आसनोंके कारण हल्का व्यायाम होता है और हड्डियोंके सांधोंमें अिकट्ठा मल ढीला होकर निकल जाता है। शरीरमें स्फूर्ति और अुत्साह बढ़ने लगता है। अैसा मालूम होता है मानो नित-नूतन चैतन्यका संचार होता

हो। संक्षेपमें आसन और प्राणायामसे शरीरकी निरोगिता और शुद्धिमें बड़ी मदद मिलती है।

अभ्यासके लिअे स्थान और समय

अिस अभ्यासके लिअे कुछ दिन स्वतंत्र रूपसे देनेकी जिसकी परिस्थिति हो, वह दूर अेकान्तमें शान्त स्थान पर जाकर यह अभ्यास करे। जिसकी अैसी स्थिति न हो, वह अपनी परिस्थितिके अनुसार सबसे शान्त जगह पर अभ्यास करे। अिस अभ्यासके लिअे प्रातःकालसे पहलेका समय सबसे अधिक अनुकूल है। रातकी विश्रांतिसे सब थकावट अुतर जाती है और शरीर तथा मन स्वस्थ हो जाते हैं। अुस समय प्रवृत्तिकी शुरुआत नहीं होनेके कारण अुनमें चंचलता नहीं होती। प्रवृत्तिमें लग जानेके बाद चित्त स्वाभाविक ही रजोगुणी हो जाता है। अिसलिअे पूरी विश्रांति मिल जानेके कारण जड़ता और तमसे बाहर निकले हुअे चित्तको रजोगुणी होनेसे पहले ही सत्त्वगुणी विचारमें, अभ्यासमें लगा दिया जाय और अपने भीतरके शुद्ध रजका हम अिस काममें अुपयोग कर लें, तो हमारे प्रयत्नमें जल्दी सफलता मिल सकती है। यह अभ्यास हम नदीतट पर, जलाशयके पास या पर्वत, पहाड़ी या टेकरी जैसी अूंची जगह पर अेकान्तमें करनेका क्रम रखें, तो हमें सृष्टिकी अनुकूलताका अनुभव और लाभ स्वाभाविक ही अधिक मिलेगा। सारी सृष्टि अंधेरेसे अुजेलेमें आ रही है; पेड़, पत्ते, फूल सब अपने ढंगसे प्रफुल्लित हो रहे हैं; दसों दिशायें तेजसे भर रही हैं; पशुपक्षी, जीवजन्तु जागृतिके मार्ग पर हैं — अैसे समय जो भी संकल्प हम करते हैं, वह आसानीसे चित्त पर मजबूतीसे स्थिर हो जाता है। जैसे जैसे यह समय बीतता है, वैसे वैसे सृष्टिमें गड़बड़ शुरू होती है। सूर्यकी प्रखरता अधिक मालूम होने लगती है। हमारा चित्त भी प्रवृत्तिमय बनकर चंचल होता जाता है। अिसीलिअे सब प्रकारसे अुचित और अनुकूल प्रातःकालमें स्नानादि द्वारा पवित्र होकर पूर्वाभिमुख या अुत्तराभिमुख बैठकर रोज नियमित रूपसे आसन-प्राणायामका अभ्यास किया जाय।

२

ध्यानाभ्यासका मार्गदर्शन — २

आसनोंके अभ्याससे आसनकी स्थिरता और प्राणायामसे प्राणकी शुद्धि किसी हद तक सिद्ध हो जानेके बाद साधक ध्यानाभ्यास शुरू करे।

अेकाग्रताके लिअे अंतर्बाह्य प्रतीक

जरा भी अस्वस्थता मालूम हुअे बिना साधक जिस आसन पर कुछ समय स्थिरतासे बैठ सके अुसीको अभ्यासके लिअे चुनना चाहिये। अुस पर सीधे (मेरु-दण्ड सरल रखकर) बैठकर और परमात्माका चिन्तन करके अपने ध्येय और सत्संकल्पका वह स्मरण करे, और अुस स्थान पर चित्तको अेकाग्र करनेका प्रयत्न करे, जो अुसे सहज ही आकर्षक लगे। चित्त अेकाग्र करनेके लिअे बाहरी साधन या वस्तुओंकी आवश्यकता जितनी कम होगी, अुतनी अभ्यासमें जल्दी सिद्धि मिलेगी। नासाग्र, हृदयका मध्यभाग, भ्रूमध्य, श्वासोच्छ्वास, प्रणव, नामजप — अिनमें से किसी पर भी चित्तकी धारणा की जा सके तो अच्छा है। अिनमें से किसी पर भी चित्त स्थिर न हो सके, तो दिशा, तारा, अग्नि, दीपक, नीलवर्णकी गोल आकृति — अिनमें से जिस किसी पर भी सध सके चित्तको स्थिर करनेकी कोशिश की जाय। यह भी न हो सके तो दिव्य गुणोंवाले पुरुषकी मूर्तिका अन्तरमें चिन्तन किया जाय। वह भी न किया जा सके, तो अुसका चित्र तैयार करके अुसे सामने रखकर अुसके भ्रूमध्य पर अपनी दृष्टि स्थिर की जाय। वहां भी चित्त न लगे तो ध्यानाभ्यासके लिअे अभी मेरी पात्रता नहीं, अैसा समझकर साधक सत्संग बढ़ाये, सत्पुरुषोंके चरित्र पढ़े, अुनके गुणोंका विचार करे, अुन गुणोंका अनुकरण करनेका प्रयत्न करे और प्रकट नामजप करे। प्रार्थना और स्तवन द्वारा चित्तशुद्धिकी कोशिश करे। परन्तु श्रेयका मार्ग छोड़कर अविवेकी न बने। अिस प्रकारका अपने अनुकूल साधन करते-करते चित्तमें अेकाग्रता प्राप्त करनेकी शक्ति आ जायेगी। अुदात्तता और अुदारतासे कर्तव्य करते-करते भी चित्तका चांचल्य कम हो जाता है और अुसकी

सुप्त शक्ति जाग्रत होती है। कालान्तरमें वह अभ्यासके लिअे योग्य बन जाता है।

साक्षीवृत्तिकी आवश्यकता

चित्तको अेकाग्र करनेकी आदत न होनेसे वह शुरूमें स्थिर नहीं होता। जिस वस्तु, संकल्प, विचार या गुण पर हमने धारणा की हो, वहांसे चित्त बार-बार हटेगा। अुस वक्त अुसे नाम पर स्थिर करनेकी कोशिश की जाय। वहां भी स्थिर न हो तो मन ही मनमें स्तवन या स्तोत्र बोलने लगें और अुसके अर्थ या भावमें अुसे तन्मय करनेका प्रयत्न करें। अिस प्रयत्नसे भी चित्त अेकविध न होकर अमर्यादित रूपमें तरंगाकार होता हो तो अुसे अेकविध करनेका आग्रह अुस समय छोड़ दिया जाय। परन्तु साधक अपनी स्थूल बैठक यानी अपना आसन और अपना संकल्प न छोड़े। चित्त जैसा तरंगाकार हो वैसा अुसे होने दे। परन्तु अुस समय अुसकी हर तरंगको जाननेवाली अेक जाग्रत और साक्षीवृत्ति निर्माण की जाय। वह वृत्ति अितनी जाग्रत रहनी चाहिये कि चित्तकी प्रत्येक तरंग पर, गति पर, अुस साक्षीवृत्तिका पहरा रहे। कभी-कभी यह साक्षीवृत्ति तरंगकी मग्नतामें बह जाय या डूब जाय, तो भी हमारा मूल संकल्प अुस वृत्तिको बार-बार जाग्रत करेगा। अुस साक्षीवृत्तिसे सब तरंगोंका निरीक्षण किया जाय। अिस प्रकार चित्तकी प्रवाहित शक्तिका विभाजन होकर ज्यों-ज्यों साक्षीवृत्तिकी जागृति अखण्डित रहने लगेगी, और ज्यों-ज्यों चित्त अुसी वृत्तिसे भरता रहेगा, त्यों-त्यों संकल्प-विकल्पात्मक तरंगोंका जोर मन्द पड़ेगा और क्षीण होते होते अन्तमें वे संकल्प-विकल्प अपने आप बंद हो जावेंगे। अुनके बन्द होते ही साधकको फिर अपना चित्त मूल धारणा पर लानेका प्रयत्न करना चाहिये।

चित्त सदा कोअी न कोअी रस ढूंढ़ता है। जब तक रस नहीं मिलता तब तक वह अैसा विषय ढूंढ़ता रहता है जिससे रस मिले।

चित्तशक्तिकी जागृति

अिस अवस्थामें लगता है कि चित्त स्वभावसे चंचल ही है। अपनी जरूरतका रस और विषय मिलते ही वह स्वभावतः अुसमें तन्मय हो जाता है। अुसका यह धर्म ध्यानमें रखकर हमें अुसे अच्छे विषयकी

तरफ मोड़ना चाहिये और वहां अेकाग्र करना चाहिये। चित्तकी अेकाग्रतामें महान शक्ति भरी है। ज्ञानके पीछे अेकाग्रतासे लगनेके कारण ही दुनियामें महान आविष्कार हुअे हैं और होते हैं। हम भी शुद्ध संकल्प पर चित्तको केन्द्रित कर सकें तो हममें महान शक्ति जाग्रत होगी। सूर्यकी किरणोंको विशेष कांचकी मददसे अेक जगह केन्द्रित करनेसे अुन्हीं किरणोंमें जलानेकी शक्ति पैदा हो जाती है। पानीके प्रपातको सतत अेकसी विशेष अूंचाअी परसे निश्चित गतिसे और निश्चित मात्रामें बहता रखा जा सके, तो अुससे प्रचण्ड शक्ति पैदा होती है। बढ़अीका गिरमिट (बरमा) लकड़ी पर अेक ही जगह घुमाते रहनेसे लकड़ीमें छेद हो जाता है। अिसी तरह चित्तशक्तिको विषयाकार बनाकर फैलने न दिया जाय और अेक ही शुभ संकल्प पर केन्द्रित किया जाय, तो अुससे महान शक्ति निर्माण होती है। संकल्पकी दृढ़ता, वृत्तिको केन्द्रित करनेमें तीव्रता और सातत्य, वृत्तिको बाहर फैलने न देनेसे यानी चित्तशक्तिका अपव्यय न होने देनेसे हमारी अन्तःशक्तिके संचय आदि अनेक कारणोंसे हमें अपने प्रयत्नमें सफलता मिलती है। अिसलिअे साधक अिन सब बातोंको ध्यानमें रखकर अभ्यासमें लगन लगाये रखे।

श्रेयके लिअे साधकमें केवल अुत्कंठा हो परन्तु अुसकी तुलनामें अभ्यासका बल कम हो, तो अुसमें केवल व्याकुलता बढ़ने लगेगी।

व्याकुलता और अुसका शमन

अुत्कंठाके अनुसार अभ्यास और मार्गदर्शन न मिलनेसे विलक्षण व्याकुलता बढ़ जाती है। अैसे अनेक अुदाहरण हमारे सन्तोंके अुपलब्ध हैं। अिस मार्गमें अुत्कंठा होनी चाहिये, तीव्र अिच्छा होनी चाहिये, परन्तु गलत व्याकुलताकी जरूरत नहीं है। योग्य मार्ग मिले तो प्रयत्नमें क्रमशः सफलता मिलती है और अुसके कारण धीरे-धीरे अुत्कंठाका शमन होता रहता है। अुस सफलताके साथ ही साधकका आत्म-विश्वास बढ़ता जाता है। साधन पर श्रद्धा जमती है और बढ़ती जाती है। अिसलिअे साधकको अपने चित्तका, बर्तावका और अभ्यासमें क्या क्या व्यत्यय और अनुभव होते हैं अुनका हमेशा निरीक्षण करना चाहिये। सफलता न मिले और केवल अुत्कंठा बढ़े, तो अुसे समझना चाहिये कि अुचित साधन नहीं

मिला; या अुस साधनके योग्य अुसकी परिस्थिति और अन्तरकी सात्त्विकता नहीं है। सफलता न मिलती हो और अुत्कंठा घट रही हो तो यह समझना चाहिये कि श्रेयके लिअे अुसकी अिच्छा कम हो रही है और अुसके चित्तका भीतरसे किसी और चीजके प्रति आकर्षण है। अिस प्रकार साधकको समय समय पर अपने चित्तकी जांच करनी चाहिये। अभ्यासमें प्रगतिके बदले केवल व्याकुलता ही बढ़ती हो, तो विवेकसे अुसे कम करके अभ्यासमें अुचित परिवर्तन कर लिया जाय। सत्संग रखा जाय। मनको शान्त किया जाय। थोड़े समय आराम करके फिर अभ्यास शुरू किया जाय। चित्तके पूर्वसंस्कारों या अुसकी अशुद्धिके कारण अभ्यासका बल कम होता हो, तो अुस समय प्रार्थनाका क्रम रखा जाय। हृदयपूर्वक की गअी प्रार्थनामें बहुत बड़ा सामर्थ्य है। प्रार्थनाके तीव्र संकल्पसे अशुभ संस्कारोंका बल घट जाता है। शुभ संस्कार जाग्रत होते हैं और दृढ़ होते हैं। ज्ञानका अुदय होता है। सद्‌गुणोंमें प्रगति होती है। अिस प्रकार हमें अपना हेतु सिद्ध करनेमें अुस समयकी प्रार्थना और स्तवन सहायक होंगे।

अिस प्रयत्नसे हमारे चित्तमें बल बढ़ेगा। बादमें हम धारणाको सिद्ध करनेमें लग जायं। अुससे वृत्ति विचलित होती हो, तो चित्त कहां-कहां जाता है, किसमें रमता है, किस विषयमें अनजाने तन्मय होता है, अुसमें से कब बाहर निकलता है — साधकको अिन सब बातोंकी शोध करनी चाहिये। अुनके कारण ढूंढ़ने चाहिये। कारण मिल जानेके बाद अुस स्थितिसे छूटनेके लिअे जीवन-व्यवहारमें परिवर्तन करना जरूरी और संभव हो तो करके देखें। किसीकी संगतिसे चित्तमें विक्षेप होता हो तो अुस संगतिसे बचे। अभ्यासके समय कौन-कौनसी अिन्द्रियोंके कौनसे रस बाधक होते हैं, कौनसे संस्कार, कल्पनायें और भावनायें विघ्न डालती हैं, अिसकी जांच की जाय और अुन्हें विवेकसे दूर किया जाय। जीवन-सिद्धिके मार्गमें ये रस कितने विघातक होते हैं, अिसका बार-बार विचार किया जाय। मनको निर्मल बनाया जाय। अभ्यासमें निद्रा, तंद्रा या जड़ता आती हो तो अिसका विचार किया जाय कि

अभ्यासमें आनेवाले विघ्न

रोजकी विश्रांति हमारे लिअे काफी है या नहीं। काफी आरामके बाद भी अभ्यासके समय तन्द्रा आवे, तो यह देखना चाहिये कि खानपानमें कोअी दोष तो नहीं है? यह हमारा रोजका क्रम है कि चित्त विषयसे निकलते ही निद्रामें विलीन हो जाता है। जब हम चित्तको अेक केन्द्र पर लानेका प्रयत्न करते हैं, तब दूसरे सारे विषयोंको, स्मृतियोंको, वृत्तियोंको हटाकर चित्तमें अेक ही संकल्प रखनेका प्रयत्न करते हैं। अैसे समय दूसरे तमाम विषयोंसे निकला हुआ चित्त हमारे अिच्छित संकल्पको, गुणको या विचारको धारण न कर सके, तो हमारी हमेशाकी आदतके मुताबिक वह निद्रामें लीन हो जाता है। निद्रासे पहलेकी स्थिति तंद्रा है। तंद्रासे पहलेकी स्थिति जड़ता है। चित्त अन्य विषयोंसे छूट जाय, परन्तु शुभ संकल्प धारण न कर सके, तो वह जड़तामें यानी तमोगुणमें प्रवेश करता है।

प्रज्ञाप्राप्ति

हममें अपनी अशुद्ध वृत्तियोंका निरोध करके शुभ संकल्प धारण करनेकी और वहीं चित्तकी सारी ताकत केन्द्रित करनेकी शक्ति आनी चाहिये। केन्द्रित हो जानेके बाद अुस संकल्पको प्राधान्य देकर अुससे सम्बन्धित गुणोंकी और विचारोंकी स्फुरणा होने लगेगी। हमारे ध्यानमें आने लगेगा कि अुस संकल्पका, गुणोंका और विचारोंका अपनी और मानव-जातिकी अुन्नतिके साथ कैसा और कितनी तरहका संबंध है। मानव गुण-धर्म, संस्कार और स्वभाव पर हमारे धारण किये हुअे संकल्पका क्या परिणाम होगा, अिसकी हमें यथार्थ कल्पना होने लगे तो समझना चाहिये कि अभ्याससे हमारी प्रज्ञा शुद्ध हो रही है। अुसे अभ्यासकी पूर्णता न समझ-कर अितना ही समझना चाहिये कि हमें प्रज्ञाके रूपमें अभ्यासका फल मिल रहा है।

विक्षेपोंकी चढ़ती-अुतरती गति

साधक यह भरोसा न रखे कि अभ्यासकी अुच्च स्थितिमें पहुंचने पर भी ध्यानके समय हममें अशुभ स्मृति जाग्रत नहीं होगी। अैसी स्मृति जाग्रत हो अुठे तो अुससे घबराना या निराश न होना चाहिये और न अुसीमें रममाण रहकर मग्न होना चाहिये। अैसे समय सावधानी न छोड़कर अुस

स्मृतिको मिटानेकी कोशिश करें। यह न सध सके तो देखना चाहिये कि अुस स्मृतिकी गति किस ओर है। यह स्मृति अंतरमें से अुठी है या किसी बाह्य निमित्तसे अुठी है? क्या वह स्मृति वृत्तिका रूप धारण कर रही है? अुसमें से भी सावधानीके साथ अभ्यास पर आनेका प्रयत्न करना चाहिये। वह भी न किया जा सके तो अिस पर नजर रखी जाय कि चित्तका प्रवाह कैसे-कैसे रंग धारण करता है। हम विशेष सावधान रहें और संकल्प पर आनेकी हममें लगन हो, तो चित्त अुस प्रवाहसे छूटकर पुनः अभ्यास पर आ जायगा। अैसे समय चित्तमें अुठनेवाली अशुभ स्मृतिकी गति, अुसकी चंचलता, बढ़ती मात्रामें है या घटती मात्रामें, अिसकी साधकको जांच करते रहना चाहिये। चित्तमें अुठनेवाली स्मृतिका वृत्तिमें होनेवाला स्पष्ट रूपान्तर; बादमें अुसकी क्षणिकता या दीर्घता; अुसकी मन्दता या तीव्रता; अुसमें से अुठनेवाले दूसरे संकल्प-विकल्प; अुसके बाद अुसीमें से अेकसे अेक अधिक अशुद्ध वृत्तियोंका चित्तमें होनेवाला अुद्भव; अुसके कारण होनेवाली व्याकुलता; अुस व्याकुलतासे स्थूल विषयोंकी ओर होनेवाला चित्तका कम-ज्यादा आकर्षण; और अन्तमें अिन सबमें से चित्तको अभ्यास पर लानेके लिअे आवश्यक प्रयासकी कम या अधिक मात्रा — अिन सब परसे साधक जान सकता है कि हमारे चित्तकी अवस्था किस प्रकारकी है और वृत्तियोंका जोर बढ़ रहा है या घट रहा है। अशुद्ध वृत्तियोंकी बढ़ती हुअी तीव्रता या विविधता और अुनके साथ होनेवाली चित्तकी तदाकारता और स्थूल विषयोंकी ओर आकर्षण — अिन सब बातोंसे समझना चाहिये कि वृत्तियोंकी गति बढ़ रही है और वह अभ्यासके लिअे बाधक है। स्मृतिके रूपमें वृत्तिके जाग्रत हो जानेके बाद चित्त अुसीमें न रमता रहे, अुसके प्रवाहमें न बह जाय और जल्दी सचेत होकर अपने साधनमें लग जाय, तो यह समझना चाहिये कि अशुद्ध वृत्तियां क्षीण होने, अस्त होनेके मार्ग पर हैं। अुसे यह विश्वास रखना चाहिये कि अिसी अभ्याससे वे अधिकाधिक क्षीण होती जायंगी। अभ्यास-कालमें धारण किये हुअे संकल्पके सिवा दूसरी अच्छी-बुरी वृत्तियां और संस्कार चित्तमें जाग्रत होते रहते हैं। परन्तु अभ्यासकी दृष्टिसे ये दोनों बाधक ही होते हैं।

धारण किये हुअे संकल्पके सिवा या अुस संकल्पमें दृढ़ता लानेवाले किसी और संकल्प या वृत्तिके सिवा अन्य किसी भी अच्छी या बुरी वृत्ति या संस्कारकी जागृति अभ्यासमें सहायक नहीं हो सकती। अिसलिअे साधकको जानना चाहिये कि अुसमें कैसी वृत्तियां अुठती हैं। ध्येयके लिअे अुत्कंठा, अुसके लिअे अुचित साधन-मार्ग, अभ्यासके लिअे सतत प्रयत्नशीलता और सावधानी आदि बातें साधकमें जिस मात्रामें होंगी, अुसी मात्रामें अुसे जल्दी या देरसे अपने प्रयत्नमें सफलता मिलेगी।

ध्येय-सम्बन्धी जागृति

साधकके मार्गमें बाहरकी बातोंकी अपेक्षा अुसके अपने पूर्वसंस्कार और आदतें ही ज्यादा बाधक होती हैं। धारण किये हुअे संकल्प पर स्थिर न रहकर चित्त कभी भी अनजानमें हटकर अेक विचारसे दूसरे पर और दूसरेसे तीसरे पर — अिस तरह चंचल बनते बनते कहीं न कहीं हमेशाकी आदतके अनुसार किसी भी रसानुभवकी स्मृतिमें रम जाता है और वहीं लीन होकर शान्त होता है। अुसके वहांसे थोड़ा बाहर निकलनेके बाद साधक सावधान होता है। वह फिर अपने चित्तको पहले संकल्प पर केन्द्रित करनेके प्रयत्नमें लग जाता है। बहुत बार यह हाल होने पर अुसीमें से अेकाग्रता प्राप्त होती है और वह दीर्घकाल तक टिकती है। अिस प्रकार प्रयत्न करते-करते साधकको सफलता मिलने लगती है। अभ्यासमें जब थोड़ी गति बढ़ने लगती है, तो अुसे नित्य किये बिना साधकको चैन नहीं पड़ता। आगे चलकर अुसे अिसमें काफी आनन्द मिलने लगता है। यह स्थिति भी विक्षेपरहित नहीं होती। निद्रा और तंद्राको दूर करके पूर्वसंस्कारोंका बल घटाते-घटाते और चंचलता मिटाते-मिटाते साधक आगे बढ़े, तो भी अुसके चित्तमें किसी समय पूर्वस्मृति और संस्कार जाग्रत हो अुठते हैं। अभ्यासमें सफलता प्राप्त हो जानेके बाद यह करेंगे और वह करेंगे, अैसे तरह तरहके संकल्प-विकल्प चित्तमें अुठने लगते हैं। वे अभ्यासमें चंचलता लाते हैं। अुन्हें भी हटाकर साधक आगे बढ़ता है। अुसके ध्यानमें स्थिरता आती है। जागृति आती है। अुसकी प्रज्ञा प्रखर होती है। अुसे स्फूर्ति और प्रसन्नता अनुभव होने लगती है। अिन्द्रियोंकी सूक्ष्म शक्तियां जाग्रत होने लगती हैं। मेरुदंडसे

स्फुरण हो रहा है तथा प्रवाह चल रहा है, अैसा अनुभव होता है। नाड़ी-स्फुरण, मंद श्वासोच्छ्वास, प्रकाश, ध्वनि, स्पर्श आदि तरह-तरहके अपूर्व, सूक्ष्म और सुखद अनुभव होने लगते हैं। वाणीमें स्फूर्ति और तेजस्विता आती है। शरीर हलका मालूम देने लगता है। अिस प्रकार ज्ञानेन्द्रियोंकी शुद्धि और तीक्ष्णताके कारण पंचविषयोंके भिन्न-भिन्न प्रकारके सूक्ष्म अनुभव साधकको होने लगते हैं। अिन अनुभवोंसे साधकको समझना चाहिये कि अुसकी ज्ञानेन्द्रियां शुद्ध और तीक्ष्ण हुअी हैं और अुनकी बढ़ती जानेवाली तमाम शक्तियोंका अुपयोग अिसी अभ्यासमें करते रहकर अुसे आगे बढ़ना है। अिस तरह अभ्यासमें विश्वास रखकर अुसे अधिक वेग देना चाहिये। यदि साधक अैसा समझनेके बजाय अुस अल्प अनुभव और शक्तिके मोहमें फंस जाय और अुसमें रम जाय, तो वह अभ्यासमें आगे नहीं बढ़ सकता। अिस स्थितिमें अुसके शब्दमें माधुर्य पैदा होकर अुसे थोड़ी शब्दसिद्धि भी प्राप्त होगी। नेत्रोंमें तेज आकर अुनका प्रभाव भी पड़ने लगेगा। कदाचित् शक्ति-संचरण भी अुसे सिद्ध हो जायगा। परन्तु अिनमें से किसी बातमें अुसका सच्चा कल्याण नहीं। अभ्यासकी दृष्टिसे ये सब विक्षेप हैं। अिन शक्तियोंका अुपयोग आगेके अभ्यासमें कर लेना ही साधकका काम है। अिसके लिअे अुसे सतत जाग्रत रहकर किसी भी प्रकारके मोहमें नहीं फंसना चाहिये। विक्षेपोंको पहचानकर हर हालतमें अुनसे बचना ही चाहिये। यह समझकर कि अुनमें तन्मय होने या अुनके द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त करनेमें मेरा कल्याण नहीं है, साधकको अैसे समय अपना ध्यान संकल्प-सिद्धि, चित्तशुद्धि और सात्त्विकता पर ही स्थिर रखना चाहिये और बाकीकी बातोंके प्रति वैराग्य-वृत्ति रखनी चाहिये। ध्यानाभ्यासके दरमियान जो सात्त्विकता अनुभवमें आती है, अुसका जितना अंश प्रत्यक्ष व्यवहारमें टिके अुतनी ही अुसकी सच्ची सात्त्विकता है, अैसा अुसे समझना चाहिये। और अुस सात्त्विकताका व्यवहारमें अुपयोग करते समय ध्वनि, प्रकाश वगैरा सूक्ष्म चिह्नोंका अनुभव न हो, तो अुसके लिअे साधकको चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं। क्योंकि ये चिह्न सच्ची सात्त्विकताके नहीं, हैं, अुसकी ज्ञाने-न्द्रियोंकी सूक्ष्म शक्तियों और अुनकी तीक्ष्णताके लक्षण हैं। न तो वे

सात्त्विकताके लक्षण हैं और न अिस प्रकारकी तीक्ष्णता प्राप्त करना अुसका ध्येय है। दिव्य या अद्‌भुत लगनेवाली किसी भी केवल प्रतीति या शक्तिको महत्त्व न देकर अुसे यह देखना चाहिये कि अुसके साथ-साथ अुसके अशुद्ध संस्कारोंका बल घट रहा है और सात्त्विकता बढ़ रही है या नहीं। हमारी धारणाका यही हेतु है। अुसे अिस बातकी तरफ ध्यान देना चाहिये कि अुसका शुद्ध संकल्प व्यवहारमें भी जाग्रत रह सकता है या नहीं और अुसकी स्वप्नदशा भी अुत्तरोत्तर शुद्ध होती जा रही है या नहीं। अिस अभ्यासमें साधन और साध्य दोनोंकी तरफ सदा ध्यान देना पड़ता है। ध्यान करते करते साधकके चित्तकी स्थिति नित्य बदलती जाती है। अुस समय अुसकी ज्ञानेन्द्रियोंके मूल करण पर, अुनके गोलकों पर सूक्ष्म परिणाम होता है, जिसके परिणामस्वरूप अैसे अनुभव होने लगते हैं जिनकी पहले कल्पना भी न की गअी हो। अुनमें से किसी किसीकी अद्‌भुतताके कारण साधकका चित्त अुसीमें रमने लगता है। अिसी दिशामें शक्तिका विकास करनेका संकल्प रखा जाय, तो ज्ञानेन्द्रियोंकी वह सूक्ष्मता और शक्ति बढ़ाअी जा सकती है। ध्येयका विस्मरण हो जाय अथवा अुस पर दृढ़ न रहा जा सके, तो साधक अैसे आकर्षणमें फंस जाता है। कुछ लोग अिस दिशामें जिज्ञासाके कारण भी चले जाते हैं। परन्तु जिसके गले यह बात दृढ़तापूर्वक अुतर गअी हो और जिसे अिस बातका कभी विस्मरण न होता हो कि यह अभ्यास चित्तकी स्वाधीनताके लिअे है, और स्वाधीनता मानवताकी पूर्णताके लिअे है, वह कभी किसी आकर्षणमें नहीं फंसेगा।

अभ्यासका सार

साधकने ध्यानके लिअे बाहरकी चीज लेकर स्थूल ध्यानसे प्रारम्भ किया हो, तो भी ज्यों-ज्यों अुसकी वृत्ति स्थिर होती जायगी त्यों-त्यों अुसका बाह्य ध्यान छूटता जायगा और सूक्ष्म ध्यानमें अुसका प्रवेश होता जायगा। संकल्प, गुण, भावना और विचार, अिनमें से किसीको भी अन्तरमें संकल्पित स्थान पर वृत्तिका केन्द्र बनाना आ जाय, तो माना जा सकता है कि अभ्यासमें गति होने लगी है। अनुसंधान और प्रवाहका सातत्य अिसमें जरूरी है। ये दो बातें सिद्ध हो जायं तो चित्तमें स्थिरता आ जायगी।

चित्त दृढ़ हो जायगा। अभ्यास-कालमें चित्तमें अनेक शुभ भावनायें जाग्रत होती हैं। ये भावनायें अुचित कर्ममें परिणत होनी चाहिये। अुनके अिस तरह परिणत होनेसे अुन्हींके आधार पर दूसरी भावनाओंका भी अुदय होगा और ये भावनायें भी कार्यमें परिणत होने लगेंगी। अिस प्रकार सद्भावना, सत्कर्म और सद्‌गुण द्वारा हमारा जीवन अुत्तरोतर समृद्ध होता जायगा। हमारे जीवनके सब व्यवहारोंकी शुद्धि होगी और अुन सबका परिणाम हमें शान्तिके रूपमें मिलेगा। यह स्थिति प्राप्त करनेके लिअे साधकको ध्यानके अभ्यासके साथ ही अपना व्यवहार और जीवन अधिकाधिक शुद्ध बनानेका प्रयत्न करते रहना चाहिये। सत्कर्माचरण स्वभाव बन जाना चाहिये। अैसी कोशिशसे अशुद्ध वृत्तियोंका पूरी तरह नाश होगा या नहीं, यह आज निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। फिर भी अितना तो निश्चित समझना चाहिये कि अिस प्रयत्नसे हमारी अशुद्ध वृत्तियां धीरे-धीरे अितनी क्षीण हो जायंगी कि हमें चाहे जैसे अनुचित मार्गकी तरफ कभी घसीट कर नहीं ले जा सकेंगी और न अुनका कुछ बुरा असर ही हम पर होगा। हम अिस जीवनमें अितना भी साध सकें तो काफी है। हमारी अशुद्धि नष्ट हो जाय, हम सब वृत्तियोंको जान सकें, अुनकी अुत्पत्ति, स्थिति और लयका क्रम समझने लग जायं, हमारा चित्त अपने वशमें हो जाय और हमेशा वशमें रहे, सद्भावनायें जाग्रत हों, अुनका विकास हो और हम अुन्हें सत्कर्ममें परिणत कर सकें और अिस प्रकार चित्तकी शुद्धि और सद्‌गुणोंके साथ हममें पुरुषार्थकी वृद्धि हो, तो जीवनमें और कुछ करनेको रह नहीं जाता। यही सारे अभ्यासका सार है।

अभ्यासकी सिद्धि

अभ्यास करनेवाले साधकमें अनेक गुणोंकी जरूरत होती है। अुनमें भी तारतम्य रखना, मौका पहचानकर चलना और किसी भी प्रसंगमें अुचित मार्ग ढूंढ़ निकालना, अिन तीन गुणोंकी अत्यन्त आवश्यकता है। चित्तको स्वाधीन रखनेके लिअे अेकाग्रता, शुद्धता, दृढ़ता, कोमलता और स्थिरता जैसी चित्तकी अवस्थायें सिद्ध होनी चाहिये। अुन्हें सिद्ध करनेके लिअे चित्त-वृत्तियोंका निरीक्षण, परीक्षण, पृथक्करण, केन्द्रीकरण तथा अलग-अलग

स्थानमें संयोजन करना और अिनमें किस चीजकी कब और कितनी जरूरत है यह पहचानना चाहिये। पहचाननेके बाद तदनुसार व्यवहार करना आना चाहिये। चिन्तन, मनन, निदिध्यासन, अनुसंधान और अनुशीलन — अिनमें से हरअेक बात आवश्यकतानुसार करना आना चाहिये। वृत्ति दृढ़तापूर्वक कब धारण करना, कब छोड़ना, अेक वृत्तिमें से चित्तको दूसरी श्रेष्ठ वृत्तिमें कैसे लगाना, संकल्पको कैसे दृढ़ करना, अुसको दूसरे संकल्पमें कैसे विलीन करना आदि सब बातोंकी सिद्धिके लिअे साधकमें अुपर्युक्त गुणोंकी बड़ी जरूरत है।

मानव-जीवन विशाल है। अुसके सम्बन्ध व्यापक हैं। अुन सबके लिअे आवश्यक चित्तशक्ति और गुण हममें होने चाहिये। चित्तके कारण ही हमारा जगतके साथ सम्बन्ध है। अिस चित्तमें केवल अेकाग्रता, शुद्धता, कोमलता या केवल दृढ़ता हो, तो भी हमारा जीवन सार्थक नहीं होगा। जीवनमें कभी हमें अेकाग्रताकी जरूरत होती है, तो कभी चित्तशक्तिको कअी जगहों पर अेक साथ बांट देना पड़ता है। हरअेक प्रसंगका मर्म या रहस्य अुसी क्षण पहचानकर मनुष्यको अपने हित या रक्षाके लिअे अुसका अुपयोग करना पड़ता है। कभी चित्तको केवल स्थिर रखना पड़ता है, तो कभी कोमल और कभी न्याय-निष्ठुर बनना पड़ता है। अिसलिअे चित्तकी केवल अेकांगी स्थिति साधना अिस अभ्यासका हेतु नहीं है। किसी भी प्रकारकी अेकांगिता या अभ्याससे सहज ही आनेवाली शक्तिका दुरुपयोग करनेकी अिच्छा — अिन दोनोंमें से कोअी भी चीज हममें कभी पैदा नहीं होनी चाहिये। शरीर-स्वास्थ्य, आरोग्य और बौद्धिक तीक्ष्णता यानी किसी भी विषयको समझने योग्य बुद्धिकी पात्रताकी जीवनमें जितनी जरूरत है, अुससे भी अधिक जरूरत मनुष्यको चित्तकी स्वाधीनताकी है। अिसके लिअे जागृतिके सारे समयमें हमें अभ्यासी रहना चाहिये। नित्यके व्यवसायमें, कर्ममें, अपने चित्तको स्वाधीन रखनेका हमें अभ्यास होना चाहिये।

जो नित्यके जीवनमें ही चित्तकी शुद्धि, अुसकी स्वाधीनता, सद्भावनाओं और सद्गुणोंका विकास कर सकता है, अुसे आसनस्थ होकर चित्तको किसी अेक शुभ संकल्प पर खास तौर पर केन्द्रित करनेकी

जरूरत नहीं है। जो अपने मानव-कर्तव्य सात्त्विकता और निरहंकार भावसे स्वाभाविक रूपमें पूरे कर सकता हो या जिसमें कर्तव्य-कर्म करते करते अिस स्थिति तक पहुंचनेका विश्वास हो, अुसे अिस प्रकारके खास प्रयत्नकी जरूरत नहीं है। अुसे सिर्फ यह बात पूरी तरह समझ लेनी चाहिये कि चित्तकी स्वाधीनता प्राप्त किये बिना मानवता सिद्ध नहीं की जा सकती। किसी विशिष्ट प्रकारके साधनका आग्रह न रखकर साध्यके लिअे और साधनकी नैतिकता और सरलताके लिअे आग्रह होना चाहिये। अिसमें संदेह नहीं कि जो नित्यके साधारण व्यवसायी जीवनमें ही किसी विशेष प्रकारका साधन किये बिना भी अपने मानव-कर्तव्य पवित्रतासे, सरलतापूर्वक और निरहंकार होकर पूरे कर सकते हों वे धन्य हैं।

३

लय अवस्थाका शोधन

अलिप्त स्थिति

पिछले अध्यायमें मानवताकी दृष्टिसे चित्तकी स्वाधीनता कितनी जरूरी है यह बताया गया है। यह स्वाधीनता मनुष्यको विशेष अभ्यास द्वारा या हमेशाके जीवनमें ही अत्यन्त विवेक और सावधानीसे रहकर प्राप्त करनी चाहिये। अुसके बिना मानव-जीवनका अुन्नत होना संभव नहीं है। यह बात हमें निश्चित समझ लेनी चाहिये। चित्तके सदा स्वाधीन रहनेके लिअे अेकाग्रता, स्थिरता, दृढ़ता और शुद्धता — ये चार मुख्य सिद्धियां जरूरी हैं। पिछले अध्यायमें बताये गये अभ्याससे हम ये सिद्धियां प्राप्त कर सकें, तो हममें चित्तको स्वाधीन रखनेकी शक्ति आयेगी। आवश्यक प्रसंग पर चित्तवृत्तिका निरोध करना और अुचित वृत्तियोंको प्रेरणा और गति देना हम सिद्ध कर लें, तो जीवनकी सफलताके लिअे अधिक चित्त-शक्तिकी या वैसे अभ्यासकी मनुष्यको जरूरत नहीं है। अिस अभ्याससे हमारी धारणा-शक्ति और संकल्प-शक्ति बढ़ती है। चित्तमें दृढ़ता आती है। हममें अेक विवेक-प्रधान जाग्रत वृत्ति अखण्ड रूपमें काम करने लगती

है। वह हमारा स्वभाव बन जाती है। अेकाग्रताका अभ्यास करते समय जब चित्त चंचल और बेकाबू होकर बार-बार बंट जाता है और विक्षिप्त होकर संकल्प-विकल्पमें पड़ने लगता है, तब अुन सब पर ध्यान रखनेवाली अेक वृत्ति निर्माण करनी पड़ती है। वहींसे अिस जाग्रत वृत्तिका स्पष्ट रूपमें आरम्भ होता है। अुसे पिछले अध्यायमें 'साक्षी-वृत्ति' कहा गया है। वह केवल साक्षी यानी तटस्थ वृत्ति नहीं है; और न केवल जाननेवाली वृत्ति ही है। अुसका मुख्य अंश सावधानीका है, अर्थात् वह विवेकयुक्त होती है। चंचलताको ठीक समय पर रोक-कर चित्तको योग्य स्थानकी तरफ मोड़नेका भाव भी अिस वृत्तिमें होता है। अिस प्रकार अनेक महत्त्वकी वृत्तियोंसे मिलकर यह अेक वृत्ति बनी होती है। अिस वृत्तिका अिस अभ्यासमें बार-बार काम पड़ता है, अतः वह दृढ़ होती है। यह साक्षीवृत्ति दृढ़ होकर चित्तमें सहज भावसे रहने पर अुसका सभी कर्मों और वृत्तियोंसे अलिप्त रहनेवाली वृत्तिमें पर्यवसान होता है। वह सब वृत्तियोंको, सब गुणोंको, सब कर्मोंको, सब व्यवहारोंको और चित्तके सब परिवर्तनोंको जानती है, परन्तु खुद किसीमें रम नहीं जाती, कहीं भी तन्मय नहीं होती। वह तद्रूपताको जानती है, परन्तु खुद तद्रूप होकर नहीं रहती। वह सबको जानकर व परखकर, सबसे अलिप्त और सावधान रहकर, सतत कार्य करनेवाली वृत्ति है। जैसे-जैसे वह अभ्याससे जाग्रत, स्थिर, सूक्ष्म और दृढ़ होती जायगी, वैसे-वैसे अुसके निरीक्षण-परीक्षण और अुसके पृथक्करणसे बाहर किसी भी वृत्तिका अेक अंश भी नहीं बचेगा। वह साधकको किसी भी कर्ममें भान न भूलने देगी और अुसे योग्य मर्यादामें रखकर सुख-दुःख, आशा-तृष्णा और राग-द्वेषसे अलिप्त रखेगी। जीवनके हरअेक कार्यमें अुसके साथ रहकर वह अुसे धर्ममार्गमें स्थिर रखेगी। अिस प्रकार अभ्यास-कालमें और व्यवहारके समय वह सदा अुसके चित्तमें रहेगी और समय पाकर वह अुसका स्वभाव बन जायगी।

अिस प्रकारका अभ्यास किये बिना भी विवेकी, सावधान और संयमी मनुष्य दुनियाके व्यावहारिक कार्य करते हुअे अिस प्रकारकी अलिप्त और जाग्रत स्थिति प्राप्त कर सकता है। यह बात नहीं कि

वह नित्य आसनस्थ होकर अभ्यास करनेवालेको ही प्राप्त होती है। अलिप्तताकी यह भूमिका अैसे हर मनुष्यको प्राप्त हो सकती है, जिसका चित्तशुद्धि और सदाचरण पर जोर है, जो किसी भी कामके हेतु और परिणामका दीर्घदृष्टि और सब पहलुओंसे विचार किये बगैर अुसे शुरू नहीं करता, जो दक्षता और तत्परतासे तथा ज्ञानपूर्वक कार्य करते हुअे और कार्यके अन्तमें लाभ-हानिमें से कोअी भी परिणाम आने पर अपनी सावधानी नहीं खो बैठता और व्यवस्थित रूपमें कार्य करते हुअे भी निरहंकार आचरण करता है। यह भूमिका प्राप्त किये बिना कोअी भी मनुष्य सावधानी, अुदारता, दक्षता और विवेकपूर्वक व्यवहार नहीं कर सकता। यह संयमी जीवनके बिना प्राप्त नहीं हो सकती। कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों और चित्तके किसी भी अच्छे-बुरे वेगमें तन्मय होकर अुसीमें बह जानेवालेको यह स्थिति प्राप्त नहीं हो सकती। सब सद्भावनाओं और सद्गुणोंका ठीक मेल बैठाकर अिस अवस्थाको जाग्रत रखना पड़ता है। जीवनकी दृष्टिसे यह अत्यन्त महत्त्वकी अवस्था है।

निर्विकल्प अवस्था

किसी साधकको चित्तकी निर्विकल्प अवस्था तक पहुंचकर अुसकी सारी अवस्थायें शोध लेनी हों, तो अुसे चित्तकी स्थिरताका अभ्यास बढ़ाना चाहिये। अिससे अुसे चित्तकी सविकल्प और निर्विकल्प अवस्थाओंका ज्ञान होगा। साधकको चित्त स्थिर करना आ जाय, तो वह प्रयत्नसे अुस अवस्थाको जाननेवाली अेक वृत्ति जाग्रत कर सकेगा। अुस वृत्तिमें अूपर बताअी हुअी अलिप्त स्थितिका केवल साक्षित्वका भाग ही रहेगा। वह लगभग तटस्थ अवस्था ही होगी। अुसी वृत्तिको सतत और अखंड रखा जाय, तो वह अेक स्वतंत्र वृत्तिके रूपमें दृढ़ हो सकती है। कोअी अुसीको साक्षी अवस्था कहते हैं। परन्तु साधककी अिच्छा अिससे आगे जानेकी हो, तो चित्तके तमाम संकल्प, सारे विचार छोड़ देने चाहिये और चित्तको निःसंकल्प और निर्विचार करनेका प्रयत्न करना चाहिये। यह प्रयत्न सिद्ध होने पर चित्त किसी भी पिछले संकल्पको स्पर्श नहीं करता और आगे भी किसी संकल्पको धारण नहीं कर सकता और न अुसमें कोअी स्पन्दन ही अुठता है। किसी भी संकल्प या विचारको धारण

न करनेकी चित्तकी अवस्था आ जाने पर साक्षीवृत्तिके लिअे भी कोअी काम नहीं रह जाता। अतः चित्तमें साक्षित्वका भाव भी नहीं रहेगा। यही चित्तकी लयावस्था है। अिस स्थितिको प्राप्त करनेमें साधकका जो मूल अुद्देश्य या संकल्प होगा, अुसीके अनुसार वह अुसे महत्त्व और नाम देगा। चित्त संकल्प-विकल्प-रहित हो जाय, अुसमें कोअी भी संकल्प न अुठे, अितना ही जिनका हेतु होगा, वे अिस स्थितिको निर्विकल्प अवस्था कहेंगे। अीश्वरका चिन्तन करते करते जिसके चित्तका लय हो गया होगा, वह अिसी स्थितिको तद्रूपता कहेगा। और चित्तका लय होनेकी स्थितिमें द्वैतका भान नष्ट हो जानेसे कोअी अुसीको अद्वैतानुभव कहेगा। अिस प्रकार किसी भी साधनसे चित्तको प्राप्त हुअी लयावस्था मूल हेतु, संकल्प और विचारसरणीके अनुसार अलग-अलग अवस्था मानी जाती है और अलग-अलग नामसे पहचानी जाती है। अिन सबमें सही बात अितनी ही है कि अुस स्थितिमें चित्त निर्व्यापार हो जाता है; और यह अवस्था प्राप्त करनेमें सबकी केवल मोक्षकी अभिलाषा होती है।

अूपर चित्तलयका जो क्रम बताया गया है, वह चित्तके संकल्प-विकल्प बन्द करनेके अभ्यासका है। अीश्वर-चिन्तन करते करते जिनके चित्तका लय हो जाता है या जो द्वैतके भानका लोप करके अद्वैतानुभवके लिअे चित्तका लय साधते हैं, अुनमें से प्रत्येकको विचारसरणी, धारणा, संकल्प और हेतुमें थोड़ा-बहुत फर्क होता है। अिसलिअे अुनके अभ्यासक्रममें भी अुतना ही फर्क होता है। परन्तु अन्तिम वस्तु — लयावस्था — तो सबकी अेक ही होती है। यह लयावस्था किसीने अेक अेक वृत्तिके या चित्त पर संकल्पके होनेवाले स्पन्दनको शान्त करते करते और किसी भी प्रकारके नये संकल्प या विचारको धारण न करके चित्तको निर्विचार बनाकर सिद्ध की होती है; तो किसीने भावपूर्णतासे किसी अेक ही पवित्र संकल्प पर चित्तको आरूढ़ करके, अुसमें अुसे पूरी तरह अुत्तेजित करनेके फलस्वरूप पैदा हुअी प्रतिक्रियाके रूपमें, निर्माण की होती है। परन्तु यह बात सही है कि अिन सबका अन्त चित्तकी लयावस्थामें होता है। अुसे साध लेनेके बाद हरअेक मार्गका साधक मान लेता है कि मेरा हेतु पूरा हुआ।

अिसी अध्यायमें अलिप्त अवस्थाके अन्तर्गत केवल साक्षित्वका भाव लेकर अुसी वृत्तिको दृढ़ करनेके बारेमें अुल्लेख आया है। कुछ साधक अिसी स्थितिको महत्त्व देते हैं और अुसको जारी रखकर अुसी स्थितिको सारे समय कायम रखना चाहते हैं। अिस प्रकारके साधक 'मैं कौन ?' का वेदान्तकी विचारसरणीके अनुसार विचार करते करते 'मैं प्रकृतिसे अलग अजर, अमर, नित्य, शुद्ध-बुद्ध आत्मा हूं; प्रकृति, पंचतत्त्व, तीन गुण –– सबको जाननेवाला, सबका साक्षी मैं हूं' अिस विचार पर आकर अुसी साक्षित्वकी वृत्तिको सतत धारणा और अखंडतासे दृढ़ करते हैं। अिस तरह दृढ़ की हुअी चित्तकी अिस वृत्तिको ही आत्मस्थिति मानकर और अपने मोक्षके विषयमें निःशंक विश्वास रखकर समाधान प्राप्त करते हैं। अिस तरहके साधक ज्यादातर कर्ममार्गमें नहीं होते; वे सारे व्यावहारिक कर्मों और कर्तव्योंका त्याग करते हैं। वे किसी भी जिम्मेदारीको नहीं अुठाते; निरुपाधिक और अलिप्त रहते हैं। अुन्हें चित्तके क्षोभ या अुद्वेगके अवसर नहीं आते। अैसी अन्तर्बाह्य शान्त और निरुपाधिक स्थितिके कारण और शान्तिमय जीवनके कारण अुन्हें यह अनुभव होता है कि यही 'आत्मस्थिति' या 'ब्रह्मस्थिति' है। अपनी वेदान्तविचारसरणीके अनुसार अुन्हें प्रतीत होने लगता है कि मैंने 'मैं कौन हूं ?' का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। यदि अुन्हें अपनी वृत्ति, स्थिति और समझको जांचनेकी बात सूझे तो ज्ञात हो जायगा कि यह आत्मस्थिति नहीं है, बल्कि अपनी ही बनाअी हुअी अेक वृत्ति है। वह अपनी ही बुद्धिका किया हुआ अेक निश्चय है। श्रद्धा, सातत्य, चिन्तन वगैरासे खुदने ही अुसे दृढ़ बनाया है। हम स्वयं अपनी ही बनाअी हुअी अिस वृत्ति या निश्चयके कर्ता हैं। अुसीको 'आत्मा' माननेमें भ्रांति है। जो साधक अिस तरह सोचते हैं वे भ्रांतिसे छूट जाते हैं। जो पहलेसे ही विवेक द्वारा अिस स्थितिको जानते हैं वे भ्रांतिमें पड़ते ही नहीं। अैसे भी कुछ साधक होते हैं, जिन्हें यही अपने जीवनभरके तप और परिश्रमका सर्वस्व फल मालूम होता है। अिसके कारण या ग्रंथोंके प्रमाण, ग्रंथोंके वचनोंका गलत ज्ञान, अपना वैराग्य, निरुपाधिकता और शान्ति वगैरा कारणोंसे अपनी मानी हुअी 'आत्म-

साक्षित्व और अुस परसे मानी हुअी आत्मस्थितिका शोधन

स्थिति' की जांच कर लेनेकी बात अुन्हें नहीं सूझती। कुछ वेदान्ती अिस अवस्थाको अुन्मन स्थितिसे पहलेकी साक्षी या तुर्यावस्था कहते हैं।

निर्विकल्प अवस्था का शोधन और मानवताकी सिद्धि

चित्तकी लयावस्था भी मानवताकी परिसीमा नहीं है, यह हमें ध्यानमें रखना चाहिये। सविकल्प और निर्विकल्प, सभी अवस्थाओंको जाननेवाले साधकको अिन अवस्थाओंका जीवनमें जरूरी चित्त-स्वाधीनताके लिअे और अलिप्तताके लिअे कितना अुपयोग हो सकता है, अिसका विचार करके अुसका महत्त्व जानना और तय करना चाहिये। किसी अेक विशेष स्थिति या अनुभवको, वृत्ति या तर्कको हमें सर्वश्रेष्ठ स्थिति या अवस्था न समझना चाहिये। चंचलता, निश्चलता, अेकाग्रता, सर्वार्थिता, स्थिरता, शुद्धता, साक्षी, अुन्मन, व्युत्थान, सविकल्प, निर्विकल्प वगैरा सारी अवस्थायें चित्तकी हैं। चित्तके संस्कार या अभ्यास पर ये सब अवस्थायें निर्भर हैं। निर्विकल्प अवस्था चित्तके अभ्यासके अनुसार टिकती है। परन्तु किसी भी प्रकारका कितना ही अभ्यास क्यों न किया जाय, अुस अवस्थाका ज्ञानपूर्वक सारे समय टिका रहना असम्भव है। जैसे 'देखना' अच्छी स्वस्थ आंखका जागृति-कालका धर्म है, अुसी तरह संकल्प-विकल्प करना, विचार आना, चिन्तन चलना भी चित्तका धर्म है। कितने ही समय तक आंखें बन्द रखनेसे भी अुनका देखनेका स्वाभाविक धर्म नष्ट नहीं होता। यही बात चित्तके लयकी है। चित्तका कुछ समयके लिअे लय किया जा सकता है, परन्तु अुसका स्वाभाविक धर्म नष्ट नहीं किया जा सकता। अिसलिअे चित्तकी किसी भी अवस्थाको शाश्वत न समझा जाय; और चित्तकी अवस्थाको ही 'आत्मस्थिति' माननेके भ्रममें नहीं पड़ना चाहिये। किसी भी अवस्थाका आग्रह रखे बिना हमें चित्त-स्वाधीनताको प्राप्त करके चित्तवृत्तियोंके प्रवाहको ही शुद्ध करना चाहिये। हमें कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों द्वारा नित्य और सतत होनेवाले कर्मोंकी शुद्धिका आग्रह रखना चाहिये। अिस प्रकारके आग्रहपूर्ण दृढ़ प्रयत्नमें हम अपनी सब वृत्तियां और नित्यके व्यवहारकी शुद्धि कर सकें और अुसके अनुरूप हमारा सहज स्वभाव बन जाय, तो वही हमारी सहज और स्थायी स्थिति रह सकेगी। सदाकी अिसी तरहकी जीवन-पद्धतिसे अुसमें कोअी कठिनाअी

नहीं आयगी और वैसा लगेगा भी नहीं। अिस प्रकार हम चित्तकी स्वाधीनतासे अुसकी शुद्धि और पुरुषार्थयुक्त जीवन-व्यवहार साध सकेंगे। यही मानवताकी सिद्धि है।

निर्विकल्प या अुन्मन अवस्थाकी शोध अैच्छिक बात है। जिसे चित्तकी सभी अवस्थाओंकी शोध करना हो, वह अिस अभ्यासकी ओर मुड़े। हर-अेकको अुस ओर जानेकी जरूरत नहीं। परन्तु जीवन-शुद्धि और पुरुषार्थ-सिद्धिके लिअे जिस संयम-शक्ति और कर्तृत्व-शक्तिकी आवश्यकता है, अुसे प्राप्त करनेके लिअे और चित्तकी स्वाधीनता साधनेके लिअे अवश्य हरअेकको पद्धतिपूर्वक किये जानेवाले किसी भी अेक अभ्यासकी आवश्यकता है। शरीर, बुद्धि और मनको हेतुपूर्वक और प्रयत्नपूर्वक शुद्ध और शक्तिमान किये बिना वे अपने आप वैसे नहीं बन जाते। संत तुकाराम कहते हैं, "मिराशीचें म्हूण शेत। नाहीं देत पीक अुगें।।" अर्थात् अिनामी खेत होनेसे ही अुसे बोये बिना, अुसमें मेहनत-मजदूरी किये बिना फसल नहीं आती। हमारे जीवनका भी यही हाल है। अिन्द्रिय-दमन करना पड़ता है, संयम रखना पड़ता है। समय न गंवाकर, किसी भी शक्तिका दुरुपयोग न करके अनेक शक्तियों और सद्‌गुणोंसे सम्पन्न होकर अुनका जीवनभर विवेक और ज्ञानपूर्वक तथा सद्‌हेतुसे जाग्रत रहकर सदुपयोग करना पड़ता है। अिसीमें जीवनकी शुद्धि और सिद्धि है। अिसीमें मानवता है।

* * *

अितना लिखनेके बाद भी अध्यात्म-विचारके अेक अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण विषयमें कुछ स्पष्टीकरण आवश्यक मालूम होता है। 'आत्मा' यानी स्वयं मैं, शरीरका मुख्य तत्त्व, जो शरीरमें व्याप्त है और शरीर, बुद्धि और मन द्वारा ज्ञात-अज्ञात रूपमें होनेवाली प्रत्येक छोटी-बड़ी क्रियाको प्रेरणा देता है। चित्त पर अुठनेवाला स्पन्द, स्फुरण, तरंग, श्वासोच्छ्‌वासके रूपमें होनेवाली प्राणकी क्रिया आदि सब जिसकी प्रेरणाके कारण होता है वह चैतन्य तत्त्व ही 'हम' हैं। अिस तत्त्वका कार्य अनेक तरहसे हमेशा चालू रहता है। अुसमें कभी खंड नहीं, कभी भंग नहीं होता। बचपन, जवानी, बुढ़ापा, जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति — अिन सब अवस्थाओंमें जिस प्रकार अुसका कार्य अनुस्यूतरूपमें जारी रहता है, अुसी प्रकार चित्तलयके पूर्व, लयकालमें

और अुसके पश्चात् भी अुसके कार्य अखंड रूपसे चलते रहते हैं। अुसके कार्योंके लिअे 'कार्य' शब्दका प्रयोग भी यथार्थ नहीं है। क्योंकि अुसके साथ अक्रियताका सम्बन्ध कभी आ ही नहीं सकता। बाहरसे मालूम होनेवाले कार्य-अकार्य, लय, समाधि, व्युत्थान अथवा अवस्था-भेद या परस्पर विरोधी अवस्थाअें — अिन सबको प्रेरणा देनेवाला और सबको जाननेवाला वह तत्त्व है। समस्त अिन्द्रियों द्वारा अखंड रूपमें अुसीका प्रकटीकरण होता है। अुनके द्वारा होनेवाले कर्मोंके जरिये अुस चैतन्यका ही प्रकाश बाहर फैलता है। अिनमें से अेकाध अिन्द्रिय द्वारा होनेवाले कार्य बन्द रखनेसे या बन्द हो जानेसे चैतन्यके धर्ममें कोअी फर्क नहीं पड़ता। आंख द्वारा होनेवाला कार्य 'देखना' है। आंख बन्द करनेसे अुसके द्वारा होनेवाला चैतन्यका प्रकटीकरण अुतने समयके लिअे बन्द हो जाता है। अिसी प्रकार चित्तका लय साधनेसे अुसके द्वारा होनेवाला चैतन्यका प्रकटीकरण अुतने समय तक बन्द रहता है। किन्तु अिससे यह कहना या समझना कि अुस अवस्थामें चैतन्यका विशेष रूपसे बोध होता है या अुस अवस्थामें ही अुसकी प्रतीति हो सकती है, अुस अवस्थाके शोधन और विवेककी दृष्टिसे अुचित मालूम नहीं होता। जब हम स्वयं ही चैतन्य हैं, तो अुस अवस्थामें भी हमें अपना ही बोध किस प्रकार हो सकता है? अथवा चैतन्यका भिन्न रूपसे बोध होनेके लिअे हममें ही बोध प्राप्त करनेवाला अुस समय दूसरा कौन पैदा हो सकता है? हमें अपना ही बोध, दर्शन या साक्षात्कार संभव नहीं, अैसा ज्ञानी पुरुषोंने अपना अंतिम मत प्रकट किया है।

आपणचि आपणापासीं, नेणतां देशोदेशीं।
आपणपें गिवसी। हें कीरु होये ।। अनुभवामृत ३–२१

हम स्वयं ही 'हम' हैं, फिर भी अिसे न समझकर यदि अपनेको खोजनेके लिअे देश-परदेश घूमते रहें, तो हम स्वयं अपनेको प्राप्त हो सकेंगे? अिस प्रकार संत ज्ञानेश्वर पूछते हैं। वे खुद योगमार्गके सिद्ध होते हुअे भी अिस विषयमें अन्तमें सिद्धान्तरूपसे कहते हैं:

प्रत्याहारादि आंगीं। योगें आंग टेंकिलें योगीं।
तो झाला अिये मार्गीं। दिहाचा चांदु ।। अनु० ९–२६

प्रत्याहारका मार्ग अर्थात् योगमार्ग चिन्मात्रका ज्ञान प्राप्त करानेके विषयमें दिनके चन्द्रमा जैसा है, यानी अुस दृष्टिसे निरुपयोगी है। जो स्वयं ही चिन्मात्र है, जो स्वसंवेद्य तत्त्व है, अुसे किस साधनसे बताया जाय और किसे बताया जाय? वह समस्त अिन्द्रियों द्वारा सदा प्रकाशमान होता है।

सर्वांग देंखणा रवी। परि अैसें घडे केवी।
जे अुदोअस्तुचि चवी। स्वयें घेपे।। अनु० ७–१९५

स्वयंसिद्ध, सदैव प्रकाशमान और सबको प्रकाश देनेवाला सूर्य अपने अुदय-अस्तका अनुभव कभी कर सकता है?

साठी तिशां दिवसां। माजीं अेकादा होय अैसा।
जे सूर्यासीचि सूर्य जैसा। डोळां दावी।। अनु० ६–७९

वर्षके तीन सौ साठ दिनमें अेक भी दिन अैसा है, जब सूर्यको सूर्य देखेगा या बतायेगा? चिन्मात्रकी प्रेरणासे सारे कार्य चलते हैं और अुसे जाननेवाला कोअी भिन्न तत्त्व नहीं है।

अिस सब परसे हमें विश्वास हो जाना चाहिये और दृढ़तापूर्वक समझ लेना चाहिये कि विश्वशक्तिमें से अितनी प्रकट दशामें आये हुअे चैतन्यका — चिन्मात्रका अधिकाधिक शुद्ध और स्पष्ट प्रकटीकरण होते रहनेके लिअे मानव-धर्मकी आवश्यकता है। केवल चिन्मात्रके बोधके लिअे कोअी भी साधन अन्त तक अुपयोगी नहीं हो सकता। साधनोंका अुपयोग चित्तशुद्धि, बुद्धिकी सूक्ष्मता, प्रगल्भता और तीक्ष्णता आदि बढ़ानेमें हो सकता है। तत्त्वज्ञानके अभ्याससे हमें यह ज्ञान होता है कि बाहरसे जड़ दिखाअी देनेवाले और मालूम होनेवाले शरीर और विश्वमें सर्वत्र चैतन्य तत्त्व कैसे व्याप्त है। अितना ही नहीं, अेक ही चेतन तत्त्वके आधार पर विश्वका विस्तार किस प्रकार प्रतीत होता है और अुसीमें साक्षात् चैतन्य क्रमशः किस तरह प्रकट होता आया है। अिसी प्रकार हम यह भी समझ सकते हैं कि मनुष्यको प्राप्त हुअी संकल्प-शक्तिकी मददसे वही प्रकटीकरण क्रमसे किन्तु कुछ विशिष्ट गति और नियमसे किस प्रकार अधिकाधिक स्पष्ट दशा प्राप्त करता है। यह सब भलीभांति समझकर जिस 'अहं' के कारण अिस द्वैतका हमें आभास होता है, अुसकी दृढ़ता

कम होनेके लिअे और विश्वके साथ अुसकी समरसता केवल मानने जितनी ही नहीं, बल्कि हमारे अपने दैनिक प्रत्यक्ष आचरणमें आने जितनी साध सकनेके लिअे चित्तशुद्धि और सद्‌गुणोंकी आवश्यकता है। चित्तशुद्धिके लिअे यम-नियम, विवेक और संयमशीलताकी आवश्यकता है। मानव-जीवनमें यह वस्तु सिद्ध करनेकी है। अिसके लिअे जिन साधनोंकी जरूरत है, अुन सबका मानव-धर्ममें समावेश होता है। अिस दृष्टिसे देखते हुअे साध्य और साधन दोनोंमें ही हमें मानवताका दर्शन होता रहना चाहिये। भक्तिमार्गके विभिन्न प्रकार, योग और ज्ञानमार्गकी अलग-अलग प्रक्रियाअें और विचार-प्रणालियां, कर्मयोगका सारा रहस्य और कौशल (योगः कर्मसु कौशलम्) — अिन सबकी मददसे हमें मानवताकी ओर प्रयाण करते रहना चाहिये। अुसी प्रयत्नमें चैतन्यका अधिकाधिक शुद्ध प्रकटीकरण होता रहेगा। केवल लयावस्था साधनेसे या अुसे अधिक समय तक बढ़ानेसे चिन्मात्रका विशेष बोध नहीं होगा या मानवताका ध्येय सिद्ध नहीं होगा। हमें अैसा अनुभव होता है कि मानवताकी वृद्धिमें ही चिन्मात्रका अधिकाधिक प्रकटीकरण होता रहा है। हमारी अिन्द्रियों द्वारा संकल्पपूर्वक होते रहनेवाले कर्मोंसे अुसीका प्रकाश बाहर पड़ता है। अिस रास्ते पर हम अिसी तरह आगे बढ़ते रहें, तो हमारे शरीर, बुद्धि और मनमें कहीं भी जड़ता, अज्ञान या मलिनता नहीं रहेगी। बादमें हमें सतत यह अनुभव होगा कि अिस सबमें चिन्मात्र ही परम शुद्ध रूपमें प्रकाशित होता है। मानव-जन्म अिस शुद्ध बोधके लिअे है, अिस प्रत्यक्ष अनुभवके लिअे है।

चित्तके अभ्याससे अुसकी विभिन्न भूमिकाओंका, अवस्थाओंका तथा वृत्तिके स्पन्दसे लेकर अुसकी तीव्रता, अुसकी परम्परा, अुसका कर्ममें होनेवाला पर्यवसान अथवा अुसका लय आदि सारे भेदोंका, अुसके आन्दोलनों और अुन सबकी शान्ति तकका ज्ञान हमें होगा। अुसीमें से अभ्यास द्वारा हमने चित्तकी स्वाधीनता सिद्ध की हो, तो विश्वशक्तिमें से साक्षात् चैतन्य तक आये हुअे और बादमें क्रमशः मानव-रूपमें स्पष्ट दशा प्राप्त किये हुअे अुसी प्रकटीकरणको अधिकाधिक शुद्ध करनेमें अुस स्वाधीनताका हम अुपयोग करते रहेंगे। अिस दृष्टिसे सोचने पर लय या समाधि अवस्थासे अुस अवस्थाके अनुभवका और अुसे पानेमें मिली हुअी

शक्तिका मानवताके मार्गमें अुपयोग करते रहना अधिक श्रेष्ठ अवस्था है। अभ्यास द्वारा प्राप्त स्वाधीनता और ज्ञानसे हम अपने 'अहं' की शुद्धि कर सकें, तो हमारा और विश्वशक्तिका भेद मिट सकेगा। अिसके बाद भी विश्वके अनंत भेद तो बने ही रहेंगे। क्योंकि भेद ही विश्वके बाह्य रूप और लक्षण हैं। वे बने रहें तो भी अुसमें स्वार्थ, अज्ञान, लालसा, महत्त्वाकांक्षा, मद, मत्सर, अहंकार, प्रतिष्ठा और कीर्तिके निरंकुश लोभ आदिके कारण अूंच-नीचके जो भाव और भेद मनुष्यने निर्माण किये हैं और जो आजके अनर्थोंके मुख्य कारण हैं, अुनका नाश करनेके लिअे आवश्यक समरसता, समभाव हमें अपनेमें और विश्वमें साधना चाहिये। अिसीमें मानवता है। भक्तिका अंतिम लक्ष्य, ज्ञानकी और परमात्माको समर्पण होनेकी परिसीमा, योगकी सिद्धि और कर्मका साफल्य — सब कुछ अिस समभावमें ही आ जाता है। परमात्मा पर निष्ठा रखकर जो निश्चयपूर्वक अिस ध्येयके पीछे लगेगा अुसे यश मिलेगा।

४

ध्यानाभ्यास-सम्बन्धी कुछ सूचनायें

ध्यानमार्गसे चित्त-स्वाधीनताका अभ्यास करनेवालेके लिअे कुछ सूचनाअें जरूरी हैं। यह अभ्यास न बहुत कठिन है, न बिलकुल आसान ही है।

कुछ कठिनाअियां और मार्गदर्शककी आवश्यकता

सबसे पहली बात यह है कि साधकको अभ्यासके बारेमें अुचित और स्पष्ट समझ होनी चाहिये। दूसरी बात अभ्यासके लिअे निश्चयकी है। फिर, अभ्यासका असली अुद्देश्य सदा ध्यानमें रखना चाहिये। ध्यान सधने लगते ही ज्ञानतंतुओंमें आनेवाली सूक्ष्मताके कारण जो कुछ रसानुभव होने लगता है, संभव है साधक अुसीमें रमता रहे। कभी-कभी अभ्यासमें कुछ गलती हो जानेके कारण ज्ञानतंतुओंमें विकृति पैदा होती है। अुससे भी साधकको कुछ विलक्षण आभास होने लगते हैं। अैसे समय यदि साधक सावधान रहे तो अच्छा; नहीं तो आभासोंकी विलक्षणतासे

चकित होकर वह गलत अभ्यासको ज्योंका त्यों जारी रखता है। अुसे अपनी भूल जल्दी ध्यानमें नहीं आती। जैसे-जसे वह अपने गलत अभ्यासमें आगे बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे अुसे विपरीत आभास होने लगते हैं। अिससे अुसे अपने गलत अभ्यासके विषयमें शंका निर्माण होकर यह विश्वास हो जाता है कि वह गलत अभ्यास कर रहा था। तब तक अुसे रोज होनेवाले आभासोंकी आदत पड़ जाती है। अिसलिअे चित्तका विपरीत स्वभाव बन जानेकी भी संभावना रहती है। अुस समय अभ्याससे बना हुआ चित्तका स्वभाव और संस्कार जल्दी नहीं बदला जा सकता। अैसी स्थितिमें अुसके दिमागमें सदाके लिअे बिगाड़ हो जानेका भी डर रहता है। गलत अभ्यासके कारण पागलपन आ जानेके बावजूद अस्खलित रूपमें वेदान्त बोलनेवाले लोग अैसी ही किसी दशामें अुत्पन्न होते हैं। अत: जब ज्ञानेन्द्रियोंकी सूक्ष्मता बढ़ने लगे, तब साधकको यह भी देखते रहना चाहिये कि अिस विकासके साथ अुनकी शुद्धि भी हो रही है या नहीं। समय-समय पर अुसे सावधानीसे जांच करनी चाहिये कि अुसे होनेवाले सूक्ष्म अनुभव अुसके ध्येयकी दृष्टिसे अुपयोगी होने जैसे हैं या नहीं। जैसे-जैसे ध्यान सधने लगता है, वैसे-वैसे अुसमें से भी अनेक शाखायें फूटती हैं। अुनमें से कौनसा मार्ग अुसकी जीवन-सिद्धिके लिअे अुपयोगी है, यह साधक अेकदम तय नहीं कर सकता। अैसे समय यदि अिस मार्गका ज्ञाता मिल जाय, तो अुसकी अेकाध सूचनासे अुस मार्गका ज्ञान अुसे हो जाता है और वह नि:संशय होकर अुसमें अुत्साह और पूर्ण गतिसे आगे बढ़ सकता है। अिसके लिअे शुरूमें कुछ समय साधकको मार्गदर्शककी आवश्यकता होती है। वह ठीक समय पर मिल जाय तो अुसका समय और परिश्रम बच जाता है; वह गलत रास्ते पर नहीं जाता; और न किसी बीचके अनुभवमें रमकर वहीं अुलझा रहता है। साधकके संस्कार, अुसकी संयमकी पात्रता, अुसकी निग्रह-शक्ति, अुसकी चंचलता या निश्चलता, अुसकी परिस्थिति — अिन सबका विचार करके मार्गदर्शक अुसे शुरूमें ही ठीक सूचनाअें दे सकता है। अभ्यास प्रारम्भ करनेसे पहले भी चित्तकी जो विशेष योग्यता आवश्यक है, अुसे प्राप्त करनेका भी वह अुसे अुपाय बता सकता है। बादमें अभ्यास

शुरू कर देने पर चित्तको अेक ही केन्द्रमें लानेके लिअे चंचल बनकर सब जगह बंट जानेवाली चित्तवृत्तिको कैसे रोका जाय, अुन सब जगहोंसे चित्तको हटाकर धारण किये हुअे संकल्पमें अेकाग्रता, दृढ़ता और स्थिरता लानेके लिअे प्रसंगोपात्त क्या क्या अुपाय किये जायं, अिसका अनुभवात्मक ज्ञान मार्गदर्शककी तरफसे मिलता रहे, तो साधकका बहुतसा परिश्रम बच जाता है। वह अेकसी गतिसे निःशंक होकर अभ्यासमें आगे बढ़ सकता है और लगनके साथ अपना अभ्यास पूरा कर सकता है। अिस मार्गमें मार्गदर्शकका अितना ही महत्त्व है।

मार्गदर्शक और साधककी पात्रता

हमारे समाजमें प्राचीन कालसे अैसे मार्गदर्शककों 'गुरु' के रूपमें बहुत महत्त्व दिया गया है। हमने अपने सदाके स्वभावके अनुसार अुसका "गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।" आदि आदि अत्युक्तिपूर्ण वर्णन करके अुसे अति अुच्च पदवी तक पहुंचा दिया है। असलमें अैसा करनेकी कोअी जरूरत नहीं है। मार्गदर्शकमें ज्ञान, साधकके हितकी चिंता, योजकता आदि हों; अैसी कोअी भावना न हो कि वह कोअी विशेष सत्कृत्य या परोपकार कर रहा है या खुद बहुत श्रेष्ठ है; और साधकमें अभ्यासकी लगन, धैर्य, बौद्धिक तेजस्विता, दृढ़ता, शारीरिक पात्रता, विश्वास, कृतज्ञता, निश्चलता, संयमशीलता आदि गुण हों तथा अुतावलापन, अभ्यास पूरा करके कब अिससे छुटकारा पाअूं अैसी अधीरता, चंचलता आदि दोष न हों, तो यह अभ्यास स्थिरतासे जारी रह सकता है और साधक अपना ध्येय निर्विघ्नतासे प्राप्त कर सकता है। मार्गदर्शकके अभावमें बहुत कष्ट अुठाकर दिशाभूल होनेकी संभावना रहती है। अिसी तरह पात्रता न होने पर भी कोअी अभ्यास करने लगे, तो अुसमें वह निश्चित ही असफल होता है। अिस प्रकार असफल बने हुअे साधकके बादमें दंभी हो जानेकी संभावना रहती है।

आगे चलकर अिस प्रकार कोअी अनिष्ट न हो, अिसके लिअे साधकको प्रथम अपने मनकी जांच कर लेनी चाहिये। यह अच्छी तरह परख लेना चाहिये कि अुसका जीवन-हेतु क्या है। साधकको अिसका विचार करना चाहिये कि कहीं अिसीलिअे तो वह यह अभ्यास नहीं

करना चाहता कि वर्तमान जीवनमें अुसे कोअी विशेषता नहीं लगती या अुसे कोअी महत्त्व नहीं देता, धार्मिक क्षेत्रमें कोअी मान या प्रतिष्ठा मिल जानेकी आशा या महत्त्वाकांक्षा है अथवा अुसके पास और कोअी कामधंधा नहीं है, अथवा अिस अभ्यासकी सहायतासे वह किसी और बातमें औरों पर अपनी छाप या प्रभाव डाल सकेगा? अुसे यह भी देख लेना चाहिये कि क्या वह कोअी सिद्धि प्राप्त करनेके लिअे अिस अभ्यासमें पड़ रहा है? जिसे अपने हेतुके बारेमें यह विश्वास हो कि मुझे अभ्यास करके अपनी शुद्धि, चित्तकी स्वाधीनता और स्थिरता ही प्राप्त करनी है, सद्गुणोंका विकास ही करना है, अुसीको अिस रास्ते जाना चाहिये। भोगकी अपेक्षा संयमकी ओर जिसका स्वाभाविक झुकाव हो; सादगी जिसे स्वाभाविक रूपमें प्रिय लगती हो; परिश्रममें जिसकी रुचि हो; बाह्य रसोंके प्रति जिसे सहज अनिच्छा हो; अन्तर्मुखताकी ओर जिसका आकर्षण हो; आत्म-परीक्षण, विवेक, सावधानी, तारतम्य जिसकी हमेशाकी आदतें बन गअी हों; जिसमें कृतज्ञता, आस्तिकता, प्रेम, अुदारता, मैत्री, करुणा आदि सद्गुणोंकी प्रधानता हो; जो पहलेसे ही स्वावलम्बी, दूसरोंके सुखमें सुख और दुःखमें दुःख माननेवाला और निःस्वार्थ हो; सेवा-परायणता जिसका स्वभाव हो; स्वाधीनतामें जिसे समाधान हो — अैसे साधकको योग्य मार्गदर्शकका लाभ मिल जाय, तो अुसे अपने मार्गमें सिद्धि मिलनेमें अधिक देर नहीं लगती। जैसे हरअेक विद्या या कलामें मार्गदर्शककी आवश्यकता होती है, वैसे ही अिस अभ्यासमें भी होती है। अिससे अधिक और गलत महत्त्व अिस अभ्यासके मार्गदर्शकको नहीं मानना चाहिये। अभ्यासका तथा जीवनका असली रहस्य जिसकी समझमें आ गया होगा, वह कभी मानेगा भी नहीं। साधकको भी अपनी कृतज्ञताको खुशामदका रूप कभी न देना चाहिये। वह सेवावृत्तिका गुलामीमें पर्यवसान न होने दे; स्वाधीनतासे परावलम्बनकी ओर न जाय।

चित्तका अभ्यास अधिकतर सूक्ष्म होता है। अतः अुसमें सहज ही कुछ-न-कुछ गूढ़ता और गहनता तो आती ही है। परन्तु जान-बूझकर अुसका आभास करानेकी जरूरत नहीं। अवश्य ही अभ्यासके सामर्थ्यसे या परम्पराके कारण किसी साधकमें कुछ विशेष शक्तियां आ जाती हैं। जिनमें

अिस प्रकारकी शक्ति आ जाती है, वे अभ्यासमें औरोंकी कुछ मात्रामें गति करा सकते हैं। अुनके अनुयायी ज्यादा अभ्यास किये बिना भी आसन, प्राणायाम, मुद्रा आदि बातें साध सकते हैं। नाद-श्रवण, नाड़ी-स्फुरण, मेरुदंडमें से वेग जारी होना, शरीरमें अलग-अलग स्थान पर कोअी विशेष संवेदना या भान होना, अष्ट सात्विक भावोंमें से कुछके लक्षणोंका दिखाअी देना, कभी-कभी मूर्छा आना आदि बातें अुन्हें मालूम होने लगती हैं। अिस प्रकारके मार्गदर्शक किसी शब्दसे, किसी स्पर्शसे, किसी संकेतसे साधकको अिस स्थितिमें पहुंचा देते हैं। परन्तु साधक स्वयं प्रयत्नशील और ध्येयके प्रति दृढ़ हो और अुसकी आगे बढ़नेकी गति कायम रहे, तो ही जीवनकी दृष्टिसे अिन सब बस्तुओंके अिष्ट परिणाम होते हैं। नहीं तो थोड़े दिन तक ये बातें होती हैं और बादमें बन्द हो जाती हैं। जीवनकी दृष्टिसे अुनका कोअी अुपयोग नहीं रह जाता।

अभ्यासमें प्रगतिकी निशानी

साधक खुद ही जान सकता है कि अभ्यासमें अुसकी प्रगति हो रही है या नहीं। अभ्यास शुरू करनेसे पहले साधक जो व्रत और नियम शुरू करे और जो अभ्यासमें भी जारी रहें, अुनमें संयम और स्वाधीनता मुख्य तत्त्व होने चाहिये। ब्रह्मचर्यका महत्त्व साधकको मालूम होगा ही। अिसलिअे अिस बारेमें कुछ विशेष जोर देकर कहने या सुझानेकी जरूरत नहीं है। परंतु अिन सब बातोंमें हमारी अुन्नतिकी सच्ची निशानी यह है कि अभ्यासके साथ-साथ किसी भी व्रत, नियम या संयम-पालनकी कठिनता अपने आप कम होती जानी चाहिये। तभी यह समझा जाय कि हमारा अभ्यास अच्छी तरह चल रहा है और हम अुन्नतिकी तरफ जा रहे हैं। व्रतका व्रतपन, नियमकी कड़ाअी और संयमका निग्रह अपने आप मिटकर ये सब बातें हमारा सहज जीवन बन जानी चाहिये। अभ्यासके बाद वे हमारे सारे जीवनमें घुलमिल जानी चाहिये। साधकके जो नियम हैं वही सिद्धका स्वभाव है या सिद्धका जो व्यवहार है वही साधकका धर्म है। जिसका अेकको प्रयत्नपूर्वक आचरण करना पड़ता है, वह दूसरेका स्वाभाविक जीवन बन जाता है। परंतु अेक बार स्वीकार किये हुअे व्रत, लिये हुअे नियम और पाले हुअे

संयमसे कभी पीछे न हटना चाहिये। अिस विषयमें साधककी गति आगे ही आगे बढ़नी चाहिये और तमाम सद्‌गुणोंका स्वाधीनतामें, संतोषमें, प्रसन्नतामें और कृत-कृत्यतामें पर्यवसान होना चाहिये। ये सब बातें साधकको शुरूसे ध्यानमें रखनी चाहिये। तभी अभ्यासमें और अभ्यासके बाद जीवनमें अुसे कभी भ्रम या गलतफहमी होनेका डर नहीं रहेगा।

परमात्माके चिन्तनकी आवश्यकता

अभ्यास-संबंधी अिन सूचनाओं और अुनके अन्तिम लक्ष्यके बारेमें अिस अुल्लेखसे किसीको निराश होने या अिसके लिअे वह अपात्र है अैसा माननेकी जरूरत नहीं। जो भी अपनी शक्तिके अनुसार अिस विषयमें जितना प्रयत्न करेगा, अुसे अुतना लाभ हुअे बिना नहीं रहेगा। यह बात निश्चित है कि चित्त जितना स्वाधीन होगा, अुतना ही मनुष्य सुखी होगा। अिसलिअे प्रत्येक मनुष्यको शांत और अनुकूल समय पर रोज अन्तर्मुख होकर चित्तको स्थिर और शुद्ध करनेका प्रयत्न करना चाहिये। हमारे यहां प्राचीन कालसे संध्या, प्राणायाम, पूजन, नाम-स्मरण आदिकी जो प्रथा है अुसका यही हेतु है। किसी भी अुपायसे मनुष्यको अपना चित्त स्थिर और शुद्ध करना जरूरी है। दिन-भर काम करके मनुष्यका शरीर और मन थक जाता है। दोनोंको आरामकी जरूरत होती है। रोज नींदसे अुसे आराम मिलता है, परंतु वह काफी नहीं होता। आजकल रक्तका दबाव बढ़ जानेसे अथवा हृदयकी क्रिया बन्द हो जानेसे आकस्मिक मौत हो जानेकी कअी घटनाअें होती हैं। अिसके कारणों पर विचार करनेसे मालूम होता है कि अर्थ-लोभ, स्वार्थ, सुखोपभोग, महत्त्वाकांक्षा और जीवन-संग्राममें मनुष्यकी शक्ति आजकल अितनी अधिक खर्च हो जाती है कि अुसकी पूर्ति रोजकी रोज नहीं हो पाती। अनेक कारणोंसे ज्ञानतंतुओं पर पड़नेवाला दबाव कम करनेके लिअे कोअी अुपाय नहीं किया जाता। अीश्वर पर निष्ठा न होनेसे और सारी चिन्ता तथा कर्तृत्वका भार मनुष्यके अपने ही अूपर ले लेनेसे अुसके लिअे वह असह्य बनता जाता है। रबरमें स्थितिस्थापकताका गुण है। परंतु अुस रबरको यदि सदा तना हुआ ही रखें, तो अुसका वह गुण नष्ट हो जाता है। थोड़े समय तना

हुआ और थोड़े समय बिलकुल तनावरहित रखा जाय, तो अुसका वह गुण अधिक समय तक टिक सकता है। हमारे ज्ञानतंतुओंकी भी किसी हद तक यही स्थिति है। दिनके कुछ समय तक अुन पर तनाव पड़ता रहे, तो भी यदि मनुष्य रोज नियमित रूपसे अुनका तनाव बिलकुल मिटा देनेकी बात साध ले, तो दुर्घटनाओंके अवसर कम हो सकते हैं। हरअेक धर्ममें परमात्माका चिन्तन करनेके बारेमें, सर्वभावसे अुसकी शरण जानेके बारेमें, तथा अपने कर्तृत्व और चिन्ताका भार निरहंकारतासे छोड़कर सारा कर्तृत्व अुसीको सौंप देनेके बारेमें आदेश और अुपदेश मिलता है। प्रार्थना, संध्या, ध्यान, चिन्तन, और नमाजके लिअे दिनका कुछ निश्चित समय तय कर दिया गया है। यदि मनुष्य हररोज अितने समय भी अपना अहंकार और स्वार्थ छोड़कर स्थिर चित्तसे परमेश्वरका चिन्तन करे, सारा भार अुस पर डालकर स्वयं अुससे छूट जाय, और लोभ, अुपभोग तथा चिन्ताको अुतने समयके लिअे छोड़ दे, तो अुसके ज्ञानतंतुओंकी शक्ति थोड़ी-बहुत जरूर बनी रहेगी। परंतु अैसा कोअी भी अुपाय न करके यदि आजकी तरह सतत तनाव पड़ते रहनेकी स्थिति रही, तो मनुष्य अुस ओरसे भी अधिक अभागा बनता जायगा। अिसलिअे प्रत्येक मनुष्यको चिन्तन, ध्यान आदिका नित्य अभ्यास करके अपना चित्त थोड़ा स्वाधीन रखने, अपने ज्ञानतंतुओंको आराम देने और रोज नअी शक्ति प्राप्त करनेका प्रयत्न अवश्य ही चालू रखना चाहिये। अिसमें अुसका निश्चित कल्याण है।

५

रूपध्यानकी मीमांसा

प्रश्न — जिसके मन पर किसी साकार देवताकी भक्तिका पूर्व-संस्कार नहीं है या पहले था और बादमें श्रद्धा अुठ गअी है, परंतु जिसे रूपध्यानकी आवश्यकता मालूम होती है और यह भी लगता है कि वहां भक्तिपूर्वक मन लगे तो अच्छा हो, अुसे कौनसा देवता पसन्द करना चाहिये और किस तरह?

अुत्तर — जिस पर साकार देवताके प्रति श्रद्धाका पूर्वसंस्कार नहीं है, अुसे साकार ध्यानके प्रयत्नमें खास तौर पर पड़नेकी जरूरत नहीं है।

सत्योपासनामें साकार पर रही श्रद्धाकी मर्यादा

अिसी तरह जिसकी श्रद्धा साकार देवता परसे अुठ गअी है, अुसे भी फिरसे वह श्रद्धा पैदा करनेकी कोशिश नहीं करनी चाहिये। देवताके साकार स्वरूप पर श्रद्धा हो, तो अुसका अुपयोग अेक हद तक ध्यानके अभ्यासमें हो सकता है। साकार भक्तिमार्गी साधकका ध्येय होता है अपने अिष्ट देवका दर्शन। अिसलिअे वह प्रारंभसे ही स्वाभाविक रूपमें बाह्य ध्यानाभ्याससे मूर्तिका रूप चित्तमें जमाने और अुसमें तन्मय रहनेका प्रयत्न करता है। जैसे-जैसे अभ्यासमें गति होती जाती है, वैसे-वैसे वह अुसी मूर्तिके अन्तर्ध्यान पर आने लगता है। अन्तर्ध्यानमें भी पहले स्थूल रूपको धारण करके रहनेवाला साधक धीरे-धीरे सूक्ष्म स्वरूप पर और अुससे आगे क्रमशः भाव, गुण, धर्म और प्रसन्नता पर आता है, और अुसमें से अन्तमें केवल शाश्वत चैतन्यकी ओर अपने अभ्यास द्वारा जाता है। अभ्यासके साथ ही अुसके मनमें तात्त्विक विचारणा चलती रहे, अनुभवोंका परीक्षण जारी रहे, तो साधककी वृत्ति साकारमें से धीरे-धीरे कम होती जाती है, पूर्वकल्पनाअें नष्ट होती जाती हैं और साथ ही अुसके प्रति श्रद्धा भी मिटती जाती है। कुछ साधक कुशाग्र बुद्धिके और विवेकयुक्त होते हुअे भी केवल परम्पराको न टूटने देने और चली आ रही श्रद्धाको न डिगने देनेके

लिअे सत्यज्ञानके सामने **न** टिकनेवाली अपनी श्रद्धाको भी चित्तमें जान-बूझकर दृढ़ रखनेका प्रयत्न करते हैं। परंतु अैसी स्थितिमें अपने अनुभवों और प्रतीतियोंकी पहलेसे ज्यादा कसकर परीक्षा करनेकी योग्यता वे साध सकें, जिस श्रद्धाको वे प्रयत्नपूर्वक कायम रख रहे हैं अुसके गर्भमें कितनी ही कल्पनाअें भरी हैं अिसका बढ़ते जानेवाले विवेकके प्रखर तेजमें अुन्हें दर्शन हो जाय, और केवल सत्यकी ही खोज और अुसीकी अुपासना करने और अुसके लिअे सर्वस्वका त्याग करनेका धैर्य अुन्हें प्राप्त हो जाय, तो साकारके प्रति अुनकी श्रद्धा भी अुड़े बिना नहीं रहती। अिसलिअे पहलेसे ही जिनमें साकार देवताके प्रति श्रद्धाका संस्कार नहीं है या जिनकी श्रद्धा अुस परसे अुठ गअी है, अैसे लोगोंको अिस प्रकारकी श्रद्धा निर्माण करनेके प्रयत्नमें पड़नेकी जरूरत नहीं है।

सत्यज्ञानके अभावमें नये साकारका और संप्रदायका अुद्‌भव

साकारके प्रति अेक बार श्रद्धा नष्ट होने पर फिर साकार पर ही भक्ति जमे अैसी अिच्छा होना — यह बात मुझे परस्पर विसंगत लगती है। यदि साकारकी श्रद्धा विवेकपूर्वक और ज्ञानपूर्वक सहज भावसे न अुठ गअी हो और केवल तर्कवादके परिणाम-स्वरूप संशयग्रस्त हो जानेके कारण न रही हो या डावांडोल होनेके कारण अैसा लगता हो कि वह मिट गअी है, तो अैसी वृत्ति पैदा हो सकती है कि वह फिरसे जम जाय तो अच्छा। वरना, जो चीज, जो मान्यता या कल्पना अेक बार हमारे चित्तसे ज्ञान-पूर्वक विलीन हो जाय, अुसकी अिच्छा फिरसे नहीं हो सकती। किसी संस्कारका नाश ज्ञानपूर्वक न हुआ हो, तो अुसका किसी कारणसे फिर जाग्रत होना संभव होता है। क्योंकि परम्परागत और जन्मसे चली आ रही साकार-विषयक श्रद्धा और भक्तिभावके संस्कारोंसे चित्तमें अष्ट सात्त्विक भाव पैदा होते हैं और अुससे साधकको अेक प्रकारका आनन्द होता है। संगति, सतत चिन्तन अित्यादि अनेक साधनोंसे जीवन भर अुसी भक्ति-भावका पोषण होते रहनेसे श्रद्धायुक्त चित्तको प्रेम और आनन्दका जो अनुभव होता है, वह बुद्धिवादसे श्रद्धा अुठ जानेके बाद नहीं हो सकता। यह जाननेके बाद कि कोअी वस्तु कल्पित या मिथ्या है, अुससे होनेवाला

आनन्द स्वाभाविक तौर पर ही चला जाता है। अितने पर भी प्रेम और आनन्दकी अिच्छा और अुनका अुपभोग लेते रहनेकी मनको पड़ी हुअी आदत केवल बुद्धिवाद या ज्ञानसे नष्ट नहीं हो जाती। अैसी स्थितिके साधकको प्रेम और आनन्दके बिना जीवनमें नीरसता मालूम होने लगती है। केवल बुद्धिसे समझे हुअे सत्यके स्वरूपका या ज्ञानका आनन्द साधक नहीं ले सकता, अिसलिअे अुसके चित्तमें बार-बार पूर्व-संस्कारके प्रेम और आनन्दकी अिच्छा पैदा होती है। अिस स्थितिमें पूर्वश्रद्धा अुठ जानेके बाद भी साधकमें अैसी अिच्छाकी संभावना रहती है कि फिर कहीं न कहीं भक्ति हो। जिस साधककी साकार-विषयक श्रद्धा अैसे ही किसी कारणसे अुठ गअी हो, वह जिसके अुपदेशसे अैसी श्रद्धा अुठी हो अुसे यानी अपने माने हुअे गुरुको ही सर्वस्व समझकर, अुसीको प्रत्यक्ष साकार देवता मानकर अुससे अपनी भावनाओंकी तृप्ति खोजने लगता है और अुसमें से प्रेम और आनन्द प्राप्त करने लगता है। अिस प्रकारके कुछ साधक अथवा सुधरे-से लगनेवाले भावुक अिकट्ठे हुअे कि अुन्हींका अेक संप्रदाय बन जाता है। शरीरके सब तरह स्वस्थ, निर्दोष और स्वाधीन होते हुअे भी, मनुष्यको अपने मनुष्यत्वकी रक्षा करके जीवन-व्यवहार चलानेके लिअे जिस प्रकारके अुपचार या पूजन-अर्चन करानेकी जरूरत नहीं होती, वैसे पूजन-अर्चन आदि अुपचारों द्वारा गुरुकी सेवा करनेकी प्रथा ये साधक शुरू कर देते हैं। अुसमें प्रेम, आनन्द, भावतृप्ति आदि प्राप्त करने लगते हैं। गुरुका देहान्त होने पर अुसी भावतृप्तिके साधन और अधिष्ठानके रूपमें अुसकी मूर्ति, पादुकाअें या समाधि स्थापित करके या बनाकर वहां यही अुपचार शुरू कर देते हैं और अुसमें प्रेम और आनन्द लेनेका प्रयत्न करते हैं। लेकिन ये सब चीजें अुनकी प्रगतिमें बाधक बन जाती हैं। पहले छोड़े हुअे साकारको वे फिर दूसरे ढंगसे अंगीकार करते हैं। छोड़े हुअे अुपचार और क्रियाकर्म फिर जारी करते हैं। भक्त और अनुयायी जितने व्यवहारकुशल होते हैं, अुतना ही सम्प्रदायका प्रसार होता है। परंतु अुससे साधकों, अनुयायियों या समाजका कुछ भी कल्याण नहीं होता। पुराने चले आ रहे अनेक देवताओंमें अेककी और वृद्धि हो जाती है, समाजमें

अेक नये सम्प्रदायकी वृद्धि हो जाती है। निराकार भक्तिमार्गमें गुरु स्वयं ही साकार देवता बन जाता है और अुसके बाद अुसकी प्रतिमाओं और अुसकी काममें ली हुअी चीजोंको देवत्व प्राप्त हो जाता है और वे पूजी जाने लगती हैं। विचार करने पर मालूम होता है कि जब तक सत्यज्ञान नहीं होता या नहीं पचता तब तक क्या व्यक्ति और क्या समाज, पहले बाह्य निमित्तको बदल दे तो भी दूसरा स्वीकार करके पहलेकी ही मनोदशामें वापस आ जाता है। और, अुसी वैयक्तिक तथा काल्पनिक आनन्दके क्षेत्रमें रमा रहता है। अिन सब बातोंमें केवल बाह्य साधन ही बदलता है; परंतु अुससे व्यक्ति या समाज किसीकी प्रगति नहीं होती।

अिस प्रकारके साधकों तथा अिस प्रकारकी श्रद्धाकी दृष्टिको छोड़ दें, तो भी जो साधक अेकदम सूक्ष्म अन्तर्ध्यान पर नहीं जा सकते और किसी अिन्द्रियग्राह्य बाह्य वस्तुकी धारणाके बिना चित्तको अेकाग्र नहीं बना सकते, अुनके लिअे पहले बाह्य त्राटक — जैसे कि नीलवर्ण गोलाकृति, दीपककी ज्योति, अग्नि, तारा, आकाश अथवा नासिकाग्र दृष्टि आदि साधन अुपयोगी हो सकते हैं। नाम-जप, प्रणव और श्वासोच्छ्वासका भी अेकाग्रताके लिअे अुपयोग हो सकता है। अभ्याससे अेक बार अेकाग्रता सिद्ध होनेके बाद बाह्य साधन बदल दिये जायं, तो भी अेकाग्रता सिद्ध करनेमें मुश्किल नहीं होती। साधन जितना सूक्ष्म लिया जाता है, अुतना ही साधक सिद्धिकी दिशामें जल्दी आगे बढ़ता है। पहले स्थूल साधन लिया हो तो भी ज्यों-ज्यों वृत्ति अेकाग्र होती जाती है, त्यों-त्यों अुसमें सूक्ष्मता और स्थिरता आती जाती है,। वृत्तिकी सूक्ष्मतामें बाह्य स्थूल विषय नहीं टिक सकते। वे अपने आप यानी किसी विशेष प्रयत्नके बिना नष्ट हो जाते हैं। सूक्ष्म वृत्तिमें ध्यानका विषय भी सूक्ष्म हो जाता है। अिसलिअे अभ्यासका आरंभ किसी भी ढंगसे हुआ हो, साधक क्रमशः अधिकाधिक सूक्ष्मतामें चला ही जाता है।

अेकविध वृत्तिके लिअे प्रतीक

ध्यानाभ्यासमें साकारकी आवश्यकता अिसलिअे प्रतीत होती है कि हम अुस प्रकारके संस्कारोंमें पले हैं। हमें अैसा लगता है कि अेक देवताको छोड़ दें तो कोअी दूसरा देवता होना ही चाहिये। अिसीलिअे चुनावका प्रश्न अुठता है। परंतु मुझे लगता है कि देवताके प्रति हमारा भक्तिभाव सामान्य तौर पर हममें परम्परासे चला आया है। हमें जो गुण प्रिय लगते हैं, जो थोड़े-बहुत अंशमें हममें होते हैं, अुन गुणोंका अुत्कर्ष हमारे खयालसे जिन विभूतियोंमें हुआ था, अुनके चिन्तनसे, मननसे और अुनके चरित्रका विचार करनेसे हमारी अुन्नति शीघ्र गतिसे हो सकती है। सद्‌गुण-संपन्न विभूतियोंके चिन्तनसे अभ्यासके साथ ही गुण-ग्रहणका भी हमारा प्रयत्न हो, तो ही यह कहा जा सकता है कि अभ्यास ठीक ढंगसे हो रहा है। अैसे अभ्याससे ही शुद्ध सत्त्वगुणका अुदय तथा अुत्कर्ष हो सकता है। परंतु अिस पद्धतिसे अभ्यास करनेवाले साधक बिरले ही पाये जाते हैं। देवता-संबंधी हमारी श्रद्धा परम्परानुसार ही चली आ रही है। अैसे विषयोंमें हम ज्यादातर जन्मसे या अुससे भी पूर्व हमें जैसे संस्कार मिलते हैं अुन्हींके अनुसार चलते हैं। परम्परासे बाहर निकलकर विवेकसे अपना रास्ता बनानेवाले बिरले ही होते हैं। बहुजन-समाज परंपरागत श्रद्धाके अनुसार ही चलता रहता है।

शुद्ध सत्त्वगुणका अुदय

अिस समय हम अभ्यासी साधकका विचार कर रहे हैं। अिसलिअे बहुजन-समाजका विचार अभी छोड़ दें। जो यह चाहते हैं कि भ्रम या झूठी कल्पनाओंमें न पड़ते हुअे अुनका अभ्यास और साधनाका मार्ग क्रमशः निर्विघ्नतासे पूरा हो, जिनकी यह अिच्छा हो कि अिस मार्गमें अुनका समय और शक्ति बेकार बरबाद न हो और सारी शक्ति अुचित रूपमें काममें आये, अुन्हें पहले अच्छी तरह सोच-समझ लेना चाहिये कि अुनके जीवनका असली ध्येय क्या है और अुसे साधनेके लिअे किन साधनोंकी कितनी और किस प्रकारकी आवश्यकता है। अीश्वर-परमेश्वर, आत्मा-परमात्मा, जीव-शिव, साकार-निराकार, सगुण-निर्गुण, ब्रह्म-परब्रह्म, अवतार, चमत्कार, भक्ति, मुक्ति, ज्ञान,

ध्येयको समझ लेनेकी आवश्यकता

योग, कर्म, धर्म, नीति, कर्तव्य, लोक, परलोक आदि विषयोंका यथासंभव व्यवस्थित बौद्धिक ज्ञान अुन्हें पहले प्राप्त कर लेना चाहिये। सबसे महत्त्वकी बात यह है कि वे अपनी विवेक-शक्ति बढ़ायें और फिर सबमें से विवेकपूर्वक अपना मार्ग चुनें। अुचित विवेक-दृष्टि आ जाने पर अुनकी मान्यताओंमें, भक्तिमें, संस्कारोंमें, ज्ञानमें, परम्परामें, साधनामें जो कुछ भ्रमात्मक होगा, काल्पनिक होगा, जो जीवनके ध्येयसे कुछ भी संबंध न रखनेवाला होगा, वह सब नष्ट हो जायगा। अुनका मार्ग स्पष्ट हो जायगा। मार्ग कष्टप्रद हो तो चिन्ता नहीं होनी चाहिये, परंतु वह भ्रमयुक्त न हो। ध्येय आकर्षक न हो तो हर्ज नहीं, परंतु वह काल्पनिक न हो। अिसलिअे ये सारी बातें समझमें आने और गले अुतरनेके लिअे साधकको पहलेसे ही विवेकी बनना चाहिये। जिससे भ्रम पैदा हो अैसा साधन नहीं अपनाना चाहिये। साधकको यह विश्वास होना चाहिये कि वह जिस साधनका आचरण करता है वह तथा अुसके होनेवाले परिणाम जीवनमें सदा अुपयोगी होंगे और जीवनका हेतु सिद्ध करनेमें अत्यन्त आवश्यक और सहायक सिद्ध होते रहेंगे। अिस प्रकार साधक ध्येय और साधनके विषयमें विवेकी, सावधान और प्रयत्नशील होगा, तो वह अपना ध्येय प्राप्त किये बिना नहीं रहेगा।

६

अेकविध वृत्तिका प्रयोजन

प्रश्न — किसी हेतुको सिद्ध करनेके अुद्देश्यसे, जैसे किसी यंत्र या औषधिके आविष्कारके लिअे, कोअी आदमी अुस काममें तल्लीन हो जाता है। रात-दिन अुसीके पीछे पड़ा रहता है। अुसीका विचार करता है। अुसीके प्रयोग करता है। अुसके सिवा अुसे और कुछ नहीं सूझता। कभी-कभी वह खाना-पीना और सोना तक भूल जाता है। अैसी अेकाग्रता और आसनबद्ध होकर किसी ध्येयकी धारणा करके अुस पर अेकाग्र होनेका ध्यानाभ्यास — अिन दोनोंमें क्या फर्क है और दोनोंमें से हरअेकका क्या महत्त्व है?

अुत्तर — चित्तवृत्तिको केवल अेकाग्र करना आ जाय, यही हमारा ध्येय हो तो आपका सवाल जरूर पैदा होता है। परंतु जहां हरअेक चीजका जीवनकी शुद्धिके खयालसे विचार करना हो, वहां सिर्फ अेकविधताको महत्त्व देनेसे नहीं चलेगा। मुख्य और महत्वकी बात यह है कि शोधक या साधकका चित्तको अेकविध करनेमें हेतु क्या है। हेतुकी शुद्धि-अशुद्धि, परार्थ या स्वार्थ, अुस हेतुके सिद्ध होनेसे अपने पर और समाज पर होनेवाले अच्छे-बुरे परिणाम, हेतु-सिद्धिके लिअे अुपयोग या आचरणमें लाये गये साधनोंकी शुद्धि-अशुद्धि आदि बातोंसे निश्चित करना होगा कि अिस प्रकारके प्रयत्न अथवा अभ्यासका जीवनकी दृष्टिसे क्या महत्त्व है। भौतिक खोजके पीछे पड़ा हुआ मनुष्य कुछ समयके लिअे भूख, प्यास, नींद आदि भूल जाता है। पर अिसमें अुसकी कोअी विशेषता नहीं है। अुस खोजके पीछे यदि किसीका दुःख दूर करनेका हेतु हो तो अुस हेतुकी विशेषता है। अिसलिअे यह देखना चाहिये कि खोजके पीछे दुःख-निवारणका हेतु है या स्वार्थका। दूसरोंके दुःख, अज्ञान, असुविधा आदि कम करनेके हेतुसे कोअी आदमी किसी खोजमें लगा हो और अेकविध होकर भूख-प्यास भी भूल जाय, तो यह कहा जा सकता है कि अुसे जीवनकी दृष्टिसे अुतनी सात्त्विकताका लाभ हुआ है और दूसरोंके दुःख, अज्ञान, असुविधा आदि थोड़े कम हुअे हैं। अिसलिअे केवल तदाकारता, तन्मयता या अेकविधता महत्त्वकी चीज नहीं है। मनुष्य जब किसी विषयके पीछे अत्यन्त अुत्कण्ठासे पड़ता है, तब अुसमें कुछ समयके लिअे अपने आप तन्मयता आ जाती है। चित्तका जब किसी भी विषयकी तरफ बहुत अधिक आकर्षण होता है, तब हमेशा कुदरती तौर पर अिन्द्रियों द्वारा बिखर जानेवाली हमारी सारी शक्ति अेक ही वृत्तिमें केन्द्रित होकर कुछ समयके लिअे अिष्ट विषयके साथ तदाकार हो जाती है। मछली पकड़नेके लिअे बगुलेको, चूहा पकड़नेके लिअे बिल्लीको तथा दूसरे प्राणियोंको भी अपने-अपने प्रयत्नमें कितने ही समय तक अेकाग्र होना पड़ता है। जंगलमें शिकारके पीछे पड़ा हुआ शिकारी भूख, प्यास, नींद, रास्ता, दिशा, समय अित्यादि सब कुछ भूल जाता है। वह अपने

अेकविध वृत्तिका हेतु

विषयके साथ अितना तन्मय हो जाता है कि तमाम अिन्द्रियोंके स्वाभाविक धर्मोंका — श्वासोच्छ्वास तकका भी — अुसे कभी-कभी थोड़ा-बहुत निरोध करना पड़ता है। गाने-बजाने और अैश-आराम आदिमें भी मनुष्यको कितनी ही बातोंका विस्मरण हो जाता है और अुसीमें अुसको तन्मयता प्राप्त हो जाती है।

अिसी तरह भौतिक आविष्कारोंके पीछे पड़ा हुआ आदमी कुछ समय तन्मय हो जाता हो, तो अुसका हेतु यह नहीं होता कि अुसीमें तन्मय होकर रह जाय। परंतु खोज ही अुसका अुतने समयके लिअे हेतु बन जाता है। वह हेतु सिद्ध करनेके प्रयत्नमें बीच बीचमें होनेवाली तन्मयता अुस शोधके मार्गमें अपने आप आनेवाली अवस्था है। अिसके सिवा, अूपर-अूपरसे खोज ही अुसका मुख्य अुद्देश्य दिखाअी देने पर भी यह समझना अुचित होगा कि अुस खोजकी जड़में अुसका जो निजी हेतु हो वही अुन तमाम प्रयत्नोंका असली हेतु है और वही अुसकी सही सिद्धि है। अुस खोजके द्वारा दुनियाका कुछ-न-कुछ दुःख कम करनेका प्रयत्न करना अथवा ज्ञान, धन, मान, कीर्ति आदि प्राप्त करना — अिनमें से जो भी अुसका मुख्य हेतु होगा, अुसी पर अुस शोधककी नैतिक पात्रताका आधार रहेगा। केवल तन्मयता या अेकाग्रता साध्य वस्तु नहीं है। क्योंकि अेकाग्रता तो नित्यके अनेक कर्मों या धंधोंमें मनुष्यको साधनी ही पड़ती है। अुस प्रत्येक कर्मके पीछे साधी जानेवाली अेकाग्रता मनुष्यको कल्याणके मार्ग पर ही ले जाती है, अैसा कोअी नियम नहीं है। अिसलिअे यह देखना चाहिये कि अेकाग्रताके पीछे मूल हेतु क्या है। हमारा हेतु हमें और समाजको कल्याणके मार्गसे ले जानेमें सहायक होना चाहिये। अिसी तरह हमारे हेतुके लिअे जो साधन और विचारसरणी हम काममें लें अुनका खुद हम पर और समाज पर शुभ परिणाम होगा, अिसका हमें विश्वास होना चाहिये।

ध्यानधारणाके अभ्यासमें अेकाग्रता और तन्मयताका महत्त्व अधिक है। अितने पर भी यह देखना आवश्यक है कि अुसमें भी अभ्यासके पीछे साधकका हेतु क्या है। गीतामें यज्ञ, दान, तप,

जीवनव्यापी लाभ कर्म आदिके जो सात्त्विक, राजस और तामस भेद

बताये हैं वे यहां विचार करने योग्य हैं। भौतिक आविष्कारोंके पीछे पड़नेसे कुछ समयके लिअे अेकविध वृत्ति हो जाय तो भी क्या हुआ, अथवा आसनबद्ध होकर मनुष्य अेकाग्रता सिद्ध कर ले तो भी क्या हुआ। दोनोंके पीछे जीवनका हेतु क्या है, यह देखे बिना अुन प्रयत्नोंकी श्रेष्ठता या कनिष्ठता नहीं ठहराअी जा सकती। ध्यान-धारणामें भी साधकके मनमें अगर कोअी वैषयिक सकामता हो, धन, मान, कीर्ति, प्रतिष्ठा या और कोअी व्यक्तिगत अैहिक हेतु हो, तो वह ध्यानधारणा जीवन-शुद्धिकी दृष्टिसे अूंचे दर्जेकी नहीं मानी जायगी। जीवन-शुद्धिके लिअे की जानेवाली ध्यानधारणामें अेकाग्रता, तन्मयता या अेक-विधताका जो महत्त्व है, वह चंचलतासे सब तरफ फैलकर बहुशाखामय बनी हुअी चित्तवृत्तियोंका अेकीकरण करके अुन्हें अेक पवित्र संकल्पमें केन्द्रित करनेके अभ्यासकी दृष्टिसे है। अिस अभ्यासके बीच जो पवित्र संकल्प-बल निर्माण होता है, वह साधकके तमाम विचार, आचार और समग्र जीवन पर पवित्रताके संस्कार डालता है और समस्त जीवनको पवित्र तथा अुन्नत बनाता है। अिसमें यदि अूपर अूपरसे किसी संकल्प पर चित्तको अेकाग्र और स्थिर करनेकी ही बात दिखाअी देती हो, तो भी चित्तके विकासकी दृष्टिसे अुसके अनेक कल्याणकारी परिणाम साधकको प्राप्त होते हैं। स्थिरता, दृढ़ता, निश्चलता, तेजस्विता, अशुद्ध वृत्तियोंका क्षय, शुद्ध वृत्तियोंका अुदय और अुत्कर्ष, शारीरिक निर्मलता, बौद्धिक कुशाग्रता, विवेक, सद्‌गुणोंकी रुचि, मानसिक पवित्रता, संयम, धैर्य, निरहंकारिता वगैरा लाभ अिस अभ्यासके द्वारा साधकको प्राप्त होते हैं। और ये लाभ केवल अभ्यास-कालके लिअे ही नहीं, परंतु जीवन-भर टिकनेवाले हैं। जीवन-शुद्धिके हेतुसे की जानेवाली ध्यानधारणाकी शुरुआत ही यम-नियम और सदाचारके पालनसे होती है। जीवन-शुद्धिके प्रयत्नमें सदाचारको जितना महत्त्व दिया जाता है, अुतना ही भौतिक खोजके मार्गमें भी दिया जाता है सो बात नहीं। भौतिक खोजकी तीव्र जिज्ञासा और अुत्कण्ठाके कालमें शोधकमें अपने आप जो संयम रहता है अुतना ही सही। परंतु वह संयम जीवनभर टिका रहना चाहिये, असी अिच्छा अुसके मनमें हो, अिसका कोअी कारण नहीं दीखता।

जीवन-शुद्धिके मार्गमें जो साधन काममें लाये जाते हैं, अुनके लिअे साधककी यह अिच्छा होती है कि अुनसे निर्माण होनेवाले सद्‌गुण अुसका स्वभाव बन जायं। भौतिक खोजमें लगे हुअ अभ्यासीको अपनी खोजके विषयके साथ-साथ अुस विषयसे संबंध रखनेवाले अन्य विषयों, वस्तुओं, द्रव्यों, अुनके अणु-परमाणुओंके गुणधर्मों और अुनकी शक्तिका ज्ञान होता है, अुसी तरह जीवन-शुद्धिके अुद्देश्यसे अेकविधताका अभ्यास करनेवाले साधकको भी चित्तके ज्ञानके साथ ही अनेक स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर वृत्तियों और अिन्द्रियोंके प्रत्येक गुणधर्मका ज्ञान होता है। शोधन, निरीक्षण, परीक्षण, आकलन आदि ज्ञानप्राप्तिके अनेक अंगोंका अुसमें विकास होता है। अपनी वृत्तियों, अिच्छाओं और वासनाओंको रोकनेकी शक्ति बढ़ती है। मानव-जीवनकी शुद्धि और विकासकी दृष्टिसे ये बातें और ये लाभ अत्यंत महत्त्वके हैं। अिस अभ्यासमें औषधि जैसी कोअी बाह्य खोज नहीं करनी होती, परंतु अपनी ही शुद्धि करनी होती है। साधकको अपना चित्त अैसा बनाना होता है कि किसी भी विकट अवसर पर वह विचलित न हो। साधकको अैसी अलिप्तता प्राप्त करनी होती है कि वह राग, द्वेष, भय और क्रोधसे सदा मुक्त रह सके। यम-नियमके पालनसे पवित्र और सद्‌गुण-सम्पन्न होनेवाले चित्तको ध्यानधारणाके अभ्याससे तथा आत्म-निरीक्षण और परीक्षणसे अधिकाधिक पवित्र, दृढ़, संयमी और ज्ञान-संपन्न करके अपनी जीवन-शुद्धि करनेका अुसका यह प्रयोग या प्रयत्न होता है। कोअी भी बाहरी प्रयोग करते समय अुसमें होनेवाली अेकविध वृत्तिकी या अुस प्रयोगकी सफलतासे जो व्यक्तिगत या सामाजिक लाभ होना संभव हो, अुसकी तुलना जीवन-शुद्धिके प्रयत्नमें होनेवाली अेकविधता और अुससे होनेवाले कुल लाभके साथ नहीं की जा सकती। मूलसे ही दोनोंके हेतुमें बड़ा अन्तर होता है। बाह्य खोजके पीछे केवल दुनियाको दुःखमुक्त करनेका ही हेतु हो, तो अुतना सात्त्विकताका लाभ अभ्यासीको हुअे बिना नहीं रहता और जीवन-शुद्धिकी दृष्टिसे यही वस्तु अधिक महत्त्वकी मानी जानी चाहिये।

यह सब लिखनेका यह अर्थ नहीं है कि मानव-जीवनके लिअे भौतिक खोजकी कोअी अुपयोगिता या आवश्यकता नहीं है। मनुष्यके

दु:खों, यातनाओं, कष्टों, कठिनाअियों, अज्ञान, असुविधाओं आदिमें जिन खोजों या अुपायोंसे कमी की जा सकती हो, अुनकी मनुष्य-जातिको निश्चित आवश्यकता है। परंतु अुनसे भी अधिक आवश्यकता मानवको मानवताकी है। मानवता सद्‌गुणोंके बिना प्राप्त नहीं हो सकती। त्याग और संयमके बिना सद्‌गुणोंकी वृद्धि नहीं हो सकती। दृढ़ता और निग्रह-शक्तिके बिना संयम टिक नहीं सकता। शुद्ध संकल्पके बिना दृढ़ता और निग्रह आ नहीं सकते। अभ्यासके सिवा संकल्प-बल बढ़ानेका दूसरा कोअी मार्ग नहीं है। अभ्यासके लिअे अेकविधताका महत्त्व है। अभ्याससे चित्त स्थिर हो सकता है, दृढ़ हो सकता है, शुद्ध हो सकता है। अभ्याससे ही प्रज्ञा और शुद्ध विवेक जाग्रत होता है, चित्त अधिकाधिक शान्त होता है। अिस प्रकारके सारे लाभ अभ्याससे ही प्राप्त हो सकते हैं। अिसलिअे जीवन-शुद्धिकी दृष्टिसे अिस प्रकारके अभ्यासका महत्त्व है, केवल अेकविधताका नहीं। जीवन-शुद्धिके मार्गमें वह जितनी सहायक बन सके अुतना ही अुसका महत्त्व है। क्योंकि जीवन-शुद्धिके प्रयत्नसे ही मानव-जातिको सच्ची मानवताकी प्राप्ति हो सकेगी।

७

चित्त-शोधन और आत्मसत्ताकी प्रभा*

१५ तारीखके पत्रमें आपने 'अुन्मन' शब्दका अुपयोग किया है। निद्रावस्थामें कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों और मनके व्यापार बंद हो जाते हैं। स्वप्नावस्थामें मन कुछ-न-कुछ करता रहता है। स्वप्नका अर्थ है निद्रामें बाधा। बाधारहित गाढ़ निद्रामें सारे व्यापार बन्द हो जाते हैं। अुस समय केवल शरीरके भीतरकी नैसर्गिक क्रियाअें ही होती हैं। मनुष्यके विकास किये हुअे शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक सब व्यापार अुस समय लय हो जाते हैं। 'अहं' सुप्त हो जाता है। जागृतिमें अभ्याससे थोड़े समयके लिअे अैसी स्थिति सिद्ध की जा सके, तो भी वह

* यह और अिसके बादके चार पत्र चित्तका अभ्यास करनेवाले अेक साधकको लिखे गये हैं।

स्वाभाविक अवस्था नहीं हो सकती। और प्रवृत्तिमें तो अिस स्थितिका टिका रहना असंभव प्रतीत होता है। किसी गूढ़ विषयके विचारमें मग्न हों, तब भी चित्तका व्यापार बन्द नहीं होता। अुस समय केवल अितना ही होता है कि चित्त अेकलक्षी हो जाता है। प्रवृत्तिमें तो अुचित-अनुचित और योग्य-अयोग्यका विचार हमेशा करना पड़ता है। कर्मका हेतु निश्चित करके अुसके अनेक प्रकारके परिणामोंको ध्यानमें लेकर और अुनका अन्दाजा लगाकर मनमें जो निर्णय हो जाता है, अुसके अनुसार कर्म या कर्मके रुखमें समय-समय पर परिवर्तन भी करना पड़ता है। अपनी तारतम्य-बुद्धि सतत जाग्रत और प्रखर रखनी पड़ती है। अिसलिअे प्रवृत्तिमें अुन्मन अवस्था जैसी स्थिति रखना संभव नहीं है।

आपके दूसरे पत्रसे मालूम होता है कि बादमें आपने 'अुन्मन' संबंधी कल्पना छोड़ दी है। गाढ़ निद्रामें जब चित्तका लय हो जाता है, अुस समय संकल्प धारण कर रखनेका धर्म चित्तमें कायम रहता है। जागृतिकी सारी कर्तृत्व-शक्ति निद्राकालमें सुप्त हो जाती है। अुस अवस्थामें भी अमुक समय पर अुठ जानेका संकल्प चित्तमें मुख्यतः सबसे आगे होता है। चित्तकी सारी वृत्तियोंका लय होकर केवल अुस संकल्पका ही सूक्ष्म रूपमें अस्तित्व होता है। अिसीलिअे निश्चित किये गये समय पर जागृति आती है।

मनुष्यको चित्तवृत्तियोंका शोधन करते-करते अपने चित्तका विकास करना है। अेक ही शुभ विचार पर स्थिर होनेका अभ्यास करते हुअे चित्तकी अनेक वृत्तियोंका दर्शन होता है; और मनुष्य अुनके मूल कारणोंकी खोज कर सकता है। अुनमें से शुभ-अशुभका वर्गीकरण करके अशुभका लय और शुभकी वृद्धि करनेका प्रयत्न किया जा सकता है। यह अभ्यास करते-करते कभी तो वृत्ति-शोधनमें सब वृत्तियोंका निरसन होते-होते चित्तका लय हो जायगा, या सबको जांचकर देखनेवाली अेक ही वृत्ति बाकी रह जायगी। वह वृत्ति सबकी साक्षी बनकर रहेगी। बादमें वृत्तिके नये-नये और अलग-अलग प्रकार जानने बाकी नहीं रहेंगे, अिसलिअे चित्तकी ज्ञानशक्तिका कार्य अत्यंत सूक्ष्म हो जायगा। अुस

समय साक्षीपन भी मिट जायगा और केवल जागृति ही रह जायगी। अुस जागृतिमें अलिप्तता और स्वाधीनताके महान गुण होंगे।

साधक चित्त-शोधन करते-करते अिस अवस्था तक जानेका बार-बार प्रयत्न करे, तो वह शुरूसे लेकर अन्त तककी चित्तकी सारी वृत्तियां जानने लगेगा। चित्तकी अिस प्रकार बार-बार जांच और शोधन होनेसे अुसके लिअे अिस विषयमें कुछ भी गूढ़ और अज्ञात नहीं रहेगा। अच्छे-बुरेके बारेमें, अुन्नति-अवनतिके बारेमें अुसके मनमें शंका नहीं रहेगी। चित्तवृत्तियोंका क्रम समझमें आ जाने और आखिरी अलिप्तता सध जानेके बाद वह जीवनके कार्योंमें अुसका अुपयोग कर सकेगा। चित्तकी स्थिरता, शुद्धता, अलिप्तता और सद्‌गुणोंका अुत्कर्ष — अिन सबके द्वारा ही मानव-जीवन सफल होता है। ज्ञानके कारण आनेवाली निःशंकता और सद्‌गुणोंके कारण आनेवाला आत्म-विश्वास मानव-जीवनकी सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति है।

अभ्यासमें चित्तके शुभ संकल्पमें तन्मय हो जानेके बाद साधकको कभी-कभी सहज ही आनन्द और प्रसन्नताका लाभ होगा। अिस आनन्द और प्रसन्नतासे अुसके चित्तको प्रवृत्ति-मार्गमें कभी क्षोभ या अुद्वेग नहीं हो सकेगा। मनुष्यको कर्मयोगका आचरण करते हुअे यही प्राप्त करना है। साधक अभ्यासमें होनेवाले आनन्द और प्रसन्नताका लाभ ले, परन्तु अुसीमें रममाण होनेकी अिच्छा न करे। यह आनन्द बादके अभ्यासमें और जीवनभर चलनेवाले कर्मयोगमें अुसे अुत्साह देनेवाला होना चाहिये।

अभ्यास करते समय जिस स्थानसे संकल्प अुठता है अुसे जान लिया जाय। अुस स्थानको जानकर संकल्पका साक्षी बना जाय। फिर अुस दशाको भी छोड़कर यह ढूंढ़ा जाय कि केवल 'अपनेपन' का, 'अहं' का स्फुरण कहांसे होता है। जिसे लयावस्थाका अनुभव करना हो, वह अिस 'अहं' का भी लय कर दे। अिन सब स्थितियोंका बार-बार अनुभव कर लेने पर हमारे और हमारी चित्तवृत्तियोंके परस्पर सम्बन्धके बारेमें भ्रम नहीं रहता। अिस स्थितिको स्थायी रखनेके लिअे चित्तशुद्धिकी अतिशय आवश्यकता है। अुस शुद्धि पर ही हमारी अलिप्त दशा टिकनेवाली है। यह स्थिति प्राप्त करके अुसके दृढ़ हो जानेके

बाद जीवनमें प्राप्त होनेवाले अच्छे-बुरे प्रसंगोंके परिणाम चित्त पर तीव्र रूपमें नहीं हो सकते। जीवनमें कभी विलक्षण हर्ष अथवा क्षोभका अनुभव नहीं होता।

अिस अभ्यासको आप लगनसे पूरा कीजिये। अभ्यासमें दर्शन देनेवाली और लय होनेवाली तमाम वृत्तियोंकी अच्छी तरह जांच कीजिये। साथ ही अुल्लसित और आनन्दित मनसे सद्‌गुणोंकी वृद्धिका प्रयत्न कीजिये। सद्‌गुण-सम्पादन किसीकी हम पर लादी हुअी चीज या बेगार नहीं है। वही आत्मसत्ताकी सच्ची प्रभा है। सद्‌गुणों द्वारा हमारा आत्मत्व शुद्ध रूपमें प्रकट होता है।

(पत्र, १-४-'४०)

८

चित्तके अभ्यासका हेतु

पिछले पत्रमें मैंने साक्षी और अुन्मन, अिन दो अवस्थाओंके बारेमें लिखा है। अुससे आप जो समझे हैं सो ठीक है। ये दोनों अवस्थायें भिन्न-भिन्न हैं। अेकमें वृत्तिका व्यापार स्पष्ट और अनुस्यूत रूपमें जारी रहता है; और दूसरीमें वृत्तियोंका सम्पूर्ण लय हो जाता है, अिसलिअे कोअी भी वृत्ति बाकी नहीं रहती। चित्त निस्तरंग होता है।

मुझे लगता है कि आप यह बात अच्छी तरह समझ गये हैं कि अभ्यास करते-करते प्राप्त हुअी अुन्मन अथवा लयावस्थाको लम्बाते रहना हमारे अभ्यासका हेतु नहीं है। साक्षी और अुन्मन अवस्थायें अभ्यास करते समय अेक-दूसरेकी विरोधी नहीं होतीं; परन्तु अेकके बाद दूसरी, यह अुनका क्रम होता है। अेक स्थितिमें अनेक प्रकारकी वृत्तियोंका लय होते-होते अन्तमें सबको जाननेवाली अेक वृत्ति बाकी रह जाती है। बादमें अभ्यास करनेसे अुसका भी लय हो सकता है। अिनमें से अगर किसी भी अवस्थाको लम्बे समय तक बनाये रखें, तो अुनके परस्पर विरोधी होनेकी संभावना रहती है।

मुझे लगता है कि अभ्यासका हेतु आपके ध्यानमें आ गया है। फिर भी अिस बारेमें अधिक स्पष्टता करनेका प्रयत्न करता हूं। हमें वृत्ति-शोधनकी खास जरूरत है। यह समझनेके लिअे कि हमारी किन वृत्तियोंका निरोध किया जाय, किनको दृढ़ किया जाय और किनको बढ़ाया जाय, हमें सब वृत्तियोंका ज्ञान होना जरूरी है। किन दोषोंके कारण और किन गुणोंके अभावके कारण हमारी गति कुंठित हुअी है, यह समझनेके लिअे हमारी वृत्तियोंका शोधन और पृथक्करण होना जरूरी है। कुछ दोष हम जानते हैं; कुछका हमें ज्ञान नहीं होता। गुणोंके बारेमें भी यही होता है। जिस दोषका हमें भान या ज्ञान होता है वह भी स्वतंत्र रूपमें अकेला ही नहीं होता, परन्तु अनेक दोषोंका अिकट्ठा परिणाम होता है; अथवा अनेक छोटे-छोटे दोषोंका मिलकर अेक स्पष्ट रूप होता है। अुन मिश्रित दोषोंमें से यदि हम अेक अेक दोषको निकाल डालें, तो बड़े दोषका अस्तित्व ही नहीं रहेगा। अनेक तन्तुओंकी बनी हुअी अेक रस्सीमें से अेक अेक तन्तुको निकाल डालें, तो अन्तमें रस्सीका नाश करनेके लिअे अलग प्रयत्न करनेकी जरूरत ही नहीं रह जाती। यही नियम दोषों पर भी लागू होता है, यह समझकर अैसी कोशिशके लिअे पहले हमें अपनी स्थूल, सूक्ष्म, अच्छी-बुरी तमाम वृत्तियोंका ज्ञान होना जरूरी है। वृत्तिको अन्तर्मुख बनाकर चित्तका संशोधन और वृत्ति-योंका अभ्यास किये बिना हमें अपनी खुदकी वृत्तियोंका पूरी तरह पता नहीं चलता।

सदोष वृत्तियोंका निरोध करके अुनका कारण बननेवाली दूसरी अनेक वृत्तियोंका क्षय करनेके लिअे और सद्वृत्तियोंका विकास करनेके लिअे चित्तके अभ्यासकी जरूरत है। चित्तका केवल लय साधनेसे यह अभ्यास पूरा नहीं होता, क्योंकि केवल लय गुण-विकासकी विरोधी अवस्था है। अिसलिअे अशुभ वृत्तियोंका निरोध और लय करके शुभ वृत्तियोंका विकास साधते आना चाहिये। विकासके लिअे वृत्ति-शोधनकी और शुभ वृत्तियोंके संवर्धनकी जरूरत है। शुभ वृत्ति या शुभ संकल्पको आचरणमें लानेके लिअे अुचित कर्मक्षेत्रमें प्रवृत्ति करनी चाहिये। अुससे गुणोंका संवर्धन सचमुच कितना हो सकता है, वह हमें अनुभवसे

मालूम होता है। अैसे अनेक प्रकारके अनुभवोंके निरीक्षणसे हमें वृत्ति-शोधन और सद्गुण-विकासके अभ्यास और मार्गको आगे बढ़ाना चाहिये। अिस तरह जीवनभर कोशिश करते हुअ हम जिन-जिन गुणोंकी अपने लिअे परिसीमा साध सकेंगे और जो गुण हममें पूर्णत्व प्राप्त करेंगे, अुन गुणोंका कार्य हमारे हाथों आसानीसे होता रहेगा। अुन गुणोंके सम्बन्धमें हममें साक्षीभाव रहेगा। गुणोंमें तन्मय न रहकर, गुणोंके वेगमें न बहकर, जिस कामके लिअे जितनी मात्रामें जिन गुणोंकी जरूरत हो, अुस मात्रामें अुनका अुपयोग करके हम अलिप्त रूपसे कर्म करते रह सकेंगे। कर्म करते हुअे भी जो अलिप्तता रहनी चाहिये वह हमें सध जाय, तो ही हमारे द्वारा राग-द्वेषके वेगमें फंसे बिना निर्दोष ढंगसे कर्तव्य-कर्म होते रहेंगे। गुणोंके विकासके बिना कर्ममें स्वाभाविकता नहीं आती; स्वाभाविकताके बिना अलिप्तता प्राप्त नहीं होती। चित्तके अभ्यासके बिना वृत्तियोंकी खोज नहीं होगी और अुन पर काबू नहीं पाया जा सकेगा। ये सब बातें जीवनमें लानेके लिअे ये सारे प्रयत्न करने हैं। अिस अभ्यासका हेतु वृत्तियोंका लय या अुससे पहलेकी साक्षी-अवस्था प्राप्त करना नहीं है। जिस हद तक हममें गुणोंकी कमी रहेगी, अुस हद तक समय आने पर कर्मक्षेत्रमें हमारी स्थिति चंचल, अस्थिर और अनिश्चित रहेगी। दोष-निवारण, गुण-सम्पादन, गुणोंको स्वाभाविक स्थितिमें ले जाना, अुस सहज स्थितिमें ही अलिप्तता और कर्मका धर्मयुक्त अुदात्त भाव सिद्ध करना आदि सब बातें अभ्याससे ही हो सकती हैं। निर्दोष कर्ममें कर्म-कौशल आ ही जाता है।

(पत्र, ६–५–'४०)

९

चित्तकी अवस्थाओंका परीक्षण

प्रत्येक मनुष्यके चित्तकी संकल्प धारण करनेकी शक्ति मर्यादित होती है। अुस सीमा पर पहुंचनेके बाद चित्त अधिक समय तक संकल्प धारण नहीं कर सकता। अैसी स्थितिमें संकल्प अपने आप मन्द पड़ जाता है और चित्तमें ही विलीन हो जाता है। संकल्प धारण करना, अुसका छूट जाना और संकल्परहित रहना, ये सब चित्तकी ही अवस्थाअें हैं। चित्त जब संकल्प धारण नहीं कर सकता, अुस स्थितिमें अुसमें केवल जागृति ही रह सकती है। मनुष्य निश्चित हेतुसे और ज्ञानपूर्वक संकल्प धारण करता है। अुसकी यह धारणा छूट जाय तो भी जाग्रत चित्तमें स्वाभाविकतया ज्ञान-प्रवाह सूक्ष्म रूपमें जारी रहता है। निद्रामें ये सब बातें नहीं होतीं। अिसका कारण अेक तो यह है कि निद्रा प्राकृतिक सुप्तावस्था है; और यह अवस्था हमारी बुद्धिपूर्वक बनाअी हुअी न होनेके कारण अुसकी जड़में हमारा ज्ञानपूर्वक कोअी भी संकल्प नहीं होता और अिस प्रकार वह धारण भी नहीं किया जा सकता। अिसलिअे अुस समय अवस्थाका ज्ञातापन स्फुरित नहीं होता। चित्त अुस समय मूढ़ दशामें होता है। परन्तु जो अवस्था साधक जान-बूझकर प्रयत्नपूर्वक पैदा करता है, अुसे प्राप्त करते समय और अुसके प्राप्त हो जानेके बाद धारणा-शक्तिकी सीमा आ जाती है और धारणाके मन्द हो जाने तथा संकल्पके विलीन हो जानेके बाद भी कुल मिलाकर सारी अवस्थाओंमें अुसका चित्त जाग्रत रहता है। अेक अवस्थाके छूटने और दूसरी धारण करनेके संधिकालमें भी अुसका चित्त जाग्रत रह सकता है। अिसलिअे शुरूसे आखिर तक अुसकी जागृति कायम रहती है।

अिस परसे आप विचार कर लीजिये। किसी भी संकल्प या संकल्परहित अवस्थाका ज्ञाता कौन है? संकल्पका प्रारंभ कहांसे होता है? मूल स्फुरण कहांसे निकलता है? और फिर वह संकल्प कहां विलीन हो जाता है? चित्तके तरंगाकार होने और अुन तरंगोंके स्पष्ट दशामें आनेके बाद अुनका

प्रवाह वृत्तियोंके रूपमें बहने लगकर अन्तमें अुन सबका लय कहां होता है? अिन सब अवस्थाओंका अधिष्ठान किस पर है? आप अिसकी खोज कीजिये।

अिस पत्रमें आपकी लिखी हुआी स्थिति अभ्यासकी दृष्टिसे अच्छी है। आपने लिखा है कि "संकल्पका अभ्यास जारी हो तब आगे जाकर वह स्थिर होकर अपने आप बन्द हो जाता है और चित्तके साथ अुसकी तद्रूपता टूट जाती है; और केवल स्तब्धताका भान होता है। अिसमें जागृति और स्मृति होनेसे स्थिरता दिखाओी देती है।"

'अनुभवामृत' के ३, ४ और ५ अध्याय अुनके अर्थ, आशय और अनुभवके साथ यथाशक्ति समरस होकर पढ़िये। अुससे जो बोध प्राप्त हो अुसका विचार कीजिये। अुसके साथ अपने प्रस्तुत अनुभवकी तुलना करके देख लीजिये।

(पत्र, १–८–'४०)

१०

संकल्प, साक्षीवृत्ति और जागृति

शुभ संकल्पमें अेकाग्रताके बारेमें जो लिखा है सो ध्यानमें आया। अिसके बाद आप लिखते हैं कि, "अेकाग्रता साधते समय संकल्प अितना स्थिर हो जाता है कि अुसीसे अेक नया संकल्प निर्माण होता है, जो चालू संकल्पको सावधानीसे देखता है और फिर स्वयं शांत हो जाता है। शान्त होते समय केवल जागृति ही होती है। यह जागृति थोड़े समय तक रहती है और बादमें पहलेकी अलग वृत्ति और संकल्पका सम्बन्ध शुरू हो जाता है।"

अिसमें आपने जो लिखा है कि "अेक संकल्प पर अेकाग्रता साधते समय दूसरा संकल्प निर्माण होता है और वह पहलेके चालू संकल्पको सावधानीसे देखता है", अुसके बारेमें मेरा खयाल है कि अेकमें से दूसरा संकल्प पैदा हो तो वह पहलेको देख नहीं सकता। परन्तु देख सकता हो तो वह पहले संकल्पमें से फूटकर निकली हुआी दूसरी वृत्ति

होगी, संकल्प नहीं हो सकता। संकल्प हो तो अेक तो वह अपने प्रवाहमें जारी रहेगा या फिर पहलेकी तरह अुसका दृढ़ीकरण होता रहेगा। देखने या जाननेका काम अलग वृत्ति द्वारा होता है। संकल्प भी तो अेक विशेष लक्ष्य, हेतु या कल्पना पर दृढ़ की हुअी वृत्ति ही होता है। परन्तु वह केवल देखनेवाली या जाननेवाली, अलग या तटस्थ वृत्ति नहीं होती। अुसकी दृढ़ता कम होनेके बाद जब चित्त धारणामें से, संकल्पमें से फूटकर थोड़ा बाहर निकलता है और अलग होकर यह सारा हाल देखता है, जानता है, तब वह बाहर निकला हुआ चित्तका भाग ही सबको जाननेवाली वृत्ति है। यह भाग जैसे-जैसे अधिक स्पष्ट दशामें आता जाता है, वैसे-वैसे संकल्पकी दृढ़ता कम होती जाती है; और बादमें केवल अलग वृत्ति ही रह जाती है। संकल्पके पूरी तरह शान्त हो जानेके बाद अुसे जाननेवाली अलग वृत्तिका काम न रहनेसे अुसका भी लय हो जाता है। और बादमें दूसरा संकल्प या वृत्ति न अुठे, तो चित्तमें केवल जागृति ही रहती है।

ये सब चित्तवृत्तिके ही प्रकार हैं। वृत्ति निर्माण होती है; वह कुछ समय प्रवाहकी तरह बहती है; दृढ़ होती है और फिर अुसीमें से अलग वृत्ति निर्माण होती है। अभ्यास ज्योंका त्यों ही आगे चलता रहे, तो अुस वृत्तिका भी लय हो जाता है और केवल जागृति रह जाती है। अभ्यास न हो तो अेकमें से दूसरी और दूसरीमें से तीसरी अिस तरह वृत्तियोंका प्रवाह सतत जारी ही रहता है। अैसी स्थितिमें जब कोअी भी वृत्ति स्पष्ट रूपमें नहीं होती, तब अमनस्कता यानी अेक प्रकारकी जड़ता ही होती है। अभ्यासी आदमीके चित्तमें वृत्तिके लय होनेके बाद जागृति रहती है।

संकल्प संकल्पको देख नहीं सकता। अेक ही दृढ़ वृत्ति या संकल्पमें से निकला हुआ चित्तशक्तिका अंश संकल्पको जान सकता है। संकल्प और अुसे जाननेवाली अलग वृत्ति अेक ही चित्तशक्तिसे होनेवाले दो कार्य हैं। अुस समय अेक ही शक्ति दो अलग-अलग कामोंमें बंटी हुअी होती है।

(पत्र, १-५-'४३)

११

ज्ञानमय जाग्रत अवस्था

पिछले पत्रमें मैंने जो कुछ लिखा था, अुसीका विशेष स्पष्टीकरण अिस पत्रमें करता हूं।

अभ्यास करनेके लिअे शुरूमें साधक कोअी भी अेक शुभ संकल्प या अेकाध भीतरी या बाहरी लक्ष्य चुन लेता है और चित्त-वृत्तिका प्रवाह अुस पर लाने और वहीं स्थिर करनेका प्रयत्न करता है। चित्तकी संकल्प-विकल्पात्मक चंचलता अिस प्रयत्नमें बाधक होती है, अिसलिअे चित्तवृत्तिको अेक जगह केन्द्रित करनेके लिअे अुसे चित्तकी तमाम ताकत अिकट्ठी करनी पड़ती है। अिकट्ठी ताकतका अेक ही जगह अुपयोग करनेके लिअे साधकको दृढ़ता और निग्रह रखना पड़ता है। जैसे हाथमें पकड़ी हुअी किसी चीजको छूटने न देनेके लिअे हाथका सारा बल वस्तुको पकड़कर रखनेवाले स्नायुओंमें लाना पड़ता है, अुसे वहीं स्थिर रखना पड़ता है और अिसके लिअे अुन स्नायुओंमें दृढ़ता लानी पड़ती है, अुसी तरह चित्तको अेक जगह केन्द्रित करते समय जिस स्थान पर यह क्रिया होती है वहांके ज्ञानतंतुओंमें साधकको दृढ़ता लानी पड़ती है। चित्तवृत्तिको वहांसे हटने या बंटने न देना और धारण किये हुअे संकल्प या लक्ष्य पर अुसे स्थिर रखना — ये दो बातें कमसे कम अभ्यासके शुरूमें तो साधकको दृढ़ताके बिना नहीं सध सकतीं। आगे चलकर आदत पड़ जानेके बाद दृढ़ताकी जरूरत नहीं रहती। धारणा सिद्ध हो जानेके बाद अेक तो पहला संकल्प जिस प्रकारका होता है अुसी प्रकारके विचार अुसमें से स्फुरित होने लगते हैं और बादमें अुसी अभ्यासमें से तमाम विचारोंका क्रम व्यवस्थित होने लगता है। परन्तु अैसा न होकर यदि चित्तवृत्ति संकल्प पर ही स्थिर हो जाय, तो बादमें स्थिरताकी मर्यादा पूरी हो जाने पर धारणा मन्द पड़ने लगती है। अुसके मन्द पड़ने लगनेके बाद भी अिन सब प्रकारोंको जाननेवाली अेक वृत्ति जाग्रत रखनी पड़ती है। वह वृत्ति धारणाको, अुसके परिणामको जानती है। वह पहले केवल

साक्षीरूपमें हो तो भी अुसीमें से अवलोकन, शोधन, परीक्षण आदि वृत्तियां निर्माण करनेके कारण पहले संकल्पकी दृढ़ता धीरे-धीरे कम होती जाती है। फिर साक्षीपन मिटकर शोधन और परीक्षण भी लुप्त हो जाता है। अुस समय पहले संकल्पमें से बाकी बचा हुआ अंतिम अंश भी विलीन हो जाता है।

अुस समय संकल्प मिट जाय, साक्षीपन नष्ट हो जाय, तो भी शोधन और अनुभवसे ज्ञानके साथ प्राप्त नअी जागृति बाकी रहती है। प्रसन्नता आती है। शुभ संकल्पकी धारणा और दृढ़तासे चित्तके अेकके बाद अेक अुच्च अवस्थामें जाते-जाते अुसमें स्थिरता आ जाती है और वह अब अशुभ या शुभ दोनोंमें से किसीको भी न पकड़कर केवल अपनी ही स्थितिमें ज्ञानमय जागृतिमें रहता है। आगेके ज्ञानकी स्फूर्ति होनेके लिअे अिस अवस्थाकी दृढ़ता और स्थिरताकी भी जरूरत है। वह अधिक समय तक स्थिर रह सके, तो ही बादके ज्ञानका अुदय हो सकता है। अुस अवस्थाके अधिक समय तक बने रहनेका आधार साधककी चित्तशुद्धि पर, संकल्प-विकल्पात्मक चंचलता अुसके चित्तसे जिस मात्रामें नष्ट हुअी हो अुस पर और अभ्यास करते समय अुसके ज्ञानतंतुओं पर जिस मात्रामें तनाव पड़ा हो अुस पर होता है। अिसके अलावा, अभ्यास करते करते साधकका चित्त अपने आप या प्रयत्न द्वारा अेकसे दूसरी और दूसरीसे तीसरी अवस्थामें क्रमशः जैसे गया हो अुस पर भी यह बात आधार रखती है। शुभ संकल्पकी धारणा साधते समय ज्ञानतंतुओं पर विशेष तनाव पड़ा हो, तो संकल्प परकी धारणा मन्द पड़ते ही चित्तके साक्षी-अवस्था पर जानेके बजाय अुसके तंद्रामें लय हो जानेकी संभावना रहती है। और धारणा अपने आप सिद्ध हुअी हो तो अुसीमें से आगे चलकर जागृतिकी अवस्था साधी जा सकती है।

अिसी पत्रमें आपने पूछा है कि, "अिसमें तीन स्थितियां हैं: संकल्प, अुसकी साक्षीवृत्ति और साक्षीवृत्तिका लय। अिनमें से किस स्थिति पर जोर देकर अभ्यास किया जाय?"

शुभ संकल्प पर अेकाग्र होनेमें हमारा जो हेतु हो, अुस पर अिस प्रश्नके अुत्तरका आधार है। केवल अेकाग्रता सिद्ध करनेका हेतु हो, तो

चित्तकी चंचलता दूर करके अुसे अेक ही संकल्पकी धारणामें थोड़े समयके लिअे निमग्न करने पर जोर देना चाहिये। शुभ संकल्पका अधिक स्पष्ट दर्शन करनेके लिअे या अुसके सहायक होनेवाले दूसरे शुभप्रद विचारोंकी स्फूर्तिके लिअे हमारी धारणा जारी हो, तो अुस चीजको प्राप्त करने पर जोर देना चाहिये। धारणाकी मर्यादा पूरी होनेके थोड़े समय बाद अुसीमें से दूसरी विचारधारा या संकल्प अुठनेके बीचके समयमें सावधानीसे साक्षीवृत्ति साधी जा सकती है। हमारा ध्येय अुसे साधनेका हो, तो अुस पर जोर देना ठीक होगा। परन्तु वह लम्बे समय तक टिकनेवाली वृत्ति न होनेके कारण या तो अुसीसे दूसरे संकल्प अुठने लगेंगे, या संकल्प धारण करनेकी चित्तकी शक्ति कुंठित हो गअी हो तो साक्षीवृत्तिका लयावस्थामें पर्यवसान हो जायगा। परन्तु साक्षीमें से शोधन, परीक्षण आदि और अुसमें से फिर आगे जागृति साधने जितना बल और प्रखरता हमारे चित्तमें हो और अिसी प्रकारका हमारा हेतु हो, तो साक्षी-अवस्थामें से चित्त लयावस्थामें न जाकर जागृतिकी तरफ जायगा। केवल साक्षीवृत्तिकी अपेक्षा शोधन और परीक्षण वृत्तिका महत्त्व अधिक है। क्योंकि अुनकी सूक्ष्मता और प्रखरता पर जागृतिकी शुद्धि, स्थिरता और स्थायित्वका आधार है। मेरे खयालसे यह जागृति साधना अिस अभ्यासका मुख्य हेतु माना जाना चाहिये। जीवनके सब व्यवहारोंमें यही जागृति हमेशा अुपयोगी हो सकती है। यह जागृति जितनी मात्रामें सधेगी, अुतनी ही मात्रामें अलिप्त दशा सिद्ध होगी। अिस अभ्यासमें आपने कौनसा अुद्देश्य मुख्य रखा है और अुससे आप क्या निर्माण करना चाहते हैं, अिस बात पर अिस प्रश्नका अुत्तर निर्भर है। मैं अिस बारेमें यह समझता हूं कि चित्तकी अशुद्धता दूर करके अुसकी शुद्धता और स्थिरता साधना, अेकाग्रता साधना, अुस अेकाग्रतासे शुभ संकल्पका अधिकाधिक दर्शन होना, अुसीसे शुद्ध संकल्पकी और अुसके आनुषंगिक अन्य अनेक शुद्ध विचारोंकी स्फूर्ति होना, अेकाग्रताकी सिद्धिसे चित्तका शुभ संकल्पमें निमग्न होना और अुसमें से साक्षी-अवस्थासे आगे जाकर सब स्थितियोंका शोधन-परीक्षण सिद्ध होना और अन्तमें अिन सबसे बाहर निकलनेके बाद चित्तकी जागृत अवस्था सारे समय कायम रखते आना ही अिस अभ्यासका मुख्य हेतु

होना चाहिये। अभ्यासकी हरअेक आवृत्तिमें चित्त अधिकाधिक गाढ़, स्थिर, सूक्ष्म और जागृत होकर अिन सब अवस्थाओंका अनुभव करने लगे, तो साधक यह समझे कि अुसका अभ्यास ठीक चल रहा है। चित्तके द्वारा चैतन्य कितनी शुद्धतासे, सूक्ष्मतासे, स्थिरतासे और विविध ढंगसे स्फुरित होता है; कपड़ेकी तह जैसे खुल सकती है वैसे ही वापस बन्द भी हो सकती है, अुसी तरह अेकमें से दूसरी अैसी अनेक अवस्थाओंका अेकके बाद अेक होनेवाला प्रकटीकरण और फिर सारी अवस्थाओंका चित्तमें होनेवाला लय — यह सारा क्रम सावधानीसे जानने और अिन सब अनुभवोंसे जागृति, अलिप्तता और चित्तकी स्वाधीनता साधनेकी दृष्टिसे अिस अभ्यासका महत्त्व है। ये सब चीजें सिद्ध हो जानेके बाद अेक ओर जीवन-व्यवहारके अपने सारे चित्त-व्यापारों पर हमारा काबू हो जाना चाहिये और दूसरी ओर सद्‌गुणोंका अुत्कर्ष करते करते हमें अपनी अिसी चित्तशक्तिका बुद्धि और शरीरकी मददसे विकास करते रहना चाहिये।

अूपर जो लिखा है अुससे आप अपने प्रश्नोंके अुत्तर निकाल सकेंगे। अभ्यास जारी रखेंगे तो अुससे मिलनेवाले अनुभवसे ये सारी चीजें अपने आप समझमें आने लगेंगी। जीवनका ध्येय आपके ध्यानमें आ गया हो तो यह भी आपके ध्यानमें अवश्य आ जायेगा कि अिस अभ्यासमें अुसकी सहायक वस्तुअें कौनसी हैं। अुन्हींको आप महत्त्व दीजिये। कुछ भूलचूक हो जाय तो अुसके लिअे चिन्ता करनेका कारण नहीं है। अनुभव, शोधक-वृत्ति, ज्ञान, जागृति, सद्‌गुणोंके प्रति रुचि, अुनकी प्राप्तिके लिअे आवश्यक पुरुषार्थ और अिन सबका जीवनको सार्थक करनेके लिअे जरूरी सुमेल आदि बातें जिससे प्राप्त हो सकें वही सच्चा अभ्यास है, यह बात साधकको सतत अपनी दृष्टिके सामने रखनी चाहिये।

(पत्र, ८–५–'४३)

१२

मनःशक्तिकी शोध

मानसिक शक्तिकी वृद्धिके साथ ही शुद्धिका आग्रह

मानव-मनमें सुप्त रूपमें अत्यधिक सामर्थ्य मौजूद है। मनुष्यके कर्मों द्वारा गुण-अवगुणोंका जो प्रकटीकरण होता है, वह अिस सामर्थ्यका द्योतक है। प्रेम, दया, अुदारता शुद्ध मानसिक शक्तिके और दुष्टता, कठोरता, हिंसा अशुद्ध शक्तिके लक्षण हैं। शक्ति और शुद्धिमें बड़ा फर्क है। जहां शुद्धि होगी वहां शक्ति होगी ही; परन्तु जहां शक्ति होगी वहां शुद्धि होगी ही, यह नहीं कहा जा सकता। अिसलिअे मनुष्यकी केवल मानसिक शक्तिकी वृद्धि होनेसे अुसकी मानवता नहीं बढ़ती। शक्तिके साथ शुद्धिकी वृद्धि हो तो ही मानवताकी वृद्धि होती है। गीतामें तपके सात्त्विक, राजस और तामस तीन प्रकार बताये हैं। मनुष्य किसी-न-किसी अुद्देश्यसे कष्ट सहन करता है, त्याग करता है। अिस कष्ट-सहनको तप कहें, तो अितनेसे ही वह तप सात्त्विक नहीं हो जाता। किसी भी कार्य या अुसके परिणामकी जड़में सात्त्विक अुद्देश्य होना चाहिये। अुसके परिणामस्वरूप हममें और दुनियामें सात्त्विकता बढ़नी चाहिये। ये सब बातें सिद्ध करनेके साधन भी सात्त्विक ही होने चाहिये। तभी अुस कार्यके लिअे किये गये प्रयत्न, अुठाये गये कष्ट और किया गया तप सात्त्विक माना जा सकता है। संयम, धैर्य, साहस, निर्भयता आदि गुण मानसिक शक्तिके बिना प्राप्त नहीं होते। संयम, धैर्य आदि गुणोंका अुपयोग मनुष्य दुष्ट कार्यमें भी कर सकता है। अिसलिअे अुन गुणोंको अुस अवसर पर अवगुण समझकर यह कहना पड़ता है कि अुस शक्तिमें शुद्धि नहीं है। मानसिक शक्तिके बिना संयम सिद्ध नहीं होता। क्षमाशील और कपटी दोनोंको क्रोधका संयम करना पड़ता है। और दोनोंको अुतने समयके लिअे वह सिद्ध भी होता है। क्षमाशील पुरुष संयम द्वारा निर्वैर और शान्त होता है, जब कि कपटी मनुष्य संयम द्वारा वैर लेनेकी बाट देखता रहता है। अिसलिअे संयमकी मानसिक शक्ति अेकको अुन्नतिकी

ओर तो दूसरेको अधोगतिकी ओर ले जानेका कारण बनती है। अिसलिअे मनुष्यमें शक्तिके साथ शुद्धिका भी आग्रह होना चाहिये।

मानव-मनकी महाशक्तिको जाग्रत करनेका सामर्थ्य जितना दृढ़ संकल्पमें है अुतना और किसी चीजमें नहीं है। गुण या अवगुणकी वृद्धि दृढ़ संकल्पके बिना नहीं हो सकती। मनकी सारी शक्तिका रहस्य दृढ़ संकल्पमें है। मनुष्यकी अिच्छा जब अेक संकल्पमें आकर बैठती है और चित्तकी संपूर्ण शक्तियोंको अेकत्र करके जब अेक स्थान पर संकल्पका केन्द्रीकरण होता है, तब अुसमें विशेष सामर्थ्य पैदा होता है। सारी अिन्द्रियों द्वारा बाहर पड़नेवाली और हमारी सुप्त शक्तिको जाग्रत करनेसे पैदा होनेवाली दोनों शक्तियोंको यदि मनुष्य अेक ही जगह अेकाग्र, स्थिर और दृढ़ कर सके, तो अुसमें से अलग-अलग शक्तिके रूप प्रकट हो सकते हैं। अिस बारेमें बुद्धिपूर्वक प्रयत्न किया जाय या मनुष्यके हाथों यही क्रियायें अनजाने अपने आप हो जायं, तो भी अुनका अेक ही परिणाम आता है। हम लकड़ियोंको आपसमें जान-बूझकर रगड़ें तो भी अग्नि प्रकट होती है और दो लकड़ियां या पेड़ कुदरती तौर पर हवाके जोरसे रगड़ खाते रहें तो भी आग ही पैदा होती है। दूधको हम जान-बूझकर बिलोयें तो भी अुसमें से मक्खन निकलता है और किसी कारणसे दूधका बरतन या बोतल लगातार हिलती रहे तो भी अुसमें से मक्खन ही निकलता है। पानीके प्रवाहमें हम जान-बूझकर कोअी निश्चित गति, वेग या दबाव पैदा करें या नैसर्गिक रूपमें ही अुसमें ये चीजें प्रवेश करें, तब भी अुसमें से शक्ति अवश्य निर्माण होगी। यही बात मनःशक्तिके बारेमें है। कभी किसी विशेष प्रकारकी मनकी स्थितिमें मुंहसे निकले हुअे अुद्‌गारोंको मंत्रका स्वरूप प्राप्त हो जाता है। कभी कोअी निश्चित शब्द, विधि या तंत्रमें वह सामर्थ्य अुत्पन्न करना पड़ता है। अर्थात्, अिसमें सन्देह नहीं कि किसी भी स्थितिमें पैदा हुअे परिणामके लिअे मनुष्यके मनकी शक्ति ही कारण होती है।

संकल्पका मनःशक्ति जाग्रत करनेका सामर्थ्य

ठेठ प्रारंभिक कालसे मनुष्य अपनेमें निहित हर किसी शक्ति द्वारा अपनी रक्षा करनेका प्रयत्न करता आया है। आज भी धीरे-धीरे भयंकर रूपमें बढ़ी हुअी अपनी भौतिक, बौद्धिक, आर्थिक और सामूहिक शक्तियों द्वारा वह यही चीज अर्थात् अपनी रक्षा करनेका प्रयत्न करता है। अिस कार्यके लिअे जिस समय मनुष्यके पास आजके जैसे तरह तरहके साधन नहीं थे, अुस समय वह स्वाभाविक ही मानसिक शक्ति बढ़ानेकी तरफ मुड़ा होगा। अथवा अेकाअेक ही अुसकी मानसिक शक्ति अुत्तेजित हो गअी होगी। अिनमें से पहले क्या हुआ होगा, अिसकी यथार्थ कल्पना हम अिस समय नहीं कर सकते। ज्यादातर क्षुब्ध और अुत्तेजित अवस्थामें मनुष्यकी सारी शक्ति शरीर और बुद्धि द्वारा कर्मके रूपमें बाहर निकलनेका प्रयत्न करती है। और जब अुसे अिनके द्वारा बाहर आनेका रास्ता नहीं मिलता, तब वह शक्ति मनमें संचित होकर वहीं भिन्न-भिन्न विचारों, भावनाओं और विकारोंमें अव्यवस्थित रूपमें संचार करती और घूमती रहती है। यदि यही शक्ति अैसे समय अचानक अेक ही संकल्पमें केन्द्रित हो जाय, तो मनुष्यके मुंहसे निकलनेवाले शब्दोंमें, अुसके हाथोंसे होनेवाली साधारण क्रियामें अुसका सामर्थ्य प्रकट हो सकता है। अुस शब्द या क्रियाका बाह्य स्थूल सृष्टि पर, अपने पर या दूसरों पर संकल्पानुसार अच्छा या बुरा परिणाम मर्यादित मात्रामें तत्काल अथवा कालान्तरमें होता है। यह निसर्गका धर्म है। जैसे हमारे शरीर पर सृष्टिके स्थूल तत्त्वोंका परिणाम होता है, वैसे ही सृष्टिके सूक्ष्म तत्त्वोंका हमारे स्थूल और सूक्ष्म तत्त्वों पर परिणाम होता है। सृष्टिमें मनतत्त्व, बुद्धितत्त्व, प्राणतत्त्व वगैरा सारे तत्त्व हैं। वे तत्त्व मनुष्यके दूसरे तत्त्वों जैसे प्रकट या स्पष्ट नहीं होते, सुप्त होते हैं। हममें रहनेवाले दूसरे तत्त्वोंके साथ सम्बन्ध आनेके बाद ही अुन सुप्त तत्त्वोंकी प्रकट दशा शुरू होती है। अनाजमें भी सारे तत्त्व सुप्त दशामें हैं। मनुष्य या और किसी प्राणीके पेटमें जानेके बाद वे सुप्त तत्त्व अुन शरीरोंके तत्त्वोंके रूपमें स्पष्ट दशामें आते हैं। अनाजकी तरह सृष्टिमें भी सब जगह सारे तत्त्व सुप्त रूपमें व्याप्त हैं। अुन्हीं तत्त्वोंसे हम अपनी

सृष्टिके स्थूल और सूक्ष्म तत्त्वोंके धर्म

आवश्यकता और शक्तिके अनुसार ज्ञात या अज्ञात रूपमें सतत अनेक तत्त्व लेते हैं और आत्मसात् करते हैं। हममें से भी यही तत्त्व अन्य रूपमें बाहर आते हैं और सृष्टिमें मिल जाते हैं। अिस प्रकार हमारे और सृष्टिके बीचका आपसी व्यवहार सतत चालू रहता है। हममें और दूसरोंमें प्रकट दशामें आये हुअे तत्त्वोंको — दोनोंको मिलानेवाले सुप्त तत्त्व अव्यक्त रूपसे सृष्टिमें फैले हुअे हैं; और अुनके द्वारा हम और दूसरे जीव सब अेक-दूसरेके साथ जुड़े हुअे हैं। अिस साधन या वाहन द्वारा हमारे और अुनके तत्त्वोंके अेक-दूसरेके चित्त, मन, बुद्धि, प्राण और शरीर पर परिणाम हों अैसा धर्म सृष्टिमें विद्यमान ही है। सृष्टिके छोटे-बड़े कार्य अिस नियमके अनुसार होते रहते हैं। अुनमें से कुछ हमें ज्ञात हैं और कुछ अज्ञात हैं। हमें वे ज्ञात हों या न हों, परन्तु सृष्टिमें वे धर्म कायम हैं। अुनके ज्ञात न होने पर भी हमें अैसा लगता है कि हम अुन्हें जानते हैं। मैं जैसा लिख रहा हूं वैसे ही सृष्टिके और हमारे परस्पर धर्म या कार्यकारण-सम्बन्ध हों या न भी हों। मनुष्यका काम यह है कि वह अपने ज्ञानका अहंकार और आग्रह न रखकर सत्य धर्मोंकी खोज करके अुन्हें मानव-जातिकी अुन्नतिके लिअे अनुकूल बनानेका प्रयत्न करे।

मन्त्र-तन्त्रकी अुत्पत्ति

कार्यका ज्ञान सच्चा ज्ञान नहीं है। अुसके कारणोंको जानना सच्चा ज्ञान है। मनुष्यमात्रकी बुद्धिका झुकाव थोड़ी-बहुत मात्रामें कुदरती तौर पर अिसी ओर होता है। अितने पर भी अुसकी जड़ता, अल्प-संतोष और अहंकारके कारण वह बिलकुल मर्यादित और कुंठित भी हो जाती है। मनकी किसी विशेष स्थितिमें किये गये संकल्पका या मनकी शक्तिका परिणाम दुनिया पर और अपने पर होता है, यह पहले कहा ही जा चुका है। मनुष्यको अिस प्रकारका अनुभव हो जानेके बाद भी वह अपनी संकल्प-शक्तिका प्रभाव नहीं जानता है। अिसलिअे अुस परिणामके कर्तृत्वका सम्बन्ध जिसे वह अपना श्रद्धास्पद और सामर्थ्यवान देवता मानता है, अुसके साथ, भूत-पिशाचके साथ अथवा पितरोंके साथ, किसी भी तरह

अपनेसे किसी अलग शक्तिके साथ जोड़ देता है। क्षुब्ध और अुत्तेजित मनकी शक्ति जब कुदरती तौर पर अेक ही संकल्पमें अेकत्रित और केन्द्रित होती है, तब मनुष्यको अपने देवता और अुसकी अगाध शक्तिका स्मरण होना स्वाभाविक है। अुसके परिणामका कर्तापन वह सहज ही अपने आराध्यमें आरोपित करता है। चमत्कारमय अनुभवसे अुसकी श्रद्धा दुगुनी हो जाती है। जब संकट या कठिनाअीके समय कोअी रास्ता दिखाअी नहीं देता, तब वह अुसे याद करता है और अुसकी कृपाकी याचना करता है। यह नहीं कहा जा सकता कि अेक बारके मनःशक्तिके आकस्मिक अेकीकरणसे जो कार्य हो जाता है वह हर बार होता ही है। न हो तो भी भावुक आदमी अपनी श्रद्धा नहीं छोड़ता। देवताके प्रति अिस प्रकारकी श्रद्धा जब अुत्तान बन जाती है, तब किसीकी जागृति लुप्त हो जाती है। अुस अवस्थामें देवताके साथ अेकरूप हो जानेके कारण, जगतके मनतत्त्वके साथ स्वभावतः समरस हो जानेके कारण साधारण मनःस्थितिमें समझमें न आनेवाली कुछ चीजोंका अुसे ज्ञान हो जाता है और वह अुसके मुंहसे बाहर निकलने लगता है। अैसा व्यक्ति समाजमें देवताके 'भगत' के रूपमें ख्याति प्राप्त करता है। और किसीके भी दुःख या संकटमें क्या करनेसे देवता संतुष्ट होकर दुःख या संकटका निवारण करेगा, यह समझ लेनेके लिअे अुस 'भगत' से प्रश्न पूछनेकी प्रथा चल पड़ती है। 'भगत' जाग्रत या अर्द्धजाग्रत अवस्थामें अुनके अुत्तर देता है। लोग यह मानते हैं कि देवता अुसके शरीरमें आ जाता है और अुसके मुंहसे जवाब देता है। मनकी अैसी अुत्तान या अुत्तेजित अवस्थामें जगतके मनतत्त्वके साथ तद्रूप होनेके बाद संकट-निवारण या अुद्देश्य-सिद्धिके लिअे जो शब्द या शब्द-रचना मुंहसे निकलती है, अुसे मंत्रका स्वरूप प्राप्त हो जाता है। जो अुपाय सुझाये जाते हैं अुनसे तंत्र पैदा होता है और अुस समयकी विधिमें पवित्रता आ जाती है। और अैसी लोकश्रद्धा पैदा हो जाती है कि अुसमें कोअी विशेष और अद्भुत सामर्थ्य है।

विश्वशक्तिके साथ तादात्म्य होनेसे प्राप्त होनेवाली शक्ति

दृढ़ संकल्पमें अेकत्रित अथवा केन्द्रित मनकी शक्तिसे अथवा मनका चालू प्रवाह बन्द हो जाने पर सृष्टिके मनतत्त्वके साथ अेकरूप होनेके बादकी स्फूर्तिसे दिव्य मानी जानेवाली सब शक्तियोंकी अुत्पत्ति होती है। अिन शक्तियोंका मूल खुद हममें ही होता है। समझमें न आनेसे मनुष्य अिन्हीं निसर्ग धर्मोंको देवताओंकी आराधना द्वारा अपने काबूमें लानेका प्रयत्न करने लगा। अुनकी आराधनाके लिअे वह अुनका स्तवन करने लगा। अिसके लिअे अुसने विधि-विधान तैयार किये। स्तवन और विधि-विधानको श्रद्धाके कारण स्वभावत: पावित्र्य प्राप्त हुआ। यही प्रथा आगे जारी रही। सृष्टि-सम्बन्धी बढ़ते हुअे ज्ञानके कारण अुसमें फर्क भी पड़ता गया। मनुष्यकी श्रद्धा आगे चलकर भूत, पिशाच, पितर और देवताओं परसे आगे बढ़कर अीश्वर तक आअी। परन्तु अपनी मन:शक्तिका सामर्थ्य अुसके ध्यानमें न आनेसे अुस सामर्थ्यके द्वारा होनेवाले कार्योंके कर्तापनका आरोपण वह हमेशा दूसरी ही किसी दिव्य शक्तिमें करता आया है। मनकी अुत्तेजित अवस्थामें आकस्मिक रूपसे मन:शक्तिके नैसर्गिक केन्द्रीकरणमें से बिजलीकी तरह अेक अद्‌भुत शक्ति निर्माण होती है। अिसका ज्ञान न होनेके कारण मनुष्यने अपने द्वारा होनेवाले कार्यका कर्तापन दूसरी किसी दिव्य शक्तिमें आरोपित किया; फिर भी अुसने नैसर्गिक केन्द्रीकरण परसे चित्तको किसी-न-किसी विवक्षित संकल्प पर दृढ़ और केन्द्रित करना सीखा। अिससे अुसने यह बात समझी कि हम जिस हेतुसे देवताकी आराधना करते हैं, वह हेतु अिस अुपाय द्वारा सिद्ध होता है। मनुष्यने सृष्टिके नैसर्गिक धर्मों परसे ही अपना ज्ञान बढ़ाया है। बरसातके कारण चारों ओर फैलनेवाले जंगलोंसे ही अुसने खेती करना सीखा। कुदरती तौर पर होनेवाले कार्योंसे ही अुसमें वैसे कार्य योजनापूर्वक और किसी खास अुद्देश्यसे करनेका ज्ञान स्फुरित हुआ। अिसी तरह मन:शक्तिके आकस्मिक केन्द्रीकरणसे अुसे अपने संकल्पमें दृढ़ता, तीव्रता, अेकाग्रता वगैरा लाकर अिस प्रकारकी मन:स्थिति बनानेकी बात सूझी और वह अुस प्रयत्नमें लगा। अुसने अैसी शक्ति पैदा की जिससे अेक ही संकल्पके

सतत अनुसंधानसे 'चालू मन'* का अंतमें लय करके विश्वके मनतत्त्वके साथ समरस होनेसे विश्वकी वस्तुओंके गुणधर्मोंका ज्ञान अपनेमें स्फुरित हो सके, प्रगट हो सके। असने यह भी देखा कि चालू चित्त-प्रवाहका लय करनेके बाद मूल संकल्पकी दृढ़ता, तीव्रता और विश्वके अनंत ज्ञानमें से अपने संकल्पकी पूर्तिके लिअे आवश्यक ज्ञान अपनेमें स्फुरित होने और अुसे धारण करनेकी अपनी पात्रता पर ही अपने संकल्पकी सिद्धिका आधार है और तदनुसार किसी किसीने प्रयत्न भी किया। अैसे प्रयत्नोंसे मनुष्यको जो स्फुरणा होती है, वह अुसकी हमेशाकी विचार-शक्ति और मनःशक्तिके बाहरकी होती है। वह अुसकी कल्पनाके बाहरकी होती है। अपनी अन्तःशक्ति और विश्वशक्तिकी समरसतामें से वह निर्माण होती है। अैसे ही कुछ प्रकारोंको योगी 'अन्तर्नाद' कहते हैं और भक्त 'अीश्वरी आदेश' समझते हैं।

अिसी प्रकारके प्रयत्नोंसे मंत्र और तत्सम विद्याओंका जन्म हुआ है। तत्त्वज्ञानी लोगोंने विश्वके सूक्ष्म तत्त्वोंकी खोज भी अिसी प्रकारके प्रयत्नों द्वारा की है। अिसी तरह आयुर्वेदसे पहलेके औषधि-विद्याके शोधक भी अिसी प्रकारके प्रयत्नशील लोग होंगे। योगमार्गमें बहुत आगे बढ़े हुअे सिद्ध व्यक्ति ही अिस प्रकारकी शोध कर सकते हैं। अुनका प्रयत्न केवल चित्तलयका नहीं, परन्तु अुसके बादकी महा-जागृतिका होना चाहिये। अिन सबके पीछे चित्तके धर्मोंको जाननेके बाद किये गये प्रयत्न हैं। अुनके पीछे शास्त्रीय ज्ञानका आधार है। प्रयत्न, अनुभव और निरीक्षणकी मददसे अिन विद्याओंका, शास्त्रोंका और ज्ञानका विकास करनेके लिअे अब भी बहुत गुंजाअिश है। अिस मार्गमें सच्ची और तीव्र आतुरता, हेतु-संबंधी तीव्रता, संकल्पकी दृढ़ता, लगन, लगातार प्रयत्न और सिद्धि मिलनेमें कितना ही विलम्ब हो जाय तो भी कभी विचलित न होनेवाला धीरज, दृढ़ अीश्वर-निष्ठा वगैरा अनेक गुणोंकी जरूरत है। अिसमें जल्दबाजी, अल्पसंतोषकी वृत्ति, अविश्वास और चंचलतासे काम नहीं चलता।

---

* सदा अुपयोगमें आनेवाला, संस्कारोंसे बद्ध तथा बौद्धिक विचारा-नुसार कार्य करनेवाला मन।

सात्त्विक मंत्रविद्या

अिस विद्याके हेतु और साधनकी शुद्धि या अशुद्धिसे अुसके तीन भेद होते हैं। जिस हेतुका मानव-जातिके दुःख-निवारणके साथ व्यापक और निःस्वार्थ संबंध हो और जिसका साधन पवित्र और किसीको भी दुःख देनेवाला न हो, वह हेतु और साधन सात्त्विक माना जाता है। जिसमें व्यक्तिगत मान, प्रतिष्ठा, सुख, सामर्थ्य वगैरा प्राप्त करनेका हेतु हो वह राजस है। और जिसमें दूसरोंका नाश करके किसी भी भौतिक प्राप्तिका हेतु हो और जिसके साधन भी हिंसामय, भयानक, साधारण नीतिधर्मको अमान्य, अमंगल और अनेक प्रकारसे अपवित्र हों, वह तामस प्रकार कहलाता है। ये तीन प्रकार मानव-जातिमें पुराने जमानेसे चले आ रहे हैं। अिनमें से सात्त्विक प्रकारका विचार यहां प्रस्तुत होनेसे दूसरे दो प्रकारोंकी चर्चा करनेका कोअी कारण नहीं है। मानव-जातिके कल्याणके हेतुसे तपस्वी ब्राह्मणोंने अिस बारेमें पहले कोशिश की थी और अुसीसे कुछ मंत्रोंकी सिद्धि प्राप्त हुअी थी; और अुससे वैदिक मंत्रोंके बारेमें लोगोंमें जो श्रद्धा अुत्पन्न हुअी वह अभी तक चली आ रही है। मध्ययुगके जमानेमें मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ जैसे सिद्ध पुरुषोंने अिस विषयमें अनेक खोजें कीं। बौद्ध और जैन धर्ममें भी अिस विद्याके अुपासक हो गये हैं। यहूदी, पारसी, ओसाओी और अिस्लाम धर्ममें भी अिस विद्याका विकास हुआ है। अर्धजंगली जातिके धर्मोंसे लेकर सुधरे हुअे धर्मोंवाले लोगों तक अिस विद्याका थोड़ा-बहुत प्रचार होता रहा है। आजकल यह विद्या ज्यादातर लुप्त हो गअी है और आज अिसका कामकाज अपने पूर्वजोंकी विद्याके पुण्यके जोर पर, अुसके निष्प्रभ और निःसत्त्व अवशेषके जोर पर चलता है। सभी वैदिक मंत्रोंमें कभी दिव्य शक्ति नहीं थी। परन्तु लोगोंका अैसा विश्वास चला आ रहा है। विशेष सामर्थ्यसे युक्त मंत्र बहुत ही थोड़े होते हैं। अुनके प्रभाव और परिणाम स्पष्ट होते हैं। परन्तु अुनका अभिमंत्रण बड़ी आवाजमें नहीं करना पड़ता। जैसे दियासलाअी सुलगाने या बटन दबाकर बिजलीकी रोशनी करनेके काम अेक निश्चित क्रिया करनेसे निश्चित रूपमें होते हैं, वैसे ही मंत्रशक्तिसे कोअी भी निश्चित परिणाम निश्चित रूपमें होते ही हैं।

क्योंकि अुनके पीछे निसर्ग और चित्तकी शक्तियोंके धर्म जानकर की गअी शास्त्रीय योजना होती है।

चमत्कार बनाम मंत्रशक्ति

अीश्वर-भक्त या साधु पुरुषोंके जीते जी अुनके बारेमें लोगोंमें चमत्कारोंकी अफवाहें हमेशा चलती रहती हैं। अुनके मरनेके बाद भी चमत्कार होते रहनेके बारेमें किंवदन्तियां जारी रहती हैं। जिन अच्छी बातोंके कार्यकारण-भाव ध्यानमें नहीं आते, अुन सबका कर्तृत्व भावुक लोग भक्त या साधुके दिव्य सामर्थ्यमें आरोपित करते हैं। वे अिन सबको चमत्कार समझते हैं। लोगोंका यह विश्वास परम्परासे चला आ रहा है कि जहां साधु होगा वहां चमत्कार जरूर होगा। परन्तु जांच करने पर अिन सब बातोंमें अज्ञान, भोलापन और भ्रम ही दिखाअी देता है। अिस पर भी अगर सचमुच चमत्कार जैसी दिखाअी देनेवाली कोअी बात साधुके जीवनमें हुअी हो, तो अुसे किसी विशेष प्रकारकी मन:स्थितिमें हुअी आकस्मिक घटना मानना चाहिये। वह अुसकी सदाकी मन:स्थिति या स्वाधीन कर्तृत्व-शक्ति कभी नहीं हो सकती। मनकी पवित्र और स्थिर स्थितिमें अपने या दूसरेके प्रति चित्तमें अुठा हुआ कोअी संकल्प, कोअी विचार किसी समय सहज ही सिद्ध हो जाता है; या अनुकूल संयोगोंमें सृष्टिके धर्मके अनुसार भविष्यमें होनेवाली किसी बातकी स्फुरणा या कल्पना मनकी पवित्र स्थितिमें बिलकुल स्वाभाविक रूपमें चित्तमें पैदा होती है और वाणी द्वारा व्यक्त कर दी जाती है। और बादमें वैसा ही हो जाता है। अिस प्रकारकी घटना साधु माने जानेवाले किसी व्यक्ति द्वारा हो जाय, तो हम अुसे चमत्कार कह देते हैं। परन्तु सामान्य व्यावहारिक मनुष्यके बारेमें भी अैसे अनुभव होते हैं; फिर भी साधुकी तरह हम अुसकी ओर कभी अद्भुतता, दिव्यता या चमत्कारकी दृष्टिसे नहीं देखते। साधुका अेकाध शब्द या आशीर्वाद सच्चा निकल आये, तो अुसे हम चमत्कार समझकर अुसके कारण जन्मभर अुसके प्रति श्रद्धा और पूज्यभाव रखते हैं। कअी बार अुसके शब्द और आशीर्वाद बेकार साबित होते हैं। लेकिन अुनकी गिनती हम कभी नहीं करते। अेक बार मनुष्यकी किसी अीश्वर-भक्त पर श्रद्धा जम जाती है, तो जीवनमें जो भी अच्छा हो वह

अुसकी कृपासे हुआ है और बुरा हो वह अपने कर्मका फल है — अिस तरह मनुष्य बंटवारा कर लेता है। या कुछ बुरा हो जाय तो भी अुसमें महापुरुषका हेतु हमारी भलाअीका ही होना चाहिये, अैसी मान्यता रखकर अुसका यह प्रयत्न होता है कि हमारी मूल श्रद्धामें कमी न आने पाये। अेक व्यक्तिकी अिस प्रकारकी श्रद्धाके कारण अनेक मनुष्य अुस भक्तके पास कामनिक बुद्धिसे जाने लगते हैं। और यह कल्पना करके कि हमें भी अुसकी अद्‌भुत चमत्कार-शक्तिका अनुभव होगा और हमारे दुःखका कुछ निवारण होगा, श्रद्धायुक्त मनसे प्रतीक्षा करते रहते हैं। समय पाकर अैसे अनेक अंधश्रद्धालु व्यक्तियोंकी मिलकर अेक मंडली बन जाती है और अुसमें अेक-दूसरेके सहवासके कारण और साधुकी नित्यकी संगतिसे अेक प्रकारका ममत्व पैदा हो जाता है। अिस प्रकार अपने-अपने जीवन-व्यवसायसे मिलनेवाले अवकाशके समय अेक-दूसरेके साहचर्यमें रहनेवाला, आपसमें अेक-दूसरेके साथ अपने गुरुके सामर्थ्य और चमत्कारके बारेमें तरह-तरहकी कथायें जोड़नेवाला, रचनेवाला और कहता रहनेवाला तथा अुनका प्रचार करनेवाला अेक समूह पैदा हो जाता है। मूलमें कुछ न होने पर भी अज्ञान और भ्रमके कारण चमत्कार और दिव्य शक्तिकी कअी कहानियां हरअेक साधु पुरुषके नाम पर चलती रहती हैं। साधुको भी वे अच्छी लगती हैं। परन्तु अुनमें से अेक भी घटना साधुकी स्वाधीन मनःशक्तिसे नहीं हुअी होती। बहुत हुआ तो अुनमें अेकाध आकस्मिक घटना होती है। कोअी काकतालीय न्यायसे होनेवाली बात होती है। अुसकी तहमें निश्चयपूर्वक शास्त्रीय ज्ञान या स्वाधीन साधन न होनेसे वही चीज वह बार-बार नहीं कर सकता। अिन घटनाओंमें और सिद्ध मंत्रविद्यामें बड़ा फर्क है। जहां मंत्रविद्याका परिणाम स्वाधीन नहीं परन्तु अनिश्चित हो, वहां भी यही समझना चाहिये कि भ्रम है।

चमत्कार सम्बन्धी शास्त्रीय विचार

मानव-जीवनके हितकी दृष्टिसे विचार करें, तो प्रतीत होगा कि चमत्कार भ्रम और भोलापन बढ़ानेवाला है। अुससे कोअी कल्याण नहीं होता। हां, सात्त्विक मंत्रविद्या मनुष्यके लिअे अुपयोगी है। क्योंकि अुससे शास्त्रीय ज्ञानका विकास होता है। आज वर्तमान भौतिक ज्ञान और विज्ञान द्वारा सृष्टिके

सूक्ष्म और व्यापक गुणधर्मों और शक्तियोंकी खोज हो रही है। वैसे ही मानव-चित्त और मानव-मनके सामर्थ्यकी शास्त्रीय ढंग पर खोज होती रहे और मानव-जीवनको अनेक प्रकारसे दुःखमुक्त और सुखमय बनानेके लिअे अुसका अुपयोग किया जाय, तो मनुष्यका वर्तमान जीवन और जीवन-पद्धति जरूर बदल जायगी। जैसे भौतिक शास्त्रोंके ज्ञानका बेहद दुरुपयोग हो रहा है, वैसा ही मानसिक शक्तिका भी दुरुपयोग संभव है। यह खतरा ध्यानमें रखकर हमें अिस मार्गके सात्त्विक प्रयत्नोंको प्रोत्साहन देना चाहिये। अिसके लिअे भोलेपन और नास्तिकता दोनोंसे बचकर हमें शोधक और समीक्षक पद्धतिसे सृष्टिके विविध धर्मों और मानवकी चित्तशक्तिका अध्ययन करना चाहिये। किसी भी साधुके चमत्कारसे अेकदम आश्चर्यचकित होकर भावुक न बनना चाहिये। अुसमें कुछ सत्य भी है या केवल भ्रम ही है, काकतालीय न्याय है या कोअी धोखाधड़ी है, हाथकी चालाकी है या आसपासके लोगोंकी कोअी कारस्तानी है, अिन सब बातोंकी जांच करनी चाहिये। साधुकी किसी विलक्षण और अतर्क्य शक्ति द्वारा चमत्कारके रूपमें किसीका दुःख दूर हुआ हो, किसीका रोग मिट गया हो, किसीके लिअे अुसने पानीका दूध कर दिया हो और अैसी शक्तियां साधुमें सचमुच ही हों, तो साधुका मुख्य गुण दया अुसमें अवश्य होनी चाहिये। अतः अैसी स्थितिमें हमें अुसके द्वारा समाजके दुःखों और रोगोंका निवारण करानेका प्रयत्न करना चाहिये। हमें अुससे अैसी व्यवस्था करानी चाहिये, जिससे गरीबों और अुनके बच्चोंको रोज दूध मिले। अैसा करनेको वह साधु तैयार न हो तो हमें समझ लेना चाहिये कि अुसमें अिस प्रकारकी मानसिक शक्ति नहीं है और अुसके हाथसे अिस शास्त्रका विकास नहीं होगा। चमत्कारोंके विषयमें हम प्रायः शास्त्रीय ढंगसे विचार और जांच नहीं करते। अतः अुनके बारेमें अंधश्रद्धा और भोलापन बढ़ा है और आगे जाकर यह बात दंभ और धोखेबाजी तक जा पहुंची है। तत्संबंधी अंधश्रद्धाकी जड़में भय और लालच होता है और अुसीमें से खुशामद और गुलामीकी वृत्ति पैदा होती है। अिसमें मानव-जातिका कल्याण नहीं है।

हमें विद्या, शास्त्र और सद्‌गुणोंकी वृद्धिकी और अिनके द्वारा कल्याणप्रद मार्गकी जरूरत है। विद्या, शास्त्र और ज्ञानकी सहायतासे हम सृष्टिके गुण, धर्म और शक्तियोंको जान सकते हैं। अपनी शक्तियोंको पहचानने लगते हैं। सद्‌गुणोंकी मददसे हम सबके कल्याणके लिअे अुन सबका अुपयोग कर सकते हैं। यह विद्या जाननेवालोंके भी दो-तीन महत्त्वके भेद हैं। जो मनुष्य निसर्गके गुण, धर्म, अुसकी शक्तियां, अिसी प्रकार चित्त, मन, प्राण और चेतनकी शक्तियोंके स्थूल और सूक्ष्म स्वरूप तथा अिन शक्तियोंकी जागृति और विकास आदि जानकर अुनके द्वारा अंतर्बाह्य वांछित परिणाम पैदा कर सकता है और अंतर्बाह्य ज्ञानकी मददसे योजना तैयार करके संकल्पित हेतु या कार्य सिद्ध कर सकता है, वह अिस विद्याका सिद्ध माना जाता है। वही अिस विद्याका अुपासक है। वह सच्चा शोधक और शास्त्रज्ञ है। दूसरा अैसे शोधकसे अिस विद्याके थोड़ेसे विधि-निषेध, थोड़ीसी क्रिया-प्रक्रियायें और थोड़ेसे कार्यकारण-भाव समझकर अुस विद्याका अुपयोग करनेवाला है। वह अिस विद्याको अंशतः जानता है। और तीसरा किसी निश्चित विधिसे केवल अुसका अुपयोग करनेवाला है। ये तीन अेक-दूसरेसे बहुत भिन्न हैं। मूल शोधकसे दूसरे दोकी बराबरी कभी नहीं हो सकती। जैसे रेडियो अथवा किसी यंत्रका मूल शोधक या आविष्कारक अेक होता है; दूसरा अुससे थोड़ासा ज्ञान लेकर अुसके अनुसार यंत्र बनानेवाला होता है; और तीसरा अुसकी किसी खास कल या स्विचको घुमाकर अुसे चलाने या बन्द करनेवाला — अर्थात् अुसका केवल अुपयोग करनेवाला होता है। यही हाल मंत्र या मनःशक्तिका है।

शास्त्रीय संशोधन की जरूरत

आज भी कहीं-कहीं कुछ रोगों पर या जहरीले जानवरके जहर पर मंत्रोपचार करनेवाले मिल जाते हैं। परन्तु वे अिस विद्याके सिद्ध नहीं हैं। वे केवल कल या स्विच घुमाकर यंत्रको चलाने या बन्द कर देनेवालेकी तरह हैं। अुनमें शोधक-वृत्ति भी नहीं पाअी जाती। दियासलाअी कैसे बनाअी जाती है, अिसके ज्ञानके बिना भी मनुष्य अुसे जला सकता है। मशीनकी रचनाके ज्ञानके बिना भी अुसे चलाया जा सकता है। यही हाल आजकल मंत्रोपचारका है। अिसलिअे जो केवल मंत्र जानता है,

वह मंत्रज्ञ या शास्त्रज्ञ नहीं है। वह प्रयोग कर सकता है, परन्तु अुसे अुसके कार्यकारण-भावका ज्ञान नहीं होता। जो अन्तर्बाह्य शक्तिके मूलतत्त्व जानता है, और अुनकी वृद्धि करके अुनके अुचित मेलसे अिष्ट सिद्धि प्राप्त कर सकता है वही सिद्ध या मंत्रज्ञ है। वह मंत्र निर्माण कर सकता है। सिद्ध बननेके लिअे मन:शक्ति और संकल्प-शक्ति बढ़ानी पड़ती है। अुनके गुणधर्म अनुभवसिद्ध करने पड़ते हैं। सृष्टिमें रहनेवाली स्थूल और सूक्ष्म शक्तियों और तत्त्वोंको जानकर, अुनके गुणधर्म पहचानकर, अुनका अेक-दूसरेके साथ मेल बैठाकर और अुन्हें अनुकूल बनाकर मन और सृष्टि दोनों शक्तियोंकी मददसे वांछित संकल्प और कार्य पूरा करनेके लिअे अुसे अपनेमें संयोजक-शक्ति पैदा करनी पड़ती है। अुसके लिअे तपश्चर्याकी जरूरत होती है। जीवनका सबसे महत्त्वपूर्ण और अुत्साहका समय अुसके पीछे लगाना पड़ता है। अिन सब चीजोंके अतिरिक्त संकल्प-सिद्धिके लिअे आवश्यक तीव्रता, प्रखरता आदि अनेक गुण मनुष्यमें होने चाहियें। ये सब चीजें जाननेके बाद हमें चमत्कार, सिद्धि और अिस तरहकी दूसरी विद्याओंका विचार करना चाहिये। अिनमें कौनसी शक्ति काम करती है और अुसका मानव-जातिके कल्याणके लिअे कितना अुपयोग हो सकता है, यह देखना चाहिये। केवल अपनी कोअी व्यक्तिगत और अुतने समयकी जरूरत अकस्मात् पूरी हो जाय और अितनेसे चमत्कारकी कल्पनासे आश्चर्यचकित होकर हम जीवनभर किसीके प्रति श्रद्धा रखने लगें तो काम नहीं चलेगा। अिससे मानव-जातिका कल्याण नहीं होगा। मानव-जातिके कल्याणके लिअे अनेक शक्तियों और शास्त्रोंकी आवश्यकता है। अिसलिअे मानव-मनकी किसी विशेष शक्तिसे मानव-जातिका कोअी भला हो सकता है या नहीं हो सकता हो तो वह शक्ति प्राप्त करनेका साधन और मार्ग क्या है, यह ढूंढ़ निकालना हमारा काम है। हिप्नॉटिज़्म, मेस्मेरिज़्म वगैरा अिच्छाशक्तिके प्रयोग आजकल कुछ लोग करते हैं। अुनमें सत्य-असत्य कितना है और अुस विद्याका मानव-मन पर कितना अच्छा-बुरा असर होता है, यह हमें जान लेना चाहिये। कुछ यौगिक पंथोंमें शक्तिपात या शक्तिसंचरण-विद्यासे गुरु शिष्यका मार्ग और अभ्यास आसान बनाता है। अिसमें भी

हमें अिस बातका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये कि अिससे मनःशक्तिका कितना सम्बन्ध है और शिष्यकी प्रगतिके लिअे अुसका कितना अुपयोग हो सकता है, और अुस शक्तिका अुपयोग केवल अिसी क्षेत्रमें हो सकता है या जीवनके दूसरे क्षेत्रोंमें भी अुस विद्याके सामर्थ्यका अुपयोग करके मानव-जातिके दुःख कम किये जा सकते हैं। योगकी अष्ट महा-सिद्धियों और अुपसिद्धियोंका मानव-प्रगतिमें कुछ अुपयोग हो सकता है या नहीं, यह भी देखना चाहिये। छायासाधन, अग्निसाधन वगैरा साधनों द्वारा मनकी शक्ति बढ़ाकर, आध्यात्मिक मार्गमें अुसका अुपयोग करके अपनी अुन्नति साधनेवाले पंथ हमारे देशमें हैं। अुनमें भी सचमुच कितना तथ्य है, अिसकी जांच करनी चाहिये। सांप, बिच्छू और दूसरे जहरीले जानवरोंका जहर मंत्रसे अुतारनेके और शीत, पित्त और वात पर मंत्रका अुपचार करनेके तरीके हमारे देशमें कहीं-कहीं प्रचलित हैं। अुनमें भी कितना सत्य है और कितना भ्रम है, यह खोजना चाहिये। सारांश, कुल मिलाकर अिन सब बातोंसे मनकी शक्तिका क्या सम्बन्ध है और अुनमें कार्यकारण-सम्बन्ध क्या है, अिसका शास्त्रीय दृष्टिसे संशोधन होना जरूरी है।

संशोधनका फल

अिन सबका सच्चा ज्ञान हुअे बिना और अुसे शास्त्रीय स्वरूप मिले बिना अिस विषयमें अेक ओर अन्धविश्वास और दूसरी ओर नास्तिकता जैसी जो दो परस्पर-विरोधी चीजें पैदा हो गअी हैं, वे दूर नहीं होतीं। ये दोनों चीजें जीवनके अुत्कर्ष और अुन्नतिकी दृष्टिसे बाधक हैं। किसी भी विषयके सत्य और यथार्थ ज्ञानसे, अुस ज्ञानके सामर्थ्यसे और ठीक अव-सर पर अुसका ठीक तरह अुपयोग करनेसे मानव-जीवन अुत्कर्ष और अुन्न-तिकी तरफ प्रगति करता है। अिसमें सोचने योग्य प्रश्न यही है कि मानव-मनका सामर्थ्य किस तरह जाग्रत और वृद्धिगत किया जाय; और जैसे हम शरीर और बुद्धिकी शक्तिका अुपयोग करके अपना जीवन सुखी करनेका प्रयत्न करते हैं, वैसे ही अिस सामर्थ्यका भी जीवनके अनेक क्षेत्रोंमें अुपयोग करके अपना जीवन कैसे निर्दोष, दुःखरहित और सुख-मय बनायें? अिसमें शक नहीं कि सद्गुणोंके रूपमें हममें विकसित मानसिक शक्ति जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें अुपयोगी हो सकती है। परन्तु

अिसके सिवा और किसी तरहसे मनकी शक्तिका विकास करके यदि अुस सारी शक्तिको शुद्ध संकल्पमें केन्द्रित किया जाय और अुस संकल्पकी दृढ़ता, तीव्रता और अेकाग्रता बढ़ाकर मनुष्य विश्वशक्तिके साथ — परमात्माके साथ — समरस होनेमें सफल हो जाय, तो अुसमें कुछ-न-कुछ विशेष शक्ति संचरित होने लगती है। अुस शक्तिकी सहायतासे कुछ कठिन बातें भी आसानीसे सिद्ध हो सकती हैं। अिसमें कोअी अद्भुतता नहीं, चमत्कार नहीं। सृष्टिके अनेक धर्मोंके अनुसार मानव-मनका भी यह अेक धर्म है। जैसे विद्युत् वगैरा सृष्टिके धर्म कुछ खास संयोगोंमें प्रकट होते हैं, अुसी तरह मानव-मनका यह धर्म भी अुचित प्रयत्नसे प्रकट होता है। अगर हम अभ्यासी, प्रयत्नशील और निष्ठावान बन जायं, तो चमत्कारके भ्रमसे या सचमुच होनेवाले चमत्कारसे आश्चर्यचकित न होकर, भोली श्रद्धासे भावनावश न होकर, हम अुसके कार्यकारण-भावकी खोज करेंगे। और सृष्टि और मनःशक्तिके गुणधर्म पहचानकर अुनका सशास्त्र ज्ञान प्राप्त करेंगे तथा अुसका मानव-जीवनमें अुपयोग करते रहेंगे। अैसा हो जाय तो अुसकी विशेषता और अुसके साथ ही लोगोंकी भोली श्रद्धा मिट जायगी और हमारा जीवन अपने आप समृद्ध बन जायगा।

अीश्वर-निष्ठाकी आवश्यकता और अुसका सामर्थ्य

मानव-जातिकी सर्वांगीण अुन्नतिके लिअे आतुरता, ज्ञानकी अभिरुचि, प्राणीमात्रके प्रति प्रेम, दुःखियोंके लिअे करुणा, पवित्रता, संयम और सद्‌गुणोंकी ओर स्वाभाविक झुकाव, स्वयं कष्ट अुठाकर दूसरोंको सुखी देखनेकी अिच्छा, जीवन-सिद्धिकी महत्त्वाकांक्षा, सतत प्रयत्नके लिअे आवश्यक लगन, शोधकता, धैर्य और गाम्भीर्य आदि अनेक प्रकारकी पात्रता जिसमें हो, अुसके लिअे अूपर बताअी हुअी सिद्धि कठिन नहीं है। और सबसे महत्त्वपूर्ण गुण है अीश्वर-निष्ठा। यह गुण जिसमें होगा, अुसके लिअे कुछ भी कठिन नहीं है। हम संकल्प-शक्तिसे कोअी सिद्धि प्राप्त कर सकते हों, तो भी यह नहीं भूलना चाहिये कि सर्व शक्ति और सर्व सामर्थ्यका अनन्त भंडार परमात्मा है और अुसीके पाससे कोअी भी शक्ति हममें संचरित और आविर्भूत होती है। अिस

निष्ठाके बिना हम अुस अनन्त शक्तिमें से कोअी भी विशेष शक्ति अपनेमें नहीं ला सकते और न अुसे धारण ही कर सकते हैं। अिसीलिअे अपना क्षुद्र अहंकार मिटाकर, अपनापन भुलाकर हम नम्रता, अनन्यता और अेकनिष्ठासे विश्वशक्तिके साथ समरस हो सकें, तो अुसीमें से आगे चलकर प्राप्त होनेवाली महाजागृतिमें से हममें संकल्पित ज्ञान और शक्तिकी स्फूर्ति तथा संचार हुअे बिना नहीं रहेगा। जीवनकी समस्त सिद्धिका सूत्र अिसीमें है।

विवेक और साधना

दूसरा भाग

विभाग १ : धर्म्य व्यवहार

१

विद्यार्थी-दशाका महत्त्व

मेरे बालमित्रो,

तुम्हें अुपदेशके दो शब्द कहनेका अवसर मिला अिससे मुझे बड़ा आनन्द हो रहा है। तुम विद्यार्थी हो। जीवनमें यह समय बड़े आनन्द और सुखका माना जाता है। बड़ा होनेके बाद जब मनुष्य दुनियादारीकी अनेक आपत्तियों और कठिनाअियोंसे तंग आ जाता है, तब अुसे अपनी विद्यार्थी-अवस्था याद आती है और यह खयाल भी होता है कि अुस समय हम कितने अधिक सुखी और आनन्दी थे। अिसका कारण यही है कि अुस समय मनुष्य पर कोअी भी सांसारिक जिम्मेदारी नहीं होती। परन्तु समस्त जीवन-हितकी दृष्टिसे विचार करने पर प्रतीत होता है कि यह अवस्था अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अिस समय जो संस्कार और आदतें पड़ जाती हैं, वे मनुष्यमें जीवनभर कायम रहती हैं। अिसलिअे यह काल मुझे केवल आनन्द और बेफिक्रीका मालूम न होकर जीवनके लिअे जरूरी अुच्च शिक्षा प्राप्त करने तथा अुच्च संस्कार और अच्छी आदतें डालनेकी दृष्टिसे बड़ा महत्त्वपूर्ण लगता है। अिसी कालमें यदि तुम जीवनका महत्त्व समझ लो, तो अपने भावी जीवनकी बुनियाद अिस विद्यार्थी-दशामें ही डाल सकोगे। यदि आज तुममें अच्छे संस्कार दृढ़ हो जायं, तुम्हें अच्छी शिक्षा मिले और अुसके अनुरूप तुम्हारे संकल्प आगे भी बने रहें, तो तुम्हारा सारा जीवन अुज्ज्वल हुअे बिना नहीं रहेगा। लेकिन अिस प्रकारकी दीक्षाकी आज समाजमें कहीं भी व्यवस्था नहीं है। आज तुम अैसी स्थितिमें हो कि यदि प्रयत्न किया जाय, तुम्हारे मनमें अच्छे संस्कार जमा दिये जायं, तो तुममें से ही अलौकिक पुरुष निर्माण किये जा सकते हैं। अिस दृष्टिसे विचार करने पर आजका तुम्हारा समय बेशक बड़े ही महत्त्वका माना जाना चाहिये।

संस्कार ग्रहण करनेका समय

श्रेष्ठ पुरुषोंके चरित्रोंसे बोध

दुनियामें सदाचारी और दुराचारी, सत्कर्मरत और सदा दुष्कार्यमें मग्न, परोपकारी और दूसरोंका सर्वस्व हरण करनेवाले, दयालु और निर्दय, पवित्र और व्यसनी, संयमी और स्वेच्छाचारी, अुदार और कृपण, धर्मनिष्ठ और स्वच्छंदी, सेवापरायण और स्वार्थी, अिस प्रकार परस्पर-विरुद्ध स्वभावके मनुष्य पाये जाते हैं। अिन सबके जीवनकी जांचसे पता चलता है कि अुन्हें अच्छे-बुरे संस्कार बचपनसे ही मिले थे। कृतज्ञता, दया, सत्य-वचन, प्रामाणिकता, अुद्योग-प्रियता, नियमितता, मेहनत करनेकी आदत, निरालस्य, आज्ञा-पालन, मातृपितृ-भाव, बन्धु-भगिनीभाव, अपने पड़ोसीके प्रति सख्यभाव, मित्रता, सहयोग-वृत्ति, दूसरोंके लिअे अुपयोगी होनेका शौक और व्यसन-दुराचरण-स्वार्थ-अन्याय-अस्वच्छता-कठोरता-कपट-कृपणता अित्यादि दुर्गुणोंके लिअे अरुचि या निषेध-वृत्ति वगैरा तमाम सुसंस्कार बचपनसे मिले हों, तो ही वे हृदयमें दृढ़ होते हैं और अुचित समय पर वृद्धि पाते हैं। धर्मनिष्ठा और अीश्वर-निष्ठा, देशप्रेम और सज्जनोंके प्रति सद्‌भाव, सद्‌ग्रंथोंके प्रति रुचि और परोपकारका शौक, अपनेसे छोटेके प्रति स्नेह और ममता तथा बड़ोंके प्रति आदर और पूज्य भाव, दुर्बल, पंगु और रोगीके प्रति सहानुभूति और करुणा, निर्भयता और साहसमें आनन्द आदि अनेक सद्‌गुणोंके संस्कार अिस अुम्रमें ही दृढ़ हो जायें, तो वे जितने गहरे पैठेंगे अुतने बादकी अुम्रमें नहीं। संसारके महापुरुषोंके चरित्रोंसे यही बात हमें मालूम होती है। श्री रामचन्द्र और श्रीकृष्ण, सिद्धार्थ गौतम और वर्धमान महावीर, सुकरात और अीसामसीह, ज्ञानेश्वर और अेकनाथ, शंकराचार्य और विद्यारण्य, वाशिंगटन और गैरीबाल्डी, राणा प्रताप और शिवाजी महाराज, सन्त तुकाराम और समर्थ रामदास, माधवराव पेशवा और रामशास्त्री — अिन सबके और अर्वाचीन कालके श्रेष्ठ पुरुषोंके चरित्र पढ़नेसे यही बात सिद्ध होती है कि अिन सब पुरुषोंको बचपनमें ही अुन्नत और अुदात्त संस्कार मिले थे। अनुकूल या क्वचित् प्रतिकूल परिस्थितिमें भी अुन संस्कारोंका पोषण होते-होते वे दृढ़ हो गये और ठीक समय पर अुनके सद्‌गुण प्रकट होते रहे और अिसलिअे अन्तमें वे धन्य हुअे। अिन सबसे

यही प्रकट होता है कि विद्यार्थी-दशा जीवनकी बहुत ही महत्त्वपूर्ण अवस्था है। अिसका महत्त्व हम प्राचीन कालमें जानते थे। अुस जमानेमें हमें अिस अुम्रमें अुत्तमोत्तम संस्कार प्राप्त करनेकी सुविधा थी। अिस प्रकारकी दीक्षा हरअेक विद्यार्थीको दी जाती थी।

ब्रह्मचर्यकी दीक्षाको विद्यार्थी-दशाका प्रारम्भ माना जाता था। विद्यार्थियोंके हृदय पर छुटपनसे ही यह महान संस्कार जमाया जाता था कि जीवन केवल अपने शारीरिक सुखके लिअे नहीं, बल्कि सबके लिअे और धर्मके लिअे है। दुर्भाग्यसे अिस शिक्षा-प्रणाली, अिस दीक्षा-परम्पराके मिट जानेके बाद समयानुसार आवश्यक परिवर्तन करके अुसे जारी रखनेकी योजना बड़े पैमाने पर कोअी न कर सका; और बचपन तथा विद्यार्थी-दशा धर्म, शील, चारित्र्य, नीति वगैरासे सम्पन्न होनेकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है और जीवन-सम्बन्धी महाव्रतकी दीक्षा लेकर जीवनका महान अुद्देश्य पूरा करनेके लिअे आवश्यक सद्‌गुणोंके संस्कार प्राप्त करनेका पुण्यकाल है, यह भावना हममें फिर कभी निर्माण नहीं हुअी।

विद्यार्थियो! तुमने अगर अितिहास पढ़ा हो, तो तुम्हें अवश्य मालूम हुआ होगा कि अिन सब बातोंके कैसे बुरे परिणाम हम सबको अनेक वर्षोंसे भुगतने पड़ रहे हैं। अिससे तुम्हें दुःख और लज्जा मालूम होती हो, अिस स्थितिसे छूटनेकी तुम्हारी अिच्छा हो, तो तुम्हें जाग्रत होकर यह हालत बदल देनेकी कोशिश करनी चाहिये और अपनी विद्यार्थी-अवस्थाको सफल बनानेमें लग जाना चाहिये। अच्छे संस्कार प्राप्त करनेकी सुविधा यदि आज तुम्हें कहीं भी दिखाअी न देती हो, तो भी तुम महान पुरुषोंके चरित्र और अच्छे ग्रंथ पढ़ो, अुन सबका मनन करो और अुनसे अुचित शिक्षा ग्रहण करो। अिस खयालसे निराश होकर न बैठो कि हमें अच्छी शिक्षा और संस्कार देनेवाला कोअी नहीं है। अच्छा बननेकी अिच्छा हो, तो तुम खुद ही अुत्साहपूर्वक अच्छे संस्कार प्राप्त करनेमें जुट जाओ। अगर तुम्हारे अन्तरमें सदिच्छा प्रकट हो जायगी, तो तुम्हें आजकी हालतमें भी रास्ता मिल जायगा। तुम्हारी अिच्छा दृढ़ होगी, तुम्हारा संकल्प प्रबल होगा, तो परमात्मा तुम्हें रास्ता बतायेगा। वह तुम्हारे रास्तेमें आनेवाली रुकावटें दूर करनेका सामर्थ्य

तुम्हें देगा। परन्तु अिसके लिअे तुम्हें अपने प्रयत्नकी पराकाष्ठा करनी चाहिये। तुम्हें अिस संबंधमें कभी आलस्य करना या अूबना न चाहिये, बल्कि हमेशा अुत्साही और प्रयत्नशील रहना चाहिये।

अच्छे-बुरे संस्कारोंके परिणाम

तुम्हारे लिअे सबसे अच्छे संस्कार प्राप्त करनेका यही समय है; और खराब आदतें डालकर जीवनको बुरे रास्ते लगानेका भी यही समय है। आज तुममें यह समझनेकी शक्ति नहीं कि किस बातका क्या परिणाम होगा। अिसी तरह अभी तुम्हारी बुद्धिमें किसी बातके परिणामका दीर्घदृष्टिसे विचार करने जैसी सूक्ष्मता और प्रगल्भता भी नहीं आअी है। आज तुम खुद भले-बुरेका विचार नहीं कर सकते, अिसलिअे जो बातें महापुरुषोंने मानी हैं, संत-सज्जनोंने जिन चीजोंको महत्त्व दिया है, अुन्हींको अपनाओ। सज्जनोंको तुम अपने जीवनके पथप्रदर्शक बनाओ। अिससे तुममें संयम और पुरुषार्थ दोनों आयेंगे। समय पाकर तुम्हारी आयु और अनुभव बढ़ने पर तुममें विवेककी भी वृद्धि होगी। वह विवेक ही आगे चलकर तुम्हें भले-बुरेका निर्णय करनेमें सहायक होगा। तुम्हारा आत्म-विश्वास बढ़ेगा। फिर तुम्हें अपने मार्गमें किसीसे पूछनेकी जरूरत नहीं रहेगी। परन्तु तब तक तुम किसी विवेकी और सयाने पुरुषके विचारसे चलो, तो तुम्हारा कल्याण होगा। अच्छे बननेकी तुम्हारी अुत्कट अिच्छा हो, तो आज भी तुम्हें जो ज्ञान है अुसे आचरणमें लानेका प्रयत्न करो। बुरा क्या है अिसका भी तुम्हें खयाल है; अुसका दृढ़तासे त्याग करो। अपना जीवन अुन्नत और अुदात्त बनानेकी तुममें महत्त्वाकांक्षा हो तो आजसे ही अिस मार्ग पर चलो।

निश्चय, निर्दोषता और सौन्दर्य

काया, वाचा और मनसे निर्दोष रहनेका तुम्हें आजसे ही निर्णय कर लेना चाहिये। क्योंकि तुम अपनी वर्तमान निर्दोष अवस्थामें ही पवित्र निश्चय कर सकते हो। तुम अेक बार निश्चय कर लोगे, तो फिर किसी भी हालतमें अुसे पूरा करनेकी शक्ति तुममें जाग्रत हुअे बिना नहीं रहेगी। निश्चयके सम्बन्धमें तीन महत्त्वकी बातें तुम्हें ध्यानमें रखनी चाहिये: प्रामाणिकता, प्रयत्नशीलता और सावधानता। अिन

तीनोंमें से अेकमें भी लापरवाह रहोगे, तो तुम्हारा निश्चय पूरा नहीं होगा। निश्चयको दृढ़ और मजबूत बनाना या अुसे कमजोर बनाना तुम्हारे हाथमें है। दृढ़ निश्चय द्वारा निर्दोषता सिद्ध करना तुम्हारा पहला काम है। अिसकी सिद्धिके बाद भी काया, वाचा और मन द्वारा प्रकट होनेवाले अनेक सद्‌गुण सम्पादन करनेका तुम्हारा प्रयत्न होना चाहिये। अपना शरीर मजबूत और चपल बनानेके लिअे तुम्हें परिश्रम या व्यायाम अवश्य करना चाहिये। तुम्हें यह समझना चाहिये कि रोज परिश्रम या व्यायाम किये बिना हमें खानेका अधिकार नहीं है। तुम्हें अपनेको किसी भी व्यसनकी जरा भी छूत नहीं लगने देना चाहिये। जीवनभर व्यसनसे मुक्त रहना हो, तो अुसके प्रति अपने चित्तमें तीव्र निषेधकी भावना सदा जाग्रत रहने दो। यह भावना तुम्हें अिस विषयमें शुद्ध रखेगी। तुम यदि चाहते हो कि तुम्हारा जीवन सब प्रकारसे अुदात्त हो, तो तुम्हें अनेक सद्‌गुणोंकी प्राप्ति करनी होगी। अपने जीवनको सर्वांग-सुन्दर और निर्दोष बनानेकी अिच्छा हो, तो तुम्हें अपनी कायिक, वाचिक और मानसिक, हर प्रकारकी क्रिया पर ध्यान देना पड़ेगा। हर तरहका दोष दूर करना पड़ेगा। आलस्य या लापरवाहीसे काम नहीं चलेगा। तुम्हारी कलाअी और बाहुमें अेक अेक मन वजन आसानीसे अुठानेकी शक्तिका संचार सम्भव है। लेकिन अुसे प्राप्त करनेके लिअे तुम प्रयत्नशील न हो, तो दोमें से अेक ही बात साबित होगी: या तो तुम्हें शक्तिसे अशक्ति ज्यादा प्रिय है या शक्ति प्रिय होने पर भी अुसे प्राप्त करनेमें तुम आलसी हो। तुम्हारी यह अिच्छा हो कि तुम्हारे हाथ-पैरोंमें, अंग-प्रत्यंगोंमें शक्तिका सतत संचार होता रहे, तो तुम्हें अपने सारे अवयवोंको अुचित तालीम देनी चाहिये। तुम्हारे छोटे-बड़े प्रत्येक अवयवमें मौका पड़ने पर आवश्यक कार्यक्षमता दिखाअी देनी चाहिये। तुम्हें अपने किसी भी अवयवको बुरी आदत नहीं लगानी चाहिये। अिसके बिना निर्दोषता सिद्ध नहीं होगी। शरीर निरोगी, मजबूत, गठीला, चपल और फुर्तीला रखो, तो अिसीमें सारा शारीरिक सौंदर्य भरा रहेगा। अपने शरीरमें शुद्ध रक्त दौड़ने दोगे, तो तुम्हारे शरीर पर कांति दिखाअी देगी। अिसीमें सच्चा सौंदर्य और पौरुष है।

तुम्हें अपनी वाणी सदा पवित्र रखनी चाहिये। तुम्हारे मुंहसे कभी अभद्र, हलके या गन्दे शब्द न निकलने चाहिये। निन्दा, कपट, द्वेष, असत्य, अप्रामाणिकता, धोखेबाजी आदि दोष तुम्हारी वाणीमें कभी न आने चाहिये। अुसमें स्वाभाविक ही मृदुता, मधुरता और सत्यता होनी चाहिये। तुम्हारे शब्दोंमें दुःखियोंके दुःख हलके करनेकी और संकटमें फंसे हुअे तथा भयभीत लोगोंको हिम्मत बंधानेकी शक्ति होनी चाहिये। तुम्हारे शब्दोंसे निराधारको आधार, विचारहीनको विचार और अज्ञानीको ज्ञान मिलना चाहिये। तुम्हारे शब्दोंमें यह सामर्थ्य भी होना चाहिये कि अुद्दंड, निर्दयी और दुराचारी लोगोंको डर लगे और अुन्हें पश्चात्तापकी प्रेरणा मिले। जीवन केवल मृदुतासे नहीं चलता। अिसलिअे मौके पर मनुष्यमें सख्ती, दृढ़ आग्रह और न्यायकी कठोरता भी होनी चाहिये। तुम्हें जीवनके लिअे आवश्यक गुणोंका अभीसे अभ्यास रखना चाहिये और अभीसे तुममें गुण-दोषके विषयमें ग्राह्य-अग्राह्य-वृत्ति दृढ़ होनी चाहिये। किसी भी दोषको क्षुद्र न समझो। क्षुद्र समझकर आज अुसकी ओरसे लापरवाह रहोगे, तो तुममें गुणोंकी वृद्धि होनेके बजाय सिर्फ दोषोंकी ही वृद्धि होगी। क्योंकि गुणोंका प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करना पड़ता है, जब कि दोष केवल दुर्लक्ष करनेसे बढ़ जाते हैं। अैसी कअी खराब आदतें, जो मनुष्यकी बड़ी अुम्रमें अुसका स्वभाव जैसी दिखाअी देती हैं, व्यवस्थित और सभ्य व्यवहारकी दृष्टिसे दूसरोंको अजीब लगती हैं। परन्तु बड़े होने पर अुसके बारेमें कोअी सूचना या संकेत तक नहीं कर सकता। मनुष्यको अपनी सारी अिन्द्रियों पर, अपनी क्रियाओं पर हमेशा सावधानीसे नजर रखनेका अभ्यास हो, तो अुसे कोअी भी विचित्र आदत नहीं पड़ सकेगी। कुछ बड़ी अुम्रके आदमियोंमें भी व्यर्थ और अव्यवस्थित रूपमें हाथ-पैरोंसे कुछ न कुछ क्रिया करते रहनेकी आदतें नजर आती हैं। अुनका आरम्भ भी तुम्हारी अिसी अुम्रमें होता है। कुछ लड़कोंको दांतोंसे नाखून काटनेकी आदत पड़ जाती है। बड़े होने पर भी वह ज्योंकी त्यों बनी रहती है। अिसलिअे तुम्हें अैसी बातोंमें सावधान रहना चाहिये। अपने हाथ, पैर, मुंह, आंख आदि

वाचाशुद्धि और क्रियाशुद्धिके प्रति सावधानी

अिन्द्रियों द्वारा जो भी क्रियायें होती हैं, वे सब व्यवस्थित, अुचित और जरूरतके मुताबिक ही होती रहें, अैसी सावधानी रखो। तुम्हारे बोलनेमें, चलनेमें, हंसनेमें किसी भी तरह अतिरेक या दूसरा कोअी दोष न होना चाहिये। तुम्हारे विनोदमें हृदयके माधुर्य, प्रेम और ज्ञानका सुन्दर मेल होना चाहिये। तुम जिसकी हंसी करो अुसे भी अुससे आनन्द होना चाहिये, और दुःख तो कभी होना ही नहीं चाहिये। अिसीको निर्दोष विनोद कहा जा सकता है। किसीका मजाक अुड़ाकर, अुसे चिढ़ाकर या दुःख देकर तुम जो विनोद करते हो, आनन्द मनाते हो, वह विनोद नहीं दुष्टता है। जिसकें कारण किसीको दुःख होता हो या शर्म आती हो, अैसे किसीके दोष, दुर्बलता या गरीबीको ध्यानमें रखते हुअे विनोद करके आनन्द लेनेकी तुम कोशिश करो, तो अुसका अर्थ यही होगा कि तुममें करुणा नहीं है, बल्कि दुखियोंके दुःखसे भी मनोरंजन करने जितने तुम निष्ठुर हो। तुम्हारे विनोदमें कभी किसी प्रकारकी असभ्यता न होनी चाहिये। अिस प्रकार काया, वाचा और मन द्वारा होनेवाली तुम्हारी किसी भी क्रियामें दोष न रहे, अिसके लिअे तुम अपनी हरअेक वृत्तिको, कृतिको, आदतको और स्वभावको जांचते रहो और अुसे निर्दोष बनाते रहो। तुम्हारी तरफसे औरोंको सुख मिले, तुम्हारे स्वार्थ, अन्याय, दुष्टता, अविवेक, आलस्य, और अुपेक्षाके कारण किसीको भी दुःख न हो, अिसके लिअे तुम्हें अिसी अुम्रमें सावधानीसे बरतना चाहिये। तुम्हारे साधारण बोलनेमें भी सद्‌गुणोंका दर्शन होना चाहिये। तुम्हें संगीत न आता हो तो भी काम चल सकता है, क्योंकि संगीत अुतने समयके लिअे ही मधुर लगता है। परन्तु अगर तुम हमेशाके बोलनेमें ही माधुर्य अुंड़ेल सको, तो अुसीसे तुम्हारी वाचा-सिद्धि और मनःशुद्धि हमेशा प्रकट होती रहेगी। संक्षेपमें, अपनी हरअेक अिन्द्रियमें सबलता, निर्मलता, औचित्य और व्यवस्था लाकर अुसके द्वारा संसारमें प्रेम और आनन्द फैलाते रहनेका अभीसे तुम्हारा संकल्प और प्रयत्न होना चाहिये। अपने विचार ठीक ढंगसे सबके सामने पेश करने और दूसरोंके गले अुतारनेकी कला तुम्हें अभीसे सीख लेनी चाहिये। मुखकी दुर्बलता या शर्मीलापन, कायरता या संकोचशीलता तुममें न होनी चाहिये। तुममें

सभाक्षोभ न होना चाहिये। स्पष्ट बोलनेकी हिम्मत होनी चाहिये। परन्तु अुद्धतता या अविवेक न होना चाहिये। तुम्हें अैसी बात न बोलनी चाहिये जिससे कोअी अूब जाय या किसीके मनमें तिरस्कार पैदा हो। अिसलिअे तुम्हें परिमित, व्यवस्थित, सुसंगत और प्रसंगोचित बोलनेकी आदत डालनी चाहिये। औरोंके अूबनेके पहले ही तुम्हें अपनी वाणीको रोक देना चाहिये। तुम बकवास करनेवाले, गप्पें मारनेवाले या 'बोलना बहुत, करना कुछ नहीं' को चरितार्थ करनेवाले हो, अैसा तुम्हारे बारेमें किसीको कहनेका मौका न आना चाहिये। अेक संतका वचन है कि:

अतिका भला न बोलना। अतिकी भली न चूप ॥
अतिका भला न बरसना। अतिकी भली न धूप ॥

अिसका रहस्य तुम ध्यानमें रखो। अिसके अनुसार चलनेके लिअे तुममें विवेक, तारतम्य, समयज्ञता वगैरा गुण होने चाहिये। तुममें अपने कार्यकी आप ही प्रशंसा करनेकी आदत न होनी चाहिये। तुम्हें कभी गर्व न होना चाहिये। खुद सद्‌गुणी होने पर भी तुम दूसरोंको कभी हीन न समझो। प्रेमसे सबको अपना बना लेनेकी वृत्ति तुममें होनी चाहिये।

रसनेन्द्रियकी शुद्धि

जैसे तुम्हें अपनी वाणी पर संयम रखकर बोलनेका औचित्य सिद्ध करना पड़ेगा, वैसे ही अपनी जीभ पर भी संयम रखना होगा। वेस्वाद भोजन किसीको अच्छा नहीं लगता, और वह संतोषपूर्वक किसीसे खाया भी नहीं जाता। फिर आरोग्यकी दृष्टिसे वह हितकर भी नहीं। आरोग्यकी दृष्टिसे भोजनमें सर्वोत्तम स्वादका अनुभव बहुत जरूरी है। और वैसे अनुभवके लिअे हमारी रसनेंद्रिय भी बहुत नीरोग और तीक्ष्ण होनी चाहिये। परन्तु अैसा न करके हम खानेके पदार्थोंमें कअी तेज चीजें डालकर अुन्हें स्वादिष्ठ बनानेका प्रयत्न करते हैं। यह प्रयत्न कअी दृष्टियोंसे हानिकारक होता है। फिर भी हम अुसे जारी रखते हैं और अपनी रसनेंद्रियकी शक्तिको क्षीण करते रहते हैं। तुम अैसी खराब आदतोंमें न पड़कर अुचित परिश्रम और व्यायाम द्वारा अपना पेट ठीक रखो। पाचन-शक्ति सतेज रखो। अिसी पर स्वादेन्द्रियकी तीक्ष्णता और निरोगिता आधारित है। यही सादे खान-पानमें सर्वोत्तम

रुचि मालूम होनेका आरोग्यप्रद और शक्तिवर्धक अुपाय है। व्यायाम करने पर भी तुम्हारी भूख तेज न हो और सादी खुराकमें रुचि पैदा न हो, तो अपने पेटको साफ करनेका अुपाय करो या अेक दो दिन निराहार रहो। अैसे समय कोअी स्वादिष्ठ वस्तु खाकर जीभका सुख भोगनेके गलत रास्तेमें पड़कर बुरी आदतसे अपना आरोग्य और जीवन न बिगाड़ो।

पोशाकका विवेक

खान-पानकी तरह तुम्हारा रहन-सहन, तुम्हारा पहनावा सादा होना चाहिये। कपड़ेके विषयमें तुम आडंबर या फैशनकी अपेक्षा सुव्यवस्था और सुविधाकी तरफ ज्यादा ध्यान दो। तड़क-भड़कके बजाय साफ-सुथरेपनको अधिक महत्त्व देना चाहिये। कपड़ेकी सुन्दरता या कीमतीपनकी अपेक्षा सादगी और स्वच्छताको ज्यादा महत्त्व देना चाहिये। कपड़ोंका विचार करते समय तुम अपने रोजमर्राके धन्धेकी सुविधा तथा तन्दुरुस्ती, सादगी और आर्थिक शक्ति आदि बातोंका खयाल रखो। कपड़ोंसे अपने आपको सजाकर शोभा लाने और बड़प्पन प्राप्त करनेका प्रयत्न बुद्धिहीन और मूर्ख ही करते हैं। वह अुनके लिअे ही योग्य है, अैसा समझना चाहिये। तुम जैसोंको तो अपने निरोगी, मजबूत और सुडौल शरीरसे तथा बौद्धिक व मानसिक सद्‌गुणोंसे सुशोभित होनेकी महत्त्वाकांक्षा रखनी चाहिये। कपड़ोंकी तरह ही तुम्हारा घरका और बाहरका रहन-सहन भी सादा और व्यवस्थित होना चाहिये। तुम्हारा सारा जीवन व्यवस्थित होना चाहिये। अपनी तमाम चीजें व्यवस्थित रखने और अुन्हें ठीक ढंगसे अिस्तेमाल करनेकी तुम्हारी आदत होनी चाहिये। हर विषयमें शिष्टतापूर्ण व्यवहार करनेका तुम्हारा स्वभाव बनना चाहिये। काम करनेमें नियमितता रखो। दिया हुआ वचन और हाथमें लिया हुआ काम समय पर पूरा करनेके बारेमें हमेशा दक्ष रहो। कोअी भी कार्य तत्परता और सफाअीसे करना चाहिये। तुममें अुद्योगप्रियता होनी चाहिये। अिससे तुम्हारा समय कभी बेकार नहीं जायगा। अिस अुम्रमें अधिकसे अधिक विद्याओं और कलाओंका ज्ञान प्राप्त करनेका तुम्हें शौक होना चाहिये। अिस प्रकार अनेक विद्याओं, कलाओं और सद्‌गुणोंसे तुम्हारा जीवन

समृद्ध होना चाहिये। अपनी सादगी, पवित्रता, दूसरोंके लिअे अुपयोगी होनेकी तत्परता, स्वार्थके अभाव और मधुरताके कारण तुम घरमें और मित्रोंमें प्रिय बने बिना नहीं रहोगे।

जीवनकी दृष्टिसे अेक-दो और महत्त्वकी बातें बताना जरूरी है। तुम्हें कभी किसीके साथ अन्याय न करना चाहिये। और किसीका अन्याय सहन भी न करना चाहिये। कोअी दूसरेके साथ अन्याय करता हो, तो वह भी तुमसे सहन न होना चाहिये और यथाशक्ति अुसका प्रतिकार करना चाहिये। अैसा करना तुम्हारा कर्तव्य है। हम छोटे हैं, हमारी कौन सुनेगा? हमारी क्या चलेगी? अिस तरहका विचार करके तुम्हें अैसे समय चुप न बैठ जाना चाहिये। तुम छोटे हो तो भी तुममें अपार धैर्य और श्रद्धा होनी चाहिये। अिस विश्वाससे कि तुम्हारी तरफ न्याय है, तुम्हें अन्यायका सामना करना ही चाहिये। अगर अिसी अुम्रसे तुममें यह संस्कार दृढ़ हो जाय और मौका पड़ने पर तुम अिसी प्रकार आचरण करो, तो बड़े होने पर यह तुम्हारा स्वभाव बन जायगा। अिसी तरह कोअी संकटमें है अैसा मालूम होते ही अुसकी मदद करके अुसे संकटमुक्त करनेकी वृत्ति तुममें पैदा होनी चाहिये और अुसका संकट दूर करनेका तुम्हें भरसक प्रयत्न करना चाहिये। जीवनकी दृष्टिसे अिन सद्‌गुणोंकी बड़ी जरूरत है।

अन्यायके अवसर पर कर्तव्य-जागृति

शारीरिक परिश्रमसे तुम्हें कभी न घबराना चाहिये। अिसमें तुम्हें छोटापन नहीं लगना चाहिये। यह समझ लो कि परिश्रम न करना दुर्बलता और झूठे घमंडकी निशानी है। मुफ्त खानेवाले और दूसरोंके परिश्रम पर सुख और स्वास्थ्यकी अिच्छा करनेवाले लोग भले ही बलवान दीखें, तो भी यह निश्चित मानो कि वे मनसे दुर्बल हैं। कुछ रोग अैसे होते हैं जिनसे पीड़ित लोग बाहरसे हृष्टपुष्ट दिखाअी देते हैं, परन्तु अुनमें काम करनेकी शक्ति नहीं होती। यही बात परिश्रमसे घबरानेवालों पर लागू होती है। यदि तुम अपना शरीर, बुद्धि, मन और वाणी पवित्र रखो, अुन्हें सही आदतें डालो और अुन्हें हर तरहके दोषसे मुक्त

परिश्रमका महत्त्व

रखो, तो तुम्हारे जैसा भाग्यशाली और कोअी नहीं। वह भाग्य तुम्हारे हाथमें है। आज तुम विद्यार्थी हो। थोड़े बरसों बाद तुम्हीं यहांके नागरिक कहलाओगे, गृहस्थ बनोगे। अगर तुम्हारी यह अिच्छा हो कि हमारा जीवन सब तरहसे आदर्श बने, तो अुसके लिअे तुम्हें अभीसे प्रयत्न करना चाहिये। आजकलकी केवल किताबी शिक्षासे तुममें सज्जनता नहीं आयेगी; पौरुष या कर्तृत्व नहीं आयेगा। अिसके लिअे तुम्हें खुद ही दीर्घ प्रयत्न करना चाहिये। तुम्हें सावधानी और लगनसे अेक अेक गुण बढ़ाना चाहिये; और दोष निकाल डालने चाहिये। तुम्हारे सद्‌गुणों और कर्तृत्वसे ही अिस शहरकी शोभा बढ़ेगी। तुम्हीं अिस नगरके रत्न बनकर आगे आनेवाले हो। तुम्हीं अपने कुटुम्ब, समाज और गांवके भूषण बननेवाले हो। यह सब तुम्हारे हाथमें है। तुम आजसे ही जीवनका अुदात्त हेतु अपना लो, तो वही हेतु तुम्हें जीवनमें अुत्तरोत्तर अुन्नतिकी तरफ ले जायगा। अपना कर्तृत्व अनेक सद्‌गुणोंसे और अनेक प्रकारसे बढ़ाकर अुसके द्वारा केवल अपने ही सुखकी अिच्छा न करके अपने आसपासके अपने साथ सम्बन्ध रखनेवाले संसारको सुखी करना ही हमारा सच्चा कर्तव्य है, अिसीमें मानवता है। यह विश्वास रखकर चलोगे तो निश्चित मानो कि जीवनकी सारी सिद्धियां तुम्हारे अनुकूल होंगी और तुम्हारा जीवन सफल होगा। परमात्मा तुम्हारे शुभ हेतुमें सदा सहायता करे।

(अनेक व्याख्यानोंसे संकलित)

२

सुख-सम्बन्धी धर्म्य विचार

बालाओ,

तुमने अिस समय कअी सवाल पूछे हैं। अुनसे यह कल्पना की जा सकती है कि जीवन-सम्बन्धी तुम्हारे विचारोंका प्रवाह किस दिशामें बह रहा है। तुम सब विद्यार्थिनियां हो। कौटुम्बिक और सामाजिक दृष्टिसे तुम्हारा जीवन लड़कों जैसा स्वतंत्र नहीं है। फिर भी तुम्हारे प्रश्नोंसे अैसा दिखाअी देता है कि तुम्हारे खयालसे तुम्हें सब तरहसे स्वतंत्र होना चाहिये। अिसमें संदेह नहीं कि स्वतंत्रता सबको प्यारी है। छोटा बच्चा या मूर्ख आदमी भी स्वतंत्रता चाहता है। अुसे भी नियंत्रण अच्छा नहीं लगता। तुम तो शिक्षा पाकर ज्ञान-सम्पन्न हो रही हो। अिसी तरह शिक्षा पूरी करनेके बाद अर्थ-सम्पादन करनेकी आशा रखती हो। अैसी हालतमें तुम्हें स्वतंत्रताकी अिच्छा हो तो आश्चर्य नहीं; अथवा यह भी नहीं कहा जा सकता कि अिसमें तुम्हारी महत्त्वाकांक्षाओंका अतिरेक है या कोअी अनुचित बात है। परन्तु तुम्हारे सारे विचारों और तुम्हारी आकांक्षाओंमें अेक बड़ा दोष यह मालूम होता है कि वे सब तुम्हारे अपने ही सुखको ध्यानमें रखकर अुसके आसपास घूम रही हैं। तुम्हारे सारे विचारों और कल्पनाओंमें मुख्यतः यह हेतु जान पड़ता है कि किसी भी तरह खूब रुपया कमाकर मनमाने शरीर-सुख प्राप्त किये जायं। तुम्हारी यह मान्यता अथवा लगभग प्रतीति ही हो गअी दीखती है कि स्त्रियां रुपया नहीं कमा सकतीं, अिसलिअे अुन्हें स्वतंत्रता नहीं है और स्वतंत्रता न होनेके कारण ही वे आज तक सब तरहके दुःख भोगती रही हैं। तुम्हारी यह समझ न पूरी तरह सही है और न पूरी तरह गलत ही। तुम्हें सम्पूर्ण जीवन-सम्बन्धी अधिक अुचित और विशाल दृष्टिसे विचार करना सूझे और तुम वैसा कर सको, तो संभव है कि जीवनके विषयमें जो दृष्टि रखकर आज तुमने अपने सुखका विचार किया है और अुसके बारेमें जो व्याख्यायें और कल्पनायें की हैं,

स्वतंत्रताके लक्षण

वे बिलकुल बदल जायं। आज तुम जो शिक्षा पा रही हो, अुसमें मानव-जीवनके लिअे जरूरी कितनी विद्याओं और कलाओंका समावेश होता है और अुनमें मनुष्यको संस्कारी और ज्ञानी बनानेकी कितनी ताकत है यह सवाल अभी छोड़ दें, तो भी निश्चित रूपमें तुम्हारी यह कल्पना जान पड़ती है कि वर्तमान शिक्षाके कारण पिछली अनेक पीढ़ियोंकी स्त्रियोंसे तुम अधिक बुद्धिशाली, चतुर और ज्ञान-सम्पन्न हो और पुराने जमानेकी शिक्षा न पाओी हुअी सभी स्त्रियोंका तथा तुम्हारी माताओंका जीवन बड़े दुःखमें बीता होगा। यदि सचमुच तुम अैसा ही मानती हो, तो कहना चाहिये कि यह तुम्हारी भूल है। पढ़ाओीमें तुम्हारी बुद्धिमत्ता देखकर तुम्हारी माताको आनन्द होता हो, तो अिसका तुम यह अर्थ न करो कि अुन्हें अपने अपढ़ होनेका दुःख होता है। अुनके जमानेसे आजका जमाना भिन्न है और आजके जमानेमें शिक्षाके बिना तुम्हारी शादी होना मुश्किल है, अिस बातका अुन्हें हर वक्त खयाल रहता है। अिसलिअे संभव है ज्यों-ज्यों तुम परीक्षायें पास करती हो, त्यों-त्यों तुम्हारे विवाहकी कठिनाओी कम होनेका अुन्हें आनन्द होता हो। तुम्हारी मातायें या घरकी बड़ी-बूढ़ी स्त्रियां तुम्हारे जितनी पढ़ी हुअी नहीं हैं, तो भी क्या वे तुमसे कभी कहती हैं कि अिस कारणसे वे दुःखी हैं? और कहती न हों तो भी क्या वे सचमुच दुःखी हैं? तुम अुनसे अेक बार पूछ तो देखो। जिस गृहक्षेत्रमें अुन्हें काम करना पड़ता है, क्या अुसमें अुनके अशिक्षित होनेके कारण अुन्हें कोओी कठिनाओी आती है? अुसमें जितना वे समझती हैं अुससे तुम पढ़ी-लिखी होनेके कारण क्या ज्यादा समझती हो? पुरुष मेहनत करके रुपया लाता है। कितनी स्वतंत्र स्थितिमें वह कमाकर लाता है सो तो वही जाने। परन्तु जो कुछ लाता है सो सब अपनी पत्नीको सौंप देता है। अुस कमाओीमें से वह सारी गृह-व्यवस्था किफायतसे करती है। बाल-बच्चोंको और अन्य किसीको किसी तरहकी कमी नहीं होने देती। पुरुषको रुपया कमानेके सिवा और बातोंकी न तो कोओी चिन्ता करनी पड़ती है और न कुछ देखना पड़ता है। यह हालत सौमें से निन्यानवे घरोंमें मिलेगी। अिन घरोंमें अधिकारकी दृष्टिसे किसकी सत्ता दिखाओी देती है? हम कहते हैं कि

स्त्रियां परतंत्र हैं, परन्तु घर-घर अुन्हींका जोर दिखाअी पड़ता है। अुनका अैसा जोर न होता, तो अिकट्ठे रहनेवाले कुटुम्ब स्त्रियोंके ही कारण विभक्त हुअे क्यों देखनेमें आते हैं? दो भाअियोंकी अलग होनेकी स्वाभाविक अिच्छा शायद ही कहीं पाअी जायेगी। परन्तु स्त्रियोंके कारण भाअी-भाअी अलग हो जाते हैं। घरमें स्त्रियोंका बोल-बाला न होता और स्त्रियां केवल परतंत्र ही होतीं, तो क्या अैसा हो सकता था? माना कि तुम्हारी मातायें या दूसरी स्त्रियां अशिक्षित थीं, अिसलिअे अुनके कारण घरके अिस तरह हिस्से हुअे। परन्तु तुम तो सुशिक्षित हो गअी हो। क्या अब अिन सब चीजोंसे बचनेकी तुममें बुद्धि या शक्ति है? शादी करनेके बाद पति और पतिके भाअी, देवरानी, जिठानी आदि सबके साथ संयुक्त कुटुम्ब चलानेकी तुम्हारी तैयारी है? मतलब, चाहे स्त्रियां अशिक्षित हों या सुशिक्षित, सबका यही खयाल है कि घरमें अुन्हींका प्राबल्य होना चाहिये। घरमें विवाह या किसी और महत्त्वके अवसर पर खर्चके बारेमें जब तुम्हारी मां और बापके बीच मतभेद होता है, तब अन्तमें किसके मतानुसार बूतेसे अधिक खर्च होता है और वह कार्य पूरा किया जाता है? अिसका विचार करो और कुल मिलाकर मत-प्राबल्यका अन्दाज लगाओ, तो अुसमें भी तुम्हें स्त्रियोंका ही प्राबल्य दिखाअी देगा। अितना होने पर भी हम कहते हैं कि स्त्रियां स्वतंत्र नहीं, हैं, अुन्हें कोअी पूछता नहीं है!

संतोषपूर्वक कष्ट सहन किये बिना प्रेम व सुख नहीं मिलता

अपने घरकी स्थितिका विचार करके देखो कि घरमें तुम्हारी मांकी चलती है या बापकी। अधिकांश जगहों पर मांका ही जोर और अुसीकी सत्ता दिखाअी देगी। अिस जोर और सत्ताका अुपयोग वह कैसा करती है, यह दूसरी बात है। क्या तुम्हें यह विश्वास है कि जन्मभर गृह-संसार चलाकर तुमसे पहलेकी पीढ़ीकी स्त्रियोंने अपने-अपने पति और घरके दूसरे लोगोंका जो विश्वास, आत्मीय भाव और प्रेम सम्पादन किया था, अुससे ज्यादा विश्वास, आत्मीय भाव और प्रेम तुम सुशिक्षित स्त्रियां अपने पति और घरके दूसरे लोगोंका सम्पादन कर सकोगी? तुम्हारी दृष्टिसे अशिक्षित परन्तु वास्तवमें

संस्कारी और सुस्वभावकी स्त्री अपने पति, सास-ससुर और घरके दूसरे लोगोंके लिअे मौका पड़ने पर जितना कष्ट और परेशानियां सहन करती है, अुतना सहन करनेकी क्या सचमुच तुम्हारी तैयारी है? तुम्हारा विवाह नहीं हुआ है, अिसलिअे शायद अिस प्रश्नका जवाब देना तुम्हारे लिअे कठिन होगा। परन्तु आज जिस घरमें तुम छोटीसे बड़ी हुअी हो, जहां तुम्हारे माता-पिता अपनी शक्तिके अनुसार तुम्हें सुख देनेका प्रयत्न करते हैं, जिस घरमें तुम सब सुविधायें भोगकर सुखसे रहती हो, अुस घरमें अवसर पड़ने पर अपने माता-पिताके लिअे, अपने भाअी-बहनोंके लिअे तुम संतोषपूर्वक कितना सहन कर सकती हो, अिस परसे अपने भावी जीवनके बारेमें अंदाज लगाना तुम्हारे लिअे मुश्किल नहीं होगा। आज जो लोग तुम्हारी शिक्षाके लिअे स्वयं असुविधायें भोग रहे हैं, अुनके लिअे जरूरत पड़ने पर कष्ट सहन करनेकी अगर तुम्हारी तैयारी न हो, तो शादी होनेके बाद पतिके घरके अपरिचित मनुष्योंके लिअे तुम कष्ट सहनेको कैसे तैयार होगी? मैंने शुरूमें कहा है कि तुम्हें खूब रुपया कमाने और अुसकी मददसे सुखी होनेकी अिच्छा है। अुसका आशय यही है कि तुम्हारे तमाम विचार किसी भी तरह अपने आपको सुखी करनेके हैं। परन्तु तुमने अिसका विचार नहीं किया कि अिस शिक्षासे नौकरी पाकर तुम कितना रुपया कमा सकोगी और अुस रुपयेसे कितना सुख पा सकोगी। तुम चाहती हो कि लोग तुम्हें सुख दें, परन्तु तुमने अिसका विचार नहीं किया कि लोग तुम्हें किस-लिअे सुख दें। तुम्हारी मातायें स्वयं रुपया नहीं कमातीं, परन्तु अुनके पतिका अुन पर पूरा विश्वास होता है। अैसी स्थितिमें तुम्हारे खयालसे अुनके सुखमें कौनसी न्यूनता है? परस्पर विश्वास, प्रेम, सहृदयता और हृदयकी कोमलतासे जो सुख मिलता है, वह क्या कभी रुपयेसे मिल सकता है? तुममें औरोंको सुख देने और प्रेम तथा कर्तव्यके खातिर कष्ट सहनेकी वृत्ति नहीं होगी, तो तुम्हारे लिअे प्रेमसे तकलीफ अुठानेको कौन तैयार होगा? तुम यह समझती हो कि शिक्षाके जोरसे हम पिछली पीढ़ीकी अपेक्षा ज्यादा स्वाधीन हो जायंगी। परन्तु तुम स्वाधीन होगी किस तरह? नौकरी और स्वाधीनता, दोनों अेक-दूसरेके विरुद्ध हैं। फिर, स्वाधीन रहनेके

लिअे जिस प्रकारकी मानसिक पात्रता और संस्कारिता होनी चाहिये, वह अिस शिक्षासे तुममें आ गअी है अैसी अगर तुम्हारी समझ हो, तो बहुत सम्भव है कि तुम धोखेमें हो। आजकलकी किताबी शिक्षा और संस्कारिता दोनों बिलकुल भिन्न चीजें हैं। सत्य, प्रामाणिकता, अुदारता, संयम, दया, सौजन्य, विवेक वगैरा मानव-सद्गुण ही संस्कारिताके सच्चे दर्शक हैं। और ये अपढ़ मनुष्यमें भी पाये जाते हैं, जब कि पढ़े-लिखोंमें अिससे अुलटे दुर्गुण देखे जाते हैं। अिस प्रकार शिक्षा और सुसंस्कार अिन दोनोंका कोअी नित्य सम्बन्ध नहीं है। तुम्हारी मातायें पढ़ी हुअी न हों, तो भी संस्कार-संपन्न हो सकती हैं। और तुम शिक्षा पाकर भी संस्कारहीन रह सकती हो। अैसी हालतमें तुम स्वाधीन किस तरह रह सकोगी? जिनके मनमें अनेक सुखोंकी लालसा भरी हो, अुनमें स्वाधीनता किस तरह कायम रह सकती है? तुम्हें शादी करनी है और शादी करके भी तुम्हें स्वाधीन रहना है। अर्थात् तुम्हारे पतिको सदा तुम्हारा गुलाम रहना चाहिये न? लेकिन अुसे तुम्हारे अधीन क्यों रहना चाहिये? क्या अिसीलिअे कि तुम शिक्षित हो और नौकरी करके रुपया कमाती हो? तुम कहोगी कि हम अेक-दूसरेसे प्रेम करके सुख प्राप्त करेंगे। परन्तु तुम्हें तो स्वतंत्रता चाहिये, सुख चाहिये; फिर तुम प्रेम किस तरह करोगी? प्रेम करनेवालेको दूसरेके लिअे त्याग करना पड़ता है; अपनी सुख-भोगकी अिच्छायें छोड़नी पड़ती हैं, खतम कर देनी पड़ती हैं, भूल जानी पड़ती हैं। अपनी स्वतंत्रता मिटा देनी पड़ती है। अहंकार छोड़ देना पड़ता है। लेकिन ये परस्पर-विरुद्ध बातें तुम कैसे कर सकोगी? और जिसे तुम प्रेम कहती हो, अुसकी तहमें कोअी अुदात्त भावना है, कुछ निष्ठा है, या अेक-दूसरेके प्रति रहे केवल आकर्षणको ही तुम प्रेम समझकर धोखा खाती रहोगी? अुस आकर्षणको ही प्रेम समझनेके भ्रममें रहोगी, तो याद रखो कि वह केवल मोह है। यह मोह लम्बे समय तक नहीं टिकेगा; संकट आते ही अुड़ जायगा। अेक ही व्यक्तिके लिअे हमेशा मोह नहीं रह सकता, क्योंकि वह आकर्षणके पीछे चलता है। तुममें प्रेम, निष्ठा, अुदारता, कर्तव्य-बुद्धि, दूसरेके लिअे संतोषपूर्वक कष्ट सहन करनेकी भावना, अुदात्तता वगैरा गुण न हों, तो तुम्हारे चार दिनके

नकली सौंदर्य पर तुम्हारा पति कितने समय तक आकर्षित बना रहेगा? और तुम्हारी समझमें आ जाय कि वह भी तुम्हारी ही तरह केवल मोह-लुब्ध है, तो अुसके बाद तुम स्वयं भी कितने दिनों तक अुसके मोहमें रहोगी? अिस प्रकार आपसमें अेक-दूसरेकी सच्ची पहचान और प्रतीति हो जानेके बाद भी संसारमें प्रेम, सुख और संतोष कहांसे मिलेंगे? केवल सुखकी अभिलाषासे अिकट्ठे हुअे दो प्राणी अुस अभिलाषाके लिअे आवश्यक आकर्षण और अुसके प्रति रहा भ्रम मिट जाने पर सुखके साथ कैसे रह सकेंगे? और फिर अिसी स्थितिमें अुन्हें अेकसाथ रहना पड़े, तो वे अेक-दूसरेके बारेमें हमेशा साशंक रहकर और अेक-दूसरेकी सदा चौकीदारी करके रात-दिन सतानेका ही काम करेंगे।

सुखके लिअे अुच्च और अुदात्त जीवन-ध्येय

अिन सब अनर्थोंके मूलमें चित्तमें संचित तुम्हारी सुखाभिलाषा ही है। तुमने अुसीको अपने जीवनका ध्येय बना लिया है। तुम्हारा यह समझना भ्रम है कि हमारे पास धन होगा, तो सभी हमें सुख देनेका प्रयत्न करेंगे। जिसे मजदूरी चाहिये वह ज्यादासे ज्यादा तुम्हारा काम कर देगा, परन्तु तुम्हें सुख क्यों देगा? वह तुम पर प्रेम और विश्वास किस लिअे रखेगा? वह तुम्हारे लिअे प्रेमपूर्वक त्याग क्यों करेगा? अिस मार्गसे तुम कभी सुखी न हो सकोगी। तुम्हें सुखी बनना हो तो जीवनका ध्येय अुच्च और अुदात्त रखो। केवल अभिलाषाके पीछे न दौड़ो। प्रेम चाहिये तो पहले प्रेम करना सीखो। प्रेम सीखना हो तो पहले क्षुद्र अहंकार छोड़कर दूसरेके लिअे कष्ट सहना सीखो। प्रेम करोगी तो प्रेम मिलेगा। विश्वास रखोगी तो दूसरेका विश्वास प्राप्त कर सकोगी। कष्ट सहन करोगी तो कोअी तुम्हारे लिअे कष्ट सहन करेगा। सुखका सम्बन्ध केवल शरीरके साथ ही नहीं है। मनकी अुच्च स्थितिके बिना सच्चा सुख प्राप्त होना संभव नहीं। रुपयेकी मददसे अेकाध कठिनाअी दूर हो सकती है, परन्तु सुख नहीं मिलेगा। औरोंको सुखी करके सुख पानेकी आकांक्षा रखोगी, तो किसी-न-किसी दिन तुम सुख पा सकोगी। केवल अपने ही सुखकी अिच्छा करती रहोगी, तो वह तुम्हारे हाथमें आने जितना सस्ता नहीं। तुम्हारी माताने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया, तब वह

आज तुम्हारे पिताकी सारी कमाअीकी मालकिन बनकर बैठी है। तुम्हारे पिता पर अुसने संपूर्ण विश्वास रखा, अिसीलिअे आज वह तुम्हारे पिताके सम्पूर्ण विश्वासकी पात्र बनी हुअी है। अुसने तुम्हारे पिताके लिअे सब कुछ सहन किया, अिसीलिअे तुम्हारे पिता अुसके लिअे चाहे जो करनेको तैयार हैं। अुसने अपना अलग कुछ रखा ही नहीं, माना ही नहीं, अिसीलिअे आज घरमें जो कुछ है वह सब अुसीका हो गया है। सुसंस्कारी और धर्मनिष्ठ कुटुम्बमें सभी जगह यह स्थिति मिलेगी। तुम्हारी अिस शिक्षामें नौकरी करके पेट भरनेके अलावा और क्या ताकत है? अुस पर भरोसा रखकर तुम सद्‌गुणोंकी ओर दुर्लक्ष न करो, धर्मको न भूलो, मानवताको न छोड़ो। मानव-हृदयका मूल्य रुपयेसे निश्चय ही अधिक है। अिसलिअे रुपया कमानेके मोहमें पड़कर मानव-हृदय और प्रेमको न खो देना।

केवल स्वसुखलक्षी विचारके दोष

ये सारी बातें तुम्हें शादी होनेके बाद नहीं सीखनी हैं। आज जिस घरमें पहलेसे ही तुम पर प्रेम करनेवाले मनुष्य हैं अुसीमें सीखनी हैं। यहां न सीखोगी तो यह न मानना कि शादी होनेके बाद वे तुममें अेकदम आ जायंगी। आज जहां तुम्हें सब ओरसे प्रेमका आश्रय है, वहीं तुम पहले अपने कर्तव्यके प्रति जाग्रत हो जाओ। तुम्हारी माताओं या घरकी बड़ी-बूढ़ी स्त्रियोंको रात-दिन घरके कामोंमें मेहनत करनी पड़ती है, अिस परसे तुम अैसा समझती हो कि अुनका जीवन दुःखी है; और अिससे तुम्हें अुन पर दया आती है यह भी तुमने बताया। परन्तु तुम्हीं अपने मनमें सोचकर देखो कि वह दया कहां तक सच्ची है। मैं तुम सबके घरकी स्थिति तो नहीं जानता। परन्तु मुझे अितना पता है कि आजकल पढ़नेवाली कितनी ही लड़कियां अैसा मानती हैं कि वे पढ़कर मां-बाप पर बड़ा भारी अुपकार कर रही हैं। घरमें कितनी ही दिक्कतें हैं। अपने कामका बड़ा बोझ मांको सहन करना पड़ता है, यह जानते हुअे भी अुसके काममें मदद करनेकी अुनकी वृत्ति नहीं होती। तुम्हें सचमुच ही अपनी मां पर दया आती हो और अुसके प्रति सच्ची सहानुभूति हो, तो तुम कभी अुसके साथ अैसा बरताव नहीं करोगी। कमसे कम तुम अुसे अपने लिअे तो श्रम

करनेकी नौबत न आने दोगी। अपने लिअे तुम अुसे परेशान न करोगी। परन्तु जिन लड़कियोंमें विद्यार्थी-अवस्थामें ही मांको मदद न देनेका अज्ञान, अहंकार और जड़ता हो, वे नौकरी करके दो पैसे कमाने लग जानेके बाद अुसके साथ या भाअी-बहनोंके साथ नौकरों जैसा बरताव करें तो अिसमें आश्चर्य नहीं। और जिन लड़कियोंकी जीवन-सम्बन्धी कल्पना, भावना और मनोवृत्ति केवल स्वसुख-लक्षी हो, वे घरमें अिससे भिन्न व्यवहार कैसे करेंगी? विवाह हो जानेके बाद पति और अुसके घरके अपरिचित लोगोंके साथ अुनका व्यवहार स्वार्थके सिवा और किस दृष्टिसे होगा? अिसलिअे यदि तुम्हें कर्तव्य-निष्ठ और धर्मनिष्ठ बनना हो और सबके साथ स्नेह और अुदारतासे रहना हो, तो आज जिस घरमें तुम हो, जिस परिवारमें रहती हो, वहींसे ये बातें शुरू करो। तुम सब स्वार्थी हो या अपने माता-पिताके लिअे तुममें दया-माया नहीं है या अपने भाअी-बहनोंके प्रति तुम्हें ममता नहीं है, यह कहनेके लिअे मेरे पास कोअी आधार नहीं है। परन्तु तुम्हारे निरे स्वसुख-लक्षी विचार, रुपयेसे सुखी होनेकी तुम्हारी कल्पनायें, थोड़े पढ़े हुअे या बिलकुल अपढ़ लोगोंके प्रति तुम्हारे गलत खयाल और शिक्षित होनेके कारण अपने विषयमें तुम्हारे विलक्षण अूंचे खयाल देखकर मेरे मनमें जो विचार आते हैं, अुन्हें मैं तुम्हारे सामने रख रहा हूं। साधारण लिखना-पढ़ना जाननेवाली स्त्रियां भी पतिके परदेश चले जाने पर घरका, घरकी खेतीबाड़ीका या और कोअी धंधा कितनी दक्षता और होशियारीसे चलाती हैं अिसके अुदाहरणोंका तुम्हें पता चले, तो मुझे विश्वास है कि मौजूदा शिक्षा-सम्बन्धी तुम्हारा अभिमान और थोड़ी या बिलकुल न पढ़ी हुअी स्त्रियोंके बारेमें तुम्हारी गलत धारणायें दूर हो जायेंगी।

गृहस्थाश्रममें स्त्री-पुरुषका समान महत्त्व

तुम सुखी होना चाहती हो, अिसमें तुम्हारा कुछ दोष नहीं है। परन्तु तुम सुखका मार्ग नहीं जानतीं। तुम औरोंको सुख देनेमें कृपण रहकर और अपने लिअे दूसरोंको कष्ट देकर स्वातंत्र्य और सुखकी अिच्छा करती हो। यही तुम्हारी भूल है। सुखकी अिच्छा तो प्राणीमात्रको होती है। परन्तु वह किस मार्गसे सुख प्राप्त करनेका प्रयत्न करता है, अिससे अुसकी

परीक्षा हो जाती है। मनुष्यकी पात्रता अिस बातसे तय होती है कि अुस सुखमें केवल शारीरिक सुखका अंश कितना है और मानवीय श्रेष्ठ गुणोंका और धर्मका अंश कितना है। तुम्हारा यह कहना अेक हद तक सही है कि पुरुषोंके पास सारी सत्ता होनेसे स्त्रियोंको परतंत्रता सहन करनी पड़ती है और अिसलिअे अुनकी प्रगति कअी तरहसे रुकती है। चूंकि नौकरीपेशा वर्गोंमें रुपया कमानेका काम बहुत समयसे पुरुष ही करते आये हैं और अिस वर्गमें स्त्रियोंके लिअे रुपया कमानेका साधन नहीं था, अिसलिअे पुरुषोंको अैसा महसूस होने लगा कि वे स्त्रियोंसे बढ़कर हैं। किसानों या दूसरे श्रमजीवी वर्गोंमें पुरुषोंके साथ स्त्रियां भी काम करती हैं, अिसलिअे अुन वर्गोंमें कमाअीके मामलेमें अितना भेद नहीं माना जाता। परन्तु नौकरी करनेवाले वर्गोंमें यह भेद अिस हद तक बढ़ गया कि पुरुष अपनेको कुटुम्बका सत्ताधीश मानने लगा। पुरुषोंकी मूर्खताके कारण कुछ बातोंमें अुनकी ओरसे स्त्रियों पर अन्याय भी होते रहे। परिणाम-स्वरूप स्त्रियोंको अैसा लगने लगा कि वे पराधीन हैं। यह अुनके लिअे असह्य हो गया। और जब शिक्षाका मार्ग लड़कियोंके लिअे भी खुल गया और अुन्हें भी नौकरियां मिलने लगीं, तो अुनमें आत्म-विश्वास आने लगा और अुन्हें लगा कि हमें भी पुरुषोंकी तरह स्वतंत्र और सुखी होना चाहिये। परन्तु स्त्रियोंने अिन बातोंका शायद विचार नहीं किया कि पुरुष स्वतंत्र हैं यानी अुन्हें कौनसी स्वतंत्रता है? नौकरी करके अपना और अपने स्त्री-बच्चोंका गुजर करनेकी शक्ति होनेसे अुन्हें कौनसी स्वतंत्रता मिल गअी? नौकरको कितनी स्वतंत्रता हो सकती है? परन्तु तुम अवश्य अिसका विचार करो। स्त्रियोंमें अिस प्रकारकी भावना पुरुषोंकी मूर्खता और अहंकारके कारण पैदा हुअी है। परन्तु जिनमें कुलीनता है, जो विचारशील हैं, वे कभी अपनी स्त्रियोंको जरा भी हलकी नहीं समझते। वे अुनके साथ अिज्जतसे पेश आते हैं, घर-सम्बन्धी हरअेक बातमें अुनसे सलाह लेते हैं और यह समझते हैं कि सारा घर अुन्हींका है। खुद बेगार करते हैं और सारी कमाअी स्त्रियोंको सौंप देते हैं। संसारमें पुरुषों और स्त्रियोंका महत्त्व अेकसा ही है। कोअी किसीसे बढ़िया या घटिया नहीं है। दोनोंको मिलकर संसार सुखी बनाना है।

दोनोंको अेक-दूसरेकी मददसे अपनी अुन्नति करनी है। गृहस्थाश्रमके लिअे दोनोंकी ही समान जरूरत है। गृहस्थाश्रम मानव-अुन्नतिका बड़े महत्त्वका क्षेत्र है। अिस क्षेत्रको अधिकाधिक पवित्र बनाना दोनोंका काम है। दोनोंको अेक-दूसरेके सम्मानकी रक्षा करना और अुसे बढ़ाना है। संसारके सुख-दुःख, आनन्द-शोक, लाभ-हानि, मान-अपमान तथा प्रतिष्ठा, गौरव, भाग्य, यश, धर्म — अिन सबमें दोनोंका अेकसा हिस्सा है। घरकी सन्तानों पर दोनोंका समान अधिकार है। अपनी सन्ततिको ज्ञान, बल, विद्या और सब सद्गुणोंसे सम्पन्न करके दोनोंको अन्तमें अेक ही रास्ते, अेक ही गतिसे जाना है। गृहस्थ और गृहिणी — अिनमें कौन श्रेष्ठ और कौन कनिष्ठ? कौन स्वतंत्र और कौन परतंत्र? यह विवाद ही गलत है। परन्तु अेक यदि मूर्खतासे पेश आने लगे तो अुसके साथीको जन्मभर दुःख भोगना ही पड़ेगा और दुःखसे छूटनेके लिअे अुसे स्वातंत्र्य-प्राप्तिकी अिच्छा भी जरूर होगी। परन्तु गहरा विचार करें तो समझदारीसे काम लेनेमें ही दोनोंका और सारी मानव-जातिका कल्याण है। कुछ भी हो, दोनों यदि अलग-अलग रास्ते जायेंगे तो काम नहीं चलेगा। प्रकृतिकी बनाअी हुअी अिस जोड़ीका — परमात्मा द्वारा खुद अपनेमें से निर्माण की हुअी अिन मूर्तियोंका — सौभाग्य, कल्याण और सार्थकता अिसीमें है कि दोनों अपना अपना अहंकार छोड़कर परस्पर अेकरूप हो जायं। भविष्यकी पीढ़ियों और सारे समाजका कल्याण भी अिसीमें है। अितने पर भी तुम घरकी गृहिणियां, घरकी स्वामिनियां बनना छोड़कर आजादी और सुखके लिअे अेक दफ्तरसे दूसरे दफ्तरमें नौकरियां ढूंढ़ने और करने लगो, तो अिससे तुम्हारा अपना, पुरुषवर्गका, तुम्हारी भावी संतानोंका और सारे समाजका क्या कल्याण होगा?

जीवनके दो चित्र

तुममें से कुछ लड़कियोंका प्रश्न है कि लड़कियां और स्त्रियां नृत्य सीखें या नहीं? सिनेमामें काम करें या नहीं? नृत्य सीखने और सिनेमामें काम करनेमें भी अुनका हेतु रुपया कमाना ही है। अिसलिअे रुपया कमानेके बारेमें मैंने अपनी जो राय अूपर बताअी है, वही अिस बारेमें भी तुम्हें समझनी चाहिये। तुम्हारे अिस प्रश्नसे अिस बातका स्पष्ट ज्ञान

होता है कि रुपया कमाने, स्वतंत्र होने और सुख भोगनेके लिअे आज-कलकी लड़कियों और स्त्रियोंके विचार कहां तक जा पहुंचे हैं। लड़कियो! तुम्हारे अिन प्रश्नोंसे मालूम होता है कि सुख और स्वातंत्र्यकी अिच्छासे तुम भरमा गअी हो। अिससे मुझे आश्चर्य और दुःख होता है। सुख और स्वातंत्र्यके लिअे रुपया चाहिये और अुसे कमानेके लिअे सिनेमामें जाकर या पुरुषोंके सामने नाचकर अुनका मनोरंजन करनेकी ओर तुम्हारे मनका रुख देखकर मुझे तुम पर दया आती है। तुम्हें अितना ही मालूम है कि नृत्य करनेवाली और सिनेमामें काम करनेवाली लड़कियों और स्त्रियोंको रुपया मिलता है। परन्तु अुन्हें सुख मिलता है या नहीं, अुनका जीवन किस प्रकारका है और जीवनके अन्त तक अुन्हें किन-किन विपरीत परिस्थितियों और मुसीबतोंमें से गुजरना पड़ता है, अिसकी भी तुम्हें कल्पना है? तुमने क्या कभी अिसकी जांच की है कि अुनका सारा जीवन कैसा है? केवल अुन्हें मिलनेवाले रुपयेकी बातें सुनकर, अुनकी थोड़े दिनकी तड़क-भड़क, ठाठ और स्वतंत्र तथा स्वच्छंद जीवन देखकर तुम्हें अुनकी जीवन-पद्धतिका लोभ और मोह हो, यह मुझे बहुत ही शोचनीय और तुम्हारे हितमें दुर्भाग्यपूर्ण लगता है। नाचने और सिनेमामें काम करनेवाली लड़कियों और स्त्रियोंकी कीमत केवल रुपयेसे नापी जाय, तो भी वह कब तक टिकती है? जवानी बीत जाने पर कोअी अुनका भाव भी पूछता है? ज्यों-ज्यों जीवनका अुत्तरकाल और बुढ़ापा आता जाय, त्यों-त्यों हमारी कीमत घटती जाय और जीवनके अंतमें हमारे साथ कोअी प्रेम और सद्-भावसे बात तक न करे और न हमारे लिअे किसीके मनमें आदर रहे, अिस तरहका जीवन अच्छा या ज्यों-ज्यों अधेड़ अुम्र होती जाय और बुढ़ापा आता जाय, त्यों-त्यों हमारे लिअे आदर, मान, प्रेम और सद्-भाव बढ़ता जाय, अैसा जीवन अच्छा? अिसका तुम्हीं विचार करो। अिनमें से तुम कौनसा जीवन पसन्द करोगी? वृद्ध स्त्रीका नृत्य देखनेकी अिच्छा कोअी नहीं करता। जवानीकी अुसकी कलाके लिअे बुढ़ापेमें अुसका कौन आदर करेगा? परन्तु अपने सांसारिक कर्तव्य अच्छी तरह पूरे करके और पति-पुत्रके लिअे सब तरहके कष्ट सहन करके वृद्धावस्थामें पहुंची हुअी गरीब स्त्रीके लिअे भी सबके मनमें आदर, मान और पवित्रताकी

भावना होती है। बेशक, जिस जीवनके अन्तमें खुदको और दूसरोंको भी सन्तोष और सहज ही धन्यताका अनुभव हो वही जीवन अच्छा है। बड़े-बड़े ज्ञानी, सदाचारी और पुण्यवान पुरुष अथवा महान प्रतापी धनंजय भी अपनी वृद्ध माताके चरणोंमें मस्तक रखने और अुसकी चरण-रज सिर पर धारण करनेमें अपने आपको धन्य और कृतकृत्य मानते आये हैं। यह प्रभाव पवित्रताका, शीलका, कर्तव्य-निष्ठाका और मातृत्वका है। अिस प्रकारका भाग्य किस तरहके जीवनके अन्तमें प्राप्त हो सकता है, अिसका विचार करना तुम्हारे लिअे कठिन नहीं। लड़कियो! तुम्हारे सामने दो चित्र हैं। अिनमें से कौनसा जीवन अनुकरणीय और आदरणीय है, अिसका निर्णय तुम खुद ही कर सकोगी।

सामाजिक सेवाका आदर्श

अितना सुननेके बाद भी तुम्हें अैसा लगे कि आजके बदले हुअे समयके साथ अिस आदर्शका मेल नहीं बैठता, तुम्हारे गले यह न अुतरे और तुममें पुरुषार्थ, ज्ञान, सेवापरायणता और अपने सुखके प्रति अुदासीनता हो, तो घरके बाहर भी तुम्हारे लिअे जितना चाहिये अुतना विशाल कार्यक्षेत्र पड़ा है। जिस समाजमें तुम चलती-फिरती हो, अुसीमें आसपास जरा नजर डालकर देखो। स्त्रीवर्गमें कितना अज्ञान है, बच्चोंके पालन और शिक्षणकी ओर कितनी अुपेक्षा-वृत्ति है, अिसके बारेमें कितनी अड़चनें हैं; समाजमें स्वच्छता, सुघड़ता, व्यवस्थितता आदि अच्छे संस्कारोंका कितना अभाव है; परस्पर मेल, अैक्य, प्रेम, विश्वास, भावना, प्रामाणिकता, सहयोग और सेवाभावकी कितनी कमी है; आरोग्य और दूसरे शारीरिक गुणों और अनेक मानसिक सद्‌गुणोंका समाजमें कितना अभाव है, अिन सब बातों पर ध्यान दो। अिस स्थितिके लिअे अगर तुम्हें सचमुच दुःख हो, यह देखकर तुम्हारी अंतरात्मा व्याकुल हो, तो तुम अपनी शक्तिके अनुसार अिसमें से किसी अेक बातमें सुधार करनेका आजीवन व्रत ले लो और अुसके लिअे अपनी सारी शक्ति लगाती रहो। अैसा करनेसे तुम्हें केवल स्वसुखकी अपनी कल्पनामें जो धन्यता अनुभव होती है अुससे कहीं अधिक धन्यता तुम अनुभव करोगी; साथ ही हमारे समाजकी स्थिति भी सुधरेगी।

(प्रवचन, १९४०)

३

गृहस्थाश्रमकी दीक्षा

[अेक नवदंपतीको दिया हुआ अुपदेश ।]

आज तुम दोनोंने अपने माता-पिता, गुरुजनों और बड़ोंकी सम्मति और आशीर्वादसे गृहस्थाश्रम स्वीकार किया है। अब तकका जीवन यदि तुमने गृहस्थाश्रमकी पूर्व तैयारीके रूपमें बिताया होगा, तो तुम जानते होगे कि जीवनकी दृष्टिसे आजके दिनका कितना बड़ा महत्त्व है। मैं मानता हूं कि आज तुमने गृहस्थाश्रमके कर्तव्योंकी जो जिम्मेदारी ली है, वह समझकर ही ली होगी। असलमें आजके अवसर पर तुमसे अुपदेशके दो शब्द कहनेके लिअे मेरे जैसा मनुष्य, जिसने यह जिम्मेदारी कभी स्वीकार नहीं की, योग्य नहीं माना जा सकता। जिसने गृहस्थाश्रमको जीवनका बड़े महत्त्वका और अपनी आध्यात्मिक अुन्नतिके लिअे अुचित काल समझकर अुसका अीमानदारी और धर्मबुद्धिसे पालन किया हो और जो अिस आश्रमके सारे कर्तव्य यथायोग्य पूरे करता रहा हो, वही मनुष्य अिस बारेमें अनुभवपूर्ण और भावी जीवनमें तुम्हें रास्ता दिखानेवाला अुपदेश देने योग्य है। परन्तु तुम्हारे और तुम्हारे बुजुर्गोंके मेरे प्रति रहे सद्भाव, विश्वास और प्रेमके कारण और तुम सबके आग्रहके कारण यह कर्तव्य मुझ पर आ पड़ा है, और तुम्हारे तथा समाजके प्रति सद्भावना रखनेके कारण अिसे स्वीकार करके तुमसे दो शब्द कहनेको मैं तैयार हुआ हूं।

संसारमें अुपयोगी सिद्ध होनेवाला ज्ञान प्राप्त करनेकी दृष्टिसे ब्रह्मचर्य-आश्रमका बड़ा महत्त्व है। अिसी कालमें अनेक विद्यायें, कलायें और तरह-तरहका ज्ञान प्राप्त कर लेना होता है। अच्छे संस्कार ज्यादा-तर अिसी कालमें ग्रहण करने होते हैं। अुसके बादका आश्रम गृहस्थाश्रम है। कौटुम्बिक और सामाजिक महत्त्वके कर्तव्योंका प्रारम्भ अिस आश्रमसे होता है। आज तक तुम दोनों अलग-अलग थे, अब तुमने पति-पत्नी बन-

कर खुदको परस्पर बांध लिया है। पहले तुम्हारा अेक-दूसरेके साथ कोअी सम्बन्ध नहीं था। आजसे तुमने अपने जीवनको अेक कर लिया है। अब तुम्हारे सुख-दुःख, लाभ-हानि, धर्म-अधर्म, सब अेक हो गये हैं। आगे तुम दोनोंको मिलकर जीवन-पथ काटना है।

विवाह केवल अपने सुखके लिअे है, यह समझकर या सिर्फ आपसके आकर्षणसे लुभाकर या मोहमें फंसकर तुमने विवाह किया हो, या तुम्हारे बड़ोंके द्रव्यलोभ या किसी और क्षुद्र लोभके कारण तुम्हारा विवाह कराया गया हो, तो अिस विवाहकी जड़में केवल मोह है या किसीका द्रव्यलोभ है। अुसके बारेमें यह नहीं कहा जा सकता कि वह धर्मयुक्त विवाह है या गृहस्थाश्रमकी दीक्षा है। यदि तुम्हारे विवाहके पीछे किसी भी धर्म-संगत कर्तव्य या अुदात्त ध्येयकी कल्पना न हो और वह केवल अेक-दूसरेके आकर्षणसे ही हुआ हो, तो कहना पड़ेगा कि अुस आकर्षण और अुसके मोहके आधार पर ही तुमने अपना संसार चलानेकी आशा की है। तब आकर्षणका यह समय बीत जाने पर, मोह दूर हो जाने पर, अुसके बादका जीवन, अुसके बादका संसार तुम किस बलके आधार पर चलाओगे, यह अेक सवाल ही है। और विवाहके निमित्तसे अेक पक्षने दूसरे पक्षसे रुपया वसूल किया हो, तो वह रुपया अुसके कितने दिन काम आयेगा? तुम दोनों वर-वधूके निमित्तसे मैं जो शब्द बोल रहा हूं, वे केवल तुम्हींको ध्यानमें रखकर नहीं बोल रहा हूं। जिन्हें दाम्पत्य-धर्म स्वीकार किये अनेक वर्ष हो गये हों, वे भी अिन शब्दों पर विचार करें और अपने जीवनकी जांच करें। भविष्यमें दाम्पत्य-धर्म स्वीकार करनेकी अिच्छा रखनेवाले तरुण-तरुणी भी मेरे कहने पर अच्छी तरह ध्यान दें। जिस समाजमें विवाह सिर्फ मोहके कारण अथवा किसीके द्रव्यलोभकी तृप्तिके खयालसे होते हैं, वह समाज कभी अुन्नत नहीं हो सकता। जीवनकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अिस लग्न-विधिके निमित्तसे जिस समाजमें धर्म, कर्तव्य, अुदारता, प्रेम, अुदात्तता, अैक्य, विश्वास, परस्पर सहयोगकी भावना अित्यादि संस्कारों और सद्गुणोंकी जागृति और वृद्धि नहीं होती, अुस समाजका अिस जीवन-संग्राममें लम्बे समय तक टिके रहना सम्भव नहीं। विवाहके

निमित्तसे जहां आर्थिक अत्याचार, अन्याय, अपमान और स्वार्थ-साधन आदि बातें ही होती हों, वहां समाज भीतर ही भीतर अेक-दूसरेको खाकर जैसे-तैसे जीता होगा। मैं मानता हूं कि जिन वर-वधूको आशीर्वाद देने और जिनके शुभचिन्तनके लिअे मैं यहां आया हूं, वे और अुनके बुजुर्ग अिस समाज-घातक और मनुष्यताको दूषित करनेवाले पातकसे अलिप्त होंगे।

विवाह केवल वर-कन्याके लिअे नहीं है। केवल अुनकी तात्कालिक आवश्यकता पूरी करने या केवल अुनके सुखके लिअे ही नहीं है। मनुष्यकी दुर्दम्य अिच्छाओं और नैसर्गिक प्रेरणाको केवल रास्ता देनेके लिअे भी वह नहीं है। ये बातें अुसमें आ जाती हों, तो भी अिनसे कहीं श्रेष्ठ और पवित्र ध्येय सफल करनेमें मनुष्यको विवाहका अुपयोग करना चाहिये और अुसे ही अिसका प्रधान हेतु समझना चाहिये। हमें अुसका अुपयोग मानवताकी प्राप्तिमें करना चाहिये। विवाह-सम्बन्ध द्वारा गृहस्थाश्रम स्वीकार करके दोनोंको अेक-दूसरेकी अुन्नतिमें सहायक बनकर और समाजके कर्तव्य पूरे करके अपना श्रेय साधना है। परम्परासे चली आअी और बढ़ते-बढ़ते हम तक आ पहुंची मानवताकी विरासतको अधिक पवित्र, व्यापक, अुदात्त और अुन्नत बनाने तथा अुसे अपनी सन्तानमें अुतार कर हमारी भावी पीढ़ीको मानवताके मार्गमें जन्मसे ही अधिक योग्य बनानेके लिअे विवाह-सम्बन्ध है। विवाहके द्वारा मनुष्यको पीढ़ी दर पीढ़ीके रूपमें निर्माण होनेवाले मानव-जातिके अिन संस्करणोंको मानवी सद्गुणोंमें अधिकसे अधिक शुद्ध और प्रगतिशील बनाते-बनाते सारी मानव-जातिको परम शुद्ध और परम मंगल स्थिति तक पहुंचानेका अीश्वरी हेतु पूरा करना है। विवाह-सम्बन्धसे वर-वधूका जीवन अेक होता है। अुसके कारण दो जीवोंमें मानो अेक ही चैतन्य बहने लगता है। दो जीवोंके अिस सम्बन्धसे दो कुटुम्ब अेकत्र होते हैं। अुनमें अेक-दूसरेके प्रति मित्रता, प्रेम, विश्वास आदि सद्भाव बढ़ने लगते हैं। अेक-दूसरेके सुख-दुःख थोड़ी-बहुत मात्रामें अुनमें से हरअेकको महसूस होने लगते हैं। अिन दो कुटुम्बोंके अन्य बहुतसे सम्बन्धी कुटुम्ब तथा अुन बहुतसे कुटुम्बोंके अनेक सगे-सम्बन्धी, मित्र और परिवार सबमें विवाहके निमित्तसे ही विशाल आत्मीयता और अेकता प्रतीत होने लगती है। सबको अेक-दूसरेका सहारा मालूम होने

लगता है। सब अेक-दूसरेकी मदद करने लगते हैं और अेक-दूसरेका दुःख आपसमें बांटकर पारस्परिक सुखकी वृद्धि करते हैं। अिस प्रकार सबका मिलकर अेक-जीव समाज बनता है। अुस समाजकी, अुसके आबाल-वृद्ध स्त्री-पुरुषोंकी सेवा गृहस्थ और गृहिणी अनेक प्रकारसे कर सकते हैं। प्राचीन कालके हमारे दैनिक पंच महायज्ञ गृहस्थाश्रमके आधार पर ही चलते थे। अुनमें देवता, पितर, ज्ञानी, मनुष्य और जीवमात्र — सबकी सेवाका समावेश किया गया था। अिन सबकी नित्य नियमित रूपमें सेवा करनेवाले दम्पतीके बराबर श्रेष्ठता अुस समय किसीकी भी नहीं मानी जाती थी। अिस प्रकारका यह दाम्पत्य धर्म — गृहस्थाश्रम — जीवनका पवित्र ध्येय सफल करनेके लिअे है। वह केवल तात्कालिक और क्षुद्र व्यक्तिगत सुखके लिअे है, अैसा मानना अुसकी विडम्बना करना है। अुसकी सहायतासे मनुष्यको अेक ओर अपनी अुन्नति और दूसरी ओर संसार-सम्बन्धी अपने कर्तव्य पूरे करने हैं। स्त्री और पुरुष दोनोंको क्रमशः पतिव्रत और पत्नीव्रत धारण करके अेकनिष्ठासे अुसका पालन करना चाहिये और अुसीमें से संयमकी अुपासनाको बढ़ाते हुअे अपनी चंचलता और असंयमका संपूर्ण त्याग करके गृहस्थाश्रमकी परम शुद्धि करनी चाहिये। जीवनके लिअे आवश्यक अनेक सद्‌गुण प्राप्त करके मानवता सिद्ध करनी चाहिये।

गृहस्थाश्रममें मनको छोटा — संकुचित — रखनेसे काम नहीं चलता। जब तक वर-वधू सबके प्रति कर्तव्य-बुद्धि धारण करना न सीखें, मनकी अितनी विशालता प्राप्त न करें, तब तक वे 'गृहस्थ' और 'गृहिणी' के अत्यन्त आदरणीय पदके योग्य नहीं माने जा सकते। भले आज गृहस्थाश्रमका महत्त्व कहीं दिखाअी न देता हो, अुसका सच्चा और पवित्र हेतु भले कोअी न पहचानता हो, फिर भी यदि मनुष्यको अपने जीवनमें मानवता प्राप्त करनी हो और सारे समाजकी शुद्धि करके अुसके सद्‌गुणोंमें वृद्धि करनी हो, तो गृहस्थाश्रमका महत्त्व पहचानना ही होगा। आज हमारे जीवनका कोअी खास महत्त्व ही नहीं रहा। गुजारा करनेके लिअे कोअी धन्धा कर लेना, अुसके द्वारा रुपया कमाकर बाल-बच्चोंका जैसे-तैसे निर्वाह करना और अैसा करते-करते ही सही-गलत तरीकेसे भरसक रुपया जमा

करना और थोड़ीसी अिज्जत बना लेना — जीवनके लिअे अिससे अधिक अुदात्त कोअी ध्येय ही आज नहीं रहा है। हमारे पास कोअी अुच्च विचारसरणी नहीं है। समाजमें कहीं भी बचपनसे अुत्तम संस्कार मिलनेकी सुविधा नहीं है। अपनी अिच्छा, वासना या कामनाके अनुसार ज्यों-त्यों आदर्शरहित जीवन बितानेकी ही हमारी साधारण जीवन-पद्धति बन गअी है। अिसलिअे मानवताकी दृष्टिसे हमारे जीवनका कोअी मूल्य नहीं रहा। हम कितनी ही पीढ़ियोंसे लगभग अिसी स्थितिमें हैं। अेकके बाद दूसरी पीढ़ी अिस स्थितिमें से गुजरती रहती है, परन्तु हमारा कोअी विकास नहीं होता। अिसका कारण यह है कि हममें यह आकांक्षा ही नहीं है कि हमें सुधरना चाहिये, अुन्नत होना चाहिये। हर साल लाखों शादियां होती हैं। लाखों नये दम्पती नये संसारका प्रारम्भ करते हैं। अपने बुजुर्गों, माता-पिताओं द्वारा संसारमें, दाम्पत्य-जीवनमें की गअी भूलें वे भी करते हैं और अपने माता-पिताकी तरह ही अुनके कड़वे परिणाम भोगते हैं। हर पीढ़ी अिन्हीं विपरीत परिणामोंका अनुभव करके चली जाती है, फिर भी भावी संतानोंको अपने अनुभवका ज्ञान देकर सावधान नहीं करती। अज्ञान, असंयम और काम, क्रोध, लोभके आवर्तोंके कारण अपने हाथों हुअी भूलोंसे तथा अुनके कारण स्वयं और दूसरोंके भोगे हुअे परिणामोंसे भावी पीढ़ीको बचानेके लिअे गृहस्थ-जीवन शुरू करनेसे पहले ही अुसे सचेत नहीं किया जाता। हम अपनी संतानोंको अज्ञानमें रखते हैं। संसार और अुसमें होनेवाली अच्छी-बुरी बातें, अुसके सुख-दुःख, आनन्द-शोक, लाभ-हानि, अुन्नति-अवनति, यश-अपयश, भला-बुरा अित्यादि सब बातोंका ज्ञान पहलेसे ही देकर हम अुन्हें नहीं बताते कि किस क्षेत्रमें किस मार्गसे और किस ढंगसे अुन्हें जाना चाहिये और अुसके अनिष्ट, दुःख, शोक, अवनति और अपयश वगैरासे कैसे बचना चाहिये। यह हमारी जड़ता है। लम्बे समय तक समाजकी स्थितिको देखकर मैंने यह अनुभव किया है। अितने पर भी मैं यह कहनेको तैयार नहीं कि हम पीढ़ियोंसे दुष्ट या मूर्ख रहे हैं और अपनी संतानोंका जान-बूझकर अकल्याण करते रहे हैं। माता-पिताके हृदयमें अपनी सन्तानके लिअे कितनी प्रीति, वात्सल्य और चिन्ता होती है, यह मैं अच्छी तरह जानता हूं। मेरे अपने

तथा आप्त, अिष्ट व मित्रजनोंके माता-पिताके प्रेम और वात्सल्यका जो लाभ मुझे सौभाग्यसे मिला है, अुसे मैं कभी भूल नहीं सकता। अुनके प्रेम और वात्सल्यकी महत्ता मैं जानता हूं। अुन सबके लिअे मेरे मनमें जो पूज्यभाव और कृतज्ञता बसी हुअी है वह कभी नहीं मिटेगी। परन्तु ये सब भाव कायम रहने पर भी मुझे अैसा लगता है कि संसारकी कितनी ही जरूरी बातोंके बारेमें हममें जड़ता आ गअी है। यह शायद हमारे रूढ़िग्रस्त होनेका या हमारे परम्परागत सामाजिक-धार्मिक रीति-रिवाजोंका परिणाम होगा। परन्तु अब हमें लम्बे समयसे चला आ रहा अपना यह दोष निकाल देना चाहिये। छुटपनसे अुचित ज्ञान देते देते बच्चोंको संसारकी यथार्थ जानकारी हो जानेके बाद, जिम्मेदारी और कर्तव्यकी भावना अुनमें दृढ़ हो जानेके बाद और हमारी भूलें वे न दोहरायें अितनी जागृति, ज्ञान और दृढ़ता अुनमें आ जानेके बाद ही माता-पिताको अुन्हें संसारमें प्रविष्ट कराना चाहिये।

नवदम्पती, तुमने अपने सिर पर बहुत बड़ी और पवित्र जिम्मेदारी ली है। गृहस्थ-जीवनमें अनेक कठिनाअियों और संकटोंका सामना करना पड़ता है। तुम्हें अपना शील कायम रखकर अिन सबमें से पार होना है। तुम्हें सुखकी अिच्छा होना स्वाभाविक है। यदि तुम धर्मके मार्ग पर चलोगे, कर्तव्य-बुद्धि जाग्रत रखकर अुसके अनुसार रहोगे, तो जरूर सुखी होगे। संसार दु:खके लिअे नहीं बनाया गया है। परमात्माकी अैसी अिच्छा नहीं है। हम सब सद्भावसे रहें, विवेकपूर्वक चलें, तो अिसमें शक नहीं कि सब सुखी होंगे। तुम दूसरोंको सुखी करने, अपने सद्गुणोंसे औरोंको आनन्दित बनानेका प्रयत्न करो। अिससे तुम्हें सुख और आनन्द मिले बिना नहीं रहेगा। सुखके बारेमें तुम संकुचित वृत्ति रखोगे, केवल अपने ही सुखकी तरफ देखोगे, तो वह तुम्हारे हाथमें नहीं आयेगा। मैं देखता हूं कि केवल स्वार्थके पीछे पड़नेसे संसारमें कलह और क्लेश पैदा होते हैं। कुटुम्बका हर व्यक्ति अुदारता धारण करे, सेवावृत्ति बढ़ावे, औरोंके सुखमें अपना सुख माने और कृपणता छोड़ दे, तो कुटुम्बके सारे लोगोंको निश्चित ही आनन्द और सुख मिलेगा। अैसा सौभाग्य प्राप्त करनेके लिअे प्रत्येकको थोड़ा-बहुत कष्ट अुठाना ही पड़ेगा।

परन्तु अिससे कभी अूब न जाना; घबड़ा न जाना। हमारा जीवन सबके लिअे है, अैसी अुदात्त भावना अपनाओगे, तो तुम्हें कोअी भी बात कठिन नहीं लगेगी। जब कि कृपणता रखनेसे हरअेक बात तुम्हें असंभव जान पड़ेगी। गृहस्थ-जीवनमें कभी-कभी तुम दोनोंके बीच भी मतभेद और असंतोषके मौके आयेंगे; परन्तु अुस समय तुम अुदारता रखना। अेक-दूसरेको निभा लेना सीखना। दूसरेके दोषोंके प्रति क्षमावृत्ति रखना। अहंकार और दुराग्रह न रखना। अन्तर्मुख होकर अपने दोष ढूंढ़ना, जांचना और सुधारना। तुम्हारी दुष्टता और स्वार्थसे किसीका मन न दुखे, अिस बातका ध्यान रखना। दुर्बुद्धिको चित्तमें आसरा न देना। आपसमें संशय न रखना। तुम दोनोंमें परस्पर प्रेम और विश्वास दिनों-दिन बढ़ना चाहिये। तुम दोनोंके कारण सारे कुटुम्बमें सुख, आनन्द, प्रेम, विश्वास और अेकताकी लगातार वृद्धि होनी चाहिये। अब तुम्हें अपने मन पहलेकी अपेक्षा विशाल बनाने चाहिये। तुम्हारे सद्भाव और सद्गुण अब अधिक व्यापक होने चाहिये। वधूको अपना नया घर अपने प्रेम, सद्-भाव, अुद्योग, सेवावृत्ति, आनन्दी स्वभाव, प्रामाणिकता और सत्यपरायणता वगैरा गुणोंसे अपना बना लेना चाहिये। घरके बड़ोंको अुसके साथ अपनी लड़कीकी तरह प्रेमका बरताव करना चाहिये। वरको भी अपनी पत्नीके बड़े-बूढ़ोंके साथ नम्रता और प्रेमसे व्यवहार करके अुन्हें पुत्रकी तरह आनन्द देना चाहिये। तुम्हारा अब तकका जीवन सद्गुणोंसे भरा होगा, तो आगे भी तुम्हें कोअी कठिनाअी मालूम नहीं होगी और तुम्हारे सद्-गुणोंका सदा विकास ही होता रहेगा।

परमात्मा तुम्हें अपने प्रत्येक धर्म्य कार्यमें सहायता दे और अुसीकी कृपासे तुम दोनोंका जीवन तुम्हारे आपसके, तुम दोनोंके कुटुम्बके, समाजके, देशके और सारी मानव-जातिके अुत्कर्ष और अुन्नतिके लिअे पोषक बने, यही मेरी शुभेच्छा है और अिस मंगलमय प्रसंग पर यही मेरा तुम दोनोंको प्रेमपूर्वक आशीर्वाद है।

४

स्त्री-पुरुषके साधारण और विशेष गुण

[अेक दम्पतीके साथ — अधिकतर पत्नीके साथ — हुआ सम्भाषण।]

प्रश्न — आप हमेशा आग्रहपूर्वक कहते हैं कि मनुष्यकी अुन्नतिका आधार गुणोंके विकास पर ही है। यह बात मेरे गले अुतर गअी है। परन्तु गुणोंके विकासके लिअे किसी खास अनुकूल परिस्थितिकी जरूरत होती है। किसीकी अैसी परिस्थिति न हो तो वह अपनी अुन्नति कैसे करे?

अुत्तर — यह सही है कि कुछ गुणोंके विकासके लिअे अनुकूल परिस्थितिकी जरूरत होती है; परन्तु दूसरे कुछ गुणोंका विकास प्रतिकूल और विकट परिस्थितिके बिना नहीं हो सकता। मनुष्य यदि प्राप्त परिस्थितिका विचार करे और यह खोजकर कि अुस स्थितिमें किस तरहका बरताव विवेकयुक्त और सदाचारपूर्ण होगा, अुसी प्रकार बरताव करनेकी कोशिश करे, तो अिसमें शंका नहीं कि वह कैसी भी परिस्थितिमें अपनी अुन्नति कर सकता है। परिस्थितिकी अनुकूलता या प्रतिकूलता सद्गुण-वृद्धिके परिणामसे तय करनी हो, तो जिस परिस्थितिमें सद्गुणोंकी जरूरत महसूस हो, जिसमें वे जाग्रत और वृद्धिगत हों, अुसी स्थितिको दरअसल अनुकूल स्थिति कहना चाहिये; फिर वह परिस्थिति हमें प्रिय लगे या अप्रिय, वांछनीय हो या अवांछनीय। परन्तु अुसी परिस्थितिमें विवेक और सदाचारसे व्यवहार करनेका निश्चय करके अुसके अनुसार हम चलते रहें और यदि अुसमें सद्गुण-सम्बन्धी हमारी पात्रता बढ़े, तो अप्रिय परिस्थिति भी हमारी अुन्नतिकी दृष्टिसे हमारे लिअे अनुकूल और हितकारक ही साबित होगी। अिसलिअे अप्रिय लगनेवाली और अूपर-अूपरसे देखने पर दुःखद लगनेवाली परिस्थितिको अपनी अुन्नतिकी दृष्टिसे अनुकूल बना लेना हमारी विवेक-बुद्धि और सदाचार-सम्बन्धी निष्ठा पर निर्भर है। हमारे जीवनका हेतु पवित्र और शुभ हो, सद्गुण-सम्पन्न होकर मानव-जीवनको कृतार्थ करनेका ही अेकमात्र ध्येय हमने अपनाया हो, तो मेरे

खयालसे हम कैसी भी परिस्थितिका सदुपयोग कर सकेंगे। विचारपूर्वक आचरण करें तो बाहरसे खराब दीखनेवाली परिस्थितिमें भी कुछ न कुछ अच्छा सिद्ध हो सकता है। 'अीश्वर जो कुछ करता है, हमारे भलेके लिअे ही करता है' अैसा जो हम कभी-कभी श्रद्धावान मनुष्योंको अपने सिर दु:ख आ पड़ने पर कहते पाते हैं, अुसका यही अर्थ होगा।

मानव-जीवनमें अनेक प्रकारके सद्‌गुणोंकी आवश्यकता होती है। अुनमें से हरअेक सद्‌गुणकी आवश्यकता होनेके कारण अुसके जाग्रत होनेके लिअे अलग-अलग प्रिय-अप्रिय अन्तर्बाह्य प्रसंगों और परिस्थितियोंकी जरूरत होती है। क्योंकि किसी भी सद्‌गुणकी आवश्यकताका भान विचारशील मनुष्यको किसी खास अवसर पर ही होता है; यह भान होनेके बाद अुस गुणकी जागृति होती है, और जागृतिके बाद अवसरकी कम-ज्यादा तीव्रताके अनुरूप अुस गुणके अनुसार आचरण होता है, और बादमें अुसकी वृद्धि —— यह प्रत्येक गुणकी वृद्धिका क्रम है। अिसलिअे सभी गुणोंका अेक ही परिस्थितिमें जाग्रत होना और विकास पाना संभव नहीं। प्रेम, मैत्री, अुदारता, वात्सल्य, दया अित्यादि गुण जैसे अेक खास परिस्थिति और मन:स्थितिमें जाग्रत होते हैं, वैसे ही सत्यनिष्ठा, प्रामाणिकता और न्यायपरायणता आदि गुणोंके जाग्रत होने और अुनके विकासके लिअे भिन्न परिस्थितिकी जरूरत होती है। और शौर्य, धैर्य, निर्भयता, सहनशीलता आदि सद्‌गुण दूसरी ही परिस्थितिमें निर्माण होते हैं। कुछ गुण दूसरों पर आये हुअे कठिन प्रसंगको देखकर जाग्रत होते हैं; तो कुछ अन्य गुणोंकी अुत्पत्ति हम पर आये हुअे कठिन प्रसंगोंसे होती है। कोमल भावनायें दूसरों पर आअी हुअी मुसीबतें देखकर पैदा होती हैं, जब कि वे गुण, जिनके लिअे मनको दृढ़ और कठोर बनाना पड़ता है, अपने पर आ पड़नेवाले संकटके समय पैदा होते हैं। "मअू मेणाहूनि आम्ही विष्णुदास। कठिण वज्रास भेदूं अैसे ॥" (हम विष्णुके भक्त मोमसे भी नरम हैं और कठोर भी अितने हैं कि वज्रको भी छेद दें।) अैसा अेक संत-वचन है। "सज्जनोंके मन वज्रसे भी कठिन और फूलसे भी कोमल होते हैं," यह सुभाषित भी प्रचलित है। अिससे यही साबित होता है कि सज्जनोंके चित्तमें अवसरके अनुसार गुणोंका आविर्भाव होता है। कोअी परिस्थिति

मनकी कोमल भावनायें विकसित होनेके लिअे अनुकूल न हो, तो अुन गुणोंके पोषणके लिअे अुपयोगी हो सकती है, जिनके लिअे मनकी दृढ़ताकी जरूरत होती है। मनुष्य जब निर्धन हो जाता है, तब आम तौर पर अुसकी अुदारताका विकास नहीं होता; परन्तु अुसी अरसेमें वह अपनेमें सादगी, सहनशीलता, धीरज, निरालस्य, परिश्रमशीलता और किफायतशारी वगैरा गुण विवेकपूर्वक पैदा कर सकता है; निर्धनतामें मनुष्य कितना असहाय और लाचार बन जाता है, अिसका स्वानुभवपूर्वक बोध वह अिस परसे निकाल सकता है। अिससे मालूम होता है कि विचारवान मनुष्य किसी भी परिस्थितिमें सद्गुणोंकी और ज्ञानकी वृद्धि करके अपना हित साध लेता है। सद्गुणों और ज्ञानके विकासके लिअे कोअी भी समय प्रतिकूल नहीं होता। मुख्य बात अितनी ही है कि मनुष्यको अपनी अुन्नतिकी तीव्र अिच्छा होनी चाहिये और प्राप्त अवसर पर किस सद्गुणकी जरूरत है यह पहचाननेका विवेक होना चाहिये। अगर अुसमें यह तीव्र अिच्छा और विवेक न हो, तो सारा जीवन बीत जाने पर भी और अपने तथा दूसरों पर आनेवाले अच्छे-बुरे प्रसंगोंका प्रतिदिन अनुभव होने तथा अुन्हें देखते रहने पर भी वह अुन्नतिके लिअे योग्य और अनुकूल परिस्थितिको नहीं पहचान सकेगा और न वह अुसे कभी मिलेगी।

प्रश्न — अिन सब बातोंसे आपका कहना मैं अच्छी तरह समझ गया। विवेकशील मनुष्यको गुण-विकासके लिअे कोअी भी परिस्थिति अनुकूल प्रतीत होगी, अिसमें मुझे अब शंका नहीं रही। परन्तु मुझे यह समझाअिये कि स्त्रियों और पुरुषोंको अपनी-अपनी अुन्नतिके लिअे अेक ही तरहके गुणोंकी जरूरत है या भिन्न गुणोंकी?

अुत्तर — दोनोंको सभी मानव-सद्गुणोंकी जरूरत है। दोनों ही मनुष्य हैं। दोनोंका अपनी-अपनी दृष्टिसे पूरा विकास जरूरी है। फिर भी दोनोंके कार्यक्षेत्र अलग-अलग होनेसे अुनके कार्योंके अनुसार दोनोंके गुणोंमें थोड़ा-बहुत फर्क भी दिखाअी देगा। परन्तु यह कभी नहीं होता कि किसी गुणकी पुरुषको तो अपनी अुन्नतिके लिअे अत्यन्त जरूरत हो, लेकिन स्त्रीको अुसकी जरा भी जरूरत न हो; या अिससे अुलटा, किसी गुणकी स्त्रीको जरूरत हो, लेकिन पुरुषको बिलकुल न हो। मानव-जीवन

अनेक गुणोंके आधार पर चल रहा है। जिस समय जिस गुणकी जरूरत हो, वह स्त्री या पुरुष किसीमें भी प्रकट होना चाहिये। तभी जीवनके कठिन प्रसंगों और कठिनाअियोंका निवारण होगा और मनुष्यकी अुन्नति हो सकेगी। सत्य, प्रामाणिकता वगैरा नैतिक गुण और करुणा, अुदारता वगैरा भावपोषक गुण स्त्री-पुरुष दोनोंमें अेकसे ही होने चाहिये। अितना ही नहीं, शौर्य, धैर्य, साहस आदि आम तौर पर पुरुषोंमें पाये जानेवाले गुण भी स्त्रियोंमें होने चाहिये; और वात्सल्य, बाल-संगोपन, शुश्रूषा-वृत्ति आदि ज्यादातर स्त्रियोंमें दिखाअी देनेवाले गुण भी पुरुषोंमें होने चाहिये। स्त्रियों पर घरकी व्यवस्थाकी जिम्मेदारी होनेसे बाल-संगोपन और संवर्धन, गृह-व्यवस्था, खानपान और आरोग्य वगैराकी देखभाल अुन्हें ही करनी पड़ती है, अतः अिसके लिअे आवश्यक गुण अुनमें विशेष मात्रामें होने चाहिये। अर्थ-सम्पादन और सबकी रक्षाकी जिम्मेदारी पुरुषोंके सिर होनेसे अिन गुणोंकी वृद्धि पुरुषोंमें होनी चाहिये। किसी खास अव-सर पर अेकमें ही दोनोंके गुण जरूरी हो सकते हैं। बच्चोंकी छोटी आयुमें ही अुनकी माताकी मृत्यु हो जाय, तो पिताको बाहर कमाअी करके बच्चोंके पालन-पोषणका काम भी करना पड़ता है। अथवा पिताके मर जाने पर मांको ही कुछ न कुछ कमाअी करके बालकोंका भरण-पोषण और संगोपन करना पड़ता है। अैसे समय प्रत्येकमें दोनोंके विशेष गुण किसी हद तक प्रकट हुअे बिना बच्चोंका लालन-पालन, संगोपन और शिक्षण वगैरा संभव नहीं। यह तो किसी विशेष अवसरकी बात हुअी। परन्तु हमेशाके लिअे यह नियम ध्यानमें रखना चाहिये कि नैतिक और भाववर्धक गुणोंकी दोनोंको अेकसी जरूरत है। कार्य-विशेषके लिअे आव-श्यक गुणोंके बारेमें दोनोंमें थोड़ी-बहुत भिन्नता हो, तो भी अिससे अुनकी अुन्नतिमें बाधा नहीं आयेगी। अितना ही होगा कि अेकका क्षेत्र संकुचित होनेसे कुछ गुणोंसे अुसका सम्बन्ध अुतनी मात्रामें कम रहेगा और दूसरेका क्षेत्र व्यापक होनेसे अुन गुणोंसे अुसका अुतनी मात्रामें अधिक सम्बन्ध रहेगा। परन्तु अिससे दोनोंकी अुन्नतिमें फर्क पड़नेका कोअी कारण नहीं।

प्रश्न — अितना होने पर भी अिनमें से विशेषतया किन गुणों और भावनाओंका पोषण करनेसे स्त्रियोंकी और किन गुणों और

भावनाओंका पोषण करनेसे पुरुषोंकी अुन्नति हो सकेगी — अिसका कुछ स्पष्टीकरण किया जा सकता है? गुणोंमें भी स्त्री-सुलभ और पुरुष-सुलभ गुणोंका कोअी भेद तो होगा ही न?

अुत्तर — कुदरतने खुद ही दोनोंमें कुछ न कुछ भिन्नता रखी है, अिसलिअे अुनके कार्यों और तदनुसार गुणों और भावनाओंमें कुछ न कुछ भिन्नता और विशेषता होना स्वाभाविक है। माता बालकको जन्म देती है। गर्भसे लेकर जन्म तक अुसका पोषण वही करती है। जन्मके बाद भी बालक अुसी पर पूरा-पूरा अवलम्बित होता है। अुसका संगोपन, संवर्धन सब अुसीको करना पड़ता है। अुसकी शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक क्रियायें और व्यापार वह जानती है। बच्चा भी शरीर, बुद्धि, मन तीनोंके लिअे अुसीसे आवश्यक पोषण प्राप्त करता है। अिस प्रकार वे दोनों अेक-दूसरेके साथ सदा समरस रहते हैं। बालक यानी अेक ही चैतन्यमें से प्राण, मन और बुद्धिसे युक्त दूसरे आकारवाला चैतन्य। यह खोज करना कठिन है कि वे अेकमें से दो हुअे हैं या दोनों समरस होकर अेक बनते हैं। अेक ओर मातृप्रेमके और दूसरी ओर वात्सल्यके सम्बन्धसे वे अेक-दूसरेके साथ तादात्म्य प्राप्त किये होते हैं। स्त्रीके जीवनमें अुसके भाववर्धक गुणोंको अिस वात्सल्यसे ही विशेष गति मिलती है। वात्सल्यसे ही अुसकी प्रतिपालक-शक्ति विशेष जाग्रत और प्रकट होती है। दूसरे प्राणीके लिअे स्वयं कष्ट सहनेका गुण और शक्ति वात्सल्यसे ही पैदा होती है। स्त्री पतिके लिअे कष्ट सहती है और पुत्रके लिअे भी सहती है। परन्तु अिन दोनों सम्बन्धोंमें कष्ट सहनेकी भावनामें बहुत अन्तर है। मातृत्वमें जो कोमलता, जो माधुर्य, जो पवित्रता और जो सरलता है, अुसका केवल पत्नीत्वमें पाया जाना कभी संभव नहीं मालूम होता। पत्नीधर्म और मातृ-धर्ममें बड़ा फर्क है। अेकमें सती होने तकके विलक्षण त्यागमें भी भया-नकता, विवशता, असहायता और दासत्वकी भावना स्पष्ट दिखाअी देती है; जब कि दूसरेमें कोमलता, सरलता और स्वाभाविकता भरी हुअी दिखाअी देती है। वात्सल्यके द्वारा ही स्त्रियोंमें अपने आप गांभीर्य और स्थिरता आती है। वात्सल्यकी पूर्तिके लिअे अुन्हें अपनेमें दूसरे गुण लाने पड़ते हैं। अिस प्रकार अुनमें अिस अेक भावनाके कारण कअी अन्य गुणोंकी जागृति

और विकास हो सकता है। वात्सल्यके कारण वे खुद प्रेमसे कष्ट सहना सीखती हैं, संयम रख सकती हैं। स्वयं कष्ट अुठाकर दूसरोंको सुख पहुंचानेकी वृत्ति अुनमें अिसीसे पैदा होती है। खुद खराब अन्न खाकर, समय पर भूखी रहकर भी बच्चेका पोषण करनेका भाव और गुण स्त्री अिसी वात्सल्यसे सीखती है। और यह सब सहकर भी वह कभी अिसका गर्व नहीं करती। निरहंकारी सेवा माता ही करना जानती है और कर सकती है। जिसके हृदयमें जीवनभर अिस तरहका वात्सल्य रह सकता है, अुसीको माता कहना अुचित होगा। बाकी स्त्रियां जन्म देनेवाली अर्थात् जननी भले ही कहलायें। जो अपने ही बच्चोंमें या लड़के-लड़कियोंके बीच वात्सल्यके बारेमें भेद करती हैं या मानती हैं, कहना चाहिये कि अुनमें मातृत्वका विकास नहीं हुआ। अिसका अर्थ यही हो सकता है कि अिस प्रकार भेद करनेवाली स्त्रियोंने लड़के-लड़कियोंको जन्म देकर भी सेवा और निष्कामताका पाठ नहीं पढ़ा। जिनके प्रेममें आर्थिक या अन्य कोअी दृष्टि हो, अुनमें वात्सल्यका विकास संभव नहीं। जो अपने पेटसे जन्मी सन्तानोंमें भेद रखती हैं, अुनमें दूसरोंके बच्चोंके लिअे वात्सल्य कहांसे पैदा होगा? अपने पेटसे पैदा हुआ लड़का हो या लड़की, जिसे वात्सल्यकी अधिक आवश्यकता हो, असलमें माताका आकर्षण अुसीकी तरफ अधिक होना चाहिये। गड़रिया भी पंगु मेमनेकी ज्यादा संभाल रखता है। जिस किसानके घर गाय-भैंस होती है, वह भी कमजोर बछड़ेकी सबसे ज्यादा संभाल रखता है। अपने आश्रित पशुओंके लिअे भी अच्छे आदमीके दिलमें कोमल भावना होती है। तो फिर अपनेको श्रेष्ठ कहनेवाले मानवमें अितनी भी सद्भावना, अितना भी वात्सल्य अपने बालकोंके प्रति दिखाअी न दे, तो अुसे क्या कहा जाय? अपने बच्चोंके प्रति रहनेवाले वात्सल्यसे ही दूसरोंके बच्चोंके प्रति वात्सल्य पैदा होता है। अिस वात्सल्यके द्वारा और अुसके लिअे जिन अन्य गुणोंका अवलंबन और अनुशीलन करना पड़ता है अुनके द्वारा ही स्त्रियोंकी स्वाभाविक अुन्नति होती है।

पुरुषोंके बारेमें विचार करनेसे अैसा लगता है कि घर चलानेके लिअे आवश्यक कमाअी करनेकी और अुस कमाअीकी तथा अुस पर आधार

रखनेवालोंकी रक्षा करनेकी जिम्मेदारी अुन पर होती है। अतः अिसके लिअे जिन गुणोंकी जरूरत पड़ती है, अुन्हीं गुणोंके द्वारा अुनकी अुन्नति होती है। ये गुण अुनमें जिस मात्रामें विकसित हुअे होंगे, अुसी मात्रामें अुनकी कौटुम्बिक स्थिति अच्छी होगी। पुरुषोंमें भले सारे नैतिक गुण और भावनायें हों, लेकिन अगर अपना विशेष कर्तव्य पूरा करनेके लिअे आवश्यक गुण और शक्ति न हो तो काम न चलेगा। अिन गुणों और शक्तिमें ही अुनकी विशेषता है। प्रेम, वात्सल्य, सेवावृत्ति, निरालस्य, सादगी, संयम, किफ़ायतशारी, अुचित अवसर पर अुदारता, परिश्रमशीलता, योजकता, आतिथ्य, कर्तव्य-निष्ठा वगैरा अनेक गुण, भाव और वृत्तियां स्त्री-पुरुष दोनोंमें होनी चाहिये। लेकिन अगर अिसमें भी विशेषता ढूंढ़नी हो, तो स्त्रीमें वात्सल्य और पुरुषमें बाहरी कमाअीकी योग्यता और संरक्षक-शक्तिके गुण विशेष मात्रामें होने चाहिये।

प्रश्न — तात्पर्य यह कि आपके मतानुसार वात्सल्यके बिना स्त्रियोंका विकास संभव नहीं।

अुत्तर — स्त्रियोंके संबंधमें कुदरतकी ही अैसी योजना है। अिसलिअे अुस योजनाको मुख्य समझकर अुसीके द्वारा अुन्नतिका विचार और प्रयत्न करना श्रेयस्कर होगा।

प्रश्न — लेकिन जिन स्त्रियोंकी अपनी संतान नहीं है, वे भी अुन्नत नजर आती हैं और अुनमें भी अनेक सद्गुण विकसित हुअे पाये जाते हैं। अैसा क्यों?

अुत्तर — अपनी संतानके द्वारा ही स्त्रीमें वात्सल्यकी जागृति होती है अैसी बात नहीं। हां, यह सही है कि कुटुम्बमें रहनेके बावजूद जिनमें यह भाव जरा भी जाग्रत न हुआ हो, अुनमें अपनी सन्तानके बिना यह भाव पैदा नहीं होगा। अेक प्रकारसे अिसे अुनकी जड़ अवस्था ही समझना चाहिये। समाजमें अैसी स्त्रियां बहुत थोड़ी मिलेंगी। जिस स्त्रीमें वात्सल्यके साथ दूसरे सद्गुणोंका पहलेसे ही विकास हो गया है, अुसे वात्सल्यके लिअे अपनी ही संतानकी जरूरत नहीं होती। परन्तु अैसी स्त्रीमें भी वात्सल्य ही अधिक व्यापक रूपमें और अन्य सारे सद्गुणोंसे प्रमुख रूपमें दिखाअी देगा।

प्रश्न — यानी किसी भी तरह अुसमें वात्सल्य विशेष रूपसे होना चाहिये, यही आपका कहना है न?

अुत्तर — हां। यही बात अधिक स्पष्टतासे कहूं तो तुम्हारे ध्यानमें आ जायगी। अैसा नहीं है कि प्रत्येक स्त्रीको अपने बालक द्वारा ही वात्सल्यका पाठ मिलता है। परिवारमें लड़कीको बचपनसे ही प्रेम और वात्सल्यका पाठ मिलता है। लड़की अपने छोटे भाअी-बहनोंको संभालने लगती है, तभीसे अुसमें अिस भावनाकी जागृति होती है। बड़ी बहनका छोटे भाअी या बहन पर जो प्रेम होता है, अुसमें भी वात्सल्यका ही अंश होता है। जिसे बचपनसे अिस तरहका प्रेम-संस्कार नहीं मिला होता, अुसमें अपने बालकके सिवा वात्सल्य जाग्रत होना संभव नहीं। प्रेमका ही अेक खास स्वरूप वात्सल्य है। जो बाह्य निमित्त प्रेम जाग्रत होनेका कारण बनता है, अुस निमित्तसे ही हम अुसे अलग-अलग भावनाके रूपमें जानते हैं। मातृप्रेम, पितृप्रेम, बन्धु-भगिनी-प्रेम यद्यपि बाह्य निमित्त या सम्बन्धके कारण ही प्रेमके अलग-अलग प्रकार कहलाते हैं, तो भी अिन सबमें अेक ही प्रकारकी प्रेमवृत्ति है। मां, मौसी, फूफी, बड़ी बहन, चाची, मामी, दादी आदि सबका हम पर जो प्रेम होता है, अुसीका नाम वात्सल्य है। पिता, बड़े भाअी, काका, मामा, दादा आदिका भी हम पर वात्सल्य होता है। परन्तु वात्सल्य स्त्रियोंका विशेष गुण है। प्रेमके साथ जहां पूज्यताका भाव होता है, अुसे हम भक्ति कहते हैं। अीश्वर, माता-पिता, गुरु, सन्तजन अित्यादिके प्रति प्रेमको पूज्यता या भक्तिभाव कहते हैं। असलमें अिन सबमें प्रेम ही मुख्य चीज है। अिस प्रकारका प्रेम छोटी लड़कीमें भी होता है। यही प्रेम छोटे भाअी-बहनोंके निमित्तसे जाग्रत होकर बढ़ने लगता है। यही अुसके वात्सल्यका अुद्भव है और यहींसे अुसकी वृद्धि होती है। अपने बालकके निमित्तसे अिसी वात्सल्यका सम्पूर्ण विकास करनेका अुसे अवसर मिलता है। अपनी संतानके अभावमें किसी स्त्रीको अैसा अवसर न मिला हो, तो भी वह अपने वात्सल्यका विकास भाअी-बहन, देवरानी-जेठानी वगैराके बच्चोंके निमित्तसे अथवा सगे-सम्बन्धियों या अड़ोसी-पड़ोसीके बालकों पर रहे प्रेमके निमित्तसे कर सकती है। परन्तु अिसके लिअे अुस मार्गसे अपनी अुन्नति करनेकी अुसकी अुत्कट अिच्छा होनी चाहिये। यह अिच्छा

अुसमें न हो और अपनी संतान न होनेके कारण वह अपनेको अभागिन मानती हो, तो वात्सल्यकी दृष्टिसे अुसकी अुन्नतिकी कोअी गुंजाअिश और आशा नहीं।

प्रश्न — परन्तु कअी स्त्रियोंका अिस बारेमें यह अनुभव है कि दूसरेके बच्चों पर किये गये प्रेमसे अन्तमें खुद अुन्हें कोअी लाभ नहीं होता। बच्चे अन्तमें मां-बापकी तरफ ही खिचते हैं और अुन्हींके हो जाते हैं। अतः अुनके लिअे की गअी सारी मेहनत बेकार जाती है।

अुत्तर — जिन्होंने अपने स्वार्थके लिअे दूसरोंके बच्चोंका पालन-पोषण किया होगा, अुन्हें जरूर अैसा लगेगा। परन्तु जिन्होंने अपने वात्सल्यके लिअे और बच्चोंके कल्याणके लिअे परिश्रम किया होगा, अुन्हें यह देखकर आनन्द ही होगा कि ये बालक हमारी दी हुअी शिक्षा और संस्कारोंके कारण अपने मां-बापको सुखी कर रहे हैं। हमने कुछ समय बच्चोंका पालन-पोषण किया, अुन्हें शिक्षा दी, संस्कार दिये, अिसी-लिअे वे अपने मां-बापको सदाके लिअे छोड़कर अुनकी मरजीके खिलाफ सदा हमारे पास रहें, अैसी अिच्छा कोअी सुशील स्त्री कभी नहीं करेगी। क्योंकि यह अिच्छा न्यायसंगत नहीं है। हमारे पास रहकर हमसे मिले हुअे संस्कारों द्वारा बच्चे मातृ-पितृ-भक्त हों, स्वधर्म-निष्ठ हों, यही अिच्छा बच्चोंका कल्याण चाहनेवाली किसी भी स्त्रीको रखनी चाहिये। अिसी प्रकार बच्चोंके कल्याणकी दृष्टिसे देखें, तो जिन्होंने अुनका थोड़े समय भी ममता या वात्सल्यसे प्रतिपालन करके अुन्हें अच्छी शिक्षा दी, अुनके प्रति अुन्हें (बच्चोंको) जीवनभर मातृभाव और कृतज्ञताका भाव रखना चाहिये। मौका पड़ने पर अुनके लिअे जरूरी परिश्रम करके अपने पर बरसाये हुअे वात्सल्य और अपने लिअे अुठाये गये परिश्रमके ॠणसे मुक्त होनेका प्रयत्न करना अिन बच्चोंको अपने जीवनका अेक अत्यन्त आवश्यक और पवित्र कर्तव्य मानना चाहिये। अपना पालन-पोषण करने-वालोंके प्रति भी अुनके मनमें अपने मां-बापके जितना ही कर्तव्य-भाव जाग्रत रहना चाहिये। अेक ओर वात्सल्य और दूसरी ओर मातृभाव, अिस प्रकारके पवित्र भाव अेक-दूसरेमें हमेशा बने रहें, तो दोनोंकी सद्भावनाका अुत्कर्ष होगा और दोनोंकी अुन्नति होगी। अिसीलिअे दोनोंमें

सद्भाव, कर्तव्य-निष्ठा और अुन्नतिकी दृष्टि होनी चाहिये। तभी यह संभव हो सकता है और दोनों पक्ष जीवनभर सन्तुष्ट रह सकते हैं।

जीवनकी दृष्टिसे वात्सल्यका कितना महत्त्व है, यह ध्यानमें रखकर स्त्रियां हमेशा देखती रहें कि अुसके द्वारा अुनका जीवन अधिकाधिक अुन्नत हो रहा है या नहीं। परमात्माका यह हेतु हो कि मनुष्य-जाति दुनियामें सदा बनी रहे या हम सबकी यह अिच्छा हो कि कुदरतके किसी अज्ञात या अतर्क्य धर्मसे निर्माण हुअे मनुष्य-प्राणीकी परम्परा कायम रहे, तो परमात्माका वह हेतु या हम सबकी वह अिच्छा पूरी होनेके लिअे मानव-जातिमें जनन-धर्मकी अपेक्षा प्रतिपालन धर्मका होना ज्यादा जरूरी है। और अिस प्रतिपालन धर्मकी अुत्पत्ति और विकास वात्सल्यसे ही है, यह बात हम सबको, खास तौर पर स्त्रियोंको, ध्यानमें रखनी चाहिये। सिर्फ मानव-जातिका ही नहीं, परन्तु पशु-पक्षी वगैरा प्राणियोंका अस्तित्व भी मुख्यतः अिस वात्सल्यके कारण ही टिका हुआ है। अिन बातोंको देखते हुअे, मानव-जातिकी शाश्वतताके लिअे अत्यन्त आवश्यक अिस महान सद्भाव और गुणकी कीमत कभी कम न मानकर भरसक अुसका विकास करना चाहिये। केवल अपने पेटसे पैदा हुअे बालकका प्रतिपालन करनेसे अिस धर्मकी समाप्ति नहीं हो जाती। यह तो अुसका प्रारम्भ है। अितना-सा धर्म तो पशु-पक्षियोंमें भी अेक खास समय तक दिखाअी देता है। मनुष्य यदि अितनेसे ही अपनेको कृतकृत्य मान ले, तो अिसमें अुसकी क्या श्रेष्ठता है? अपने भाअी-बन्धुओं और बच्चोंके निमित्तसे पैदा हुअे अिस धर्मको जीवनभर अधिकाधिक व्यापक, अुदात्त और पवित्र बनाते रहनेमें ही मानव-जातिकी विशेषता है। स्त्रियों और पुरुषोंको अैसी हरअेक विशेषता सिद्ध करते-करते अपना जीवन सद्गुण-समृद्ध बनाना चाहिये। जिनके वात्सल्यकी मर्यादा अपने बच्चोंसे आगे नहीं जा सकती, अुनमें जीवन-विकासकी दृष्टिसे वात्सल्यकी अपेक्षा मोहका ही अंश अधिक होना चाहिये। परन्तु जो स्त्री दूसरेके पेटसे पैदा हुअी संतानोंका ममतासे पालन-पोषण करके, अुन्हें अच्छी शिक्षा और संस्कार देकर, किसी स्वार्थकी अभिलाषा रखे बिना अुनके माता-पिताको वापस सौंप देती हैं; अथवा जिनकी सम्हाल रखनेवाला कोअी

नहीं है या जिनके माता-पिताका पता नहीं है, अैसे निराश्रित बालकोंका पेटके बच्चेकी तरह निरपेक्ष भावसे पालन करके जो स्त्री अुन्हें बड़ा करती है, अुनके लिअे हर तरहका कष्ट और अवसर आने पर निन्दा और अपमान वगैरा भी सहन करती है, वह निःसन्देह केवल अपने बच्चोंके लिअे कष्ट सहनेवाली अन्य किसी भी स्त्रीसे अधिक अुदार और श्रेष्ठ है। जिसके वात्सल्यमें व्यापकता है परन्तु मोह नहीं, जिसमें कर्तृत्व है परन्तु लोभ नहीं, जिसमें सद्‌गुण होने पर भी अहंकार नहीं, वह स्त्री दूसरी साधारण स्त्रियोंसे जरूर अधिक सौभाग्यशाली है। अुसके अिस वात्सल्यका, कर्तृत्वका और सद्‌गुणोंका अुत्तरोत्तर विकास होता रहे, तो किसीको जन्म देकर किसीकी जननी न बनने पर भी वह जगन्माता बननेके लायक होगी — अितने बड़े सौभाग्य और योग्यताको वह पहुंचेगी। क्योंकि वह मानव-धर्मके अेक महान गुणकी अुपासक है।

अगर अिस महान सद्‌गुणका महत्त्व हम जानते होते और अिसकी अुपासना हमारे समाजमें प्रचलित होती, तो पुरुषोंके, खास तौर पर स्त्रियोंके जीवनमें अिससे कितनी शोभा आ गअी होती? कितने बड़े-बड़े कुटुम्ब आज आनन्द और सुखका जीवन बिताते? फिर क्या किसीने अपने या अपने भाअी-बहनों या देवरानी-जेठानीके बच्चोंमें भेद माना होता? वात्सल्य और प्रेमके बारेमें स्त्रियोंमें आज लगभग सर्वत्र दिखाअी देनेवाली दीनता, कृपणता और अनुदारता फिर कहां नजर आती? भाअी-भाअीमें कलह, कुटुम्बमें फूट और आपसमें अनबन कहांसे होती? और फिर हमारी मानवताको कलंक कहांसे लगता? हमारा कुटुम्ब हम तक और हमारी सन्तान तक ही सीमित है — अितनी संकुचित कल्पनासे हमने कैसे सन्तोष माना होता? हममें व्यापक रूपसे वात्सल्य निवास करता होता, तो जगह-जगह बिना मां-बापके अनाथ बच्चे हमें क्यों नजर आते? यह सारी दुरवस्था वात्सल्यके अभावके कारण है। पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंको अिस स्थितिके लिअे ज्यादा दुःख होना चाहिये, क्योंकि यह सद्‌गुण अुनकी अुन्नतिका मुख्य आधार है। स्त्रियोंमें से मातृत्व निकाल दें, तो बाकी क्या रह जाता है? और वात्सल्यके बिना मातृत्वका क्या कोअी अर्थ रह जाता है? यह वात्सल्य हममें है या नहीं, हमारे और

दूसरोंके बालकोंका प्रतिपालन करनेसे अुनका और हमारा विकास होता है या नहीं, अिस तरफ अुन्हें ध्यान देना चाहिये। अुन्हें देखना चाहिये कि अपने सहवाससे, अच्छे संस्कारोंसे बालक धर्मनिष्ठ बनते हैं या नहीं।

प्रश्न — अपने बालकोंके लिअे खूब कष्ट सहनेवाले माता-पिताकी भी बालक बड़े होने पर परवाह नहीं करते। अिसका क्या कारण होगा?

अुत्तर — लड़का हो या लड़की, अुसे सच्चे धर्मकी शिक्षा देकर हम धर्मनिष्ठ बनानेकी कोशिश नहीं करते, यही अिसका कारण होना चाहिये। मां-बाप बच्चों पर प्रेम करते हैं, वात्सल्यके कारण अुनके लिअे बहुत कष्ट सहते हैं और अुन्हें सुखी बनानेकी कोशिश करते हैं। सुख और सहवासके कारण जन्मसे ही बालकोंके मनमें माता-पिताके लिअे प्रेमभाव अुत्पन्न होता है। अुस समय कोअी किसीका वियोग सहन नहीं कर सकता। परन्तु बच्चे ज्यों-ज्यों स्वाधीन होते हैं, अुनके मनमें अलग-अलग सुखेच्छायें जाग्रत होती हैं। जब वे अिच्छायें मां-बाप पूरी नहीं कर पाते, तब अुनकी मनोवृत्ति अुस तरफ झुकती है, जहां अुनके खयालसे वे पूरी हो सकती हैं। अुसके परिणाम-स्वरूप मां-बापके प्रति अुनका पहला भाव कम होने लगता है। मां-बाप भी बच्चोंको केवल सुख पहुंचानेका प्रयत्न करते हैं, अिसलिअे वे केवल सुखभोगी बन जाते हैं। मां-बापके प्रति अुन्हें जो प्रेम होता है, वह भी केवल अपने सुखके लिअे ही। जहां सुख मिले वहां ममता पैदा होनेकी सहज प्रवृत्ति बच्चोंमें बढ़ी हुअी होती है। अुसमें कर्तव्य या धर्मका अंश अकसर नहीं होता। कर्तव्यके लिअे कष्ट भी सहने चाहिये, दुःख हो तो भी कर्तव्य न छोड़ना चाहिये, धर्मके सामने सुखकी परवाह न करनी चाहिये, अधर्म या अन्याय न सहकर अुसके प्रतिकारके लिअे सब कुछ सहनेको तैयार रहना चाहिये। गरज यह कि हमें धर्मके लिअे ही जीना चाहिये और मौका पड़ने पर धर्मके लिअे मृत्युको भी आनन्दसे स्वीकार करना चाहिये। अिस प्रकारकी शिक्षा माता-पिता बच्चोंको कभी नहीं देते। बराबर सुख देते रहनेके कारण वे बच्चोंको केवल सुखभोगी बना देते हैं। अिस प्रकार सुखभोगी बनी हुअी सन्तानको मां-बापकी तरफसे वांछित सुख मिलना बन्द हो जाने पर अगर वह अुस तरफ मुड़े, जहां अुसे सुख मिलनेकी

आशा हो और मां-बापको छोड़ दे, तो अिसमें आश्चर्य क्या? बचपनमें पूरी तरह मां-बापके अधीन रहे हुअे लड़के जवानीमें पत्नीके अधीन बनकर मां-बापका भाव तक नहीं पूछते, अिसका कारण अुनकी सुख-लोलुपता और धर्मशिक्षाका अभाव ही मालूम होता है। बच्चोंको सुखकी अपेक्षा धर्म पर, कर्तव्य पर प्रेम करना सिखाया जाय, तो मेरे खयालसे अैसे दुःखदायी परिणामोंकी सम्भावना न रहेगी। जिन्होंने अपने वात्सल्यके निमित्तसे अपने और बच्चोंके मोहकी वृद्धि न कर अुन्हें बचपनसे ही धर्मकी शिक्षा दी होगी, अुनके बच्चे बड़े होने पर भी मोहमें न पड़कर जीवनभर धर्ममार्ग पर ही चलेंगे। क्योंकि वे बचपनसे ही सीख लेते हैं कि जीवन धर्मके लिअे है; स्वयं दुःख, कष्ट और कठिनाअियां अुठाकर दूसरोंके दुःख, कष्ट और कठिनाअियां कम करनेके लिअे है; अिसीमें जीवनकी सार्थकता है। यदि माता-पिता वात्सल्य द्वारा बच्चोंको अिस तरहके संस्कार देते रहें, तो अुनके वात्सल्यका परिणाम बच्चोंमें धर्मके रूपमें प्रकट हुअे बिना नहीं रहेगा।

५

सन्तान-वृद्धिकी मर्यादा

संतानवृद्धि पर अंकुश

मानव-जातिके दुःखों और अवनतिको टालनेके लिअे अेक महत्त्वपूर्ण बातकी तरफ हम सबको ध्यान देना चाहिये। दुनियामें सुखके साधन बढ़ते दिखाअी देते हैं, तो अुनके साथ मानव-जातिमें दुःखकी वृद्धि भी होती दिखाअी देती है। अिसके अनेक कारण हो सकते हैं। विचारहीनतासे हो रही सन्तान-वृद्धि भी अुनमें से अेक महत्त्वपूर्ण कारण मालूम होता है। दिनोंदिन प्रजा बढ़ रही है। परन्तु अुसके साथ मनुष्यकी परिपालन-शक्ति बढ़ती हुअी दिखाअी नहीं देती। अिस कारण जीवनका संघर्ष कठोर होता जा रहा है और अुसके साथ अनेक दुर्गुणोंकी वृद्धि हो रही है। अिस अनर्थसे मानव-जाति बचना चाहती हो, तो अुसे सन्तान-वृद्धिको मर्यादित करके अपनी परिपालन-शक्ति बढ़ानी

चाहिये। सन्तान पैदा करनेके लिअे सद्‌गुणोंकी आवश्यकता नहीं होती। अुसके पालन-पोषण, शिक्षण और संवर्धनके लिअे तथा अुसे संस्कारी, कर्तव्य-निष्ठ और ज्ञानी बनानेके लिअे ही सद्‌गुणोंकी जरूरत होती है। प्रकृतिके नियमानुसार जैसे पशु-पक्षियोंके बच्चे होते हैं, वैसे ही मनुष्यके भी होते हैं। अिसमें अुसकी कोअी विशेषता नहीं है। मनुष्य सिर्फ कुदरत पर आधार रखकर रहनेवाला प्राणी नहीं है, और रहे तो अिससे अुसका काम नहीं चलेगा। आज जो थोड़ी-बहुत मानवता हममें दिखाअी देती है, वह मानव-पुरुषार्थ, परिश्रम, विवेक, संयम, त्याग, सहयोग-वृत्ति, ज्ञान, संगठन, प्रेम वगैरा अनेक सद्‌गुणोंके कारण है। मानवताकी वृद्धिका आधार अिन सद्‌गुणोंकी वृद्धि पर है। अिसलिअे मनुष्यको सन्तान-वृद्धिकी अपेक्षा सद्‌गुणों और मानवताको अधिक महत्त्व देना चाहिये।

पशु-पक्षियोंमें अुत्पत्ति, स्थिति और लय केवल निसर्गके अनुसार होता है। अुनकी सन्तान थोड़े समय अपने जन्मदाताओं पर अवलम्बित रहती है और फिर जल्दी ही स्वावलम्बी बनकर कुदरत पर जीने लगती है। गर्भ-पोषण, अपत्य-पोषण और अपत्य-संगोपनके अरसेमें अुनमें स्वाभाविक तौर पर संयम रहता है। बच्चोंका परावलम्बन, अुनके प्रति जन्मदाताओंका वात्सल्य और संयम — ये बातें अुनमें प्राकृतिक धर्मके अनुसार होती दीखती हैं। अैसा अन्योन्य सम्बन्ध अुनमें होता है। मनुष्यको अिससे जो बड़ा सबक लेना चाहिये था वह अुसने नहीं लिया। बच्चोंके परावलम्बन और जन्मदाताओंके वात्सल्य और संयममें से मानव-सन्तानमें अकेले परावलम्बनकी ही वृद्धि हुअी है। कुछ हद तक वात्सल्यका भी विकास पाया जाता है। परन्तु परावलम्बनके अनुपातमें अुसकी वृद्धि नहीं हुअी है। पशु-पक्षियोंमें बच्चोंके परावलम्बनका काल थोड़ा होता है, अिसलिअे अुसके प्रमाणमें अुनका वात्सल्य काफी है। मानव-शिशुके पोषण, संगोपन, संवर्धन और शिक्षण वगैराकी जिम्मेदारी मनुष्यको लम्बे समय तक अुठानी पड़ती है, अिसलिअे अुसमें अितना वात्सल्य और परिपालन-शक्ति होनी चाहिये, जो अिन सब बातोंके लिअे काफी हो। और अिसी प्रमाणमें अुसे संतान-वृद्धिको सीमित करनेकी भी जरूरत है। जैसे पशु-पक्षियोंमें कुदरती जिम्मेदारीके अनुपातमें संयम स्वाभाविक होता

है, वैसे मानव-प्राणीमें न होनेके कारण मानव-जातिकी अुन्नति अुस ओर नहीं होती और वह दिनोंदिन निकृष्ट स्थितिमें जा रही है। जिस हिसाबसे मानव-जातिमें सन्तान-वृद्धि हो रही है, अुस हिसाबसे जीवनके लिअे जरूरी खानपान वगैरा साधन पैदा नहीं होते। अुत्पादन नहीं बढ़ता। आजकल मनुष्य यंत्रोंकी सहायतासे अुस दिशामें प्रयत्न कर रहा है। परन्तु ज्यों-ज्यों वह अिस मार्गमें प्रयत्न करता जा रहा है, त्यों-त्यों बच्चोंके परावलम्बनका काल भी बढ़ता जा रहा है। शिक्षित वर्गमें जब तक लड़का पच्चीस वर्षका नहीं हो जाता, तब तक अुसके पोषण वगैराकी जिम्मेदारी अुसके मां-बाप पर ही होती है। कहीं-कहीं तो यह हद तीस वर्ष तक जा पहुंची है। जिस वर्गमें परावलम्बनका काल अिस ढंगसे बढ़ता जा रहा है, कमसे कम अुस वर्गको तो संयम रखकर अपनी संतान-वृद्धिको मर्यादित करना चाहिये।

आज असंख्य घरोंमें यह हालत दिखाअी देती है कि संतानका पालन, पोषण, संवर्धन या शिक्षण अुचित ढंगसे नहीं किया जा सकता। फिर भी संतानकी वृद्धि लगातार होती रहती है।

अमर्यादित संतान-वृद्धिके परिणाम

अेक बच्चा ठीकसे चलने-बोलने नहीं लगता कि दूसरे बच्चेका जन्म हो जाता है। अैसी हालतमें मां-बाप कितने बच्चोंका ठीक ढंगसे पालन-पोषण कर सकते हैं? वे हर बच्चेके लिअे काफी दूध और पोषक भोजन कहांसे लायें? सबका संगोपन और शिक्षण कैसे करें? सन्तान-वृद्धिके अनुपातमें मां-बापकी परिपालन-शक्ति, पुरुषार्थ और कमाअी बढ़ती नहीं, अिसलिअे वे सारे बच्चे जैसे तैसे पाले-पोसे जाते हैं। बालकसे ही संस्कारी मनुष्य बनता है, परन्तु वह केवल कुदरती तौर पर नहीं बन जाता। अुसे अुचित परिस्थिति, साधन और सुसंस्कारोंकी जरूरत होती है। बिलकुल कनिष्ठ स्थितिके ही नहीं, बल्कि मध्यम स्थितिवाले कुटुम्बमें भी अिन सबकी कमी है। वहां मां-बापमें अपनी संतानके लिअे ममत्व या वात्सल्य नहीं होता सो बात नहीं है। यह बात भी नहीं कि वे बच्चोंके लिअे मेहनत नहीं करते या अुनके सुखकी अुपेक्षा करके केवल अपना ही सुख देखते हैं। परन्तु अुनमें बच्चोंके ठीक पालन-पोषण और शिक्षणके

लिअे आवश्यक कर्तृत्व-शक्ति नहीं होती। अिस अनुपातमें अुनका वात्सल्य कम पड़ता है। पोषक खान-पान, संभाल, सफाअी, अुचित संस्कार, बच्चोंके रोजके काम-काज और खेल-कूदके लिअे काफी जगह और अुचित साधन, व्यवस्थितता और अनुशासन पैदा करनेवाली शिक्षा, सद्गुणोंकी जागृति, मातृपितृ-भाव और बंधुभगिनी-भावकी वृद्धि होती रहे अैसा प्रेममय वातावरण, आदि बचपनके लिअे जरूरी सुविधायें आजकल ज्यादातर कहीं भी दिखाअी नहीं देतीं। जहां दौलत है वहां बच्चे लाड़-प्यार और स्वच्छन्दताके कारण बिगड़ते हैं। बाकी असंख्य घरोंमें तो बच्चोंके मामलेमें सब तरहसे अुपेक्षा ही हो रही है। सब जगह मां-बाप चाहे जैसे भोजनसे अुनका पेट भरने और किसी भी तरहके कपड़ोंसे अुनके शरीर ढंकनेकी चिन्तासे परेशान दीखते हैं। अैसी हालतमें बच्चोंकी सफाअी, तंदुरुस्ती और शिक्षाकी तरफ कौन ध्यान दे? अुनका शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक विकास किस तरह हो? बालकोंका प्रश्न सभी मां-बापोंको चिन्तामें डाल देता है। अिस पर यदि बीमारी आ जाय, तो मुश्किलों और संकटोंका पार नहीं रहता। यह हालत सौमें से निन्यानवे घरोंमें है और अिसी स्थितिमें संतान-वृद्धि होती है। अिससे भी बुरी हालत — जिसे देखते ही मनुष्यका मन दुःख और करुणासे भर जाता है — यह है कि गरीबी, रोग और पंगुतासे पीड़ित लोगोंमें भी संतानकी बेहद वृद्धि हो रही है और अिसके कारण अुनकी मूल विपत्तिमें वृद्धि हो रही है। अिस प्रकार देश और समाजकी दुःखी अवस्था दिनोंदिन बढ़ती जा रही है।

वर्तमान स्थितिमें हमारा कर्तव्य

अिस सारी स्थिति पर ध्यान देनेसे अैसा लगता है कि अिस विषयमें अुपेक्षा करनेसे काम नहीं चलेगा। संयम-शक्ति और पुरुषार्थकी वृद्धिके बिना हमारी भावी पीढ़ीके कल्याणकी आशा नहीं की जा सकती। सन्तान-वृद्धिके वर्तमान क्रमसे हमारा या सन्तानका, किसीका भी कल्याण नहीं होगा। हममें अपनी सन्तानों और देशकी बेशुमार निराधार और दुःख भोगनेवाली सन्तानोंका परिपालन कर सकने लायक विशाल वत्सलता और शक्ति हो, तो ही आजकी स्थितिसे हमारा अुद्धार हो

सकता है। बच्चोंके परावलम्बनके हिसाबसे हमारी संयम-शक्ति और वात्सल्यका विकास नहीं होगा, तो मानव-जाति पर आनेवाली आफ़तें दूर न होंगी।

ब्रह्मचर्य-सिद्धि और अुसके लिअे अुपाय ढूंढ़नेकी जरूरत

जिन गाय, बैल, घोड़े आदि प्राणियोंका हम अच्छी तरह पोषण नहीं कर सकते या जिन्हें रखनेको हमारे घरमें जगह नहीं होती अुन्हें हम खरीदते नहीं। परन्तु जिन सन्तानोंका हम भली-भांति पालन नहीं कर सकते, जिन्हें घरमें रखनेके लिअे हमारे पास काफी जगह नहीं होती, अुन्हें अेकके बाद अेक जन्म देते चले जाते हैं! जिन पर हमारा विशेष प्रेम नहीं होता, अैसे प्राणियोंके बारेमें हम जितना विचार करते हैं, अुतना भी अपने पेटसे पैदा होनेवाले बालकोंके लिअे कभी नहीं करते। यह स्थिति आज लग-भग सर्वत्र विद्यमान है। अितने पर भी यह कहना अन्याय होगा कि लोग अपनी संन्तानके प्रति निष्ठुर हैं। हममें प्रेम है, वात्सल्य है, स्वार्थ-त्याग भी है; परन्तु हम मानव-जातिके विकास और कल्याणकी दृष्टिसे अब तक अिस बातका विचार नहीं करते। मानवताके खयालसे सिर्फ सन्तान-वृद्धिका महत्त्व नहीं है। सन्तान-वृद्धिकी वृत्तिका वात्सल्यमें रूपान्तर करनेमें और अुस वात्सल्यमें विशालता और शुद्धता लानेमें हमारा सच्चा विकास है। असंयमसे संयम श्रेष्ठ है। संयमसे वात्सल्य श्रेष्ठ है। वात्सल्यमें भी परिपालन-शक्तिका महत्त्व है। अिस शक्तिकी विशालतामें ही अुसकी शुद्धि है। अिस शुद्धिमें ब्रह्मचर्यकी सिद्धि है और ब्रह्मचर्य पर मानवताकी सम्पूर्ण सिद्धिका आधार है। अैसा नहीं दीखता कि मानव-जातिने अिस विषय पर अिस ढंगसे विचार किया हो। विचार, आचार, खानपान, योग, चिंतन, संगति, संकल्प-बल, और औषधि वगैराकी मददसे मनुष्यको अिस बारेमें प्रयत्न करना चाहिये। अैसा प्रयत्न होता रहे तो अिसमें शक नहीं कि मनुष्य अपने हेतुके अनुकूल ज्ञान प्राप्त कर सकेगा। अपनी जिन क्षुद्र वृत्तियोंको क्षीण करते-करते अन्तमें अुन पर विजय प्राप्त करना मनुष्यका कर्तव्य है, अुन वृत्तियोंको अुत्तेजित करनेके लिअे भिन्न-भिन्न औषधि-प्रयोग सिद्ध करनेकी कोशिशमें बड़े-बड़े रसायनशास्त्री

और वैद्य आज तक अपनी बुद्धि लगाते रहे हैं, क्योंकि विलासी राजा-महाराजा और धनिक लोग अुनकी कोशिशोंमें कअी तरहसे मदद देते रहे हैं। परन्तु ब्रह्मचर्य, संयम वगैराकी अुपासना करनेवाले वैराग्यशील और गरीब लोगोंसे अुन लोगोंको किसी आमदनीकी आशा न होनेसे अुन्होंने कभी अिसकी खोज नहीं की कि मनुष्यकी अिन वृत्तियोंको सौम्य और मन्द करके अुन्हें वशमें रखनेके लिअे किस औषधिका किस तरह अुपयोग किया जाय। सृष्टिमें बहुतसे परस्पर-विरोधी गुण हैं। सृष्टिमें आग भी है और पानी भी। अत्यन्त मृदु पदार्थ भी हैं और अत्यन्त कठोर भी। अिसी तरह अुत्तेजक और शामक गुणधर्मोंवाली वनस्पतियां और पदार्थ भी हैं। जिन शोधकोंने वनस्पतियों या दूसरे कुदरती पदार्थोंसे अुत्तेजक गुणधर्म प्राप्त कर लिये, वे चाहते तो शामक गुणधर्मवाली वनस्पतियों या अन्य पदार्थोंकी खोज भी कर सकते थे। परन्तु अैसी सिद्धि शोधकोंको मानव-जीवनके खयालसे महत्त्वकी नहीं लगी और अब भी नहीं लगती।

सार यह है कि अिस विषयमें सहायक होनेवाले साधन हमारे पास न हों या मानव-जीवनकी सिद्धिके लायक महत्त्वाकांक्षा हरअेकमें न हो, तो भी अिस समय विचारहीन ढंगसे हो रही सन्तान-वृद्धि और अुसके कारण होनेवाला हमारा और हमारी भावी पीढ़ीका अकल्याण रोकनेके लिअे प्रत्येकको अपनी शक्तिके अनुसार प्रयत्न करना चाहिये। यह प्रयत्न मानसिक अुन्नतिके लिअे सहायक हो, अिसीमें मानवताका अुचित विकास है। जहां तक हो सके मनुष्यको अिसी दिशामें प्रयत्न करना चाहिये। कमसे कम अितनी सावधानी तो मनुष्यको रखनी ही चाहिये कि मानसिक अवनति न हो। किसीको यह डर रखनेका कोअी कारण नहीं कि अिस प्रकारके प्रयत्नसे मानव-जाति दुनियासे मिट जायगी। अितने पर भी जिन्हें अैसा भय लगता हो, अुन्हें और नहीं तो अितनी सावधानी जरूर रखनी चाहिये कि दोसे ज्यादा बच्चोंको जन्म न दें। अिससे अमर्यादित संख्याके कारण हमारी और हमारी सन्तानोंकी हो रही अधोगति किसी हद तक तो टल ही जायगी; और मानव-जातिके दुनियासे मिट जानेके डरका भी कोअी कारण नहीं रहेगा।

६

प्राकृतिक प्रेरणा और संयम

जिस जातिका बीज होता है, अुसी जातिका पेड़ भी होता है। अुद्भिज्जोंसे अुन्हींकी जातिकी सृष्टि पैदा होती है। जीवसृष्टिमें भी कुदरती धर्मके अनुसार अैसा ही होता है। जैसे जीवमें जीते रहनेकी स्वाभाविक प्रबल अिच्छा रहती है, वैसे ही अुसमें अपने जैसी सृष्टि निर्माण करनेका धर्म भी होता है। यह धर्म मनुष्यमें भी है और अिस धर्मके अनुसार ही मनुष्यसे मनुष्य-सृष्टि बढ़ती रही है। अुसमें यह धर्म निसर्गने ही रख दिया है। जीव और मनुष्यमें यह धर्म बचपनमें सुप्त दशामें होता है। किसी अेक खास अवस्था तक शरीरका विकास हो जानेके बाद शरीरके रसमें अपने जैसे दूसरे प्राणी निर्माण करनेकी शक्ति पूर्णताको प्राप्त होती है और अुसके बाद वैसी सृष्टि निर्माण करनेकी वृत्ति जीवों और मनुष्योंमें स्वाभाविक तौर पर पाअी जाती है। शरीरके रसका ही बीज बनकर अुसके द्वारा जीवकी वृद्धि होती रहती है। यह धर्म हरअेकको प्राप्त है, अतः अुस प्रकारका ज्ञान हर आदमीमें अपने आप पैदा होता है। मनुष्यके बौद्धिक विकासके साथ ही अिस प्रकारकी अुसकी स्वयंभू प्रेरणाओंकी वृद्धि हुअी है और अुन्हें अलग-अलग वासनाओंका रूप प्राप्त हुआ है। बौद्धिक विकासके कारण मनुष्यने सिर्फ कुदरती प्रेरणा पर आधार नहीं रखा। दूसरे प्राणियोंमें जो चीजें कुदरती और मर्यादित हैं, वे चीजें मनुष्यमें सिर्फ कुदरती न रहीं; वह अपने विकसित बुद्धि-सामर्थ्यसे अिनमें से भिन्न-भिन्न रसानुभव लेने लगा है। अिससे रसके अनेक विषय पैदा हो गये हैं। खान-पान, आश्रय-स्थान आदि बातें पहले सिर्फ कुदरती थीं। अुनमें से जिस तरह भिन्न-भिन्न रस-विषय मानव-बुद्धिके कारण निर्माण हुअे, अुसी तरह अपने ही जैसी सन्तान पैदा करनेकी कुदरती प्रेरणासे भी अनेक वासनायें और रसके विषय निर्माण हुअे। संभवतः अिन सबका कारण मनुष्यकी सतत बढ़ती हुअी बुद्धिमत्ता होगी। अिस बुद्धिमत्ता और बढ़ते जानेवाले मनोभावोंके कारण मनुष्यमें आत्मीय भाव और ममताकी भी वृद्धि होने लगी और समुदाय बढ़ने लगा। अिसीके साथ अपनी और

समुदायकी रक्षाकी जिम्मेदारी और चिन्ता भी बढ़ने लगी। ज्यों-ज्यों मनुष्य समूहमें रहनेको मजबूर होने लगा, त्यों-त्यों अुससे समाज पैदा होने लगा। ज्यों-ज्यों अेकता बढ़ने लगी, त्यों-त्यों वृद्धि पाये हुअे हरअेक विषयमें अुसे नियम बनाने पड़े। अिसके लिअे अुसे नियमन और संयमका आसरा लेना पड़ा। क्योंकि संयमके बिना नियमन नहीं आता और नियमनके बिना समाज नहीं बनता तथा समाजके बिना व्यक्तिका अस्तित्व टिकना संभव नहीं है। अिन सब कारणोंसे मनुष्यको संयम सीखना पड़ा। अिस प्रकार मानव-जीवनमें रसवृत्ति और संयम दोनोंकी वृद्धि अेक ही साथ होती रही। मूलभूत और नैसर्गिक प्रेरणाको बढ़ाकर अुसमें से अनेक वासनायें और अिच्छायें निर्माण करके जो आनन्दके पीछे पड़ गये, वे विलासी और भोगी कहलाये; और अुसी मूलभूत प्रेरणाको क्षीण करके अुसे नष्ट करनेका प्रयत्न करनेवाले संयमी और विरक्त कहलाये। असलमें अेक ही प्रेरणासे पैदा हुअे ये परस्पर-विरोधी दो परिणाम हैं। अिसमें शक नहीं कि भोगकी अपेक्षा संयमकी स्थिति किसी भी हालतमें ज्यादा अुन्नत है। मनुष्यको यदि दुःखसे छूटकर स्वाधीनता और प्रसन्नता प्राप्त करनी हो, तो अुसके लिअे संयमके सिवा और कोअी अुपाय नहीं है। यह बात मानव-जातिके आज तकके अनुभवसे स्पष्ट मालूम हुअी है।

अूपर कही गयी मूलभूत वृत्ति पर काबू पाना या अुसका नाश करना संयमी मनुष्यका हेतु होता है। अिस बारेमें मुझे शंका है कि मनुष्य अिस वृत्तिको सर्वथा मिटा सकेगा या नहीं। हां, अिस वृत्ति पर काबू पाना संभव मालूम होता है। परन्तु काबू पाना और नाश करना, अिन दोनोंमें बड़ा अन्तर है। मानव-रक्तके प्राकृतिक धर्मको वह किस अुपायसे मिटा सकेगा? अुस धर्मका नाश करनेका प्रयत्न करते हुअे शायद मनुष्यको अुस पर काबू रखनेकी शक्ति प्राप्त हो सकेगी। अिससे हमें अपनी मानी हुअी सिद्धिकी दृष्टिसे निराश होनेका कारण नहीं है। हमें अपने मार्गमें अब तक प्राप्त की हुअी सिद्धिकी ओर ध्यान देकर धैर्य, अुत्साह और सावधानीके साथ आगेके लिअे अपनी कोशिश जारी रखनी चाहिये।

जागृतिमें हमारे संकल्प, हमारी अिच्छाशक्ति, बुद्धि, विवेक आदि सब शक्तियां जाग्रत रहती हैं। स्वप्नावस्थामें सब शक्तियां सुप्त होती हैं। अिसलिअे चित्त पर अुनका दबाव कुदरती तौर पर कम हो जाता है। हमारा शुद्ध संकल्प जिस हद तक हमारे खूनमें पैठकर हमारा स्वभाव बन जाता है, अुसी हद तक स्वप्नदशामें हमारी मूल प्राकृतिक प्रेरणा पर दबाव रहता है। बाकीके व्यापार अुस मूल प्राकृतिक नियमके अनुसार होते रहते हैं। जागृतिमें हम अपने चित्त पर जो पवित्र संस्कार डालना चाहते हैं, जो संयम सिद्ध करना चाहते हैं, अुसमें जितनी मात्रामें स्वाभाविकता आ गअी होती है, अुतनी मात्रामें हमारी स्वप्नावस्था पवित्र होती है। अिस प्रयत्नकी सिद्धिका आधार हमारे खान-पान, व्यवहार, स्वास्थ्य, चित्तशुद्धिके अभ्यासकी हमारी तत्परता और लगन वगैरा कअी बातों पर होता है। हमें हतोत्साह और निराश न होकर हमेशा सावधान, शोधक, अुत्साही, प्रयत्नशील और आशावान रहना चाहिये। मनुष्य अनादि कालसे अिस प्राकृतिक और अति बलवान प्रेरणाके अनुसार चलता आया है। अितना ही नहीं, अिस प्रेरणामें से अुसने अनेक विषय, रस और आनन्द निर्माण किये हैं। सदियोंसे परम्परागत और स्वभावगत बने हुअे कमसे कम अिस अेक विषयमें तो हम संपूर्ण संयमका प्रयत्न जरूर करते हैं। यह प्राकृतिक प्रेरणा परम्परासे हमें भी विरासतमें मिली है। अेक तरफ यह मूल प्राकृतिक प्रेरणा है और दूसरी तरफ हमारा संकल्प-बल, हमारी संयम-शक्ति, पवित्रताके लिअे हमारी आतुरता, सिद्धिके लिअे हमारी अुत्कंठा, हमारे योजनापूर्वक प्रयत्न और हमारी सावधानी है। अिसीमें से सिद्धिके लिअे विश्वास रखना है। यह विश्वास हममें बढ़ता रहना चाहिये। हमें यह दृढ़ श्रद्धा रखनी चाहिये कि परमेश्वर हमें अिस प्रयत्नमें सफलता देगा।

अिस विषय पर विचार करना सुगम हो, अिसलिअे मैंने यह लिखा है।

(पत्र, ३१–३–'४२)

७

ब्रह्मचर्य-विचार

आपने ब्रह्मचर्यके सम्बन्धमें लिखा है। पिछली मुलाकातके समय भी आपने अिस बारेमें बात की थी। आप अिस विषयमें बहुत प्रयत्नशील हैं। मुझे विश्वास है कि ध्यानके अभ्याससे मनुष्य अिस चीजको काबूमें ला सकता है। ध्यानके लिअे चित्तकी सारी शक्ति अेक जगह अिकट्ठी करके अुसे वहीं स्थिर करनेके लिअे दृढ़ताकी जरूरत है। चित्तकी सारी तरंगोंको शान्त करके वृत्तिको अेक ही पवित्र संकल्प पर स्थिर रखना आ जाय, तो हमारे संकल्पमें बल आता है। अुस बलके कारण दूसरी अशुद्ध वृत्तियां क्षीण हो जाती हैं। सृजन-सम्बन्धी प्ररणा और अुस प्रकारका रज हरअेक जीवकी तरह मनुष्यमें भी है। विवेकी मनुष्य अुस रजको काबूमें रखनेका प्रयत्न करता है। अिस बारेमें मुझे शंका है कि जन्मसे मिली हुआी रजकी विरासतको मनुष्य समूल नष्ट कर सकेगा या नहीं। परन्तु मुझे विश्वास है कि अुसे वह प्रयत्नपूर्वक काबूमें रख सकता है। व्रती, विवेकी और प्रयत्नशील मनुष्यकी सृजन-विषयक वृत्ति मन्द और क्षीण हो जाती है। अुदात्त ध्येयको धारण करके चित्तमें हमेशा पवित्र भावना रखनेसे तथा आदर्श जीवन व्यतीत करनेकी तीव्र अिच्छा, पारमार्थिक महत्त्वाकांक्षा, सतत विवेकयुक्त संयमशील रहन-सहन, कर्मपरायणता आदि साधनों या अुपायोंसे मनुष्यकी अुस वृत्तिका समूल नाश न हो, तो भी वह काबूमें रह सके अितनी क्षीण अवश्य हो जाती है। जवानीमें कुदरती अवस्थाके अनुसार वह वृत्ति अधिक मात्रामें दिखाअी दे, तो भी अुच्च आदर्शके पीछे पड़े हुअे जवान आदमीमें वैराग्य और संयम-शक्ति भी भरपूर होती है, और अुसीके बल पर वह विकारोंका सामना कर सकता है और अुस पर विजय पानेका विश्वास भी अुसे रहता है। परन्तु वह अवस्था बीत जानेके बाद पिछली अुम्रमें यानी अधेड़पनमें किसी किसीकी दृढ़ता कम हो जाती है। व्रत या आदर्शके बारेमें चित्तमें थोड़ीसी शिथिलता आने लगती है। वैराग्य और संयम-शक्ति कम हो जाती है। अैसे समय चित्तमें चंचलता दिखाअी

देने लगती है और मनको जीतना, अुसे काबूमें रखना कठिन प्रतीत होता है। परन्तु विवेकी और निश्चयी मनुष्य अिन सब चीजोंको पहचानकर सावधानीसे अुन्हें पार करनेकी कोशिश करता है और अुचित अुपायों द्वारा अुसमें सफल होता है।

मनुष्यके चित्तमें अच्छे-बुरे सब संस्कार प्रकट या सुप्त रूपमें होते ही हैं। अुनमें से जो संस्कार, जो वृत्तियां अुसे नहीं चाहिये अुन्हें क्षीण करनेका अुसे सतत प्रयत्न करना चाहिये। सत्संग, भजन, मनन, चिंतन, ध्यान अिसके अुपाय हैं। अिसमें शक नहीं कि अगर कुछ सफलता मिल सकती है, तो अिसीसे मिल सकती है। शुभकी ओर आपका स्वाभाविक झुकाव है। जीवनकी दृष्टिसे व्रतका महत्त्व आप जानते हैं। लेकिन वह दृढ़ता और निष्ठाके बिना पूरा नहीं हो सकता।

व्रतका विचार छोड़ दें, तो भी दूसरी अेक महत्त्वपूर्ण दृष्टिसे मेरे मनमें अिस विषयका विचार आया करता है। मानव-जातिके सुधारका कोअी विचार नहीं किया जाता और अुसकी पीढ़ियों पर पीढ़ियां जगतमें निर्माण होती रहती हैं। प्रत्येक पीढ़ी अपने दोष, दुर्गुण और रोग अगली पीढ़ीके लिअे विरासतमें छोड़कर विलीन हो जाती है। अैसे क्रमसे, अैसी परम्परासे मनुष्य अपना या अपनी भावी सन्तानका क्या कल्याण कर सकता है? मनुष्य किस अुद्देश्यसे अेकके बाद अेक सन्तान दुनियामें लाता है? मानव-जातिकी विकृतिसे ही बहुतसे रोग पैदा होते हैं और हो रहे हैं। हमारे रोगोंकी, विकृतियोंकी और दुर्बलताकी विरासत हमारे बादकी पीढ़ीको मिलेगी और वह जिन्दगीभर दुःख, यातना और क्लेशसे पीड़ित होकर अपना जीवन जैसे-तैसे बितायेगी, यह जानते हुअे, अिसका विश्वास रखते हुअे भी मानव-प्रकृतिसे अेक पिंडके बाद दूसरा पिंड निर्माण होता है और दुःख-आपत्ति भोगता है। किसकी अिच्छा, किसकी असावधानी, या किसका अविवेक, असंयम और जड़ता अिन सब दुःखोंका, यातनाओंका कारण है? मनुष्यके दुःखोंको देखते देखते मैं अूब गया हूं। दुःखी और यातनाग्रस्त मनुष्योंकी शुश्रूषामें रहता हूं, तब अिसी प्रकारके विचार मेरे मनमें चलते रहते हैं, मनको पीड़ित करते रहते हैं। अिच्छा तो यह है कि जगत सुखी रहे, कोअी दुःखी न रहे। परन्तु सवाल यह अुठता है कि क्या अिस मार्गसे, अिस प्रकारकी जीवन-परम्परासे

कोअी मनुष्य कभी सुखी होगा? हो सकेगा? असंख्य लोग अिसी रास्ते जा रहे हैं। वे सचमुच जा रहे हैं या विश्व-प्रकृतिके महान प्रवाहमें बहे जा रहे हैं और हमें केवल आभास होता है कि वे जा रहे हैं? दुःख, पीड़ा और रोगकी विरासत वे अपनी अगली पीढ़ीको देते हैं या अुसे पहुंचानेमें केवल बीचके निमित्त बनते हैं? वे जो कुछ कर रहे हैं, शायद अुसके परिणामका अुन्हें भान भी नहीं होगा, कल्पना तक नहीं होगी। परन्तु भान या कल्पना न हो तो भी अुनके कर्मोंके अनिष्ट परिणाम जिन्हें भोगने पड़ते हैं, अुनकी यातनाओंमें अिससे कोअी कमी थोड़े ही आ जायगी? हम सब अिस प्रवाहमें फंसे हुअे हैं, अिसलिअे अपनी अिच्छाओं और वासनाओं द्वारा अिस प्रवाहको गति भी देते हैं।

आपके निमित्तसे मनमें चलनेवाले विचार यहां लिख रहा हूं। मानव-जीवनकी दृष्टिसे शायद अुनमें आपको अेकांगीपन और रूखापन भी लगे। परन्तु यह रूखापन नहीं है। मानव-जातिके प्रति मुझमें प्रेम, चिन्ता और करुणा न होती, तो ये विचार मेरे मनमें भी न आये होते। यह लिखते समय मन करुणासे विह्वल हो गया है। विचारोंके अेकांगीपन और अतिरेकका भी मुझे अिस समय भान है। अिन सबके पीछे विवेक भी जाग्रत है।

व्रतके विचार पर मैं फिर आता हूं। समस्त जीवनको विवेकयुक्त बनानेका आपका दृढ़ प्रयत्न है। मनमें अुठनेवाली अनिष्ट तरंगोंसे घबरा न जाअिये, निराश न होअिये। मनुष्यके मनमें अिस प्रकारकी तरंगें किसी न किसी नियमके अनुसार अुठती हैं। निसर्ग, अपने संस्कार, आदतें, संकल्प और सत्त्व-रज-तमात्मक अवस्था — अिन सब परसे अकसर अिस बारेमें हरअेक मनुष्यका नियम निश्चित होता है। अिस प्रकार नियमसे अुठनेवाली तरंगों या वेगोंको मैं आवर्त समझता हूं। प्यास, भूख, नींद भी अेक प्रकारसे देखें तो आवर्त ही हैं। सृजनेच्छा भी मानव-प्रकृतिका आवर्त ही होगी। कुछ आवर्त अैसे होते हैं कि जब वे अुठते हैं तब अुनकी जरूरतकी चीज देकर अुन्हें शान्त करना पड़ता है। और कअी अैसे होते हैं जिन्हें अुठने पर सावधानी, दीर्घ विचार और संयमसे शान्त करना पड़ता है। अिस प्रकारके आवेगोंको शान्त करनेमें ध्यानका अभ्यास बड़ा अुपयोगी हो सकता है। अुसके कारण ये वेग सौम्य और मन्द

हो जाते हैं, विवेक और संयमके काबूमें आ जाते हैं। अभ्यास और अिसी प्रकारके रोजके प्रयत्न द्वारा मूल प्राकृतिक प्रेरणामें ही क्षीणता आने लगती है। मानो वह सुप्त दशामें जा पहुंचती है। अुस समय व्रतका व्रतपन मिटकर प्राकृतिक प्रेरणाकी वह क्षीणता श्रेयार्थीकी सहज और सावध अवस्था बन जाती है।

(पत्र, १९४०)

८

परिश्रम और धर्म्य वेतन

कर्तव्यके रूपमें परिश्रममें हिस्सा

मनुष्य समूहमें रहनेवाला प्राणी है। अिसलिअे अुसे केवल व्यक्तिगत सुख-सुविधाकी अभिलाषा न रखकर सुख-दुःख, लाभ-हानि, अुन्नति-अवनति, आदि हर बातका सामूहिक दृष्टिसे विचार करना सीखना चाहिये। जिन सुख-सुविधाओंका हम आज अुपभोग करते हैं, वे हमारे या और किसी अकेलेकी पैदा की हुअी नहीं हैं। वे समग्र मानव-जातिके परिश्रमसे, ज्ञानसे, सद्‌गुणोंसे निर्माण होकर हम तक पहुंची है। परमात्मा द्वारा निश्चित प्रकृतिके धर्मों या गुणों, निसर्गकी शक्ति और मानव-समाजकी शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक शक्तियोंके समुच्चयसे और सहायतासे हमारे धारण, पोषण और रक्षणके तथा सुख-सुविधाओंके सारे साधन पैदा होते रहे हैं। मनुष्यके साथ रहनेवाले गाय, घोड़ा, बैल जैसे जानवरोंके परिश्रमका भी अिसमें बड़ा हिस्सा है। यह बात भी ध्यानमें रखकर हमें परमात्माके प्रति, मानव-जातिके प्रति और अपने साथ रहनेवाले प्राणियोंके प्रति सदा कृतज्ञ रहना चाहिये। हम मानव-परिश्रमसे पैदा होनेवाले साधनों पर जीते हैं। अिसलिअे अिस परिश्रममें हमें कर्तव्य-बुद्धिसे परिश्रमके रूपमें अपना हिस्सा सदा सन्तोषपूर्वक देना चाहिये। अैसा किये बिना हमारा जीना, दुनियाकी मेहनतसे पैदा हुअी साधन-सम्पत्तिका अुपयोग करना, अुससे मुफ्त लाभ अुठाना निरा मानव-द्रोह है, अधर्म है। अुसमें कृपणता, चोरी, जड़ता, कृतघ्नता, स्वार्थ, अन्याय वगैरा अनेक दुर्गुणों और पापोंका समावेश होता है।

श्रम-विभाजनका सिद्धान्त

जीवन-निर्वाहके लिअे हरअेक मनुष्य सब तरहके परिश्रम खुद नहीं कर सकता। परन्तु सबके परिश्रमका सब लोग न्यायपूर्वक अुपयोग करें, तो सबका जीवन सुव्यवस्थित रूपमें चल सकता है। अिस प्रकारके न्याय्य और सुव्यवस्थित नियमनसे समाज कअी तरहसे सम्पन्न और समर्थ बनता है। जीवनके लिअे सब प्रकारके जरूरी परिश्रम प्रत्येक मनुष्य अकेला अलग-अलग करने बैठे, तो मानवका विकास नहीं हो सकेगा। अिससे मनुष्यकी सामाजिकता नष्ट हो जायगी और संभव है सारी मानव-जाति ही नष्ट हो जाय। अिसलिअे समाजकी सुख-सुविधा और अुन्नतिके लिअे श्रमकी तरह ही श्रम-विभाजन भी जरूरी है। समाजके धारण, पोषण, रक्षण और अुन्नतिके लिअे आवश्यक साधन-सम्पत्ति पैदा करनेकी जिम्मेदारी प्रत्येक मनुष्यको अपने धर्मके रूपमें सन्तोषपूर्वक स्वीकार करनी चाहिये। यह धर्म मानव-जीवनका प्राण है। मानव-धर्मके न्याय्य श्रम-विभाजनकी दृष्टिसे यह सिद्धान्त निकलता है कि अिस धर्मका आचरण किये बिना शारीरिक, बौद्धिक या मानसिक किसी भी प्रकारके मानव-परिश्रमसे निर्मित किसी भी साधन-सम्पत्तिका या सुख-सुविधाका अपने जीवनमें किसीको भी अुपयोग करनेका हक नहीं है।

धर्म्य जीवनकी महत्त्वाकांक्षा

अिस धर्मके लिअे जो विद्यायें और कलायें जरूरी हैं, अुनमें प्रवीणता प्राप्त करके सबके हितकी दृष्टिसे अुनका सदा अुपयोग करते रहना ही हमें अपना जीवनकार्य समझना चाहिये। परमात्माकी ओरसे कुदरती तौर पर ही प्राप्त हुअी हमारे अंग-प्रत्यंगकी सारी शक्तियोंका विकास करके और अुन्हें शुद्ध करके अुनका सतत अुपयोग करनेसे हमारी शक्तियां सतेज और शुद्ध रहती हैं। कोअी भी शस्त्र या हथियार काममें लेते रहनेसे ही तीक्ष्ण और तेजस्वी रहता है, नहीं तो जंग लगकर खराब हो जाता है। अिसी तरह हमारी शक्तियोंको अुचित गति देते रहनेसे और अुनका सत्कार्यमें अुपयोग करते रहनेसे हमारे अंग-प्रत्यंग और अुनकी शक्तियां, हमारी बुद्धि और हमारा मन शुद्ध रहता है। नहीं तो ये सब निकम्मे हो जाते हैं और जड़ता, आलस्य आदि दुर्गुणोंसे हमारा नाश हो

जाता है। केवल अपनी सुख-सुविधा या अर्थोत्पादनके लिअे अुनका अुपयोग करना जीवनकी अुदात्तता और व्यापकताकी दृष्टिसे अत्यन्त हीन वस्तु है। सबके हितकी दृष्टि रखकर अपने व्यवसायमें से अपने जीवन-निर्वाहके लिअे आवश्यक मजदूरी या मेहनताना लिया जाय; अुससे ज्यादा अर्थलाभ या लोभका अुद्देश्य कभी न रखा जाय। हम सब अिस प्रकारके पवित्र और धर्म्य जीवनकी महत्त्वाकांक्षा रखें, तो ही हमारे जीवन सार्थक होंगे और तभी किसी समय मानव-जातिके सम्पूर्ण सुखी होनेकी आशा रखी जा सकती है।

न्याय्य और अन्याय्य विभाजन के परिणाम

यह महत्त्वाकांक्षा पूरी हो, अिसके लिअे हममें श्रम-विभाजनकी अैसी व्यवस्था होनी चाहिये, जिससे किसी भी व्यक्ति या वर्ग पर दूसरेसे ज्यादा भार न पड़े और किसी भी व्यक्ति या वर्गको दूसरे व्यक्ति या समाजके परिश्रमका फल दूसरोंसे ज्यादा न मिले। अिस प्रकार जिस समाजमें समताके सिद्धान्त पर मेहनत और फलका बंटवारा होता है, वह समाज अनेक प्रकारसे समर्थ, सम्पन्न और स्थायी बनता है। अुस समाजमें सबका परस्पर पोष्य-पोषक सम्बन्ध होता है। परन्तु जिस समाजमें अिस प्रकार श्रम-विभाजनकी न्याय्य व्यवस्था नहीं होती, अुसमें अेक ओर गुलामी और खुशामद तथा दूसरी ओर विकास और सुख-सुविधाके नाम पर स्वार्थ, अत्याचार, जुल्म, दुष्टता, अैश-आराम, विकारवशता, मुफ्तखोरी, जड़ता और आलस्य वगैरा दुर्गुण बढ़ते रहते हैं। अिस कारण समाजमें शोषित और शोषकवर्ग निर्माण होते हैं। व्यक्ति व्यक्ति और वर्ग वर्गमें परस्पर भक्ष्य-भक्षकका सम्बन्ध बढ़ता जाता है। सारा समाज दिनों-दिन अवनत होता जाता है और फिर थोड़े ही समयमें वह किसी बलवान समाजका गुलाम बन जाता है। जिस समाजमें परिश्रम करनेवालोंसे परिश्रम द्वारा पैदा होनेवाली साधन-सम्पत्तिका मुफ्त लाभ अुठानेवाले वर्गकी संख्या अधिक होती है या अुसे समाजमें ज्यादा महत्त्व और प्रतिष्ठा मिलती है, वह समाज छिन्न-भिन्न हुअे बिना नहीं रहता। धर्म और अध्यात्मकी भ्रामक कल्पनाओं, कलाके नाम पर विलासको मिले हुअे महत्त्व, धनको दी गअी अनुचित प्रतिष्ठा वगैराके कारण श्रम-विभाजनका और अुसके फलोंके न्याय्य वितरणकी पद्धतिका समाजमें लोप हो जाता

है। अिसके कारण पुरुषार्थहीनता, दंभ, स्वच्छंदता आदि बढ़ती जाती है और कुल मिलाकर सारा समाज पतनकी ओर जाता है।

अिस दृष्टिसे विचार करें तो समाजकी सुस्थितिके लिअे परिश्रम, श्रमका अुचित विभाजन और समताके सिद्धान्त पर अुसके फलका अुचित बंटवारा — ये तत्त्व हर व्यक्तिको जंचने चाहिये और

धर्मनिष्ठ समाज

तदनुसार अुसे आचरण करना चाहिये। सदा कार्यरत रहकर अुससे तैयार होनेवाली साधन-सम्पत्तिमें से अपने गुजारेसे जरा भी ज्यादाकी अुम्मीद न रखनेका सिद्धान्त सबको मंजूर होना चाहिये। अिस तरहके तत्त्वनिष्ठ समाजको ही धर्मनिष्ठ समाज कहा जा सकता है। समाजमें अिस प्रकारकी तत्त्वनिष्ठा और सद्‌गुणोंकी वृद्धिके लिअे हमें खुद तत्त्वनिष्ठ और सद्‌गुणी बनना चाहिये। अिसी निष्ठा पर मानव-जातिका अुत्कर्ष और अुन्नति अवलम्बित है।

अेक जमानेमें भारतवर्षके लोगोंमें अिस प्रकारकी तत्त्वनिष्ठा थी। अुस समय यह माना जाता था कि जीवन केवल धर्मके लिअे है। अुस समय समाजमें यह भावना थी कि हम परमेश्वरी शक्तिके, पूर्वजोंके, ज्ञानी पुरुषोंके, मनुष्यमात्रके और मनुष्यके साथ रहनेवाले तमाम प्राणियोंके ऋणी हैं। अुस जमानेके लोगोंकी दिनचर्या अैसी थी, जिससे सदा अिस बातका तीव्र भान रह सके कि अन्नाहुतिके निमित्तसे अिन सबके प्रति कृतज्ञता-बुद्धि प्रकट किये बिना हमें भोजन करनेका हक नहीं है। अुस समय प्रजामें अिस प्रकारकी सामूहिक धर्मनिष्ठा थी कि जीवनमें जो भी चीज हमें प्राप्त होती है, वह हमारे अकेलेके परिश्रम या ज्ञानका फल नहीं है, बल्कि सबके परिश्रम और ज्ञानका फल है; और अुनके प्रति कृतज्ञ रहकर हमें केवल अपनी अुचित आवश्यकताओंकी पूर्ति जितना ही लेनेका अधिकार है। अुस समय आजकल जैसे भौतिक आविष्कार नहीं हुअे थे, सुखके साधन भी आज जितने नहीं थे। न अितनी वैभव-सम्पन्नता ही थी। परन्तु अुस वक्त लोगोंमें मानवता थी; मानव-धर्म जाग्रत था। अुनके जीवनसे हमें बहुत कुछ सीखना है। हम अपना वर्तमान धर्म निश्चित करने और अुसके अनुसार चलनेके लिअे अुनके जीवनसे कुछ ग्रहण कर सकें, तो निश्चय ही हमारा कल्याण होगा।

विवेक और साधना

दूसरा भाग

विभाग २ : गुण-दर्शन

१

विवेक और संयम

मानव-जीवन अुन्नति करनेके लिअे है। अिसलिअे हमारी कोशिश सदा यही होनी चाहिये कि वह सब तरहसे अुन्नत हो। अिसके लिअे सबसे पहले विवेककी जरूरत है। जब जीवन सरलतासे बीतता है, अुसमें कोअी खास मुश्किल नहीं आती, तब हमें विवेककी जरूरत नहीं जान पड़ती। परन्तु कठिन प्रसंग आने पर किस प्रकार चलना ठीक और कल्याणकारक होगा, यह हम अेकदम तय नहीं कर पाते। अुस समय अपने पूर्व अनुभवसे तथा दूसरोंके भी अैसे अवसरोंके अनुभवसे भावी परिणामोंका दीर्घदृष्टिसे विचार करके हमें अपने व्यवहारका तरीका निश्चित करना पड़ता है। अैसे समय हमें विवेक-शक्तिकी जरूरत होती है। ठीक निर्णय करनेकी शक्ति ही शुद्ध विवेक है। जिसके सामने अैसे विवेकके प्रसंग बार-बार आते हैं, जो पूर्व अनुभवका सूक्ष्मतासे निरीक्षण कर सकता है और अिस सब परसे अुचित निर्णय कर सकता है, अुसकी निर्णय-शक्ति दूसरोंसे ज्यादा विकसित और प्रखर होती है। जिसमें अितनी विवेक-शक्ति न आअी हो, अुसे कठिन अवसर आ पड़ने पर अपनेसे श्रेष्ठ, विवेकशील और अनुभवी मनुष्य पर श्रद्धा रखकर संकटमें से रास्ता निकाल लेना चाहिये। लेकिन अुसे भी अिस प्रकारकी श्रद्धा पर हमेशा पराधीन जीवन बितानेकी अिच्छा नहीं रखनी चाहिये। विवेकशील मनुष्यसे हमें स्वयं विवेकी बनना सीखना चाहिये। हम अुचित विवेक करने लग जायं, तो जीवनकी अनेक अड़चनें सहज ही दूर कर सकेंगे और अिस प्रकार हमारी अुन्नतिके मार्गमें बाधक होने-वाली कितनी ही कठिनाअियां दूर हो सकेंगी।

विवेककी जरूरत

अुन्नतिके लिअे हमें विवेककी जितनी जरूरत है, अुतनी ही संयमकी भी है। यह बात ध्यानमें रखना चाहिये कि हमारे जीवनकी बनी हुअी सदाकी दिशाके अनुसार हमारी अिच्छायें और वृत्तियां अिन्द्रियों द्वारा सुख अनुभव करनेकी ओर सदा दौड़ती रहती हैं। अतः हमें अिस ओरसे सदा सावधान रहना चाहिये। अनुचित दिशामें जाने-वाली मनोवृत्तियोंको काबूमें रखनेकी हमें कोशिश करनी चाहिये। मनुष्य सुखके बिना नहीं रह सकता, अिसलिअे हमें सात्त्विक सुखकी आदत डालनी चाहिये। सुखके भी अनेक भेद हैं। जो सुख हमें ज्यादा लालची और लम्पट बनाता हो, हमारी स्वाधीनता और आरोग्यका नाश करता हो, हमारी मनोवृत्तियोंको और भी चंचल बनाकर अिन्द्रियों और मनके हमारे काबूको मिटाता हो, अुस सुखको त्याज्य समझकर अुसके बारेमें संयमशील होना चाहिये। जिस सुखसे आरोग्य बढ़ता हो, शान्ति और प्रसन्नता आती हो और जिस सुखमें अुन्हें हमेशा कायम रखनेकी ताकत हो, जिस सुखसे शरीरका अुत्साह, मनकी पवित्रता और बुद्धिकी तेजस्विता बढ़ती रहे, जिस सुखके कारण हममें जड़ता, ग्लानि या शिथिलता आनेका डर न हो, जिस सुखमें पश्चात्तापका भय नहीं, परिश्रमसे अरुचि नहीं और जिस सुखसे हमारे और दूसरोंके सुख और ज्ञानकी वृद्धि होती है, वह सुख सात्त्विक है। अैसे सुखसे किसीका अकल्याण नहीं हो सकता। अितना ही नहीं, अिस प्रकारके सुखकी मानव-अुन्नतिके लिअे जरूरत है। अिसीलिअे मनुष्यको सात्त्विक सुखकी अिच्छा और प्रयत्न करना चाहिये और सुख-सम्बन्धी दूसरे खयाल छोड़ देने चाहिये। अिसके लिअे मनुष्यको संयमी बनना चाहिये। अनुचित और हानिकारक सुखके पीछे लगनेसे हमारी शक्ति व्यर्थ खर्च होती है। अिस शक्तिको व्यर्थ खर्च न होने देकर अुन्नतिकारक कार्यमें लगाना हमारा कर्तव्य है। संयमसे सुरक्षित और संचित शक्तिका अुपयोग हमें सद्‌गुणोंकी वृद्धिमें करना चाहिये। अैसा न किया जाय तो हमारे विवेकमें त्रुटि आवेगी। अुन्नत होनेके लिअे सद्‌गुणी बनना जरूरी है। सद्‌गुण बढ़ानेके लिअे संयमी बनना होगा। संयमके बिना शक्ति-संचय नहीं होता। संचयके बिना शक्ति

नहीं बढ़ती। शक्ति बढ़े बिना सद्‌गुणोंमें पूर्णता नहीं आती। हमें समझना चाहिये कि जब तक हमारी शक्ति किसी भी अनुचित कार्यमें, क्षुद्र सुखमें खर्च होती है, तब तक हम अपनी संपूर्ण शक्तिके साथ अुन्नतिके मार्ग पर नहीं बढ़ सकते। यह हमारे जीवनका अेक लांछन है, कमी है। यह कमी न रहे अिसलिअे हमें विवेकी, संयमी और पुरुषार्थी बनना चाहिये।

संयमी मनुष्य ही चरित्रवान और शीलवान रह सकता है। दुनियामें वही सबके आदर और विश्वासका पात्र बनता है। मनुष्य व्यसनी भाअी या मित्र पर भरोसा नहीं रखता। संयमी, निर्दोष और निर्व्यसनी नौकर पर वह निःशंक होकर भरोसा रखता है। अिस प्रकार दुनियामें सद्‌गुणोंके लिअे आदर और दुर्गुणोंके लिअे अनादर पाया जाता है। दुराचारी या दंभी मनुष्य भी दूसरे दुराचारी या दंभी मनुष्य पर विश्वास न रखकर सदाचारी और संयमी मनुष्य पर ही विश्वास रखता है। आदमी खुद शराब पीनेवाला हो तो भी वह शराबीको नौकर रखनेके लिअे तैयार नहीं होता। जो अपनी दुर्बलताके कारण सदाचारी या निर्व्यसनी नहीं रह सकता, अुसके मनमें भी सदाचार और निर्व्यसनताके लिअे आदर तथा दुराचार और व्यसनके लिअे अनादर और अविश्वास होता है।

आम तौर पर यह समझा जाता है कि संयमशील होना बड़ा कठिन है। परन्तु हमें अिसका थोड़ा विचार करना चाहिये कि दुनियामें कौनसी अच्छी चीज पाना कठिन नहीं है। कोअी भी अच्छी विद्या या कला परिश्रमके बिना प्राप्त होती है? अिसलिअे कठिनाअी या मेहनतसे डरनेसे काम नहीं चलेगा। संयम, सदाचार अित्यादि गुण जितने कठिन लगते हैं, अुतने वास्तवमें वे हैं नहीं। शुरूमें अुनमें जितनी कठिनाअी लगती है, अुतनी बादमें नहीं लगती। मुख्य बात यह है कि मनुष्यको संयम और सदाचारमें रुचि नहीं होती, रस नहीं होता। अुसमें अिस मार्गसे अपनी अुन्नति करनेकी अिच्छा नहीं होती। अैसी अिच्छा हो तो अिस मार्गमें जितनी कठिनाअी पहले मालूम होती है, अुतनी आगे जाने पर नहीं होती। आज हमारा जीवन जिस वातावरणमें गुजरता है, बचपनसे हमें

सत्संगति

जो शिक्षा और संस्कार मिलते हैं, वे अिन दोनोंके विरुद्ध हैं। अैसी हालतमें यह अिच्छा होना ही लगभग असंभव है कि हम विवेकी, संयमी और सदाचारी बनें; सद्‌गुण-सम्पन्न होकर जीवनको कृतार्थ करें। अैसी कठिन स्थितिमें जिन्हें कुछ पढ़नेसे या कहींसे मिले हुअे किसी संस्कारके कारण थोड़ी-बहुत सदिच्छा हो जाय, वे अच्छी संगति करके अपनी सदिच्छाको दृढ़ करें और बढ़ायें। अच्छी संगतिके बिना अच्छे संस्कार नहीं मिलते, अुन्हें पोषण नहीं मिलता और अुनमें बल भी नहीं आता। प्रतिकूल वातावरणमें सुसंस्कारोंका टिकना मुश्किल होता है। अुसमें वे देखते-देखते लुप्त हो जाते हैं। अिसलिअे बाहरके खराब वातावरणके कारण चित्त पर होनेवाले अनिष्ट संस्कारोंसे बचना हो और अपने सुसंस्कारोंकी रक्षा करके अुन्हें बढ़ाना हो, तो मनुष्यको हमेशा अच्छी संगति करना चाहिये। जैसे सफाअीके खयालसे रोज स्नान करना जरूरी है, वैसे ही हमारे चित्त पर नित्य पड़नेवाले कुसंस्कारोंको निकालकर अुसे शुद्ध करनेके लिअे अच्छी संगतिकी जरूरत है। अैसी संगति प्राप्त करके हम अपने सुसंस्कारोंका पोषण करें, तो हममें अुन्नतिकी अिच्छा जाग्रत होगी, प्रबल बनेगी और अुसके परिणाम-स्वरूप हममें संयमशील, विवेकी और सदाचारी बननेकी महत्त्वाकांक्षा बढ़ती जायगी।

२

विवेक और सावधानी

वृत्ति-परीक्षण

श्रेयप्राप्तिके अभिलाषीको अतिशय जाग्रत रहना चाहिये। अुसे अपनी मनोवृत्तियोंका परीक्षण करना आना चाहिये। अुन्नतिका मुख्य आधार हमारा चित्त है। अुसकी वृत्तियां शुद्ध करनेकी कोशिश होनी चाहिये। अिसके लिअे विवेक और संयमकी भांति सावधानीकी भी जरूरत है। संस्कारोंके अनुरूप हमारी अिच्छायें दौड़ती हैं और अिन अिच्छाओंके अनुसार हमारे चित्तकी तरंगें चलती हैं। श्रेयार्थीको पुराने अनिष्ट संस्कार नष्ट करके नये अिष्ट संस्कार ग्रहण करने चाहिये। अिस प्रयत्नमें अुसे कभी अरुचि नहीं

होनी चाहिये। अिसके लिअे अुसके मनमें बड़ा धीरज, दृढ़ता और लगन होनी चाहिये। अुसे काम, क्रोध, लोभ और अहंकारका शुद्ध-अशुद्ध स्वरूप पहचानना आना चाहिये। भावना और विकार, अपनी स्वाभाविक आवश्यकतायें और आशा-तृष्णा तथा लोभ आदि सबके बीचका फर्क समझना चाहिये। अहंकार, सदहंकार और निरहंकारके बीचका भेद भी समझना चाहिये। मद क्या है, गर्व क्या है, आत्म-सम्मान क्या है और अिसी तरह आत्म-विश्वास क्या है, यह अुसे पहचानना आना चाहिये। क्रोध और तेजस्विता, दीनता और नम्रता, दुर्बलता और क्षमा, विचारहीनता और साहसके बीचका भेद अुसके ध्यानमें आना चाहिये। कल्पना, भावना और योजना, अनुमान और अनुभव, तर्क और सिद्धान्त, विलास और विकास, त्याग और वैराग्य, जड़ता और शान्ति, भोलापन और श्रद्धा, सदाग्रह और दुराग्रह — अिन सबके बीच अुसे भेद करते आना चाहिये। विचार, तरंग और संकल्प तथा आभास और ज्ञानके बीचका फर्क भी अुसकी समझमें आना चाहिये। आराधना, अुपासना, भक्ति, निष्ठा — अिन सबकी अुसे पहचान होनी चाहिये। सुख, आनंद, समाधान, संतोष, शान्ति, प्रसन्नता, अिन सबके बीचके भेदका अुसे ज्ञान होना चाहिये। मानव-चित्तकी सुप्त-प्रगट, अच्छी-बुरी सभी वृत्तियोंका अुसे ज्ञान होना चाहिये और अिनमें से हितकर वृत्तियोंको अपनाना चाहिये।

साधकको अुचित-अनुचित, हितकर-अहितकरकी परख करना न आता हो, तो अुसका परिश्रम व्यर्थ जा सकता है। अपनी अुचित आवश्यकताओं और लोभ तथा सदोष और निर्दोष परिग्रहके बीचका भेद साधकको जानना चाहिये। अपने निर्वाहके लिअे आवश्यक वस्तु प्राप्त करनेमें न लोभ है, न दोष। अिन चीजोंका मर्यादित संग्रह करनेमें भी कोअी दोष नहीं है। मनुष्यके नाते अुचित शील और सदाचारसे जीनेके लिअे, कुटुम्बके निर्वाहके लिअे और कठिनाअीके समयके लिअे हमें पहलेसे जो बन्दोबस्त करना पड़ता है, जो संग्रह करना पड़ता है, अुसे लोभ या सदोष परिग्रह नहीं कहा जा

अुचित आवश्यकतायें और निर्दोष परिग्रह

सकता। आवश्यकतासे ज्यादा वस्तुअें प्राप्त करनेमें लोभ और अुनका अुपयोग करनेमें फिजूल-खर्ची है। जिन चीजोंकी दूसरोंको अत्यन्त आवश्यकता हो, अुनका हम भी अुचित अुपयोग न करें और केवल लोभके कारण अुनका संग्रह करके रखें, तो यह हमारी कृपणता है, दुष्टता है। परिग्रहके विषयमें साधकको हमेशा विवेक और तारतम्यसे काम लेना चाहिये।

अिन्द्रिय-सम्बन्धी संयम और सावधानी

खान-पान, वस्त्र और रहनेकी जगहके बारेमें भी साधकको खूब विवेकसे चलना चाहिये। अिस विषयमें आरोग्य, मितव्यय, निरलसता और आवश्यक सुविधाओंका महत्त्व समझकर बरताव करना चाहिये। अुसे सदा ध्यान रखना चाहिये कि अपनी जरूरतें पूरी करते समय दूसरों पर अन्याय न हो। खान-पानमें अुसे सावधानीपूर्वक जीभका संयम रखना चाहिये। अुसे अिस प्रकारका खान-पान चुनना चाहिये, जिससे आरोग्य, बल, चपलता, बुद्धिकी तेजस्विता और मनकी पवित्रता तथा प्रसन्नता रखी जा सके और बढ़ती रहे। अैसा करते समय अुसे अपनी आर्थिक स्थितिका भी विचार करना चाहिये। अुसे यह बात ध्यानमें रखना चाहिये कि कपड़े सर्दी, गर्मी और लज्जा निवारणके लिअे हैं। केवल शौक या पसन्दके लिअे ही कपड़ोंकी अलग अलग फैशन और पद्धतियोंका मोह रखनेमें अुनका दुरुपयोग समझना चाहिये। अुसकी वाणीमें अव्यवस्थितता, विसंगति, असत्य, कर्कशता, असभ्यता आदि दोष न होने चाहिये; न किसीकी निंदा होनी चाहिये और न आत्मस्तुति या अपने कार्यकी प्रशंसा। अुसका बोलना अैसा न होना चाहिये जिससे कोअी अूबने लगे। अुसके बोलनेमें मधुरता, सचाअी, प्रेम, सुसंगति और प्रासंगिकता होनी चाहिये। अुसे मितभाषी होना चाहिये। बोलते समय व्यर्थ हाथ-पैर हिलाने या बीच-बीचमें सुननेवालेको हाथसे छूने आदिकी बुरी आदत न होनी चाहिये। दूसरेकी बात पूरी होने तक मौन रखनेका अुसमें धीरज होना चाहिये। अिस प्रकार वाणीके बारेमें भी अुसे संयमी और सावधान रहना चाहिये।

हमारा जीवन हमारे द्वारा होनेवाली सभी क्रियाओंसे मिलकर बनता है। यदि हम यह चाहते हैं कि वह सर्वांग-सुन्दर हो, तो हमें अपनी प्रत्येक वृत्ति और प्रत्येक क्रियाके विषयमें विवेकी, संयमी और सावधान रहना चाहिये। अगर मिट्टी या पत्थरकी भी सुन्दर मूर्ति बनाओी जा सकती है, यदि जड़ पदार्थसे भी चित्ताकर्षक, भाव-प्रदर्शक और बोधप्रद चित्र तैयार किया जा सकता है, तो जिस शरीरके अणु-अणुमें चैतन्य भरा हुआ है और जो प्राण, मन, बुद्धि, चित्त और अनेक कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियोंसे युक्त है, अुसे क्या हम सब तरहसे निर्दोष और गुण-सम्पन्न नहीं बना सकते? क्या अुसे हम अनेक विद्याओं, कलाओं और सद्भावोंसे सर्वथा सुशोभित और सुयोग्य नहीं बना सकते? महान संत ज्ञानेश्वरने सत्त्व गुणोंसे युक्त मनुष्यका अेक जगह वर्णन किया है, जो अत्यन्त बोधप्रद है। वे कहते हैं: "वसंत ऋतुमें कमलोंके विकसित होनेके बाद जैसे अुनकी सुगंध अपने आप चारों ओर फैल जाती है, वैसे ही जिसके हृदयमें प्रज्ञा ओतप्रोत हो जाने पर अन्दर नहीं रह सकती और अिन्द्रियों द्वारा अपने आप बाहर फैलने लगती है, अुसकी अिन्द्रियोंके आंगनमें ही विवेक काम करता है। और अैसा लगता है मानो अुसके हाथ-पैरोंमें भी ज्ञानदृष्टि फूट पड़ी हो। सत्कर्म और दुष्कर्मका भेद अुसकी अिन्द्रियां ही समझ लेती हैं। अुसे विचार करके निर्णय करनेकी जरूरत नहीं पड़ती। अुसकी अिन्द्रियां ही अच्छे-बुरेकी परख कर लेती हैं। न देखने लायक चीजकी तरफ अुसकी आंखें जातीं ही नहीं। न सुनने योग्य शब्द अुसके कानमें पड़ते ही नहीं। न बोलने जैसे शब्द अुसकी जबानसे निकल ही नहीं सकते। जैसे दीयेके सामने अंधेरा नहीं रह सकता, अुसी तरह अुसकी अिन्द्रियोंके सामने निषिद्ध वस्तुअें नहीं आ सकतीं।"

अन्तःशुद्धिका परिणाम

अिस सबका सार यही है कि अखंड विवेक और सावधानीसे व्यवहार करनेके कारण मनुष्यकी अिन्द्रियोंके धर्म ही परम शुद्ध बन जाते हैं। निरन्तर सावधानीसे और आन्तरिक शुद्ध बुद्धिसे, सदैव प्रयत्नशील रहनेसे, मनुष्य अैसी स्थितिमें जा पहुंचता है। और पहुंचनेके बाद भी विवेकी मनुष्य सावधानी छोड़कर कभी गाफिल नहीं रहता।

अिस तरहकी चित्तशुद्धि और अिन्द्रिय-शुद्धि प्राप्त करनी हो, तो हमें सदा सावधानीसे रहना चाहिये। विवेकसे अुचित अनुचितकी परख,

अखण्ड जागृति

जाग्रत रहकर सब वृत्तियोंका निरीक्षण और परीक्षण तथा निश्चयपूर्वक अनुचित वृत्तियोंका निरोध — ये सब बातें हमें प्राप्त करनी ही चाहिये। श्रेय:साधनके प्रयत्नमें जागृतिका बड़ा महत्त्व है। यह जागृति हमें सतत कायम रखना आना चाहिये। यह मानकर कि अिन्द्रियोंके धर्म और चित्तके पूर्वसंस्कार पूरी तरह नष्ट हो गये हैं, हमें कभी गाफिल या असावधान न रहना चाहिये। क्योंकि जीवमें रहनेवाले मूल स्वभाव-धर्म बीजरूपमें हममें रहते हैं। वे कब, किस समय और किस तरह फिर जाग्रत हो जायंगे, अिसका भरोसा नहीं। अिसलिअे सतत सावधानी हमारा स्वभाव बन जाना चाहिये।

संत कबीरने कहा है:

"सूर संग्राम है पलक दो चारका, सती घमसान पल अेक लागे।
साध संग्राम है रैन-दिन जूझना, देह परजंतका काम भाअी॥"

(शूरोंका संग्राम दो चार पलका होता है और सतीका युद्ध अेकाध पलमें समाप्त हो जाता है, जबकि साधुओंका संग्राम अैसा है, जिसमें आखिरी सांस तक रात-दिन जूझना पड़ता है।)

(दैनिक प्रवचनसे)

३

निश्चयका बल

अुन्नतिकी अिच्छा रखनेवालेमें निग्रह-शक्ति अर्थात् मानसिक दृढ़ताकी बड़ी जरूरत है। हमारे मनको अिन्द्रियोंके वेगके अनुसार बहनेकी आदत पड़ी होती है। मान लीजिये कि हममें यह समझनेका

निश्चयका महत्त्व

विवेक है कि अुस वेगके अनुसार अपने मनको बहने देनेमें हमारा कल्याण नहीं, और अितनी सावधानी भी है कि मनके अुस वेगमें फंसते ही हमारे ध्यानमें यह बात आ जाती है, तो भी यदि अुसे रोकनेकी शक्ति न हो तो वह विवेक और साव-धानी जीवनकी अुन्नतिके खयालसे हमारे कुछ काम नहीं आती। मनको रोकनेकी शक्ति ही संयम-शक्ति है। यह शक्ति बढ़ानेके लिअे हमें निश्चयी बनना चाहिये। पूर्वसंस्कारोंके अनुसार दौड़नेवाले मनको अुचित विषयकी तरफ और ठीक दिशामें मोड़नेका काम निश्चयके बिना नहीं हो सकता। अपनी निश्चय-वृत्तिको स्थिर करके अुसके द्वारा अनुचित वृत्तियोंको हमें रोकना चाहिये। प्रतिबंध करनेवाली वृत्तिको हमें अपनी संकल्प-शक्ति द्वारा दृढ़ और बलवान बनाना चाहिये। वह वृत्ति और वह संकल्प निश्चयके बिना दृढ़ नहीं हो सकते। अिसलिअे अिस मार्गमें निश्चयका बहुत ज्यादा महत्त्व है।

निग्रह-शक्ति बढ़ानेके लिअे निश्चयकी जरूरत है। निश्चयको जाग्रत और स्थायी बनानेके लिअे क्या करना चाहिये यह भी अेक सवाल है। निश्चयके साथ संयम-शक्तिको जाग्रत रखनेके

संयम और पुरुषार्थकी आवश्यकता

लिअे हमें कुछ नियम स्वीकार करने चाहिये। अिस प्रकारके नियमोंको ही व्रत कहते हैं। अुन व्रतों द्वारा हमारी संयम-शक्ति जाग्रत होती है। अिन नियमोंका आचरण हमें समझकर और अुनके ध्येयका सतत स्मरण रखकर करना चाहिये। तभी वे हमारा हेतु सफल करनेमें समर्थ होंगे। हेतु और ज्ञानके अभावमें पाले गये व्रतों और नियमोंकी अुन्नतिकी दृष्टिसे कोअी कीमत नहीं। अिसीलिअे अुन्हें केवल निरर्थक

कर्मकाण्ड कहते हैं। नियम दो तरहके होते हैं : अेकमें निषेध होता है और दूसरेमें कुछ निश्चित कर्म करनेका आग्रह रहता है। अर्थात् अेकमें त्यागका महत्त्व होता है और दूसरेमें कर्तृत्व और पुरुषार्थ पर जोर दिया जाता है। मनुष्यको दोनों प्रकारके नियमोंसे अपना मानसिक बल बढ़ाना चाहिये। अनुचित मनोवृत्तियोंको रोककर अुचित मनोवृत्तियोंका विकास करना हमें आना चाहिये। ये चीजें जिन नियमोंसे पूरी हो सकें, अुन नियमोंकी हमें अपने लिअे योजना करनी चाहिये। संयम साधनेके लिअे अुपवास, अर्ध-अुपवास जैसे व्रत हरअेक प्रचलित धार्मिक सम्प्रदायमें बताये गये हैं। परन्तु अुनकी जड़में जो हेतु था अुसे हम भूल गये हैं। अिसलिअे बरसोंसे अिस प्रकारके व्रत पालते रहने पर भी अपनी जबान पर हम स्थायी संयम नहीं रख सके। अर्थ यह है कि वे व्रत अुन्नतिकी दृष्टिसे बेकार साबित हुअे हैं। सात, पंद्रह या तीस दिनमें अेक दिन मौन रखकर बाकी सब दिन जीभकी लगाम खुली रख दी जाय, तो अुस मौनका कोअी अर्थ नहीं। हमें पांचों ज्ञानेंद्रियोंको नियंत्रणमें रखकर अपनी मनोवृत्तियों पर काबू पाना है। हमें अुनकी पहलेकी अनुचित आदतों और अनुचित संस्कारोंको बदलना है। अिसके लिअे बाह्य अिन्द्रियों और ज्ञानेंद्रियों पर किस प्रकारका, कितना और किस तरह नियंत्रण रखा जाय, अिसका हरअेकको विचारपूर्वक निश्चय करना चाहिये।

विवेकयुक्त नियमन

नियमन रखते और निश्चय करते समय जल्दबाजीमें केवल भावना-वश हो जानेसे काम नहीं चलेगा। अुस समय हमें अपने पूर्वसंस्कार, अपनी परिस्थिति, नियम और निश्चयके बारेमें अपने पूर्व अितिहास आदि परसे अपनी दृढ़ता या शिथिलता वगैरा तमाम बातोंका विचार करके हमारी तत्सम्बन्धी पात्रता पर ध्यान देना चाहिये। नियमन तय करते समय भूतकालके अपने अनुभवको ध्यानमें रखकर, वर्तमान कालकी परि-स्थितिका अवलोकन करके, अिस बातका दीर्घदृष्टिसे विचार करना चाहिये कि भविष्यमें अिसके क्या परिणाम होंगे। और अेक बार कोअी नियम तय कर लेने और निश्चय कर लेनेके बाद अुसका पालन करनेमें जरा भी लापरवाही या ढिलाअी नहीं करनी चाहिये। मौका पड़ने पर अपनी तमाम शक्तियोंका दृढ़तापूर्वक अुपयोग करके भी हमें अपना

निश्चय कायम रखनेकी पराकाष्ठा करनी चाहिये। नियम और निश्चयके विषयमें हमारे व्यवहारका ढंग अिस प्रकारका होगा, तो हम अपूर्ण दृष्टिसे, अविवेकसे और केवल भावनाके आवेगमें बिना सोचे-विचारे कोअी निश्चय नहीं करेंगे; और अिससे नियम और निश्चय बार-बार तोड़ने, बदलने या दंभी बनकर यह दिखाते रहनेके प्रसंग नहीं आयेंगे कि वे ज्योंके त्यों चल रहे हैं। अच्छे निश्चयोंके पालनसे हमारी जितनी अुन्नति होती है, अुसकी अपेक्षा अुन निश्चयोंको कमजोरीसे तोड़कर कोअी पश्चात्ताप न होनेमें हमारी ज्यादा अवनति है। दंभी बनकर अुन निश्चयोंके ज्योंके त्यों चालू रहनेका आभास करानेमें तो हमारी भारी अधोगति है। अैसी स्थिति पर पहुंचे हुअे मनकी अुन्नति बड़ी मुश्किल है।

व्रत-पालनसे सहज संतोष

अिसलिअे श्रेयार्थी साधकको अपनी शक्ति और परिस्थितिको देखकर निश्चय करना चाहिये। किसी भी व्रत या नियमका पालन जारी हो, तब अुसमें प्रतीत होनेवाली कठिनाअी आदतके कारण या अुस नियमसे होनेवाले सात्त्विक लाभके कारण धीरे-धीरे अपने आप नष्ट होनी चाहिये। व्रतके कारण हममें सन्तोष और शक्ति सदा बढ़ना चाहिये। हमारे निश्चयमें बल आना चाहिये। बलसे निग्रह-शक्ति बढ़नी चाहिये। निग्रहसे संयममें स्वाभाविकता आनी चाहिये और संयमसे संतोष पैदा होना चाहिये। और अुसके बढ़ते बढ़ते संयम स्वयं ही सन्तोषरूप बनकर हमारा स्वभाव हो जाना चाहिये। यह हमारी सहज स्थिति हो जानी चाहिये। अैसी सहज स्थिति हो जानेके बाद व्रतका व्रतपन नहीं रहेगा। और फिर, अिस सहज स्थिति और सन्तोषकी अवस्थामें अधिक कठिन व्रत लेनेकी और अुसे भी पहलेके व्रतकी तरह अपना स्वभाव और स्वाभाविक जीवन बनानेकी हिम्मत अपने-आप हममें पैदा हो जायगी। अिस प्रकार अेक व्रतसे दूसरे व्रतकी निर्मिति जारी रहे, तो ही समझना चाहिये कि वह व्रत हमें सध गया। किसी भी व्रतमें अुत्तरोत्तर स्वस्थता, प्रसन्नता और निरुपाधिकता अनुभव होनी चाहिये। वैसा अनुभव न हो तो अुस व्रतसे हमारी अुन्नति नहीं होगी। अैसी स्थितिमें व्रत हमें दंड या सजाकी तरह लगता रहेगा। त्यागके साथ हममें शान्ति और प्रस-

न्नता दीखनी चाहिये। अुसके कारण हममें सन्तोष बढ़ता रहना चाहिये। व्रतमें पाप-पुण्यकी कल्पना नहीं होनी चाहिये। देखना यह चाहिये कि अुसके कारण हमारी कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेंद्रियोंकी यानी कुल मिलाकर हमारे चित्तकी शुद्धि हो रही है या नहीं, अिन्द्रियोंकी रसलुब्धता कम होती है या नहीं, हम स्वाधीन, निरुपाधिक, निरोगी, आवश्यक जरूरतोंमें परिमित और मितभोगी हो रहे हैं या नहीं। हमें यह जांच करनी चाहिये कि लालसाकी तृप्तिसे जो क्षणिक आनन्द होता है, अुसकी अपेक्षा हमें संयमसे अधिक संतोष और सहज ही स्थायी प्रसन्नता होती है या नहीं। व्रत और नियमके कारण संयम-शक्तिके बढ़नेसे तरह तरहकी गलत आदतों, लालसा, रुचि-अरुचि और शौकोंके कारण हममें पैदा हुअी परवशता और चित्तकी दुर्बलतासे हमें छुटकारा मिलता हो, तो हमारा जीवन अपने-आप पहलेसे अुत्तरोत्तर अधिक सुखमय, सन्तोषमय, प्रसन्न और मुक्त होगा। संयम, निग्रह और पवित्रता आदिके कारण हममें जो शक्तियां और सद्गुण पैदा होंगे, अुनके परिणाम हमारे समस्त जीवन-व्यवसाय पर सहज ही होंगे और अिसमें भी हम दूसरोंसे सहज ही अधिक सफल होंगे। अिस प्रकार केवल संयमके अुद्देश्यसे किये गये निश्चय और अुसके लिअे किये गये व्रत या नियमका सुपरिणाम हमारे चित्त पर होकर वह पवित्र, दृढ़ और बलवान बनना चाहिये।

अुन्नतिके लिअे संयम और सत्कर्मकी जरूरत

जैसा कि मैं अूपर कह चुका हूं, व्रत और नियमोंके दो प्रकार हैं: संयमात्मक और क्रियात्मक। निषिद्ध या अनुचित बात न करना, अुससे मनको रोकना संयम है; जब कि कोअी अच्छी चीज करनेका निश्चय करके अुचित अवसर पर अुसके अनुसार चलनेमें कर्तृत्व है। खान-पान, निद्रा, बोलना वगैरामें अनियमितता, अतिशयता आदि दोषों तथा पांच ज्ञानेंद्रियों द्वारा सेवन किये जानेवाले अनुचित रसों और रसवृत्तिका त्याग करनेके लिअे संयमकी जरूरत है। और निश्चित समय पर परिश्रम करना, अध्ययन करना, सेवा करना, अपने काम नियमित रूपसे खुद करना, दान करना, सामाजिक अृण अदा करना वगैराके सिलसिलेमें बनाये गये नियम निश्चयपूर्वक पालनेके लिअे कर्तृत्वकी

आवश्यकता है। हमेशा सुबह जल्दी अुठनेमें संयम है, परन्तु केवल अिस संयमके सफल हो जानेसे हमारी अुन्नति ही होगी, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। क्योंकि सुबह जल्दी अुठकर मनुष्य कुकर्म भी कर सकता है। अिसलिअे मनुष्यको अपनी अुन्नतिके लिअे संयमके साथ सत्कर्मका नियम भी स्वीकार करना चाहिये। जीवनकी सर्वांगीण अुन्नतिके लिअे दोनों प्रकारके नियमोंकी समान जरूरत है।

सत्कर्मके लिअे निश्चयकी जरूरत

हमारा जीवन अिन दोनों तरहके नियमोंसे युक्त हो, तो अुसमें दीनता, दुर्बलता, लुब्धता, भीरुता, कृपणता, आलस्य, स्वेच्छाचार, दुराचार, अनियमितता, फिजूलखर्ची, जड़ता आदि दोष कहीं भी दिखाअी नहीं देंगे। अुलटे, सामर्थ्य और नम्रता, अुद्यमशीलता और मितव्ययिता, पवित्रता और पुरुषार्थ, अुदारता और जनसेवा, सदाचार और भूतदया आदिसे हमारा जीवन भरा हुआ दिखाअी देगा। संयमके साथ ही यदि हममें पुरुषार्थकी वृद्धि न हो, तो जीवनमें जड़ता या मौका पड़ने पर दीनता आ जाना संभव है; और अैसा जीवन समय पाकर दयापात्र भी बन सकता है। जब कि संयमहीन और केवल पुरुषार्थयुक्त जीवन सन्मार्गवर्ती न रहकर कुमार्गी बन सकता है और हमारे तथा दूसरोंके अधःपातका अचूक कारण हो सकता है। अिसलिअे हमारे जीवनमें संयम और पुरुषार्थ दोनोंका अुचित मेल होना चाहिये। तभी हमारा जीवन सब ओरसे अुन्नत होता रहेगा। चाहे जैसा जीवन बितानेसे वह अुन्नत नहीं होता। अिसके लिअे हमें विचारपूर्वक अुन्नतिका मार्ग निश्चत करना पड़ता है। अिस प्रकार निश्चित मार्गसे जीवनको चलानेके लिअे प्रयत्नपूर्वक जरूरी सद्‌गुण प्राप्त करने पड़ते हैं। और अुस प्रयत्नमें निश्चयकी जरूरत होती है। निश्चयके बिना किसी भी गुण पर मनुष्य दृढ़ नहीं रह सकता। हमारे चित्तमें केवल भावोंके जाग्रत होनेसे सद्‌गुणोंका अुद्‌भव या विकास नहीं होता। अिसके लिअे सदाचारकी जरूरत होती है। चित्तमें भाव जाग्रत होनेके बाद भी सदाचार या सत्कर्माचरणके मौके पर जब-जब हमारा मन पिछड़ जाय या हिम्मत हार जाय, तब-तब अुसे प्रोत्साहित करके अुचित आचरण पर लाने और आगे धकेलनेके

लिअे निश्चयके सिवा और कोअी अुपाय नहीं। अिसी तरह अनुचित मार्ग पर दौड़नेवाली वृत्तियोंको रोककर काबूमें लानेके लिअे निश्चयके अलावा दूसरा कोअी साधन नहीं है। अिसलिअे पुरुषार्थ और संयम दोनोंमें निश्चयका महत्त्व पहचानकर मनुष्यको जहां जहां जरूरत पड़े वहां वहां अुसका अुपयोग करके अपनी निग्रह-शक्ति बढ़ानी चाहिये। प्रयत्नसे मनुष्य अुसे बढ़ा सकता है। अुन्नतिके लिअे आवश्यक संकल्प-बल हमारी निग्रह-शक्ति पर आधारित है, यह जानकर मनुष्यको अुसके लिअे सतत प्रयत्नशील रहना चाहिये।

४

सद्‌गुणोपासना

शक्तिके साथ ही सद्‌गुणोंकी शुद्धि

हमें अपना जीवन अत्यन्त विचारपूर्वक चलाना चाहिये। अपनी शक्तियोंका प्रयत्नपूर्वक विकास करके अुनका निरन्तर सदुपयोग करना चाहिये। अिन शक्तियोंका हम केवल विकास ही करें, परन्तु अुनका सदुपयोग करना हमें न आये, तो वे शक्तियां हमारे और दूसरोंके लिअे भी अनर्थकारी बन सकती हैं। अिसलिअे शक्तिकी वृद्धिके साथ ही अुसकी शुद्धिका विचार, आग्रह और प्रयत्न जारी रखना अत्यन्त आवश्यक है। हमारे सद्‌गुणोंके कारण दूसरोंको थोड़ा भी अैहिक लाभ होता हो या अुनका कुछ कल्याण होता हो, तो हममें अैसा भाव या अहंकार अुत्पन्न न होना चाहिये कि हम अुन पर बड़ा अुपकार कर रहे हैं। सद्‌गुणी होनेमें हम वास्तवमें अपना ही सबसे ज्यादा कल्याण करते हैं। सद्‌गुणोंके अुपासकको सद्‌गुणोंमें ही तृप्ति रहती है। अिसके लिअे वह औरोंकी तरफसे मान-प्रतिष्ठा प्राप्त करनेकी कभी अिच्छा नहीं रखता। कोअी सद्‌गुण हमारा स्वभाव बना है या नहीं, अिसे पहचाननेकी यह महत्त्वपूर्ण निशानी है। सद्‌गुणके बारेमें कुछ विशेषता महसूस होना, अुससे अहंकार होना और अुसके कारण औरोंको तुच्छ समझना — ये सारी क्षुद्र मनोवृत्तियां हैं और किसी भी समय हमारे पतनका कारण बन

जाती हैं। वे हमारी अुन्नतिके रास्तेमें बाधक हैं। हमें समझना चाहिये कि जब तक हममें ये मनोवृत्तियां हैं, तब तक हम सद्गुणोंके सच्चे अुपासक नहीं बन सकते। सद्गुणी होनेके बजाय यह दिखानेमें सन्तोष मालूम होता हो कि हम सद्गुणी हैं, तो यह समझना चाहिये कि हममें दंभ है; और सद्गुणोंके लिअे हममें अहंकारका होना यह साबित करता है कि केवल सद्गुणोंसे हमारी तृप्ति नहीं होती। परन्तु अुसके लिअे अभी तक अहंकारकी जरूरत है। अतः यह समझना चाहिये कि जिस मात्रामें हममें अहंकार है, अुसी मात्रामें सद्गुणकी कमी है। सद्गुणका वास्तविक परिणाम आत्म-सन्तोष है। जिसे अिस आत्म-सन्तोषकी अपेक्षा अहंकारसे मिलनेवाला सुख या आनन्द श्रेष्ठ मालूम होता है, अुसके विषयमें यह कैसे कहा जा सकता है कि अुसमें सद्गुण आ गये हैं, वे अुसका स्वभाव बन गये हैं? और यह अहंकार अुसमें और क्या क्या दुर्गुण पैदा करेगा, अिसका क्या ठिकाना? जब तक हमारे ज्ञानमें, सद्गुणोंमें और नीतिमत्तामें स्वाभाविकता और पूर्णता नहीं आ जाती, तब तक अुससे हमारा पतन होनेका डर बना रहता है। मान, प्रतिष्ठा, दंभ, अहंकार — ये सब पतनके रास्ते हैं। श्रेयकी अिच्छा करनेवालेको अिस मार्ग पर कभी न जाना चाहिये। सद्गुण हमारा स्वभाव बन जायं, तो निरहंकारिता हममें अपने-आप आ जायगी। सदाचारी और सद्गुणी होनेमें ही हमारा सच्चा कल्याण है और अिसीसे हमें सच्ची शान्ति मिलेगी, यह हमें कभी न भूलना चाहिये। हमें क्षुद्र मोहमें न फंसना चाहिये। सद्गुणोंके कारण हममें मद पैदा हो, अहंकार निर्माण हो, तो हमें समझना चाहिये कि वे सद्गुण हमें हजम नहीं हुअे।

औरोंको परखनेकी सच्ची पात्रता

ज्यों ज्यों हमारी विवेक-शक्ति बढ़ेगी, हमारा चित्त शुद्ध होगा, त्यों त्यों ये सब बातें अपने-आप हमारे ध्यानमें आने लगेंगी। और हम अपने चित्तको, अुसकी वृत्तियोंको, सद्गुण-दुर्गुणोंको आसानीसे पहचान सकेंगे। हम अपने आपको जान सकेंगे तो ही जगतको जान सकेंगे। हमें अपनी ही परीक्षा करना न आये तो हम दुनियाकी परीक्षा कैसे कर सकेंगे? अेक घड़ी या यंत्रकी रचना अच्छी तरह हमारी समझमें आनेके बाद वैसी

दूसरी घड़ियों या यंत्रोंकी रचना ध्यानमें आते देर नहीं लगती। अिसी प्रकार हमारा चित्त, अुसकी वृत्तियां, अुसकी सुप्त-प्रकट अवस्थायें, अुनकी अुत्पत्ति, वृद्धि और क्षय, अुनकी सुसंगति-विसंगति, अुनका परीक्षण, पृथक्करण और वर्गीकरण, अुन वृत्तियोंके अन्तर्बाह्य स्थूल-सूक्ष्म परिणाम वगैरा सब हम जान सकें और अुसकी शुभ वृत्तियों और सद्‌गुणोंका अपनेमें निरहंकारिता आ जाने तक विकास करें और अिस सबमें से गुजरकर अंतिम अलिप्त अवस्था प्राप्त कर सकें, तो हम दुनियाको पहचानने योग्य हो सकते हैं। अपने आपको शुद्ध किये बिना हम जगतकी परीक्षा करें, तो अुसका गलत ही साबित होना संभव है। हमारी दृष्टि शुद्ध और निर्दोष न हो तो दुनियाके गुण-दोषोंका फैसला करनेमें गलती होना अधिक संभव है। हम जिस रंगका चश्मा पहनते हैं, अुसी रंगकी दुनिया हमें दीखने लगती है। यही हाल अिस विषयमें होगा। हम विकारवश होंगे तो दुनियाकी तरफ अुसी दृष्टिसे देखेंगे और अुसी दृष्टिसे अुसकी परीक्षा करेंगे। हम भावनावश होंगे तो हमारी दृष्टि और परीक्षा वैसी ही होगी; लोभी, लालची और दंभी होंगे तो वैसी होगी। यानी जैसी हमारी मानसिक अवस्था होगी, वैसी ही दुनिया हमें दिखाअी देगी। और हमारी वृत्तियों और भावनाओंके शमनके लिअे हम वैसा ही अुसका अुपयोग करेंगे। अिसमें न तो हमारी और जगतकी सच्ची परीक्षा है और न किसीकी सलामती है। यदि यह बात हम निश्चित समझ लें कि हमारी अपनी अुन्नतिमें ही हमारी और जगतकी परीक्षा और सबकी सलामती है, तो दूसरोंके और दुनियाके बारेमें गलत तर्कमें पड़ कर धोखा खाने या दूसरोंको धोखा देनेका कारण बननेका हमें अन्देशा न रहे।

अिससे आप यह न समझें कि जब तक हम पूर्ण शुद्ध, निर्विकार और प्रज्ञावान नहीं हो जाते, तब तक हम औरोंकी कुछ भी सेवा नहीं कर सकते। मैं आपसे आग्रहपूर्वक कहता हूं कि

चित्तशुद्धि और सद्‌गुणोंका सम्बन्ध

जब आप अपना चित्त शुद्ध करनेका प्रयत्न करते हैं, अुसी समय सद्‌गुणी बननेकी भी कोशिश कीजिये। आपमें सेवापरायणता नहीं होगी और अुस दिशामें आप पुरुषार्थ नहीं करेंगे तो आप सद्‌गुणी नहीं बन सकेंगे। दूसरोंके

क्रम जान साथ हमारे अच्छे-बुरे व्यवहारसे ही सद्‌गुण या दुर्गुणका निश्चय होता है। हमारा जो व्यवहार न्यायपूर्ण, परदुःख-निवारण करनेवाला, हमारी और दूसरोंकी अुन्नति करनेवाला और नैतिक दृष्टिसे दोनोंको लाभ पहुंचानेवाला हो वह सद्‌व्यवहार है और अिससे अुलटा हो तो दुर्व्यवहार। सद्-असद् व्यवहारकी यह सीधी-सादी व्याख्या है। अिससे सद्‌गुण-दुर्गुणका निर्णय किया जा सकेगा। सद्‌गुणोंके बिना आपमें सेवापरायणता टिक नहीं सकेगी। दूसरोंके साथ हमारे सम्बन्ध जिस मात्रामें अुन्नतिकारक होंगे, अुसी मात्रामें हमारे सद्‌गुणोंका विकास होगा। किसी भी सद्‌गुणका चित्तकी शुद्धिके बिना कभी संपूर्ण विकास नहीं हो सकता। मेरे कहनेका अर्थ यह है कि शुद्धि और सद्‌गुण-सम्पन्नताका अन्योन्य पोषक और सहायक सम्बन्ध जानकर आपको अिस विषयमें प्रयत्नशील रहना चाहिये। सद्‌व्यवहारके प्रयत्नसे ही अुसके दोष या पूर्णता हमारे ध्यानमें आती है। अिसलिअे हमेशा सदाचारी रहनेका प्रयत्न कीजिये। वृत्तियों और कर्मोंका सतत परीक्षण करके दोष ढूंढ़ निकालने चाहिये और अुन्हें सुधारनेकी कोशिश करनी चाहिये, तभी हमारे चित्तकी और साथ-साथ कर्मोंकी शुद्धि होती रहेगी; कर्मोंमें कुशलता, व्यवस्थितता और औचित्य आते जायंगे और वे निश्चित रूपसे सफल होते जायंगे। अिस तरह हम शुद्धि और पुरुषार्थ दोनोंकी दृष्टिसे पूर्णताकी ओर प्रगति करेंगे। दोनोंके मेलमें मानव-प्रकृतिकी पूर्णता है और सार्थकताकी सीमा है।

सद्‌गुणों द्वारा मानवताकी सिद्धि

शुद्धिके साथ सद्‌गुणों पर मैं अिसीलिअे जोर देता हूं कि पुरुषार्थके बिना सद्‌गुणोंकी प्राप्ति नहीं होती और पुरुषार्थ और सद्‌गुणोंके बिना केवल शुद्धिका जीवन-विकासकी दृष्टिसे कोअी महत्त्व नहीं। सद्‌गुणों और पुरुषार्थके बिना चित्तशुद्धि अेक प्रकारकी जड़ता भी सिद्ध हो सकती है। केवल शुद्धिके प्रयत्नमें निषिद्ध क्रियाओं, तज्जातीय वृत्तियों तथा सद्‌भावनाओंका अभाव माना गया है। परन्तु मनुष्यमें चेतन है, चित्त है, बुद्धि है, प्राण है, कर्मेन्द्रियां और ज्ञानेन्द्रियां हैं और अिन सबमें अगाध शक्ति भरी हुअी है। अनादि कालसे मानव-जातिमें सतत विकास

करनेवाले ज्ञान और संस्कारोंका, सद्भावनाओं और सद्गुणोंका तथा शील और पुरुषार्थका अुत्तराधिकार मनुष्यको मिला हुआ है। मानव-बुद्धि, चित्त और मनमें कितनी शक्ति सुप्त रूपमें मौजूद है, अिसका अभी पूरा पता नहीं लगा है। अुसकी प्रकट शक्तिसे शास्त्र, विद्याअें और कलाअें निर्माण हुअी हैं और हो रही हैं। अिन सब शक्तियोंका, सब तरहकी विद्या, कला, सम्पत्ति यानी कुल मिलाकर प्राप्त अुत्तराधिकारका अुपयोग केवल निष्क्रिय या निवृत्त होनेमें करना और सारी भावनाओं और पुरुषार्थोंका संकोच करते करते अंतमें अुनका सम्पूर्ण अभाव कर डालना या केवल जड़ता प्राप्त कर लेना मानवताका ध्येय नहीं है। चैतन्यकी पूर्णता अिसमें नहीं है। परन्तु प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्रकट होनेवाली विविध शक्तियोंकी शुद्धि-वृद्धि करके चैतन्यके अधिकाधिक शुद्ध और व्यापक रूपमें प्रगट होते रहनेमें मानवताकी चरम सीमा और चैतन्यकी पूर्णता है। यह महान अुद्देश्य पूरा करनेके लिअे शुद्धि और पुरुषार्थ तथा पावित्र्य और कर्तृत्वकी जरूरत है। अिसीमें जीवन-सिद्धि है।

(दैनिक प्रवचनसे)

५

गुण-विकास और निरहंकारिता

सद्गुणोंकी श्रेष्ठता और कनिष्ठता

प्रत्येक मनुष्यको जन्मसे ही गुणोंकी विरासत थोड़ी-बहुत मिली होती है। अुसके बाद संस्कार, शिक्षा, परिस्थिति, संगति, अनुकूल-प्रतिकूल संयोग, अनुभव-ज्ञान-विवेक-अिच्छा-संकल्पकी कम या अधिक मात्रा अित्यादि अनेक कारणोंसे अुसके गुणोंकी कम-ज्यादा मात्रामें वृद्धि होती है। मनुष्यमें किसी अेक ही गुणकी कभी स्वतंत्र रूपसे वृद्धि नहीं होती, परन्तु गुणोंके परस्पर आधारसे होती है। यह वृद्धि किस प्रकार होती है, यह बात सामान्य लोगोंके जीवनसे ध्यानमें नहीं आती। श्रेयार्थी और प्रयत्नशील मनुष्यके जीवनका परीक्षण करनेसे हम सद्गुणोंकी वृद्धिका

सकते हैं। सद्गुणोंकी परीक्षा अिससे होती है कि अुनके लिअे व्यक्तिको ज्ञानपूर्वक और सद्हेतुपूर्वक कितना कष्ट सहना पड़ता है। लेकिन यह परीक्षा भी सर्वांगमें ठीक नहीं है। अिसके लिअे व्यक्ति व्यक्तिके बीचके पूर्वसम्बन्धोंका भी विचार करना पड़ता है। कारण, प्रिय सम्बन्धवाले व्यक्तिके लिअे चाहे जितना त्याग करानेवाली मनोवृत्ति और बिलकुल अपरिचित व्यक्तिके लिअे अुससे कम त्याग करानेवाली मनोवृत्ति, अिन दोनोंमें मानसिक दृष्टिसे बहुत ही फर्क हो सकता है। अुदाहरणके लिअे, अपने माता-पिताके लिअे अथवा अपने साथ निकटका प्रेम-सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्तिके लिअे कोअी मनुष्य बहुत कष्ट सह सकता है, अिसी परसे विश्वासपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि वह बिलकुल अपरिचित व्यक्तिके लिअे सहानुभूतिपूर्वक कष्ट सहनेको तैयार हो जायगा। कारण, जहां शुरूसे ही प्रेम-सम्बन्ध होता है, वहां अेक-दूसरेको अेक-दूसरेसे सुखकी प्राप्ति भी हुअी होती है; और प्रेम, कृतज्ञता, वात्सल्य वगैरा भावनाओंकी वृद्धि भी हुअी होती है। अैसी स्थितिमें अेक-दूसरेके खातिर कष्ट अुठानेके लिअे जैसी मनःस्थिति जरूरी होती है, अुसकी अपेक्षा पहलेका कोअी सम्बन्ध न हो अैसे अपरिचित मनुष्यके लिअे कष्ट सहनेको तैयार होनेमें मनकी अधिक अूंची अवस्था जरूरी होती है। अिसलिअे कृतज्ञता, वात्सल्य वगैरासे दया, अुदारता, परोपकार आदि गुण श्रेष्ठ हैं। अिस दृष्टिसे विचार करें तो पहलेके प्रिय सम्बन्धवाले व्यक्तिके बारेमें अनुभव होनेवाली सहानुभूतिके बजाय अपरिचित व्यक्तिके प्रति सहानुभूतिका भाव पैदा होना ज्यादा अूंचा गुण है। और अप्रिय व दुःख देनेवाले व्यक्तिके प्रति मौका पड़ने पर सहानुभूति अनुभव होनेका भाव अुससे भी ज्यादा अूंचा गुण है। अिसलिअे जिस अवसर पर मनुष्यके गुण दिखाअी देते हैं अुस अवसर परसे, व्यक्तियोंके अेक-दूसरेके साथके पूर्वसम्बन्ध परसे, अुसके लिअे व्यक्तिको जो त्याग, संयम, विवेक, पुरुषार्थ करना पड़ा हो और अन्तमें अुससे किसको क्या लाभ हुआ आदि बातों परसे गुणोंकी श्रेष्ठता-कनिष्ठताका निर्णय करना अुचित होगा। सद्गुणोंके विकासका साधारण क्रम अिस प्रकार है। कनिष्ठ गुणोंकी अेक हद तक वृद्धि होनेके बाद अुनसे श्रेष्ठ गुणोंकी चित्तमें जागृति होती है और अुसके बाद दोनों प्रकारके सद्गुणोंका अधिकसे

अधिक अुत्कर्ष अेक ही समयमें हो सकता है। अितना ही नहीं, वे अेक-दूसरेका पोषण करते हुअे बढ़ते रहते हैं।

सद्‌गुणोंकी परीक्षा

सद्‌गुणोंकी परीक्षा केवल बाहरी परिणामसे करनेमें भूल भी हो सकती है। बाह्य परिणाम अकसर केवल परिस्थिति और संयोगों पर ही आधार रखता है, और वह परिस्थिति और संयोग व्यक्तिके अधीन नहीं होते। अिसलिअे सद्‌गुणोंकी परीक्षा अिस परसे करना ठीक होगा कि किसी व्यक्तिकी अुन गुणोंके प्रति कितनी निष्ठा है, अुनके लिअे अुसे कितना त्याग, विवेक और पुरुषार्थ करना पड़ा है, और कितना अन्तर्बाह्य परिश्रम वगैरा अुठाना पड़ा है। ये बातें विवेकशील और आत्म-परीक्षक व्यक्ति दूसरोंकी अपेक्षा स्वयं ही यथार्थ रूपमें जान सकता है। सद्‌भावनाओंका चित्तमें अुठनेवाला वेग, अुसके कारण हुअी चित्तकी अवस्था, अुस समय अुठाये गये शारीरिक कष्ट और अुसके बाद भावनाओंका शमन अित्यादि बातोंका क्रम अथवा अितिहास बाह्य जगत न जाने तो भी व्यक्ति स्वयं अपने अनुभवसे ये सब बातें जानता है। मनुष्यमें सद्‌गुणोंके साथ दुर्गुणोंकी वृद्धि भी अेक ही समय होती जान पड़े, तो अुन सद्‌गुणोंके बारेमें भरोसा नहीं रखा जा सकता। अितना ही नहीं, अिस बारेमें यह भारी शंका पैदा होती है कि क्या वे सद्‌गुण सचमुच सद्‌गुण ही हैं? परस्पर-विरोधी गुण-अवगुणोंकी वृद्धि अेक ही समय नहीं हो सकती। अुदाहरणके लिअे, दया, परोपकार, अुदारता, सरलता — ये सब परस्पर पोषक गुण हैं। अिसलिअे अिन सबकी वृद्धि अेक ही समय हो सकती है। अिसी तरह दुष्टता, कपट, अन्याय, विश्वासघात वगैरा दोष भी अेक-दूसरेके पोषक हैं। परन्तु कपट और परोपकारकी अेक ही समय वृद्धि या विकास नहीं हो सकता। अैसा होता दिखाअी दे तो वह परोपकार-वृत्ति सच्ची नहीं, परन्तु कार्य साधनेकी युक्ति ही हो सकती है। आम तौर पर गुण गुणोंके और अवगुण अवगुणोंके पोषक बनते हैं। मनुष्यके चित्तमें गुण-अवगुणका विचार समय समय पर अुठता ही रहता है। अिस प्रकारके कर्म भी अुसके हाथों होते ही रहते हैं। यद्यपि मनुष्य गुण-दोषके सम्मिश्रणसे बना हुआ है, तथापि यह संभव नहीं कि अेक समयके गुण-दोष या अेक

समयकी चित्तस्थिति दूसरे समय वैसीकी वैसी पाअी जाय। अुसमें सतत परिवर्तन होता रहता है। यह बात जल्दी नहीं दिखाअी देती, परन्तु लम्बे समय तक अवलोकन करनेसे ध्यानमें आ जाती है। कारण, परिवर्तनकी क्रिया बहुत ही सूक्ष्म गतिसे होती है। स्थूल और स्पष्ट रूपमें अुसका परिणाम नजर आनेमें कुछ समय लगता है। परन्तु सद्‌गुणोंका प्रयत्नपूर्वक अनुशीलन करनेवाले साधकको अिस विषयमें लम्बे समय तक राह नहीं देखनी पड़ती। वह अभ्यासकी सहायतासे अवगुणोंका नाश करके सद्‌गुणोंकी वृद्धि करनेमें अपनी मानसिक शक्तिका अुपयोग करता रहता है। अिससे अुसकी चित्तकी स्थितिमें तेजीसे परिवर्तन होता जाता है; और परीक्षण द्वारा यह बात वह जानता भी रहता है। जब अिस प्रकार प्रयत्न जारी रहता है, तब अुसका जो गुण पूर्णताको प्राप्त हो जाता है, अुसके लिअे अुसका अहंकार नष्ट हो जाता है। अर्थात् वह निरंहकारी होता है। अुसे अपने गुणोंके लिअे गर्व, घमंड नहीं होता, अथवा अपने गुणके कारण — विशेषताके कारण — वह दूसरोंको हीन या तिरस्कारपात्र नहीं समझता। यह स्थिति किसी भी गुणके बारेमें प्राप्त की जा सकती है, यदि अुस गुणके साथ मनुष्यमें नम्रताका विकास हुआ हो।

६

अन्यायका प्रतिकार

मानवताकी दृष्टिसे विचार करने पर अैसा लगता है कि हममें दिखाअी देनेवाले अेक दोषके बारेमें आपके सामने कुछ कहना चाहिये।

न्याय-संवेदनाका अभाव

यह कहनेमें कोअी हर्ज नहीं कि दुर्जन, लोभी या अुन्मत्त मनुष्य किसी व्यक्ति या समाजको सताता हो, तो अुसका प्रतिकार करके पीड़ित व्यक्ति या समाजको दुःखमुक्त करनेकी वृत्ति हममें लगभग नहीं जैसी है। अिसका कारण हमारी कअी प्रकारकी दुर्बलता तो है ही; परन्तु यह भी है कि दूसरेके दुःखके प्रति जितनी सहानुभूति हममें होनी चाहिये अुतनी नहीं होती।

हमारी 'अपनेपनकी' व्याख्या और मर्यादा बहुत संकुचित है। अिसलिअे दूसरेकी ओरसे किसीको दुःख होता हो, तो अुसे देखकर हमारे चित्तमें कोअी भावना पैदा नहीं होती। कदाचित् हो भी जाय तो दुःख-निवारण करनेके लिअे आवश्यक धैर्य, पुरुषार्थ और सामर्थ्य भी हममें नहीं होता। दूसरी बात यह है कि हममें सामूहिक भावना नहीं है। फिर भी किसी अवसर पर न्यायका पक्ष लेकर दूसरे पर होनेवाले अन्यायका प्रतिकार करनेके लिअे कोअी खड़ा हो जाय, तो अुसको मदद देनी ही चाहिये, अितनी न्याय-संवेदना भी समाजमें नहीं है। और अिसलिअे अैसे झगड़ोंमें हम अकेले पड़ जायंगे, अन्याय करनेवालेको अुसके साथियोंकी मदद होनेसे सबके सामने हमारे अकेलेकी कुछ नहीं चलेगी, अिस प्रकार सब तरफसे असहाय महसूस करनेके कारण अुसकी भी न्याय और प्रतिकारकी वृत्ति दब जाती है; और अैसी घटनाअें बार-बार होनेसे और अुनके अनुभवसे अुसकी यह वृत्ति आगे चलकर जड़ हो जाती है और लगभग नष्ट हो जाती है। परन्तु अिसमें शक नहीं कि यह हमारी और हमारे समाजकी अधोगतिकी निशानी है।

हम सुनते हैं कि रास्तेमें, सफरमें या गांवमें कहीं न कहीं अन्याय होता है। कभी-कभी हम प्रत्यक्ष भी देखते हैं। लेकिन हमें अिस बारेमें कुछ करने जैसा नहीं लगता। अन्यायी अन्याय करता है, जालिम जुल्म और दुष्टता करता है, परन्तु समाजकी तरफसे अुसे कोअी दंड नहीं मिलता या अुसका प्रतिकार नहीं होता। हमारे गांवमें, पड़ोसमें, बल्कि हमारे घरमें भी अन्याय होता हो — कहीं सास या ननद बहू या भाभीको सताती हो, कहीं पति पत्नीको पीटता हो, विधवा पर सब ओरसे जुल्म होता हो और अुसकी दुर्दशा होती हो, बिना मां-बापके बच्चे पर घरमें अन्याय होता हो या साहूकार कर्जदार पर अन्याय करता हो — और हम यह सब अपनी आंखों देखते हों, तो भी अिन सबको चुपचाप सहन करते रहनेकी हमें जमानेसे आदत हो गअी है। अिसमें अेक प्रकारकी सामाजिक अुपेक्षा-वृत्ति और दूसरोंके दुःखके प्रति लापरवाहीकी भावना है।

मानवताकी दृष्टिसे यह हमारी बहुत बड़ी कमी है। दूसरों पर होनेवाले अन्यायका प्रतिकार करनेकी वृत्तिका अभाव ही यह सिद्ध करता है कि हममें सामूहिक भावना नहीं है। और अब तककी हमारी जड़ताके कारण यह भावना पैदा करना भी कठिन हो रहा है। समाजमें ही वह भावना कम होनेके कारण खुद हम पर भी अन्यायका मौका आ पड़ने पर हमें दूसरोंकी सहायता नहीं मिलती। सहायताकी हमें आशा नहीं होती, अिसलिअे अैसे अवसर पर अन्यायका प्रतिकार करने या अुसके खिलाफ लड़नेकी हमारी हिम्मत नहीं होती। किसीका किसीको सहारा नहीं — अैसी स्थिति हम सबकी होनेसे अपने पर होनेवाला अन्याय चुपचाप सह लेनेकी निष्प्राण वृत्ति ही हमारे खूनमें समा गअी है। अिससे हममें पंगुता, भीरुता, दूसरोंके दुःखके बारेमें बेपरवाही, जड़ता, किसी भी हालतमें दूसरोंके लिअे खुद संकटमें न पड़नेकी सावधानी और धूर्तता वगैरा जो दोष आ गये हैं और आज हमारा स्वभाव बन गये हैं, वे अत्यन्त निंद्य और मानवताके लिअे कलंकरूप हैं और कअी प्रकारसे हमारी अवनतिका कारण बन गये हैं। अिन दोषोंके साथ-साथ दूसरे भी कअी दोष हममें पैदा होकर सतत बढ़ते रहे हैं। शुरूसे ही हममें सामूहिक भावना बहुत थोड़ी है और हम यह सिद्ध करनेके अुलटे प्रयत्नमें रहते हैं कि यही स्थिति ठीक है। दूसरोंके दुःखके प्रति लापरवाही, अुदासीनता और अिससे हममें आनेवाली पंगुता और भीरुताको छिपानेका प्रयत्न हम "अिस दुनियामें कोअी किसीका नहीं, हरअेकको अपने कर्मका फल भोगना पड़ता है, अुसमें दूसरेका कोअी अुपाय नहीं चलता" जैसे कर्म-सिद्धान्तके निष्प्राण सूत्रोंसे करते आये हैं।

अवनतिका कारण सामूहिक वृत्तिका अभाव

हमारी पुरानी कल्पनाके अनुसार धर्मशालाअें, मन्दिर, अन्नक्षेत्र, सदाव्रत और तालाब वगैरा तथा नअी कल्पनाके अनुसार अस्पताल, दवाखाने, कॉलेज, सेनिटोरियम वगैरा स्थापित करने या खोलनेकी प्रवृत्ति लोगोंमें है। परन्तु अिनकी तहमें भी ज्यादातर पुण्य और कीर्ति कमानेकी ही आकांक्षा होती है। मनुष्यके लिअे प्रेम, मित्रता, सहानुभूति या निःस्वार्थता,

अन्याय-प्रतिकारके तत्त्वका परिचय

अुदारता वगैरा भावनाओंसे ये काम शायद ही होते दीखते हैं। पारस्परिक प्रेमके कारण अेक-दूसरेके लिअे कष्ट सहनेकी वृत्ति हममें है; परन्तु जिसके साथ हमारी कोअी जान-पहचान या पूर्व-सम्बन्ध न हो अैसे व्यक्ति पर अन्याय होता हो, तो अुसका विरोध या प्रतिकार करनेके लिअे खुद साहस करने, संकटमें पड़कर अपना सुखी और सुरक्षित जीवन कठिनाअीमें डालनेकी वृत्ति आज हममें नहींके बराबर है। अिस वृत्तिकी कल्पना हममें कभी थी ही नहीं, सो बात नहीं; परन्तु हमारी दुर्बलता, धर्म और स्वामीनिष्ठा अित्यादि सम्बन्धी झूठी कल्पनाओं आदि अनेक कारणोंसे अुस वृत्तिका पोषण नहीं हुआ। अिसलिअे वह नष्टप्राय हो गअी है। विचारवान लोगोंको यह ज्ञान था कि वह वृत्ति अिष्ट है, वह मनुष्यकी अुन्नतिकी परिचायक है और समाजको अुसकी जरूरत है। कहीं-कहीं पुराणकारोंने अिस वृत्तिका परिचय कराया है। दधीचि, शिबि वगैराकी कथाअें यही सिद्ध करती हैं। बौद्ध ग्रंथोंकी पारमिताकी बातें अिसी सद्‌वृत्तिका महत्त्व बताती हैं। परन्तु अुनमें अन्यायके प्रतिकारकी अपेक्षा सहानुभूति, दया और अहिंसाकी वृत्तियां ही खास तौर पर बताअी गअी हैं। अिसी तरह शरणमें आये हुअेकी रक्षाके लिअे कष्ट सहनेके अुदाहरण भी कहीं-कहीं मिलते हैं। महाभारतके भीम-बकासुर-युद्धकी तहमें कृतज्ञता और अन्याय-प्रतिकारका तत्त्व है। अपनेको आश्रय देनेवाले ब्राह्मण-कुटुम्ब पर आ पड़नेवाली आपत्ति भीमने आगे आकर अपने सिर ले ली और कुन्तीने आनन्दसे अुसे सम्मति दी। जहां दया, सामर्थ्य और आत्म-विश्वास भरपूर होते हैं, वहीं दूसरे पर होनेवाले अन्यायका प्रतिकार करनेकी वृत्ति पैदा होती है; और वहीं वह वृद्धि पाती है तथा मौका आने पर विजयी होती है। महाभारतकी अुस कथा और भीमकी अुस समयकी स्थिति और मनोवृत्ति पर ध्यान देनेसे हमें यह बात स्पष्ट समझमें आ जाती है। अपने शरीरका बलिदान देकर बकासुरकी क्षुधा शान्त करनेकी कल हमारी बारी है, यह खबर जब अेकचक्रा नगरीमें पांडवोंको आश्रय देनेवाले ब्राह्मण-कुटुम्बको लगी, तो तुरन्त घरमें रोना-पीटना शुरू हो गया। अुसे सुनकर भीमने अपनी माता कुन्तीसे जो कुछ कहा, अुसका वर्णन कवि मोरोपंतने अेक आर्यामें किया है:

'भीम म्हणे कुंतीला ब्राह्मणसमुदाय रडति कां पूस।
त्यांचें दुःख हराया अग्नीला भार काय कापूस॥'

भीम कुन्तीसे कहता है: 'ब्राह्मण-कुटुम्ब क्यों रो रहा है, यह अुनसे पूछ। अुनका दुःख दूर करना मेरे लिअे क्या कठिन है? अग्निके लिअे कपास जलाना क्या कठिन है?' जिसमें किसीका दुःख दूर करनेकी प्रचंड शक्ति होती है, अुसके मन पर यह बात जमाना जरूरी नहीं होता कि अुसे दूसरेके दुःखमें भाग लेना चाहिये।

बहुत साल हो गये, बम्बअीके हैंगिंग गार्डनमें अेक अमीर आदमीकी हत्या करके सशस्त्र हत्यारे मोटरमें भागे जा रहे थे। अुस वक्त फौजके दो-तीन अंग्रेज अफसरोंके स्वयं निःशस्त्र होते हुअे भी अुन पर धावा करके अुन्हें पकड़नेकी साहसपूर्ण घटना अिस अवसर पर याद आती है। अुस समय दूसरे सैकड़ों लोग भी अुस जगह मौजूद थे। परन्तु अुन अफसरोंके सिवा अन्य किसीकी अुन हत्यारों पर टूट पड़नेकी हिम्मत नहीं हुअी।

मानवताकी व्याख्या

आज हममें अिस प्रकारकी न तो शक्ति है और न वृत्ति ही। परन्तु आप अितनी बात ध्यानमें रखिये कि यदि आपको मनुष्यकी तरह जीना हो, तो स्वयं अपने पर होनेवाला अन्याय तो कभी आपको सहन करना ही न चाहिये, परन्तु आपकी मौजूदगीमें दूसरों पर होनेवाला अन्याय भी आपको सहन नहीं होना चाहिये। हमारी यह मान्यता है कि जो दूसरेका अन्याय सहता है परन्तु दूसरे पर अन्याय नहीं करता, जो दूसरेका दिया हुआ दुःख सह लेता है परन्तु किसीको दुःख नहीं देता, जो दूसरेके कपट और धूर्तताका शिकार बनता है परन्तु खुद किसीके साथ कपट नहीं करता, किसीको ठगता नहीं और किसीके साथ धूर्तता नहीं करता वह सज्जन है। परन्तु मैं यह कहता हूं कि जो न स्वयं किसी पर अन्याय करता है और न अपने पर या दूसरे पर किसीका अन्याय सहता है, जो न स्वयं किसीको दुःख देता है और न कोअी निष्कारण अुसे या दूसरेको दुःख दे तो अुसे सहन करता है, जो न स्वयं कपट करता है और न किसीका कपट चलने देता है, जो न स्वयं किसीको धोखा देता है और न किसीसे

धोखा खाता है, जो न किसीके साथ धूर्तता करता है और न किसीकी धूर्तता चलने देता है, वह सज्जन है और वही मनुष्य है। मैं मानता हूं कि अुसीमें सच्ची मानवताका विकास हुआ है।

अिस सब परसे यह बात आपके ध्यानमें आअी होगी कि मनुष्य स्वयं केवल सहनशील रहे, अिसीसे अुसका मानव-कर्तव्य पूरा नहीं हो जाता, अिसीमें मानव-धर्मकी समाप्ति नहीं हो जाती। जड़ता, पंगुता, दुर्बलता, भीरुता, अकर्तृत्व वगैरा दोष अपनेमें कायम रखकर हम मानवता प्राप्त नहीं कर सकते। हममें रहनेवाली अधार्मिक वृत्तियोंका नाश करके अपना जीवन सात्त्विक और धार्मिक बनानेकी जितनी जरूरत है, अुतनी ही जरूरत व्यक्ति और समाज दोनोंकी अुन्नतिकी दृष्टिसे दूसरोंकी स्वैरता और दुष्टताको मन-कर्म-वचनसे रोकनेका प्रयत्न करनेकी भी है। अिस विषयमें निराग्रही और निराकांक्षी रहनेसे काम नहीं चलेगा। पुरुषार्थके बिना यह बात नहीं हो सकेगी। अधार्मिक या अन्यायी प्रवृत्तिको हम सब रोकते रहेंगे, तो ही दुष्ट मनुष्यमें रहनेवाला सुप्त सत्त्व जाग्रत हो सकेगा और वह धर्ममार्गकी ओर मुड़ सकेगा। अिस मार्गमें हमें समय समय पर संतप्त और क्षुब्ध होनेके मौके आयेंगे और अनेक प्रकारके कष्ट भी सहने पड़ेंगे। परन्तु अैसे वक्त हमें अपनी न्यायवृत्तिको जाग्रत करके दूसरोंकी अधार्मिकताको रोकना होगा। मौका पड़ने पर अपनी सारी भीतरी व बाहरी शक्ति अिकट्ठी और अुत्तेजित करके हमें प्रयत्नकी पराकाष्ठा करनी पड़ेगी। परन्तु अुदासीन रहनेसे या सिर्फ क्रोधसे भर जानेसे या सिर्फ परेशान होनेसे कभी काम नहीं चलेगा। हमें निश्चयी और सतत प्रयत्नशील रहना चाहिये। तभी हम अपना कर्तव्य पूरा करनेका सन्तोष प्राप्त कर सकेंगे।

(दैनिक प्रवचनसे)

७

निन्दा-त्याग

चित्तशुद्धिकी दृष्टिसे अेक महत्त्वकी बात मैं आपके ध्यानमें लाना चाहता हूं। श्रेयार्थी मनुष्यको अिस बात पर बहुत ध्यान देना चाहिये।

निन्दाका चित्त पर होनेवाला दुष्परिणाम

चित्तको शुद्ध रखनेकी अिच्छा करनेवालेको हरअेक अशुद्ध विषयसे दूर रहना चाहिये। चित्तका अेक अैसा धर्म है कि शुद्ध या अशुद्ध किसी भी विषयका चिन्तन ग्राह्य या त्याज्य किसी भी निमित्तसे जारी रहे, तो अुसका चित्त पर थोड़ा-बहुत स्थायी संस्कार रहता ही है। शुद्ध विषयका संस्कार हमारे चित्त पर जितना दृढ़ होगा, अुतना वह हमारे लिअे कल्याणप्रद ही सिद्ध होगा। अिसलिअे हम चाहते हैं कि वह दृढ़ ही रहे। परन्तु अशुद्ध विषयका चिन्तन, भले ही त्यागकी भावनासे हो, हमारे चित्त पर किसी न किसी प्रकारका संस्कार डाले बिना नहीं रहता। यह बात ध्यानमें रखकर हमें अिस बारेमें सावधान रहना चाहिये। अिसके लिअे हमें सबसे पहले परनिन्दाके बारेमें सचेत रहना चाहिये। निन्दाका हमारा हेतु कितना ही शुद्ध क्यों न हो, वह हमेशा किसी बुरी बातके बारेमें ही होती है। अैसे वक्त हम अनजाने अुसका जो चिन्तन करते हैं, वह कोअी न कोअी अनिष्ट संस्कार हमारे चित्त पर छोड़ जाता है। वह संस्कार आगे जाकर कब, किस कारणसे और कैसी स्थितिमें जाग्रत होकर हमें सतायेगा, अिसका भरोसा नहीं। अिसलिअे साधकको अिस बारेमें जाग्रत रहकर निन्दाका अवसर सदा टालना चाहिये। मैंने अैसे साधक और श्रेयार्थी देखे हैं, जिनकी बुद्धि पहले शुद्ध थी; परन्तु दुराचारी मनुष्योंके साथ दुराचरणके विरुद्ध अुन्हें समय-समय पर जो वाद-विवाद करना पड़ा, अुसके परिणाम-स्वरूप अन्तमें अुनकी बुद्धि भी नष्ट हो गअी और वे कुमार्गमें लग

गये। अिसका कारण यही है कि त्याज्य विषयका खंडन करनेके निमित्तसे अुन्हें समय-समय पर अुसका जो चिन्तन करना पड़ा, अुसके संस्कार अुनके चित्त पर अधिकाधिक जमा होते रहे। और अुनकी मति यद्यपि पहले शुद्ध थी, फिर भी अुनकी मूल अिच्छाके विरुद्ध अुन संस्कारोंका अनिष्ट परिणाम अुनके जीवन पर हुआ। त्यागके निमित्तसे, निषेधके हेतुसे की गअी निन्दा अंतमें हमारा अकल्याण ही करती है। अिसलिअे हमें निन्दासे दूर रहना चाहिये। किसीके भी दुराचरणकी चर्चा या चिन्तनमें न पड़नेमें ही हमारी सुरक्षा है।

निन्दासे अनजानमें प्राप्त होनेवाला रस

समाजमें कोअी नैतिक दुर्घटना घटती है, तो धीरे-धीरे अुसकी चर्चा शुरू हो जाती है। लोगोंके लिअे वह अेक जिज्ञासाका, चर्चाका और अेक प्रकारसे अपनी नीति-सम्बन्धी निष्ठा और श्रेष्ठता दिखानेका अप्रत्यक्ष रीतिसे अच्छा मौका बन जाता है। बार-बार अुसी विषय पर आपसमें चर्चा होती है और बादमें अुससे सबका मनोरंजन भी होने लगता है। परनिन्दामें अपनी पवित्रताके आभासका आनन्द होता है और दूसरेके प्रति हमारे मनमें अीर्ष्या हो, तो अुसका कुछ अंशोंमें शमन होनेका सन्तोष हमें मिलता है। अिसके सिवा मनुष्य जिस विषयके प्रति अरुचि दिखाकर अुसका निषेध करता है, अुसके प्रति वह कितना ही तिरस्कार दिखानेका ढोंग करे या आभास पैदा करे, तो भी अुस विषयकी चर्चामें ही अुसे थोड़ा-बहुत रस आने लगता है। विषयोंका रस मनुष्य कअी तरहसे ले सकता है। त्यागबुद्धिसे किये गये वर्णन-चिन्तनमें अूपर अूपरसे देखने पर रसानुभव न लगता हो, तो भी सूक्ष्मतासे जांच करने पर पता चलेगा कि मनुष्य अिस निमित्तसे भी रसानुभव लेता हुआ दिखाअी देता है। और बिलकुल पहले ही मौके पर न हो, तो भी ज्यों-ज्यों विषयकी चर्चा बढ़ जाती है, त्यों-त्यों अुसमें रस पैदा हुअे बिना नहीं रहता। चित्तका यह धर्म है। अिसमें विद्वान-अविद्वान, सज्जन-दुर्जन, साधक और साधारण मनुष्यका भेद नहीं है।

जिस विषयकी तरफ हमारी प्रकट या सुप्त वृत्ति होती है अुस विषयकी हमें प्राप्ति न हो, तो जिसे होती है अुसके प्रति हमारे मनमें क्रोध और किसी भी अुपायसे क्रोध शान्त न हो तो औीर्ष्या और मत्सर पैदा होते हैं। अिन सबकी अुत्पत्ति अभिलाषासे होती है। जहां अभिलाषा ही नहीं होती, वहां दुःख नहीं होता, क्रोध नहीं होता और मत्सर भी नहीं नहीं होता। मानव-प्रकृतिके अिस मनोधर्मसे आप जान सकेंगे कि दूसरोंके पतनकी हम निन्दा क्यों करते हैं और अपनेको पतनसे बचानेके लिअे हमें क्या करना चाहिये। अपनी और समाजकी नीतिकी रक्षा करनेकी जिम्मेदारी हम सब पर है। मगर अुसे पूरा करनेका मार्ग निन्दा या व्यर्थ चर्चा नहीं है। अैसा करके हम अपनी रसवृत्तिका पोषण करते हैं। शब्दमें कम सामर्थ्य नहीं है। रसवृत्तिको अुत्तेजित करने और किसी अंशमें अुसका शमन करनेका सामर्थ्य शब्दमें है। दैवयोगसे प्रत्यक्ष पतनकी हमारी परिस्थिति न हो, तो भी हम दूसरी अिन्द्रियोंको निन्दा द्वारा अपवित्र तो करते ही हैं।

निन्दाके कारण रसवृत्तिकी जागृति

निन्दासे हममें और समाजमें अनेक दोष पैदा होते हैं। अिससे जिन छोटे बच्चोंकी समझमें यह विषय नहीं आता, अुनके मनमें भी अुसके बारेमें जिज्ञासा पैदा होती है। अिसके कारण बचपनसे ही अुनके मन पर बुरे संस्कार पड़ते रहते हैं। जिस विषयके बारेमें व्यक्तिगत, पारिवारिक या सामाजिक नीतिमत्ताकी दृष्टिसे मौन रखना ही श्रेयस्कर है, अैसे विषयकी चर्चासे स्त्री-पुरुष सबके मनमें अेक प्रकारकी असभ्यता पैदा होती है। वह असभ्यता ही मनुष्यकी अुन्नतिमें बाधक और अवनतिमें सहायक बनती है। अिसलिअे अिन सब बातोंसे आप दूर रहें।

हरअेक व्यक्तिमें अच्छे और बुरे दोनों प्रकारके संस्कार — कोअी सुप्त और कोअी प्रकट रूपमें — होते हैं। वे हममें बीजरूपमें रहते ही हैं। जब हम किसी नैतिक दुर्घटनाके विषयमें सुनते और चर्चा करते हैं, तब हममें कैसी वृत्तियां जाग्रत होती हैं, अिसकी हमें जांच करनी चाहिये। घटनाके विषयके प्रति जब हम तिरस्कार दिखाते हैं, तब हमारे चित्तमें

निषेध और प्रीतिका मिश्रण

सचमुच अुस घटनाके प्रति तिरस्कार होता है या रस, अिसकी हमें खोज करनी चाहिये। अपने मनकी अच्छी तरह जांच किये बिना यह भेद हमारी समझमें नहीं आता, क्योंकि हमारे मनमें अनेक विषयोंके लिअे प्रीति भरी रहती है। अेक ओर हम अुनके प्रति वैराग्य, अरुचि और निषेध दिखाते हैं, तो दूसरी ओर अुन्हीं विषयोंकी चर्चामें हमारी अुन विषयों सम्बन्धी मूल प्रीति जाग्रत होती है और वह हमें चर्चाकी तरफ अधिकाधिक खींच ले जाती है। परन्तु यह बात सूक्ष्म निरीक्षणके बिना हमारे ध्यानमें नहीं आती। अिस प्रकार निषेध और रस, दोनोंके मिश्रणमें चर्चा जारी रहती है और हरअेक चर्चा करनेवालेको अैसा महसूस होता रहता है कि हम सब नीतिशुद्ध और नीतिनिष्ठ हैं। परन्तु अिन बातोंके परिणामका विचार करने पर लगता है कि ये चीजें श्रेयार्थीकी अुन्नतिमें अुपयोगी होनेके बजाय अुसकी अवनतिका ही कारण बनती हैं। विवेककी दृष्टिसे देखने पर अैसा लगता है कि अनुचित घटना-सम्बन्धी चर्चामें विषयका रस, दूसरोंके प्रति अीर्ष्या-मत्सर, अपनी नीतिमत्ताके बारेमें भूलभरी श्रेष्ठ भावना और दंभ आदि बातें ही मुख्यतः होती हैं।

घटनाके अवसर पर हमारा कर्तव्य

अैसी किसी अनुचित घटनाके मौके पर सचमुच दूसरोंका कर्तव्य कब पैदा होता है, अिसका भी विचार करनेकी जरूरत है। अनुचित घटनाका विषय बननेवाले व्यक्तिके साथ हमारा निकट सम्बन्ध हो, हम पर अुसकी विशेष नैतिक या अन्य जिम्मेदारी हो, हमारी या हमारे नजदीकके दूसरे लोगोंकी अुसके आचरणसे प्रत्यक्ष हानिकी संभावना हो, अुसके कारण समाजकी नीतिमत्ताको खतरा हो, तो अैसे प्रसंग पर हमारा कर्तव्य अुपस्थित हो जाता है। केवल जिज्ञासा, निन्दा या चर्चाके लिअे अुसमें भाग लेनेकी जरूरत नहीं।

निन्दा पतितके अुद्धारका अुपाय नहीं है

अनुचित घटनामें फंसे व्यक्तिकी अवनतिका हमें सचमुच दुःख हो, तो क्या हम बाहर अुसकी चर्चा या निन्दा करेंगे? अैसे अवसर पर निन्दा या चर्चा करनेवालेको विचार करना चाहिये कि हमारी लड़की या लड़का, मां, बाप, बहन, भाअी या और कोअी हमारे घरका या निकटका व्यक्ति अैसी स्थितिमें होता तो हम क्या करते? दूसरोंके साथ अुसकी निन्दा

और चर्चा करते फिरते या अिस बातकी किसीको भी खबर न लगने देकर अत्यन्त सहानुभूतिपूर्वक अुस व्यक्तिको अवनति या संकटसे बचाने और सुधारनेका प्रयत्न करते? जहां गहरी सहानुभूति होती है, जहां सच्चा दुःख होता है, वहां मनुष्य अपनी करुणासे, अपने प्रेमसे, दूसरोंको अवनति या संकटसे निकालनेकी कोशिश करता है। जो अपने आपको नीतिमान मानते हैं और दूसरोंकी अवनति देखकर अुनकी निन्दा करते हैं, अुन्होंने क्या कभी विचार किया है कि निन्दासे वे आज तक कितनोंका सुधार कर सके हैं? जिनकी अवनतिके लिअे अुन्हें दुःख होता है, अुनमें से अेकसे भी कभी हृदयपूर्वक, भावनापूर्वक प्रेमकी दो बातें कहनेका मौका अुन्हें याद आता है? अुनका हृदय करुणा, अनुताप और पवित्रतासे भरनेका अुन्होंने कभी प्रयत्न किया है? मानव-प्रकृति; व्यक्तिके विकास, भावना और संस्कार; अुसकी परिस्थिति, अुसके अनु-कूल-प्रतिकूल संयोग; अुसके पतन और अभ्युदयके कारण; कभी-कभी होनेवाली अुसकी अगतिक या असहाय अवस्था; मनुष्यमें पैदा होनेवाली आयुगत वृत्तियां, अिच्छाअें और वासनाअें; अुनके बाहर आने और अपनी अुचित जरूरतें पूरी करनेके आवश्यक सरल और प्रामाणिक साधनों और मार्गका अभाव; मनुष्यकी सामाजिक, कौटुम्बिक और व्यक्तिगत अवस्था; जीवनमें अनेक प्रकारसे होनेवाली परेशानी — अिन सबका विचार किसी भी अनुचित घटनाके मौके पर निन्दा करनेसे पहले कोअी करता है?

पतितके प्रति अनुकम्पा और अपने विषयमें निरहंकारिता

नीतिमान समझे जानेवाले मनुष्योंको हमेशा प्रतिकूल परिस्थि-तियोंमें से गुजरनेका मौका आया होता, तो वे नीतिमान रह पाते या नहीं अिस बारेमें शंका ही है। मनुष्यकी स्थितिका आधार ज्यादातर अनुकूल-प्रतिकूल संयोगों पर, परिस्थिति पर होता है। अिसीलिअे जिसे श्रेयकी साधना करनी है, अुसे सदा सद्व्यवसाय, सद्वाचन, सत्संग और अच्छा वातावरण बनाये रखना चाहिये। खुद होकर कभी प्रतिकूल संयोगोंमें नहीं पड़ना चाहिये। किसी कारणसे अैसा अवसर आ ही जाय, तो अुससे भरसक जल्दी बाहर निकल जाना

चाहिये। बाहर न निकला जा सके तो अुतने समय तक अत्यन्त जाग्रत और यथासंभव मर्यादामें रहना चाहिये। अिसमें भूल की जाय या अनजाने हो जाय, तो अुसका बुरा परिणाम थोड़े-बहुत अंशमें मनुष्य पर हुअे बिना नहीं रहता। कैसे संयोगोंमें, कब और किस तरीकेसे मनुष्यकी दुर्वृत्तियां जाग्रत होकर अुसे विपरीत परिणाम तक घसीट ले जायंगी, अिसका कोअी ठिकाना नहीं। अिसलिअे अपनी नीतिमत्ताके बारेमें किसीको अहंकार नहीं रखना चाहिये। दूसरोंके प्रति सदा अनुकम्पा रखनी चाहिये। शक्ति हो तो सहृदय बन कर किसीको पतनसे बचानेकी कोशिश की जाय। लेकिन अुसे नीच समझकर अुस पर क्रोध न किया जाय; और दिलमें भी हमें कभी अैसा न लगना चाहिये कि अपने पतनसे वह सुखी हुआ है। सुखी हुआ अैसा लगे तो ही अुसके प्रति अीर्ष्या और मत्सर पैदा हो सकता है। लेकिन अैसा लगे कि अुसका सचमुच पतन हुआ है, तब तो हमारे चित्तमें अुसके लिअे दया ही अुत्पन्न होगी।

श्रवणेन्द्रियकी शुद्धि

अिसीके साथ आपको अेक और महत्त्वकी बात बताता हूं। अिस आशासे कि आपकी ओरसे अिस मामलेमें कोअी अुपाय मिल जायगा, कोअी व्यक्ति भोलेपनमें आपसे अपने पतनके प्रसंग और अुसके कारण कहने लगे, तो आपमें अपनी वृत्तिको शुद्ध रखते हुअे दूसरोंको सलाह देकर बचानेकी शक्ति नहीं है अैसा जानकर वे बातें आप न सुनें। यह ध्यानमें रखिये कि वह शक्ति आपमें नहीं है। आपमें अुतनी दया न हो, आपको यह भरोसा न हो कि आप अपना चित्त शुद्ध न रख सकेंगे, तो अैसी हालतमें अुस तरहकी बातें सुननेसे न बचनेमें अविवेक और अधैर्य है। और सुननेकी अिच्छा होनेमें मोह और रसवृत्ति है। अिस मोहमें आप फंसेंगे, तो अुससे निकलना आपके लिअे मुश्किल हो जायगा। फिर आपकी अुन्नतिकी अिच्छा और तत्सम्बन्धी प्रयत्न दोनों वहीं खतम समझिये। अैसी बात अेक बार भी सुनेंगे, तो आपका मोह जाग्रत हो जायगा। वह मोह आपको अुस मार्गमें आगे ही आगे धकेलेगा। दूसरोंको तारनेकी शक्ति तो आपमें कभी न आयेगी, अुलट वह मोह आपको ही दंभमें डाल देगा और दूसरोंमें अैसा

भ्रम पैदा करनेकी प्रेरणा देगा कि आपमें अैसी तारक शक्ति है। अिसमें भी स्त्रियोंसे अैसी बातें सुननेका मोह और रस आपको होने लगे, तो आपके ध्यानमें यह बात नहीं आयेगी कि यह भी अेक प्रकारका विलास है; और ध्यानमें आ भी जाय तो आप अुसे छोड़ नहीं सकेंगे। आगे चलकर आपकी रसवृत्तिका पोषण और शमन अिसी प्रकार होता रहेगा। अुसे बाहरसे आप कैसा भी अुदात्त नाम दें, आपका हृदय सारी वस्तु-स्थिति अच्छी तरह जानता होगा। परन्तु सदाकी आदतके कारण अुससे छूटनेकी आपकी शक्ति भी धीरे-धीरे नष्ट हो जायगी। अितना ही नहीं, अिस आदतके कारण आपकी अैसी हालत हो जायगी कि रोज कोअी न कोअी अैसी बात सुने बिना, अिस विषयका हर पहलूसे चिन्तन किये बिना, आपको चैन नहीं पड़ेगा। अिस विषयमें आपके सामने कोअी बात न करेगा, तो आप जान-बूझकर यह विषय छेड़ेंगे और अैसी कोशिश करेंगे कि दूसरोंको भी अुसमें भाग लेना पड़े। आपकी स्थिति व्यसनी मनुष्यकी-सी हो जायगी; और अपने आपको और दूसरोंको अिस बातका झूठा आभास कराते रहेंगे कि आप बड़ी-बड़ी मानसिक खोजें करनेके प्रयत्नमें हैं। परन्तु यह सब भ्रांति है। यह शुद्ध जीवन नहीं और न शुद्ध जीवन बनानेका मार्ग है। जिसे अपनी अुन्नतिकी परवाह है, वह अैसे मार्ग पर कभी नहीं चलेगा। दुनियाके पापकृत्य और अुनका अिति-हास सुननेकी हमें क्या जरूरत है? दुर्गंधके कुअेंमें गिरकर हम क्या ढूंढ़ निकालेंगे? हम पर अुसकी कौनसी जिम्मेदारी है? हमें किसीकी निन्दा करनेकी जरूरत नहीं है; किसीके दुष्कृत्योंकी चर्चा करनेकी जरूरत नहीं है; और न जगतके अुद्धारके लिअे किसीके दुराचरणका हाल सुननेकी जरूरत है। कारण, अिससे किसीका भी सुधार या अुद्धार नहीं होता। हां, हमारी अपनी दुर्गति निश्चित रूपसे होती है। अिसीलिअे श्रेयार्थी साधकको अिस विषयमें सदा सावधान रहना चाहिये और निन्दा या दुष्कृत्योंकी चर्चामें कभी नहीं पड़ना चाहिये।

(दैनिक प्रवचनसे)

८

समयका सदुपयोग

फुरसत दुर्भाग्यका लक्षण है

अुन्नतिकी अिच्छा करनेवालेको अपना जरासा भी वक्त बेकार न जाने देकर अुसका भरसक सदुपयोग करनेके लिअे सतत सावधान रहना चाहिये। रुपये-पैसेके बारेमें व्यवस्थित और मितव्ययी रहनेवाले कितने ही आदमी समयके बारेमें लापरवाह पाये जाते हैं। अितना ही नहीं, आध्यात्मिक कल्याणके पीछे लगे हुअे मनुष्य भी समयका सदुपयोग करनेके बारेमें जाग्रत और विवेकशील नहीं होते, यह देखकर आश्चर्य होता है। व्यावहारिक मार्ग हो या पारमार्थिक, अुसमें समय-सम्बन्धी विवेक और सावधानीसे न चलनेवालेको अपने दोषोंके बुरे नतीजे कभी-कभी जन्मभर भुगतने पड़ते हैं। समर्थ रामदासका समयके सदुपयोगके बारेमें अेक बहुत ही महत्त्वका वचन है: 'अैक सदैवपणाचें लक्षण। रिकामा जाअूं नेदी अेक क्षण।।' (दासबोध, ११–३–२४)। अेक क्षण भी बेकार न जाने देनेको, अुसका सदुपयोग करनेको अुन्होंने सौभाग्यका लक्षण कहा है। अिस पर विचार करनेसे लगता है कि जिन्हें अपने निर्वाहके लिअे कुछ न कुछ काम करना पड़ता है वे धन्य हैं; कारण, अुन्हें बेकार गंवानेके लिअे वक्त ही आसानीसे नहीं मिलता। अुन्हें कुसंग या कुबुद्धिके कारण गलत रास्ते जानेका कोअी डर नहीं होता। जिन्हें अपना गुजारा करनेके लिअे मेहनत नहीं करनी पड़ती या अुसके लिअे अुद्योग करनेमें समय नहीं देना पड़ता, अुन्हें अन्य किसी सत्कार्य या सद्विद्याकी रुचि न हो तो समय बितानेके लिअे मनोरंजनके अुपाय ढूंढ़ने पड़ते हैं। और अिसीमें कुसंगति, कुमित्र, बुरी आदतें, व्यसन आदिके कारण अुनकी अधोगतिकी संभावना रहती है।

सत्कर्मकी अभिरुचि

मनुष्यका चित्त अच्छे-बुरे किसी न किसी विषयके बिना लंबे समय तक बिलकुल खाली नहीं रह सकता। अुसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष, सच्चा या काल्पनिक, अच्छा या बुरा कोअी न कोअी विषय सतत चाहिये। अुचित विषय न दिया जाय,

तो वह अनुचित विषय ग्रहण करता है। अुचित या अनुचित कोअी भी विषय न मिले, तो चित्त सहज ही सुषुप्तिकी ओर जाता है। अिस प्रकार सविषय या निर्विषय (अर्थात् सुप्तावस्था), अिन दो अवस्थाओंमें से अेकमें चित्त हमेशा रहता है। जब तक हमें ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों सहित चित्तको हमेशा सत्कर्ममें लगाये रखना नहीं आता, जब तक हमारे चित्तका अैसा रवैया नहीं बन जाता और हमारा स्वभाव अिस प्रकारका नहीं हो जाता, तब तक यह कहना कठिन है कि फुरसतके वक्त वह कौनसा विषय पकड़ लेगा और किस दिशामें जायगा। अिसलिअे श्रेयार्थी साधकको सदा सावधान रहकर अपने चित्तको संभालना चाहिये। यह बात ध्यान देने योग्य नहीं है, अैसा कभी न समझना चाहिये। किसी दोषको कभी छोटा समझकर अुसके बारेमें निश्चिन्त न रहना चाहिये। "रोग, सर्प, अग्नि और शत्रुको छोटा या तुच्छ समझकर अुनकी कभी अुपेक्षा नहीं करनी चाहिये", अिस आशयका अेक बहुत पुराना सुभाषित है। अुपेक्षा करनेसे वे बढ़ते हैं और बादमें अुनका निवा-रण करनेका काम बहुत कठिन और कभी-कभी तो असंभव भी हो जाता है। अिसलिअे मनुष्यको समय पर चेतकर अुनका नाश करना चाहिये। अिसी तरह दोषको भी छोटा समझकर मनुष्यको कभी अुसकी अुपेक्षा नहीं करनी चाहिये; कारण, शत्रुकी तरह वह भी हमारा नाश करनेवाला है। बड़े-बड़े व्यसनी शुरूसे ही कोअी पक्के व्यसनी नहीं होते। अुनके व्यसनकी शुरुआत बिलकुल कम मात्रासे होती है और जब होती है तब फुरसतके वक्तमें होनेवाले कुसंगके कारण स्वाभाविक रूपमें ही होती है। अिसके लिअे अुस समय बड़ी तैयारी, विशेष प्रयत्न वगैराकी कोअी जरूरत नहीं पड़ती। खास तौर पर फुरसतके समयमें या बगैर किसी विविधताके सतत अेक ही तरहसे बहनेवाले जीवनमें मनुष्यको अरुचि, अूब, बेचैनी और अुदासीनता जैसा कुछ महसूस होता है। अैसे मौके पर अुसे अच्छे अध्ययन, अच्छे काम और अच्छी संगतिकी मददसे समय बिताने और बेचैनी दूर करनेकी कोशिश करनी चाहिये। नहीं तो कुसंगके कारण या अपनी मनोवृत्तिके कारण अुलटे रास्ते लग जाने या खराब आदतें पड़ जाने या व्यसन लग जानेका बड़ा डर रहता है। मनुष्यको पहलेसे ही

कोअी अच्छी अभिरुचि न हो, तो अैसे समय अुसे जो भी विषय मिल जाता है, अुसीकी तरफ अुसका मन सहज ही मुड़ जाता है। अैसे समय अुसे अेकदम अच्छा विषय नहीं मिलता। मिल भी जाय तो अुसे अुसमें रस नहीं आता। विषयके बिना चित्त रह ही नहीं सकता। अुस समय ज्यादातर 'खाली मन शैतानका घर' वाली स्थितिका ही भय रहता है। अिसलिअे अैसे समय मनुष्यको खूब सावधान रहना चाहिये।

लगातार अेक ही किस्मके जीवन-व्यवहारके कारण पैदा होनेवाली अरुचि, अुकताहट और निरुत्साहको दूर करनेके लिअे त्यौहार, अुत्सव, व्रत, विवाह या अिन्हींके जैसे कौटुम्बिक या सामाजिक आनन्दके अवसर, दावतें, तीर्थयात्रा, सार्वजनिक सभाअें, जुलूस, रथयात्राअें, कथा-कीर्तन, घर पर मेहमानोंका आना और किसीके यहां मेहमानी आदि भी खूब अुपयोगी होते हैं। आजकल नाटक, सिनेमा, क्लब, पार्टियां, गाने, बजाने व नाचनेके कार्यक्रम, महाबलेश्वर, माथेरान, शिमला, अूटी वगैरा स्थानों पर जल-वायु-परिवर्तनके लिअे जाना अित्यादि अच्छे-बुरे तरीकोंसे अुकताहटको मिटाकर जीवनमें अुत्साह लानेकी नअी रीतियां प्रचलित होती जा रही हैं। सार यह है कि ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों, मन, बुद्धि, चित्त वगैराको सदाकी अपेक्षा अधिक तीव्र, भव्य, अुत्कट और आकर्षक विषय या रसानुभव, खासकर सामूहिक रूपमें मिलनेसे जीवनकी अुकताहट और निरुत्साह दूर हो जाता है। अैसे समय अपने जीवन-व्यवहार, आसपासकी परिस्थिति, अपने संस्कारों, स्वभाव, सभ्यता, शौक, रुचि, आदतों और ज्ञान-अज्ञान अेवं पात्रताके अनुसार हरअेक मनुष्य अपना मार्ग निकालकर जीवनमें फिर अुत्साह लानेकी कोशिश करता है। अपने जीवन-निर्वाहके लिअे किये जानेवाले अुद्योगमें ही मनुष्य अपने चित्तको रमा सके, तो प्रायः रोजमर्राके कामसे अूबनेका अवसर नहीं आयेगा। अितने पर भी जीवन-निर्वाहके लिअे किये जानेवाले अुद्योग या धंधेके सिवा अेक-दो अच्छी विद्याओं या कलाका शौक जीवनकी दृष्टिसे बड़ा अुपयोगी है। अैसी विद्याओं और कलाओंके अलावा अुसे कुछ न कुछ सार्वजनिक काम और वह भी निःस्वार्थ बुद्धि तथा अुदार मनसे करनेका शौक भी होना चाहिये, यानी अुसमें सेवावृत्ति होनी चाहिये। मनुष्यमें ये बातें हों

तो अुसके लिअे यह सवाल नहीं अुठेगा कि वह अपनी अुकताहट और निरुत्साह कैसे मिटाये और फुरसतका समय कैसे बिताये।

फुरसतमें पैदा होनेवाले दोष

फुरसत और अुकताहटके वक्त मनुष्यमें कल्याण और अकल्याण दोनों करनेकी शक्ति होती है। अुस समयका मनुष्य जैसा अुपयोग करेगा वैसा ही फल अुसे मिलेगा। अुस समय यदि मनुष्य अपने लिअे अुचित कार्य खोज निकाले, नअी नअी विद्याअें और कलाअें प्राप्त कर सके और दूसरोंके लिअे अुपयोगी बनना अुसे सूझ सके, तो अुसका और दूसरोंका सहज ही कल्याण हो सकता है। अैसे वक्त वह जो अच्छी विद्या या कला प्राप्त करेगा, जो सत्कर्म आचरणमें लायेगा, अुसका सुपरिणाम अुसकी सारी जिन्दगी पर होगा और वह अधिक अुदात्त बनेगा। लेकिन अुस समय अगर अुसे कोअी अुचित कार्य न सूझे और कुसंग या स्वभावके कारण अुसकी वृत्ति किसी व्यसनकी तरफ हो जाय, तो अुसका बुरा असर अुसकी तमाम जिन्दगी पर पड़ेगा और अुसकी अधोगति होगी। अच्छे विचारों और अच्छे संस्कारोंवाले मनुष्य फुरसतका जरासा भी वक्त बेकार नहीं जाने देते; अुसे अपनी पसन्दके सत्कर्ममें लगाते हैं। अिसलिअे अुन्हें कभी अुकताहट अनुभव करनेका प्रसंग ही नहीं आता। असंस्कारी मनुष्य अैसे अवकाशके समय ही ज्यादा बिगड़ते हैं या अुनके बिगड़नेकी शुरुआत होती है। अच्छे कामोंकी अभिरुचि बढ़ाअी हुअी न होनेसे अुद्यमी मनुष्य भी फुरसतका वक्त ताश खेलनेमें व्यर्थ ही गंवाते हैं। कोअी सोते रहते हैं, तो कोअी भूख-प्यास न लगी होने पर भी व्यर्थ खाने-पीनेमें वक्त और रुपया बर्बाद करते हैं। कोअी दूसरोंके यहां जाकर फिजूल गपशप लगाने या निन्दा करनेमें अपना और दूसरोंका वक्त बिगाड़ते हैं। कोअी समय नहीं कटता अिसलिअे बार-बार चाय पीते हैं, तो कोअी पान-तम्बाकू खाने या बीड़ी-सिगरेट पीनेमें वक्त गंवाते हैं। व्यसन मनुष्यको समय गुजारनेमें मदद करते हैं, परन्तु वह अधिकाधिक व्यसनाधीन ही बनता जाता है। फुरसतके समय ही कुसंग और कुसंस्कारोंका भय अधिक रहता है। व्यसन ज्यादातर संगतिसे ही लगते हैं। अिसलिअे प्रत्येक मनुष्यको अिस तरहकी संगतिसे सावधान रहना चाहिये।

हमारे मित्रको केवल नासका, चायका, होटलमें जानेका या सिनेमाका व्यसन हो, तो भी हमें अैसे मित्रसे सावधान रहना चाहिये। मित्रके अच्छे-बुरे संस्कार मनुष्य पर पड़े बिना नहीं रहते। अिसी अनुभवसे मनुष्यके मित्रों परसे अुसकी परीक्षा करनेकी प्रथा पड़ी है। अिसी तरह मनुष्य अपना फुरसतका समय कैसे बिताता है, अिस परसे भी अुसकी परीक्षा करनी चाहिये; क्योंकि मनुष्य फुरसतके वक्त ज्यादातर अपनी रुचिके काम ही करता है।

अपने मनुष्यत्वका अज्ञान

अिस तरह विचार करने पर जान पड़ता है कि बेचैनी, अुकताहट और फुरसत मनुष्यके अहितका ही कारण बनते हैं। परन्तु व्यसनों या खराब आदतोंके मोहके कारण यह बात हमारे ध्यानमें नहीं आती। अुलटे हम अिसे भूषण मानते हैं और जिसे फुरसत नहीं मिलती अुसे अभागा समझते हैं। शास्त्रोंमें अनेक व्यसनोंका अुल्लेख है और अुनका निषेध भी किया गया है। अुनमें मुख्य चार महाव्यसन बताये गये हैं: स्त्री, मृगया, द्यूत और मद्यपान। आजके समयमें पहलेके कुछ व्यसन पिछड़ गये हैं, तो कुछ नये व्यसनोंका आविष्कार भी हो गया है। व्यसन पुराने जमानेके हों या नये जमानेके, हम पर अुनका हानिकारक असर जरूर होगा। यह बात अभी तक हमारे गले अुतरी हुअी नजर नहीं आती। कारण, अभी तक हमने जीवनका सच्चा महत्त्व नहीं समझा है। हममें विवेक नहीं, सावधानी नहीं, दीर्घदृष्टि नहीं। हमारी हरअेक क्रियाका, संस्कारका क्या अच्छा-बुरा असर हम पर, हमारी सन्तान पर, परिवार पर और सारे समाज पर वर्तमान और भविष्यमें पड़ेगा, अिसका विचार हम नहीं करते। अुलटे, हम भ्रांतिसे यह समझते हैं कि अपनेमें अुठी हुअी तात्कालिक वृत्तिका शमन करनेसे हम शान्त या सुखी होंगे। विवेक, सावधानी और दीर्घदृष्टिका अभाव, अपने सिवा दूसरेके सुख-दुःखों तथा भावनाओंके प्रति लापरवाही, अवकाश, थोड़ी सांपत्तिक अनुकूलता अथवा सत्ता वगैरा बातें किसी न किसी व्यसन या दोषका मूल कारण होती हैं। मनुष्यमें थोड़ीसी मानवता और विवेक जाग्रत हो जाय, तो अिस बारेमें अुसके मनमें कुछ न कुछ विचार आये बिना नहीं रहेगा कि

अुसके व्यसनों, शौकों और मनोरंजनके खातिर कितने निरपराध व्यक्ति-योंके अुचित सांसारिक सुखोंका, अुनकी सद्‌भावनाओंका और अुनके आयु-ष्यका नाश होता है; बेचारे कितने निरपराध प्राणियोंकी हमारे शौकके खातिर सिर्फ अिसलिअे जान चली जाती है कि वे दुर्बल हैं। मनुष्य अपनी तात्कालिक वृत्तिको महत्त्वपूर्ण समझता है, परन्तु दूसरोंके जीवनकी अुसे कोअी कीमत मालूम नहीं होती। अितने अविवेकका कारण यह है कि वह स्वयं मनुष्यके नाते अपनी सच्ची कीमत नहीं जानता।

फुरसतके कारण साधु-संप्रदायोंमें घुसे हुअे दोष

साधु-सम्प्रदायों तकमें फुरसतके कारण अनर्थ होते रहे हैं और अभी तक हो रहे हैं। कर्ममार्ग छोड़ देनेके कारण निवृत्ति-परायण लोगोंके लिअे यह बड़ा सवाल होता है कि समय कैसे बितायें। चौबीसों घण्टे अीश्वरके चिन्तनमें बिताना संभव नहीं होता। नित्यके क्रियाकाण्डमें कुछ समय बीत जानेके बाद बाकी रहे समयका सवाल अुन्हें परेशान करता है। नाम-स्मरण, अुन्हीं धार्मिक साम्प्रदायिक ग्रंथोंका बार-बार पठन, तीर्थाटन, गंगा या नर्मदाकी प्रदक्षिणा, भजन, कीर्तन वगैरा करनेके बाद भी वक्त बच ही रहता है। अतः अुसके लिअे अुन्होंने भंग, गांजा, सुल्फा, अफीम वगैरा जैसे व्यसनोंकी मददसे चित्तके लयका और समय गुजारनेका अुपाय ढूंढ़ निकाला। अिसीलिअे अनेक साधु-सम्प्रदायोंमें अिन व्यसनोंकी अतिशयता दिखाअी देती है। नशीली चीजोंकी खपत जितनी अिन लोगोंमें होती है, अुतनी और किसी समाजमें नहीं होती होगी। चित्तका लय करनेके लिअे ये जरूरी साधन हैं, अैसी मान्यता अिस मार्गमें अिन व्यसनोंको मिली हुअी है। चित्तको प्रत्यक्ष या काल्प-निक कोअी भी विषय चाहिये। अुसे कोअी विषय न मिले तो वह सुषु-प्तिकी ओर झुकता है, अैसा अूपर कहा गया है। कुदरती नींदकी मर्यादा होती है। अैसी स्थितिमें फुरसतका वक्त बिताना मुश्किल होनेके कारण अुन्हें बाहरी अुपायों द्वारा अपने चित्तको बेहोश करना पड़ता है। अिस बेहोशीको चित्तकी लयावस्था माना जाता है। हममें यह विश्वास तो है ही कि चित्तके कारण ही आसक्ति, बन्धन, कर्म और जन्म-मरण वगैरा मनुष्यके साथ लगे हुअे हैं। किसी भी अुपायसे चित्तका लय प्राप्त करना

आध्यात्मिक दृष्टिसे श्रेष्ठ और आवश्यक भूमिका मानी जाती है। अतः अिस भ्रमके कारण बेहोशी लानेवाले व्यसनोंकी परम्परा कुछ साधुओं और बैरागियोंके सम्प्रदायोंमें चली आअी है। जिन चीजोंको हम निषिद्ध और त्याज्य मानते हैं, वे ही अुन्हें अत्यन्त जरूरी और महत्त्वपूर्ण लगती हैं। आरोग्य, ज्ञान, सद्भावना, सद्गुण, सेवा वगैरा अनेक दृष्टियोंसे समाजके लिअे अुपयोगी होनेकी बात न सूझनेके कारण ये सारे बुरे नतीजे होते रहे हैं। मनुष्य दुनियादारीमें लगा हो या परमार्थमें, ज्यादातर अुसके जीवनमें फुरसतकी वजहसे ही अिस तरहकी बुराअियां पाअी जाती हैं। अिसलिअे श्रेयार्थी साधकको क्षण क्षणका दक्षतापूर्वक सदुपयोग करनेका प्रयत्न करना चाहिये। अुसे हमेशा जाग्रत रहकर सद्विचारी और सत्कर्म-परायण रहनेमें ही अपना कल्याण मानना चाहिये।

जीवनमें मैत्रीका अुपयोग

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। संगतिके बिना वह अकेला नहीं रह सकता। फुरसतके वक्त अुसे संगतिकी जरूरत ज्यादा महसूस होती है। जिसे शुरूसे ही सत्संग अच्छा लगता है, वह फुरसतका समय सत्संगमें बिताता है। हरअेक आदमीको किसी सन्त-सज्जनसे या सदाचारी पुरुषसे सम्बन्ध रखना चाहिये। जिसके लिअे वह संभव न हो, अुसे किसी सन्मित्रसे जरूर सम्बन्ध बनाना चाहिये। कुमित्र अधोगतिकी ओर ले जाता है और सन्मित्र अुन्नतिकी ओर। सन्मित्रका बहुत बड़ा मूल्य है। सत्संगके लिअे किसी साधु पुरुषकी ही संगतिकी जरूरत नहीं है। जिसकी संगतिमें कुसंस्कार नष्ट हों और आचार-विचार शुद्ध रहें, अुसकी संगतिको हमें सत्संग ही समझना चाहिये। सन्मित्रके जैसा कल्याणकर्ता दुनियामें शायद ही कोअी मिलेगा। अुसकी संगतिमें जीवन सहज और अनजाने ही अुन्नत होता रहता है। परन्तु यह समझ लेना चाहिये कि सन्मित्र किसे कहा जाय। जिसकी संगति हमें प्रिय लगे, जिसकी संगतिमें आनन्द आये, अुसे हम सन्मित्र समझने लगें, तो यह हमारी भूल भी हो सकती है। व्यसनी और दुष्ट मनुष्योंके भी मित्र होते हैं। अुनकी संगति अुन्हें प्रिय होती है और अुसमें अुन्हें आनन्द भी आता है। अिसीसे अुन्हें सन्मित्र मानना ठीक नहीं। अिसलिअे देखना चाहिये कि कोअी संगति

कल्याणप्रद है या नहीं। जिसे कल्याणप्रद मार्गकी अभिरुचि पैदा करनेवाला मित्र मिल गया, अुसके जीवनका कोअी भी समय व्यर्थ या अनर्थकारी प्रवृत्तियोंमें नहीं जायेगा। अिसमें शक नहीं कि जीवनमें माता-पिता, भाअी-बहन, पत्नी, गुरुजन, सन्त-सज्जन आदि सबका बहुत बड़ा महत्त्व है। परन्तु जीवनकी विशालता, अुसकी तरह तरहकी छोटी-बड़ी प्रवृत्तियां, अुन्हें करनेके लिअे विविध प्रकारके आवश्यक गुण और अुनका विकास — अिन सबका विचार करते हुअे सन्मित्र जैसा सहायक जीवनमें और कोअी नहीं मिल सकता। माता-पिता, भाअी-बहन और गुरुजनसे भी सन्मित्र हमें ज्यादा सच्चे रूपमें पहचानता है। वह हमारे तमाम गुण-दोषोंका साक्षी और ज्ञाता होता है। वह न हमें औपचारिक मान-प्रतिष्ठा देता है और न हमसे चाहता ही है। वह हमें हर प्रकारके पापसे बचानेकी कोशिश करता है। हमारे दोषोंको जानते हुअे भी वह हमें क्षमा करता है। वह हमेशा हमारा भला सोचता है और बुराअियोंसे बचाता है। कठिनाअियों और दुःखोंमें हमें सम्हालता है। अत्यन्त प्रिय माने जानेवाले व्यक्तियोंसे भी मनुष्य जिस चीजको छिपाता है, अुसे वह सन्मित्रके सामने खुले दिलसे कह सकता है। अुसके साथ वह बहुत ही खुले दिलसे व्यवहार करता है। वह हमारे प्रेमका भूखा होता है। फिर भी कभी हमारी खुशामद नहीं करता। झूठी तारीफ नहीं करता। अुलटे हमारे क्रोध या नाराजीकी परवाह न करके वह हमारे दोषोंके बारेमें हमें सावधान करनेके लिअे अुलाहना देने और समय पड़ने पर हमारा तिरस्कार करनेसे भी नहीं चूकता। वह कभी हमसे स्वार्थ साधनेकी अिच्छा नहीं रखता। हम अुसके सामने अुसकी बड़ाअी या प्रशंसा कभी नहीं करते और करें भी तो वह अुसे पसन्द नहीं करता। हृदयकी निकटता, सरलता और शुद्धता सन्मित्रके बराबर किसी औरके साथ रखी या प्राप्त नहीं की जा सकती। अगर समभाव प्राप्त करना ही जीवनकी सर्वश्रेष्ठ अवस्था हो, तो अुसे सन्मित्रके साथ जितनी जल्दी हम सिद्ध कर सकते हैं अुतनी और किसीके साथ नहीं कर सकते। प्रत्येक निकटके प्रियजनके लिअे हमारे हृदयमें प्रेम-प्रवाह बहता रहता है, फिर भी अुन सबमें सन्मित्रके लिअे हमारे हृदयमें बहनेवाले प्रवाहमें जो सरलता,

शुद्धता और अखंडता होती है, वह और किसी भी प्रवाहमें नहीं मिलेगी। जिनका जीवन अिस तरहके सन्मित्रोंके सहवासमें व्यतीत होता है और जो अुनके जीवनके साथ समरस हो गये हैं, अुनके सारे जीवनको सफल समझना चाहिये। अैसा अेक भी मित्र प्राप्त हो जाय, तो निःसन्देह हमारा जीवन सार्थक हो जायगा। अिसीलिअे मनुष्य यह जानकर कि जीवनमें अुन्नतिकी दृष्टिसे और समयकी सार्थकताकी दृष्टिसे भी सन्मित्रका कितना बड़ा मूल्य है, कमसे कम अेक सन्मित्र तो बना ही ले और अुसके साथ जिन्दगीभर समरस होकर रहे। परलोकके कल्याणके लिअे गुरु प्राप्त करनेवालोंके पास यह समझनेका कोअी अुपाय नहीं होता कि परलोकमें अुससे क्या लाभ होता है; परन्तु सन्मित्रसे अिहलोकमें ही क्या लाभ हुअे और हो सकते हैं, यह सब साफ तौर पर देख सकते हैं। मित्रोंमें आपसमें दुराव-छिपाव नहीं होता; गुप्तता नहीं होती; कपट, दम्भ, या धूर्त्तता नहीं होती; वहां छोटे-बड़ेकी भावना ही नहीं होती। अिसलिअे भय, कपट, प्रशंसा, खुशामद या केवल बाह्याचारका वहां नाम भी नहीं होता। भ्रम, अज्ञान और भोलेपनकी वहां गुंजाअिश नहीं होती। अैसे सरल और सादे जीवन-व्यवहार द्वारा सन्मित्रकी संगतिसे मनुष्य अनजाने अुन्नत होता है। अिस प्रकार सन्मित्रका महत्व पहचान कर समयका सदुपयोग करनेमें हमें अुसकी मदद लेनी चाहिये। हमारा जीवन आज अैसी परिस्थितिसे गुजर रहा है कि अपने चित्तमें सद्विचार हों, अपनी दृष्टि कुछ शोधक हो और हममें सेवावृत्ति हो, तो समयका सदुपयोग करनेके लिअे सत्कर्मोंकी कमी नहीं है।

९

दृढ़ शरीर और पवित्र मन

हमारी शारीरिक और मानसिक स्थितिका निरीक्षण

अुन्नतिकी दृष्टिसे अपने समाजका विचार करने पर हमें जान पड़ेगा कि आज हमारी स्थिति कितनी अवनत हो गअी है। लोगोंकी केवल शारीरिक और मानसिक स्थितिकी ओर ध्यान दें, तो भी अिस बातका यकीन हुअे बिना नहीं रहता। शायद दीर्घकालकी परतंत्रताके कारण हम अैसे हो गये हैं। अिसके अलावा, कुसंग, व्यसन, होटलोंकी प्रथा, अयुक्त खान-पान, शरीर-संबंधी लापरवाही, अज्ञान, दारिद्रय वगैराके बुरे परिणाम हम पर शीघ्र गतिसे हो रहे हैं। शरीर और मन अच्छी हालतमें रखनेकी आकांक्षा और अुत्साह शायद ही कहीं पाया जाता है। अिन सब बुराअियोंसे निकले बिना हमारा अुद्धार नहीं होगा। कअी कारणोंसे कितने ही वर्षोंसे चले आ रहे अपने शारीरिक ह्रास और अपनी मानसिक अवनतिको रोककर हमें अपनेमें सामर्थ्य पैदा करना चाहिये। हमें अपनी अवनतिके बारेमें शंका हो या वर्तमान स्थितिकी भयंकरता अभी तक हमारे ध्यानमें न आती हो, तो गरीब और अमीर, विद्वान और अविद्वान, आबाल-वृद्ध स्त्री-पुरुष — सबकी शारीरिक और मानसिक स्थितिका हम थोड़ा अवलोकन और निरीक्षण कर लें। हम सोचें कि आज हम जिस स्थितिमें हैं क्या वही मनुष्य-जन्म लेकर प्राप्त करनेकी आदर्श स्थिति है? जिन महान, ज्ञानी और बलवान पूर्वजोंका हमें अभिमान है और जिनके गुणोंका हम गौरव करते हैं, अुनकी परम्परामें पैदा हुअी सन्तानकी क्या अैसी ही शारीरिक और मानसिक अवस्था होनी चाहिये? संसारमें सर्वश्रेष्ठ अैसी हमारी संस्कृति, ज्ञानसे ओतप्रोत हमारे ग्रंथ, सब तरहसे समृद्ध हमारा देश — अिन सब अन्तर्बाह्य परिस्थितियोंसे लाभ अुठानेवाले हमारे अिस मानव-समूहकी आज जो स्थिति है क्या अुसी स्थितिमें अुसे रहना चाहिये? बुद्धि और ज्ञानका गर्व करनेवाले तथा अमीरीका दिखावा करनेवाले अपने कुटुम्बकी, बच्चोंकी और समाजकी शारीरिक स्थितिकी तरफ थोड़ा

ध्यान दें और अच्छी तरह देखें कि अुनमें कितनी कूवत है, कितनी ताकत है, अुनका शरीर कितना कार्यक्षम है। आज जन्म लेनेवाले बालक कैसी शारीरिक अवस्थामें पैदा होते हैं; अुनका पालन-पोषण किस ढंगसे होता है; बड़े होने पर अुनकी क्या दशा होती है; आजके तरुणोंकी भरी जवानीमें कैसी स्थिति है; और दुर्वलताकी ओर हम किस तेजीसे जा रहे हैं — अिन सब बातोंका प्रत्येक मनुष्यको विचार करना जरूरी है। दुनियामें जीवन-संघर्ष दिनोंदिन अधिक तीव्र होता जा रहा है। अिस जीवन-संघर्षमें हम अपनी वर्तमान निकृष्ट शारीरिक दशामें कैसे टिक सकेंगे? मौजूदा क्रमसे देखने पर हमसे भी ज्यादा अवनत दशाकी ओर जा रही हमारी भावी पीढ़ी आजसे ज्यादा तीव्र बननेवाले आगामी जीवन-संघर्षमें किस तरह टिक सकेगी? अिन सब बातोंका हमें विचार करना चाहिये।

अुद्देश्यहीन जीवन-प्रवाह और अुसका परिणाम

हमारी वर्तमान दुरवस्था पर स्त्री-पुरुष सबको ध्यान देना चाहिये। हममें से प्रत्येकको अपनी स्थितिकी जांच कर लेनी चाहिये। प्रामाणिकतासे कमाअी करके कुटुम्ब-खर्च चलानेकी हमारी शक्ति दिनों-दिन घट रही है या बढ़ रही है, अिसका विचार पुरुषोंको करना चाहिये। अिसी प्रकार मातृत्व, गृह-व्यवस्था, बाल-संगोपन और संवर्धन, घरमें सबकी संभाल वगैरा नैसर्गिक और पारिवारिक कर्तव्य ठीक ढंगसे पूरे करनेके लिअे जरूरी शक्ति हमें काफी मात्रामें है या अुत्तरोत्तर कम हो रही है, अुचित जिम्मेदारी पूरी करनेकी हमारी वृत्ति है या अुसे टालनेकी है, अिसकी जांच स्त्रियोंको अपने मनमें करनी चाहिये। प्रत्येक कुटुम्ब-वत्सल मनुष्यको यह भी हिसाब लगाना चाहिये कि अपने और अपने बच्चोंके शरीर किसी तरह कायम रखनेके लिअे हर महीने दवा-दारू पर कितना खर्च होता है। अिन सब बातों परसे स्त्री-पुरुषोंको अपनी पात्रता निश्चित करनी चाहिये। अपने प्रधान गुणों और शक्तियोंका ही दिनोंदिन ह्रास होता हो, तो भावी पीढ़ीके कल्याणकी आशा रखना बेकार होगा। हमारे मानव-कुलकी स्थिति अिसी तरहकी रहे, तो कालान्तरमें हमारा कुल और हमारा समूह जगतमें रहेगा या नहीं,

असमें भी शंका और भय है। जीवन-सम्बन्धी अेक भी अुदात्त ध्येयके बिना हमारा जीवन आज बीत रहा है। असी हालतमें कुदरतके नियमानुसार संतान पैदा होती है। अपना या अपने पेटसे पैदा होनेवाली संतानका कौनसा अुच्च या पवित्र हेतु पूरा करने या करानेके लिअे हम संतान पैदा करते हैं, असका कोअी विचार किये बिना मानव-जातिकी पीढ़ियां अेकके बाद अेक जगतमें आती हैं और अपने ममत्व और अहंकारकी, विकारवशता और अज्ञानकी विरासत छोड़कर हरअेक पीढ़ी चली जाती है। अिस प्रकार यह प्रवाह अखंड रूपमें जारी रहता है। हममें से प्रत्येक अिस प्रवाहमें अेक बिन्दु जैसा है। यह प्रवाह हम सबसे मिलकर बना है। हम सब बिना किसी अुद्देश्यके, मानो मूर्च्छावस्थामें, कहां जा रहे हैं, असका हमें पता नहीं है। हमें यह भी मालूम नहीं कि हमने क्यों जन्म लिया है और हम कहां जानेवाले हैं। असी स्थितिमें पीढ़ियों पर पीढ़ियां न मालूम क्यों और कहां मूढ़वत् जा रही हैं। अपने वर्तमान जीवन और जगतके प्रवाहके साथ हम अितने अेकरूप हो गये हैं कि अपनी अवनति और अपने दोष हमारे ध्यानमें नहीं आते। अितना ही नहीं, हम यहां तक कहनेमें नहीं चूकते कि दोषयुक्तता ही मनुष्यकी वास्तविक स्थिति है और सदा रहेगी। मानो हमारी कोशिश यह समझने और बतानेकी होती है कि यही स्थिति ठीक है। परन्तु मानवताकी दृष्टिसे यह हमारी आत्म-वंचना है, भ्रांति है।

जीवन-सम्बन्धी श्रद्धा

अिस वंचना और भ्रान्तिसे निकलना चाहनेवालोंको जीवनका, मनुष्यके सुप्त अतुल सामर्थ्यका विचार करना चाहिये। मनुष्यमें ज्ञान, विवेक, संयम, निग्रह, पुरुषार्थ, कर्तृत्व, प्रेम आदि सब शक्तियां भरी हैं। वे आज हममें थोड़ी मात्रामें हों तो भी अुनका विकास करनेकी शक्ति हममें है। अपनी असाधारण बुद्धि लगाकर मनुष्यने कल्पनातीत वैज्ञानिक खोजें करके पंच महाभूतों पर कुछ अंशमें काबू पाया है। हमें यह दृढ़ विश्वास होना चाहिये कि अीश्वरका यह हेतु नहीं हो सकता कि अैसा बुद्धिशाली मनुष्य-प्राणी अज्ञान और विकारवशताके कारण पीढ़ी-दर-पीढ़ी दुःख भोगता रहे। हम अपने दोषोंके कारण अनजाने अेक-दूसरेके

दुश्मन हो गये हैं। पिछली या आगेकी किसी भी पीढ़ीके बारेमें हममें कर्तव्यकी दृष्टि नहीं रही। अिस सबका मुख्य कारण यह है कि हममें धर्म नहीं रहा। धर्मके लिअे जीने और धर्मके लिअे मरनेकी भावना हममें लगभग मिट गअी है। अपने स्वार्थको मुख्य समझकर अुसीका खयाल करके हम सारे सम्बन्ध जोड़ते या तोड़ते हैं। अिसलिअे हम किसीको सुखी न करके सबके शत्रु हो जाते हैं। ये सब बातें अुन्नतिके अिच्छुक हरअेक मनुष्यको ध्यानमें रखनी चाहिये। जितना गहरा हमारा पतन हुआ है अुसीके हिसाबसे हममें अुन्नतिके लिअे अुत्साह पैदा होना चाहिये।

शरीर और मनकी अुपेक्षा तथा धन-सम्बंधी भ्रान्ति

केवल बाह्य विषयोंसे हम सुखी बनेंगे, अैसा जो मनुष्यको लगता है वह अुन्नतिमें बाधक अनेक भ्रांतियोंमें से अेक महान भ्रांति है। लेकिन अुसकी समझमें यह नहीं आता कि जिस शरीर और मनके साथ अुसका चौबीसों घण्टे अखंड सम्बन्ध रहता है, वे तन्दुरुस्त न हों तो वह बाहरी वस्तुओंके संयोगसे सुखी नहीं हो सकेगा। निरोगी, मजबूत, कसा हुआ और सब तरहसे कार्यक्षम शरीर तथा पवित्र, स्थिर, स्वाधीन और अनेक सद्‌गुणों और सद्‌भावनाओंसे युक्त मनके जैसे दूसरे साधन सुख और सौभाग्यके नहीं हैं। ये दोनों साधन जिनके पास अच्छे हों वे विद्वान और धनवान हों, तो अपनी विद्या और धनका अुचित अुपयोग करके अपने साथ औरोंकी भी अुन्नति कर सकेंगे। परन्तु अिन दोनोंके अभावमें मनुष्य जब अपना ही कल्याण नहीं कर सकता, तो फिर दूसरोंके कल्याणकी तो बात ही क्या? अच्छे शरीर और अच्छे मनकी व्यक्ति और समाजके हितकी दृष्टिसे अत्यन्त आवश्यकता होते हुअे भी हम और हमारा समाज कितने अुदासीन हैं, यह अपने और आसपासके समाजसे सबके ध्यानमें आ जाना चाहिये। हम अपने समाजके घरोंकी जांच करें तो अुनमें रहनेवालोंकी हैसियतके अनुसार कीमती कपड़े-लत्ते और बरतन-भांडे, तरह तरहकी संसारोपयोगी वस्तुअें, सुन्दर कोच और आलमारियां, कुर्सियां, पलंग और गादी-तकिये, बच्चोंके खिलौने — अितना ही नहीं कीमती जेवर, हीरे, मोती,

जवाहरात और गाने-बजाने तथा मनोरंजनके साधन भी पाये जायेंगे। सम्पत्तिकी विपुलताके हिसाबसे मोटर और गाड़ी-घोड़ा वगैरा वैभवके साधन भी मिलेंगे। परन्तु अिन सबमें शरीरको निरोगी और बलवान बनानेके व्यायामके साधन कितने प्रतिशत घरोंमें मिलेंगे? अिसी तरह जिनके पढ़नेसे मन पवित्र, स्थिर और स्वाधीन रह सके, अैसी पुस्तकें कितने घरोंमें मिलेंगी? अिस प्रकारके संस्कार बच्चोंको देनेकी और अिस तरहके अध्ययनकी सुविधा कितने घरोंमें होगी? हम अिसकी जांच करें तो बहुत शोचनीय दशा नजर आयेगी। अिसके विपरीत, जांचके अन्तमें यह मालूम होगा कि समाजमें हजारमें से नौ सौ निन्यानवे लोगोंकी यह श्रद्धा होती है कि हम धनसे सुखी होंगे। परन्तु यह अुनका भ्रम है। केवल दरिद्रताके कारण जो विपत्तियां भोगनी पड़ती हैं, वे धनप्राप्तिसे कम हो सकती हैं। परन्तु धन होने पर भी आरोग्य, बल, विवेक, संयम, अुदारता, सावधानी और अुचित स्थान पर मितव्ययिता आदि गुण न हों तो मनुष्य दुःखी होता है। अिसका धनहीनोंको पता नहीं होता। धनकी मददसे धनवान लोग आराम और सुखका झूठा दिखावा कर सकते हैं। अुनके बाहरी दिखावे और आडम्बरसे सब लोग धोखा खाते हैं। यदि वे सचमुच सुखी यानी तृप्त होते, तो रोज भिन्न-भिन्न सुखोंके पीछे क्यों दौड़ते? यह कहा जाय कि अुनमें बल है, तो फिर शक्ति और परिश्रमके छोटे-छोटे काम करनेके लिअे नौकर-चाकर न होने पर अुनका काम क्यों रुक जाता है? यह कहें कि वे निरोगी हैं, तो अुन्हें हर महीने डॉक्टर, वैद्य और दवाके निमित्तसे सैकड़ों रुपये क्यों खर्च करने पड़ते हैं? यह मानें कि अुनमें सहन-शक्ति है, तो अुन्हें अलग-अलग ॠतुओंमें शिमला, दार्जिलिंग, अूटी, महाबलेश्वर जैसी दूर-दूरकी जगहोंमें जाकर रहनेकी जरूरत क्यों पड़ती है? धनके कारण पड़ी हुअी बुरी आदतों और व्यसनोंको रोज-ब-रोज पूरा किये बिना अुन्हें चैन नहीं पड़ता। अिस पर भी हम अुन्हें सुखी समझते हैं। परन्तु अुनकी वास्तविक स्थिति हम नहीं जानते। सारी जिन्दगी सुखके पीछे दौड़ते रहने पर भी अुन्हें सुख नहीं मिल पाता। अिसलिअे अुन्हें रोज अुसकी तलाश करनी पड़ती है। अिस प्रकारके जीवनमें जहां अिन्द्रिय-जन्य सुखसे ही सुखी

होनेका प्रयत्न जारी रहता है, वहां मानसिक स्थिति कैसी हो सकती है अिसकी कल्पना थोड़ा विचार करनेसे हो जायगी। धनके साथ नीति, सदाचार, न्यायबुद्धि, संयम, अुदारता, धर्मनिष्ठा वगैरा सद्गुण हों, तो ही धनके सदुपयोगकी सम्भावना रहती है। ये गुण न हों तो केवल धन मनुष्यके चित्तमें आशा और तृष्णा बढ़ाता रहता है और अुसे दुर्गतिकी तरफ घसीट ले जाता है। अिस प्रकार मनुष्यके शरीर और मनको भ्रष्ट करनेका कारण बननेवाले धनकी मनुष्यको बेहद अिच्छा और मोह होना मानव-जातिका दुर्भाग्य है।

अिस दुर्भाग्यसे निकलनेके लिअे विवेक, संयम और पुरुषार्थकी आवश्यकता है। हम शरीर और मनको मजबूत तथा पवित्र बना सकें, तो हमारा भाग्य हमारे हाथमें है। सुन्दर मानव-शरीर जैसी दूसरी सुन्दर जीवित वस्तु जगतमें नहीं मिल सकती। निर्दोष मानव-मन जितनी पवित्र सचेतन वस्तु भी दुनियामें नहीं मिल सकती। आज हम सौंदर्यके सच्चे अुपासक नहीं हैं। बाहरसे रंग लगाकर हम सौंदर्यका दिखावा करते हैं। अुससे सौंदर्य प्राप्त नहीं होता। हमारे शरीरमें भरपूर खून नहीं, खूनमें तेजस्विता नहीं, शरीरमें ताकत नहीं, स्फूर्ति नहीं। फिर हममें सौंदर्य कहांसे दिखाअी दे? हम अपना शरीर और अपनी संतानोंके शरीर सुदृढ़, निरोगी, चपल, कसे हुअे, कार्यक्षम बनानेकी कोशिश करें और साथ ही अपना मन शुद्ध, स्थिर, स्वाधीन, शान्त, प्रसन्न और आनन्दी रखना सीख लें, तो सौन्दर्यके साथ मानवताकी अुपासना भी हमारे हाथों होती रहेगी। सद्गुणोंके बिना कोअी भी अुपासना संभव नहीं। अिसके लिअे हमें परिश्रमी और संयमी होना पड़ेगा। खाने-पीनेमें नियमित और परिमित बनना पड़ेगा। काम, क्रोध, लोभको काबूमें रखना पड़ेगा। मन पवित्र, प्रसन्न और आनन्दी रखना होगा। हमें यह निश्चित समझ लेना चाहिये कि किसी भी तात्कालिक अिन्द्रिय-जन्य सुखके पीछे पड़नेसे सच्चा सुख नहीं मिलता। चाहे जैसे खान-पानसे और स्वैर तथा स्वच्छन्द व्यवहारसे शरीर अच्छा नहीं रहता। परन्तु संयमसे ही सुख मिलता है, शरीर अच्छा रहता है। अधिक खानेसे बल नहीं बढ़ता, खाया हुआ पचनेसे

सौन्दर्य और मानवताकी अुपासना

बल बढ़ता है। अिसलिअे संयम, सादा भोजन, परिश्रम, परिमितता और नियमितता आदि सब बातों पर हमारा जोर होना चाहिये। हम ज्ञान और विवेकपूर्वक चलें, तो अिसमें शक नहीं कि हमारी अवनति टलेगी और अुन्नति होगी। परमात्मा हमारे प्रयत्नमें हमें अवश्य सफलता प्रदान करेगा। और हम खुद, हमारी अगली पीढ़ी और साथ ही हमारा समाज मानवताके मार्ग पर आगे बढ़े बिना नहीं रहेगा।

१०

मनुष्योचित सुख और अुसकी प्राप्तिका मार्ग

सच्चे-झूठे सुखकी परीक्षा

सभी मनुष्य सुखकी अिच्छा करते हैं। परन्तु यह पता लगाना कठिन है कि अुनमें से कितनोंको सच्चा सुख मिलता है। मनुष्य सुखकी आशामें ही जीवन बिताता है। वह न मिलनेके कारण अुसे समय-समय पर निराश भी होना पड़ता है। यदि मनुष्य अपनी बुद्धिका ठीक तरहसे अुपयोग करे और अुसकी समझमें आ जाय कि सुखके लिअे सचमुच क्या करना चाहिये, तो अिसमें सन्देह नहीं कि अिसी जीवनमें वह स्वयं सुखी होकर दूसरोंको भी सुखी करेगा। अिसके लिअे अुसे सबसे पहले यह साफ समझ लेना चाहिये कि हम मनुष्य हैं और मनुष्योचित सुखके लिअे जन्मे हैं। अुसे चाहे जिस तरह सुखी होनेकी आशा, अिच्छा या विचार भी छोड़ देना चाहिये। अुसे मनुष्योचित सुखके अलावा और सब सुखोंका त्याग करना सीखना चाहिये। छोटे सुखका त्याग किये बिना हम अूंचे दर्जेके सुखके लायक नहीं बन सकते। आप अपना जीवन जिस ढंगसे बितानेकी अिच्छा और दृढ़ संकल्प करेंगे और अुसे पूरा करनेका अुचित प्रयत्न करेंगे, अुसी प्रकारका जीवन प्राप्त कर सकेंगे। कारण, अिस प्रकारकी शक्ति आपमें है। वह शक्ति आज सुप्त हो, अुसका आपको भान न हो, तो भी अिसमें शंका नहीं कि वह आपमें है। अुसे केवल आपके जाग्रत करने भरकी देर है। सज्जन और दुर्जन, अुद्यमी और आलसी, मेहनती और मुफ्तखोर, परोपकारी और दुष्ट, प्रामाणिक और अप्रामा-

णिक, सत्यवादी और सत्यकी परवाह न करनेवाले, साफदिल और कपटी —सब तरहके आदमी अिस दुनियामें हैं। वे अिसी दुनियामें अपना जीवन बिताते हैं और निर्वाह करते हैं। जिस प्रकारका जीवन व्यतीत करनेकी अिच्छा हो, अुसी प्रकारका जीवन बितानेकी अिस संसारमें गुंजाअिश है। सब अपने-अपने ढंगसे अपनेको सुखी भी मानते होंगे। परन्तु मनुष्योचित सुख किसको मिलता होगा, यह अेक बड़ा सवाल है। जब मनुष्य अैसे सुखके पीछे पड़ता है, जो मानवताको शोभा नहीं देता, तो अुसे सुख न मिलता हो सो बात नहीं। वह मिलता तो है ही। परन्तु वह सुख अितना क्षणिक होता है और आगे-पीछे वह अिस तरह दुःखमें परिणत हो जाता है कि अुसे सचमुच सुख कहा जाय या नहीं, अिसमें शंका ही है।

विवेकरहित जीवन-प्रवाह

हम सब बुद्धिमान हैं फिर भी अिस प्रकारके सुखके पीछे पड़े हुअे हैं। हममें बुद्धि है परन्तु अुसका अुपयोग हम विवेक बढ़ानेमें नहीं करते। हममें अहंकार है परन्तु मानवताका अैसा अभिमान नहीं जिससे आत्म-गौरव बढ़े। अिसके बजाय हम विवेकका विकास करके जीवन-सम्बन्धी बढ़ते हुअे अनुभव परसे सच्चे सुखकी तलाश और परख करें और अपनी सारी शक्ति और बुद्धिका अुपयोग अुसीकी प्राप्तिके लिअे करें, तो हम मानवोचित सुखके अधिकारी होंगे। संगति, वातावरण, परिस्थिति, आदर्श आदिके कारण अेक बार हमारी जिस प्रकारकी जीवन-पद्धति बन गअी है, हमारे विचारोंका रवैया जिस प्रकारका बन गया है, हमारी अिन्द्रियों पर चंचलता, लोलुपताके जो संस्कार पड़ गये हैं, अुन सबके कारण जीवनके दूसरे पहलूका विचार करनेकी हमें कभी कल्पना तक नहीं आती और अुस दिशामें हमारी शक्ति कभी जाग्रत नहीं होती। सुखके लिअे सतत प्रयत्न करते हैं, फिर भी हमें सुख, शांति और संतोष क्यों नहीं मिलते; जीवन बितानेकी कोअी और पद्धति है या नहीं, अिसका विचार भी हमें कभी नहीं सूझता। अिसका कारण यह है कि अुस दृष्टिसे हम बुद्धिका कभी अुपयोग ही नहीं करते। जीवनमें हमेशा दुःख, चिन्ता और अुद्वेग सहन करते हुअे भी हमें कभी यह शक नहीं होता कि हमारे विचारोंमें,

हमारी जीवन-पद्धतिमें कोअी दोष होगा। हमारे आसपासका वातावरण भी अैसा ही होता है। अिसलिअे आदर्श विचार और आदर्श जीवन सुनने या देखनेको नहीं मिलते और अिस तरहके विचार और जीवनके साथ अपने विचारों और जीवनकी तुलना करनेका मौका भी नहीं मिलता। अिसलिअे हमारे दोष हमारे ध्यानमें नहीं आते। हम खुद विचार नहीं करते और हमारी परिस्थिति भी अैसी नहीं होती जिससे अैसे विचार जाग्रत हों। परिणाम-स्वरूप, पिछले जीवनकी तरह भविष्यका जीवन चलाते रहनेके सिवा हमें कुछ और नहीं सूझता।

हमें विचार करना चाहिये कि क्या अिस प्रकारका जीवन बिताकर सदा दुःख भोगते रहनेके लिअे ही परमात्माने मानव-जातिको पैदा किया है? क्या अिसीके लिअे अिस महान प्रकृतिसे अुसका निर्माण हुआ होगा? सृष्टिकी तमाम शक्तियां हमारे अधीन न हों तो भी अितनी शक्ति और बुद्धि परमात्माने या कुदरतने हमें दी है कि हम अपने दुःखोंका निवारण करके सुखी हो सकें। मानव-जातिको अिस प्रकारकी कुछ कम विरासत नहीं मिली है। परन्तु अुसे अिसका अुचित अुपयोग करना चाहिये। अिस अुपयोग पर ही अुसके जीवनका सुखी या दुःखी होना निर्भर करता है। मानव-जातिका अितिहास, मानव-जातिकी आजकी स्थिति, मनुष्यकी मनोरचना, अुसके संस्कार, धार्मिक, सामाजिक, कौटुम्बिक और व्यक्तिगत स्थिति वगैरा सब बातें हम जानते हैं। क्या अिससे हम अितना भी नहीं जान सकते कि मनुष्य हमारे यानी मानव-जातिके दोषोंके कारण दुःखी और सद्‌गुणोंसे सुखी होता है? क्या हम नहीं जानते कि अज्ञान, मोह, विकारवशता, लोलुपता, लंपटता, दुर्व्यसन और किसी भी प्रकारका अतिरेक, ये सब हमारे दुःखके कारण हैं? क्या अभी तक हमारे ध्यानमें यह नहीं आया कि केवल अिन्द्रिय-जन्य भोगोंके पीछे पड़नेसे सुखकी प्राप्ति नहीं होती? क्या हमारी समझमें नहीं आता कि काम, क्रोध, लोभ, अीर्ष्या, वैर, कपट, दुष्टता, स्वार्थ — ये सब अनर्थके कारण हैं? मनुष्य यह सब समझता है। परन्तु जैसे कोअी व्यसनी नशीली चीजोंकी मात्रा बढ़ाकर अपनी व्याकुलता और तड़प शान्त करनेकी कोशिश करता है वैसी ही हमारी हालत है।

दुनियामें जिस चीजके कारण हमें दुःख होता है, वही अधिक मात्रामें करके हम दुःखका नाश करनेकी चेष्टा करते हैं। हम काम, क्रोध, लोभ और दुष्टता आदिसे होनेवाले दुःखोंका अिन्हींके द्वारा नाश करनेकी कोशिश करते हैं। स्वार्थके कारण होनेवाले दुःख और आनेवाली मुसीबतोंको हम और अधिक स्वार्थी बनकर दूर करनेकी कोशिश करते हैं। भोगके बुरे नतीजे हम भोगके जरिये ही कम करनेका प्रयत्न करते हैं। परन्तु क्रोधके कारण होनेवाले दुःख प्रेमसे, लोभके कारण होनेवाले दुःख अुदारतासे, स्वार्थीपनका परिणाम निःस्वार्थतासे और भोगके फल संयमसे मिटानेकी बात हमें नहीं सूझती।

हमारे जिन दोषोंके अनिष्ट परिणाम हमें और दूसरोंको भुगतने पड़ते हैं, अुनके लिअे हमें पछतावा हुअे बिना अिन दोषोंसे हमारा छुटकारा नहीं हो सकता। अितना ही नहीं, परन्तु वे ही दोष हमारे हाथों बार-बार होते हैं और हमें तथा दूसरोंको सदा दुःखी बनाते हैं। दुःखको टालना हो तो हमें अपने दोष पहले दूर करने चाहिये। यह सीधीसादी बात बुद्धिमान कहलाने पर भी हमारी समझमें नहीं आती। यह समझते हुअे भी कि अपने क्रोधके कारण हम खुद और दूसरे भी दुःखी होते हैं, अपनी लोभवृत्तिके कारण हम कठिनाअीमें पड़ते हैं, प्रेमसे, निर्लोभतासे, अुदारतासे ये दुःख और कठिनाअियां दूर करनेके प्रयत्नके बजाय हम अुलटे पहलेसे ज्यादा क्रोधी और लोभी बनकर सुखी होनेका प्रयत्न करते हैं। क्रोधके दुष्परिणाम दिखाअी देने पर भी हम अपने क्रोधी स्वभाव पर अभिमान करते हैं। अपने दुष्टताके परिणाम ज्यादा दुष्ट बनकर और कपटके परिणाम अधिक कपटी बनकर दूर करनेकी हमारी कोशिश होती है। यही स्थिति अन्य सब विकारों और अज्ञान, मोह, स्वार्थ वगैरा बातोंमें पाअी जाती है। अपने दोष मिटाये बिना हम यह कहते हैं कि औरोंको निर्दोष होना चाहिये। हम शायद ही यह मानते हैं कि दुःखका कारण हमारे अपने ही दोष हैं। हमारे कुटुम्ब या समाजमें जो दुःख दिखाअी देते हैं या हमें खुद जो दुःख भोगने पड़ते हैं, अुनका कारण है दूसरोंको ही दोषी माननेकी तरफ हमारे मनका रुख होना। अिस पर भी हमें अपने दोष स्वीकार करने पड़ें, तो

हम यह साबित करनेकी चेष्टा करते हैं कि वे दूसरोंके किसी बड़े दोषकी प्रतिक्रिया या परिणाम हैं।

अेक दुर्गुणका परिणाम दूसरे दुर्गुणके जरिये मिटानेकी कोशिश करके हम दोषोंकी ही संख्या बढ़ाते हैं और अैसी अिच्छामात्र करते हैं कि हम और हमारा कुटुम्ब सुखी रहे। यह बहुत बड़ी भ्रांति है। हम सभी अिस भ्रांतिमें हैं, अिसलिअे हम और हमारा समाज सभी दुःख भोगते हैं। हम केवल अपने सुखका ही विचार करते हैं, दूसरोंके सुख-दुःखका नहीं।

सबके सुखमें हमारा सुख

मानवीय सुख केवल अपने अकेलेके सुखका विचार करने या अुसके लिअे प्रयत्न करनेसे नहीं मिल सकता। यह मानव-धर्मकी प्रारंभिक बात भी हम अभी तक नहीं जानते। यह निश्चित है कि मनुष्य जब तक मानवोचित सुखके पीछे नहीं पड़ता, अुसके लिअे आवश्यक प्रयत्न नहीं करता, तब तक वह सुख प्राप्त नहीं कर सकता। केवल व्यक्तिगत सुखका विचार करके प्राप्त किया हुआ सुख थोड़े ही समयमें दुःखका रूप ले लेता है। और किसी समय यदि अैसा न भी हो, तो वह सुख मनुष्यको शोभा देनेवाला नहीं होता। अिसीलिअे यदि शोभा देनेवाला सुख चाहिये, तो हमें सबके सुखका विचार करना चाहिये। सबको सुखी बनानेका प्रयत्न करना ही मानवोचित सुखका सच्चा अुपाय और मार्ग है। हमारा जीवन हमारा अकेलेका नहीं है। हमारी सब तरहकी शक्ति और बुद्धि सबके लिअे है और सबके सुखकी अिच्छामें ही हमारा सच्चा सुख है। अिस अिच्छाके अनुसार किये गये प्रयत्नसे हमें जिस सुखका लाभ होगा, वह मनुष्यको सुशोभित करनेवाला और अुसका गौरव तथा मानवताका महत्त्व बढ़ानेवाला सच्चा सुख है। मानव-धर्मका यह रहस्य समझकर हमें यह बात अपने हृदयमें मजबूतीसे जमा लेनी चाहिये।

हम मनुष्य हैं तो केवल अपनी क्षुद्र वासना या अिच्छाअें पूरी करके अपने देहको सुखी करनेके लिअे नहीं, बल्कि मानव-धर्म पर चलकर सबको सुखी देखनेके लिअे हैं। अिसीलिअे हमें निर्दोष और सद्गुण-संपन्न होनेकी जरूरत है। निर्दोषताके बिना सद्गुणोंका पूरा विकास नहीं हो सकता, प्रभाव नहीं

मानवीय सुखकी अभिलाषा

पड़ता। सद्‌गुणी होनेका अर्थ ही यह है कि हम दूसरोंके साथ समरस होकर अनके सुख-दुःखका विचार करें, खुद दुःख और मुसीबत अठाकर दूसरोंको सुखी करनेकी कोशिश करें तथा अनके साथ सहानुभूतिका बरताव करें। अैसा करनेसे ही हमारे आत्मभावका विकास होता है। कौटुम्बिक, सामाजिक, राष्ट्रीय — प्रत्येक क्षेत्रमें जहां-जहां दूसरोंके साथ हमारा संबंध हो, वहां सर्वत्र हमारे सद्‌गुणोंके कारण हमारा आत्मभाव विकसित होता रहना चाहिये। अिस आत्मभावमें ही सारे सुखका भंडार है। मानव-जीवन अिस सर्वश्रेष्ठ सुखके लिअे है। अिसीमें मनुष्यकी परमोन्नति है।

अिस विचारसे निराश नहीं होना चाहिये कि अिस परमोन्नति तक हम जल्दी नहीं पहुंच सकते। अिस विचारसे भी डरनेकी जरूरत नहीं कि अिस अन्तिम स्थितिमें पहुंचने तक हमें अनेक दुःख और मुश्किलें अठानी पड़ेंगी। क्योंकि सृष्टिकी योजना अैसी है, परमेश्वरका कानून यह है कि जिस मात्रामें आप मानव-धर्मका अवलम्बन करेंगे, जिस हद तक आप संयमी बनेंगे, जिस मात्रामें आप दूसरोंके लिअे तन-मनसे खपेंगे, असी मात्रामें आपका हृदय शुद्ध होगा तथा आपको शान्ति और प्रसन्नता मिलने लगेगी। ज्यों-ज्यों आपका मन व्यापक होता जायगा, ज्यों-ज्यों आपके हृदयमें सद्‌गुण प्रकट होते जायंगे, त्यों-त्यों आपको धन्यता महसूस होने लगेगी। अिसके लिअे परमोन्नति तक प्रतीक्षा करनेकी जरूरत नहीं; परन्तु अपने मार्गमें सतत आगे बढ़नेकी आपकी अभिलाषा, अत्कंठा और प्रयत्न होना चाहिये।

हमारा जन्म मानवोचित सुखके लिअे है। अिसलिअे अैसे सुखके सिवा दूसरे सुखोंको तुच्छ मानने जितना आत्म-सम्मान हममें पैदा होना चाहिये। अिसके लिअे हमें मोह, लालसा, प्रतिष्ठा, लोभ और मत्सरसे मिलनेवाले सुखोंको निषिद्ध मानना चाहिये। प्रेम, वात्सल्य, श्रद्धा, भक्ति, निष्ठा, सज्जनों और माता-पिताके प्रति आदर, विनय, सत्य, प्रामाणिकता, अदारता, निरलसता, दक्षता, दूसरोंके संतोषमें संतोष माननेकी वृत्ति और अिसी तरह दूसरी सात्त्विक भावनायें — अिन सबके द्वारा मिलनेवाले सुखको ही हमें धर्म्य और ग्राह्य समझना चाहिये। हमारे दोषों और

दुर्गुणोंके कारण हमारे कुटुम्ब, परिवार, नौकर-चाकर, पड़ोसी और मित्रोंको जो दुःख भोगने पड़ते हैं और अिसी तरह हमारे गांव, समाज, देश तथा राष्ट्रके किसी व्यक्तिके साथ हमारा किसी प्रकारका कटुतापूर्ण संबंध हो जानेके कारण अुसे और हमें जो दुःख होते हैं, अुन सबका अुपशमन हमें अपने संयम, प्रेम, विनय, अुदारता आदि सद्‌गुणोंसे करना चाहिये। पश्चात्ताप द्वारा दोषोंका परिमार्जन करना चाहिये। क्रोधके कारण पैदा हुआ दुःख प्रेमसे शान्त करनेमें हमें दुर्बलता न मालूम होनी चाहिये। संयममें हीनता न महसूस होनी चाहिये। यदि हम सच्चा सुख प्राप्त करना चाहते हैं, तो ये तमाम बातें हमें सिद्ध करनी ही चाहिये।

दोषोंका परिमार्जन

मैं आपसे यह आग्रह नहीं करता कि आप दूसरोंके क्रोधको अक्रोधसे या अपनी प्रेमवृत्तिसे जीतें। अितने अूंचे दर्जे तक जानेकी आपकी तैयारी हो, तो आप अुसे जरूर हासिल कीजिये। परन्तु मेरा आपसे अितना आग्रह जरूर है कि आप अपने काम, क्रोध, लोभ, मत्सरका और अुनसे पैदा होनेवाले अपने और दूसरोंके दुःखोंका निवारण अपने संयम, प्रेम, अुदारता, विनय और पश्चात्ताप वगैरा सद्‌गुणोंसे कीजिये। अिसके बिना आप मानवताके रास्ते पर नहीं चल सकते और मानवोचित सुखके पात्र भी नहीं हो सकते। विकारवशता, दोष, दुष्टता, स्वार्थ वगैराके जरिये क्या आप अपनेको या दूसरोंको कभी सुखी कर सके हैं? आप दूसरोंसे प्रेम, कृतज्ञता, नम्रता, सौजन्य वगैरा सद्‌गुणोंकी अपेक्षा रखते हैं न? अिस अपेक्षाके अनुसार सब कुछ हो तो आपको आनन्द और सुख होता है न?

आपका यह अनुभव है न कि वह आनन्द और वह सुख दूसरे अिन्द्रियजन्य आनन्द और सुखकी अपेक्षा श्रेष्ठ और दीर्घ काल तक टिकनेवाला होता है? अुस आनन्द और सुखका अनुभव अकेले आपको ही नहीं, परन्तु दूसरोंको भी होता है न? तो फिर औरोंसे आप जैसे आचरणकी आशा रखते हैं और जब अैसा होता है तो आपको आनन्द और सुख होता है, अुसी तरह आप दुनियाके साथ बरताव करें, तो क्या दुनियामें आनन्द और सुखकी वृद्धि नहीं होगी? क्या आपको भी वैसी ही धन्यता अनुभव नहीं होगी? अिस दृष्टिसे जीवनके तमाम अनुभव — —

कहते हैं, क्या बताते हैं और क्या सिखाते हैं, अिसकी थोड़ी जांच करें और विवेकसे काम लें तो आपको जान पड़ेगा और विश्वास हो जायगा कि मनुष्यकी सच्ची श्रेष्ठता मानव-धर्मके अनुसार बरताव करके मानवोचित सुख प्राप्त करनेमें है।

(दैनिक प्रवचनसे)

११

जीवन अेक महाव्रत

जगतमें अलग-अलग कारणोंसे निर्माण हुअे हमारे अलग-अलग सम्बन्धोंकी जांच करें, तो पता चलता है कि अुनमें से कुछ संबंध प्रिय, कुछ अप्रिय और कुछ प्रिय-अप्रिय यानी मिश्र स्वरूपके होते हैं। हमें अुनकी प्रियता-अप्रियता अुनके द्वारा होनेवाले सुख-दुःखके कारण लगती है। परन्तु हमारे तमाम सम्बन्ध विवेक-शुद्ध और धर्मशुद्ध हुअे बिना हमारी अुन्नति नहीं होगी। केवल स्वार्थके खातिर बांधे गये सम्बन्ध कभी स्थायी रूपसे नहीं टिक सकते। अिस तरह बांधे गये और जारी रखे गये सम्बन्धोंसे हमारी अवनति होती है। ये स्वार्थी सम्बन्ध अिस किस्मके होते हैं कि आज हैं कल नहीं। अिन सम्बन्धोंमें यह होता है कि आज हम जिसकी तारीफ करते हैं, अुसीकी कल हमारा स्वार्थ सधना बन्द हो जाय तो निन्दा करते हैं। हमारे सम्बन्ध प्रिय होनेके कारण यदि अैसा लगता हो कि अुनके कारण हमारा आपसमें प्रेम और विश्वास है, तो भी अुन्हें हमें जांच कर देख लेना चाहिये। प्रेमके पैदा होने या बढ़नेमें कोअी विशेषता नहीं। सुखके अनुभवके साथ प्रेम पैदा होता है और जैसे जैसे वह अनुभव बढ़ता है वैसे वैसे प्रेम भी बढ़ता है। जब सुखका अनुभव होता है तब हम अेक-दूसरेके लिअे कष्ट सहन करते हैं। भावनाके जोशमें भावनाका आनन्द भी हमें अुस समय मिलता है। आनन्दके आवेशमें भाअी भाअीके लिअे और मित्र मित्रके लिअे तकलीफ अुठाये तो अिसमें कोअी विशेषता नहीं। परन्तु किसी कारणसे अेक-

विवेकयुक्त और धर्म्य सम्बन्ध

दूसरेके स्वार्थ या सुखमें विरोध पैदा होने पर, मत या जीवन-पद्धतिमें फर्क पड़ने पर और यह जानने पर भी कि हमारा भाअी या मित्र हमारी निन्दा करता है, पहलेका प्रेम कायम रखनेमें ही सच्ची विशेषता है। हमारे मनकी सच्ची परीक्षा अैसे ही वक्त होती है। सुखके समय प्रेम और सुखके नष्ट होते ही द्वेष पैदा होना साधारण मनुष्यके स्वभावका लक्षण है। परन्तु विवेकी मनुष्य जानता है कि कौटुम्बिक या कुटुम्बके बाहरका निकट सम्बन्ध जीवनके अन्त तक टिकाये रखनेकी कोशिश करना जीवनकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

प्रेम जोड़नेकी अपेक्षा प्रतिकूल परिस्थितिमें अुसे टिकाये रखना ही अधिक कठिन है। अिसलिअे मतभेद या और किसी कारणसे हमारा प्रेम डिग जानेका जब-जब अवसर आये, तब-तब अपनी पहलेकी प्रेम-भावनाको प्रमाण मानकर — अुसे याद करके — अपनी सारी सात्त्विकता अिकट्ठी करके भी अुसी भावनाको दृढ़ रखनेका हमें प्रयत्न करना चाहिये। अगर यह बात मनुष्यके चित्तमें पूरी तरह जम जाय कि अेक बार जोड़ा हुआ प्रेम-सम्बन्ध स्वार्थके कारण टूटनेमें अपनी सत्त्वहानि है, तो कोअी भी सम्बन्ध जोड़ते समय, बढ़ाते समय या तोड़ते समय वह विवेक और सावधानीसे काम लेगा। जिस सम्बन्धमें प्रेम, विश्वास अेकदम बढ़ते हैं और फिर अेकदम या कालान्तरमें घट जाते हैं, अुस सम्बन्धमें स्वार्थ, भोलापन, भावुकता, अुतावली, अविवेक वगैरा दोष अेक या दोनों तरफ अवश्य होने चाहिये। अिसी तरह जिस सम्बन्धमें प्रेम, विश्वास वगैराकी वृद्धि सहवास, प्रसंग, आपत्ति और अनुभवके कारण धीरे-धीरे होती है, अुस सम्बन्धमें विवेक और सात्त्विकता होनी चाहिये अिसमें शक नहीं।

यह सारा निरूपण ध्यानमें रखकर आप अपने बारेमें विचार कीजिये। अपने जीवन, बरताव और स्वभावकी जांच कीजिये और ये या अिनके जैसे दूसरे कोअी दोष आपमें हैं या नहीं यह खोज लीजिये। मैंने शुरूमें ही आपसे कहा है कि जगतके साथ हमारे सम्बन्ध धर्म्य होने चाहिये। वे अैसे हों और अुन्हें अैसे ही रखना और टिकाना

निरहंकारिता और संतोषसे कष्ट सहन करना ही धर्म है

हमें आता हो, तो ही हमारी अुन्नति हो सकती है। स्वार्थी सम्बन्ध कभी धर्म्य नहीं हो सकते। हरअेक आदमी सुखकी अिच्छा करता है, परन्तु यह बात आप न भूल जाअिये कि धर्मके बिना मनुष्योचित सुख कभी किसीको नहीं मिल सकता। समाजमें अेक-दूसरेके लिअे कष्ट सहन किये बिना मानव-जीवन चलना ही असम्भव है। सद्भावनासे, अुदात्त बुद्धिसे और सन्तोषसे कष्ट सहन करनेमें सच्चा धर्म है। जीवनमें अहंकारसे हम जितना आचरण करते या कष्ट सहते हैं वह सब अधर्म्य है। अिसलिअे हम जो कुछ कर्तव्य-बुद्धिसे समझकर करते हैं और दूसरोंके लिअे तकलीफ अुठाते हैं, अुसमें हमें अहंकार न होना चाहिये। क्योंकि हमारा अहंकार जिसके लिअे हमने कुछ कष्ट सहा होगा अुसे दुःख देगा, अुससे पश्चात्ताप करायेगा और हमारे और अुसके सम्बन्धमें कटुता पैदा करेगा। अहंकार कभी भी दूसरे दोषोंसे अछूता नहीं रह सकता। हमने दूसरे पर अुपकार किया है, यह भावना अहंकारके साथ रहेगी ही। अुपकारकी भावनाके पीछे लोभ होगा ही, और लोभकी जड़में बदलेकी — कमसे कम स्तुतिकी — अिच्छा तो स्वाभाविक ही होगी। अहंकारके साथ रहनेवाले अैसे अनेक दोषोंके कारण हमारे धर्मका तेज नष्ट होता है। अिसलिअे अुन्नत होना हो, धर्मनिष्ठ रहना हो, तो हमें केवल सद्गुणोंके और मानवताके अुपासक बनना चाहिये।

अहंकारी व लोभी मनुष्यके बारेमें सावधानी

कोअी भी स्वाभिमानी मनुष्य अहंकारी व लोभी मनुष्यके अुपकारके नीचे नहीं आना चाहता। कभी अैसा प्रसंग आ जाय, तो अुसके लिअे अुसे पछतावा हुअे बगैर नहीं रहता। अिसलिअे आपको अहंकारी और लोभी मनुष्यसे सावधान रहना चाहिये। क्योंकि वे दूसरोंके अपने पर किये गये बड़े-बड़े अुपकार तो झट भूल जाते हैं, परन्तु दूसरोंके लिअे अुन्हें जरा भी कष्ट सहन करना पड़ा हो तो अुसमें अुन्हें अपना बड़प्पन और अुदात्तता दिखाअी देती है। वे कभी यह महसूस नहीं करते कि सामनेवाले द्वारा दिखाअी गअी कहीं बड़ी कृतज्ञता या दिये गये कहीं बड़े बदलेसे अुस अुपकारकी भरपाअी हो गअी है। अपने किये हुअे छोटेसे अुपकारको बड़ा रूप देकर सबके

सामने कहते फिरनेकी अुनकी आदत होती है। अुनकी अिस आदतका जब आपको अपने विषयमें अनुभव होगा, तब आपको लगेगा कि जिस अवसर पर अुन्होंने आपको मदद दी, अुसमें चाहे जितना दुःख भोगना पड़ता तो भी आप भोग लेते, लेकिन अुस समय अिनकी मदद न ली होती तो अच्छा होता। अुस समयके अुस दुःखका — अुसके कारणोंका — सृष्टिके नियमानुसार कभी न कभी तो अन्त आता ही। लेकिन अुनके अहंकार और लोभका कोअी अन्त नहीं। मानव-जीवन सबके पर-स्पर सहयोग, सहानुभूति, अुदारता वगैरा अनेक सद्‌गुणों पर चलता है। अुनके बिना जीवन और व्यवहार चल ही नहीं सकता, यह सीधी-सादी बात भी अहंकारी और लोभी लोग नहीं जानते। अुनका स्वभाव मानव-धर्मसे अुलटा होने पर भी अुनके आभारके नीचे दब जानेके बाद अपनी कृतज्ञता-बुद्धिके कारण आप अुनके स्वभावका विरोध भी नहीं कर सकेंगे। अुनके अुपकारके नीचे दब जानेके कारण आप पश्चात्ताप और कठिना-अीकी हालतमें फंस जायंगे। अिसलिअे शुरूसे ही अिस विषयमें सावधान रहना अच्छा है। हमारे पिताजी अैसे अवसर पर अेक सूचक आर्या बोला करते थे :

गुणवन्ताच्या घरीं याचना विफलहि बरवी वाटे।
नको नको ती नीचापाशीं होतांहि फल मोठें॥

(गुणवानसे की हुअी याचना निष्फल जाय तो भी वह अच्छी है; परन्तु नीच मनुष्यसे बड़ा फल मिलता हो तो भी याचना न करनी चाहिये।) सार यह कि विवेकी मनुष्यको अपने सत्कर्म या सद्‌गुणके लिअे अहंकार न करना चाहिये, न लोभ ही करना चाहिये। अिसी तरह अहंकारी और लोभी मनुष्यके अुपकारके नीचे भी कभी नहीं आना चाहिये।

हमारा मुख्य सवाल यह है कि हमारे सारे संबंध विवेक-शुद्ध और धर्मशुद्ध किस तरह बनें और रहें। सम्बन्धोंको अैसा बनाना और रखना मानव-जीवनका महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है। यह सोचे-समझे बिना कि हमारे कौनसे दुर्गुण क्यों और किस तरह अिस कर्तव्यमें बाधक

जीवन-संबंधी लापरवाही

और वे बाधक न बनें अिसके लिअे हमें क्या करना चाहिये, हमारा मुख्य सवाल हल नहीं हो सकता। मानव-जीवन सामूहिक होनेके कारण अुसमें हमारे सम्बन्ध सहज ही परस्पर गुंथे रहेंगे। यदि हम सबका अेक-दूसरेके साथ सद्भावना-युक्त और विवेकयुक्त सहयोग न हो, तो अिन सम्बन्धोंका सरल, व्यवस्थित और सन्तोषकारक रहना सम्भव नहीं। अुनमें सहयोग, व्यवस्था, अनुशासन, सद्भाव और परस्पर मेलका कितना महत्त्व है और अिसके लिअे हममें से हरअेकमें मानवीय सद्गुण होना कितना जरूरी है, यह अच्छी तरह न समझनेके कारण ही हमारे पारस्परिक सम्बन्ध बहुत पेचीदा बनकर हम सबके लिअे दुःखदायी हो जाते हैं। हमारी वृत्तियां और अिच्छायें धर्म्य हैं या अधर्म्य, यह देखे बिना अुन्हींको हम महत्त्व देते हैं और अुन्हें पूरा करनेके खातिर कभी खुशामद तो कभी निन्दा, कभी दंभ तो कभी धूर्तता आदि दुर्गुणोंका आश्रय लेते हैं। विवेक और संयम न होनेके कारण हम क्रोधका शमन प्रेम और क्षमासे करनेके बजाय मत्सर और कपटसे करनेकी कोशिश करते हैं। हम सभी अिस मामलेमें लगभग अेकसे हैं, अिसलिअे हम सबने मिलकर अपना खुदका और दूसरोंका संसार दुःखमय बना दिया है। अिसका कारण यह है कि हम मानव-जीवनका मूल्य नहीं समझते। हम मिली हुअी अन्तर्बाह्य साधन-सम्पत्तिका विचार करके मानवताके अनुरूप और मानव-मनको शोभा देनेवाली महत्त्वाकांक्षा रखने लगेंगे, तो आजके जैसे क्षुद्र जीवनसे हमें कभी समाधान नहीं होगा।

आत्मभावका विकास

मनुष्य विवेक करने लगे, अपने और दूसरेके पूर्व अनुभव ध्यानमें रखकर अुनसे जीवनके लिअे अुचित सार निकालकर सबक सीखता जाय, अुस सबकका वर्तमान और भविष्यमें ठीक अुपयोग करनेके लिअे संयम रखने और पुरुषार्थ करनेकी कला साध ले, तो यह समझना चाहिये कि अुसमें मनुष्यता आने लगी है और वह मानव-जीवनका महत्त्व समझने लगा है। अपनी आवश्यकताओं और अिच्छाओंकी तरह वह औरोंकी आवश्यकताओं और अिच्छाओंका विचार करने लगे और अिसके लिअे अपनी अिच्छाओंको रोककर दूसरोंके लिअे सन्तोषपूर्वक कष्ट सहने लगे,

तो वह मानवताके मार्ग पर लगा हुआ कहा जा सकता है। मानवताका अर्थ ही दूसरोंके प्रति समभाव है। समभावके आचरणसे ही अपने शरीर तक मर्यादित लगनेवाला 'आत्मभाव' दुनियामें व्यापक होकर बढ़ने लगता है। जैसे-जैसे हमारी मानवता बढ़ेगी, जैसे-जैसे वह सद्‌गुणोंके रूपमें प्रकट होती जायगी, वैसे-वैसे हमारे 'आत्मभाव' का विकास होता जायगा और अुसका घेरा विशाल बनता जायगा।

अिस मानवताका प्रारंभिक गुण दया है। किसी भी किस्मका पूर्व सम्बन्ध न होने पर भी दूसरेके दुःखके अवसर पर जो कोमल भाव मनुष्यके मनमें पैदा होता है और अुसे विह्वल कर देता है अुसीका नाम दया है। यह दया ही मानव-धर्मकी जड़ है। अिसीलिअे सन्त तुलसीदास कहते हैं:

दया धर्मका मूल है, पापमूल अभिमान।
तुलसी दया न छांड़िये, जब लग घटमें प्रान॥

दयासे धर्म और अहंकारसे पाप यानी अधर्म फैलता है। अिस अेक सूत्रमें मानवीय धर्म-अधर्मके कितने महान सिद्धान्त भरे हैं! दयासे शुरू होनेवाली मानवताको अपनी सिद्धिके लिअे अेकके बाद अेक अनेक गुणोंका आसरा लेना पड़ता है। अपने शरीर तक ही मर्यादित और संकुचित 'आत्मभाव' दयाके कारण पीड़ित व्यक्ति तक जा पहुंचा कि अुसे स्थिर और दृढ़ करनेके लिअे मनुष्यको अपने शरीर-सुखके बारेमें थोड़ा-बहुत संयम करना पड़ता है। अिसके लिअे अुसे कष्ट सहन करना पड़ता है, पुरुषार्थ करना पड़ता है। पीड़ित व्यक्ति और मैं खुद — अिन दोमें से कष्ट सहन कर सके अैसा कौन है, यह विवेकपूर्वक देखकर मनुष्यको निर्णय करना पड़ता है। अिस प्रकार संयम, त्याग, सहनशीलता, विवेक, अुदारता वगैरा गुण प्रसंगानुसार अेकके बाद अेक मनुष्यको स्वीकार करने पड़ते हैं। अिसी तरह अुसकी मानवता बढ़ती और प्रगट होती रहती है। मानवताका यह सहज क्रम है। अिस क्रमको समझ कर बरताव करेंगे, तो आपको अपने मार्गमें सिद्धि मिले बिना नहीं रहेगी।

यह मार्ग सिद्ध करनेके लिअे अैसी धारणा और श्रद्धा आपको रखनी चाहिये कि जीवन अेक महाव्रत है। अिसके लिअे आपको अपनी संकुचित कौटुम्बिक भावना बदलनी होगी; और अुस भावनाका क्षेत्र आपको भरसक विशाल और शुद्ध बनाना होगा। जिस जिसको आपकी शक्ति और बुद्धिकी आवश्यकता हो, जो आपकी मददके बिना रुक गया हो, आपको लगना चाहिये कि अुसे अुदारतासे सहायता देना हमारा कर्तव्य है। कर्तव्य करनेमें जहां आपकी शक्ति कम पड़ जाय, वहां यह समझ लीजिये कि आपकी शक्तिकी मर्यादा आ गअी; लेकिन कर्तव्यकी मर्यादा पूरी हुअी न समझिये। आप यह समझिये कि हमारा कर्तव्य विशाल है, हमारा क्षेत्र अपार है, परन्तु हमारी शक्ति और बुद्धि मर्यादित है।

महाव्रतकी धारणा

जीवनरूपी महाव्रतको सांगोपांग पूरा करनेके लिअे आपको समदृष्टि रखनी होगी। आपके मनमें यह विचार या चिन्ता नहीं होनी चाहिये कि हमारे कर्तव्यका क्षेत्र छोटा है या बड़ा, अुसमें बाह्यतः कोअी लाभ है या हानि, अथवा प्रतिष्ठा है या अप्रतिष्ठा। आपको अितना ही देखना चाहिये कि वह कार्य व्यक्ति और समाजके कल्याणके लिअे जरूरी है या नहीं। अिसके लिअे आपको कभी तो राष्ट्रीय अथवा धार्मिक कार्यके व्यापक क्षेत्रमें से वैयक्तिक क्षेत्रमें अुतरना पड़ेगा, और कभी वैयक्तिक क्षेत्रसे निकलकर महान राष्ट्रीय कार्यके साथ सम्मिलित होना पड़ेगा। परन्तु अिन दोनों कार्योंमें आपकी दृष्टि और हेतु शुद्ध और कर्तव्य-परायण ही होने चाहिये। किसी भी कार्यमें आपकी अुदात्तता, निःस्वार्थता, कार्य-कुशलता और निरहंकारिता तथा हरअेक कार्यसे अुत्पन्न होनेवाली अिष्ट सिद्धिको अुस कार्यकी अपेक्षा अधिक व्यापक और अधिक अुच्च क्षेत्रमें समर्पण करनेकी आपकी दीर्घदृष्टि — ये सब गुण आपमें समान रूपसे होने चाहिये। आपकी अपनी शुद्धिका मापदंड किसी भी कार्यमें अेकसा और श्रेष्ठ प्रकारका होना चाहिये। हरअेक छोटे-बड़े कर्तव्यके मौके पर अपनी मानवता ही बढ़ानेकी आपकी कोशिश होगी, तो किसी भी मौके या सम्बन्धसे अपनी मान-प्रतिष्ठा अथवा दूसरी क्षुद्र अभिलाषा सिद्ध करनेकी कल्पना ही कभी आपके मनमें नहीं आयेगी। अिस व्रतकी

साधनामें आपको कभी-कभी बहुत कष्ट सहना पड़ेगा। केवल कर्तव्याचरण पर जोर देकर अपनी मानवता साधनेके लिअे जिनके हितके खातिर आप अपने देहसुख, स्वास्थ्य, मान और प्रतिष्ठाका त्याग करते होंगे और प्रसंगवश कअी ओरसे असह्य शारीरिक और मानसिक कष्ट चुपचाप सहन करते होंगे, अुस वक्त भी शायद अुन्हींकी तरफसे आपको कठोर वाक्प्रहार और धिक्कार सहन करने पड़ेंगे। अुन्हींके द्वारा आपके प्रति अुठाअी गअी क्षुद्र शंकायें और आप पर लगाये गये आरोप आपको सहने पड़ेंगे। अैसे समय कभी जवाब देकर तो कभी मौन रहकर और कभी अुपेक्षा-वृत्ति रखकर केवल कर्तव्य और मानवताकी निष्ठाके बल पर आपको अपने मार्ग पर स्थिर रहना पड़ेगा। अिस निष्ठाके कारण औरोंकी दिखाअी हुअी कठोरता या कृतघ्नतासे आपके भीतरकी दया और क्षमा कम नहीं होगी। आप पर अन्याय हो तो भी आपकी अुदारता मन्द नहीं होगी। कठिन प्रसंग पर आप धीर और गंभीर बने रहेंगे। आपके हृदयकी विशालता और शुद्धता, अुदारता और अुदात्तताकी किसीको कल्पना न हो, तो भी आप निराश न होंगे। आपकी कर्तव्यनिष्ठाका किसीको भान न हो, तो भी अपने मार्ग परसे आपका विश्वास कभी नहीं डिगेगा। जिस अुच्च मानसिक स्थितिकी औरोंको कल्पना तक नहीं हो सकती, अुसके परीक्षक आप अुन्हें कभी न मानेंगे। आपके जिस हृदयने जीवनको अेक महाव्रतके रूपमें धारण किया है, वही आपके सारे जीवनका साक्षी होगा। अुस व्रतके खातिर सब कुछ सहन करनेकी शक्ति आपको हमेशा अपने हृदयसे ही मिलती रहेगी। और अिस शक्तिके आधार पर आपको अपने व्रतकी सिद्धि प्राप्त हुअे बगैर नहीं रहेगी।

यह भी नहीं कि जीवनमें आपको हमेशा तकलीफें ही अुठानी पड़ेंगी। व्रतका मतलब यह नहीं है कि अुसमें हमेशा कठिनता ही होगी।

महाव्रतकी स्वाभाविकता

पवित्र और अुदात्त हेतुकी सिद्धिके लिअे जीवनको अेक व्रत समझते हुअे भी आपको अपने जीवनमें बार-बार अैसा अनुभव होता ही रहेगा कि जीवनकी सात्त्विक भावनाओं और सात्त्विक कर्मोंके अधिकांश शुभ और कल्याणकारी होनेवाले व्यक्तिगत और सामाजिक परिणाम देखकर आपका

हृदय आनन्द और अुल्लाससे भर गया है। दूसरोंका भला होता देखकर, अुन्हें दुःखसे मुक्त हुअे देखकर आपको कृतार्थता और धन्यता महसूस होगी। अिस प्रकार मानवताके मार्गमें अधिकाधिक सफलता प्राप्त करनेका आपका अनुभव जैसे-जैसे बढ़ता जायगा, वैसे-वैसे अुसी मार्ग पर आगे चलनेका आपका निश्चय और भी प्रबल होगा। आपका अुत्साह बढ़ता रहेगा। अुसके सामने तमाम संकट, तमाम रुकावटें, आपको तुच्छ मालूम होंगी। ज्यों-ज्यों आप अिस मार्गमें आगे बढ़ेंगे, त्यों-त्यों आपकी सात्त्विकतामें शुद्धता और तेजस्विता आती जायगी। आपकी बुद्धि प्रखर होगी। सद्विचार और सद्वर्तन आपका स्वभाव बन जायगा। परमात्माके प्रति आपकी निष्ठा बढ़ती जायगी। आत्म-विश्वास बढ़ता जायगा। फिर यह महाव्रत आपको महाव्रत जैसा नहीं लगेगा। अुसकी कठिनता जाती रहेगी। वह व्रत ही आपका सहज जीवन बन जानेके बाद, अुसीमें धन्यता, कृतार्थता और प्रसन्नता महसूस होनेके बाद अुसमें कठिनता कहांसे दिखाअी देगी? अैसी स्थितिमें आपको यही लगेगा कि दुनियाके हरअेक व्यक्तिके साथ आपका सम्बन्ध विवेक-शुद्ध, धर्मशुद्ध और न्यायशुद्ध है। व्यक्तिगत, कौटुम्बिक, सामाजिक और राष्ट्रीय — हरअेक सम्बन्ध और क्षेत्रमें आपको अपने लिअे अेकसी प्रियताका ही अनुभव होगा। माता, पिता, पति, पत्नी, भाअी, बहन, चाचा, मामा, पुत्र, पुत्री, पड़ोसी, आप्तजन, मित्र या दूसरे कोअी — जैसा भी आपका सम्बन्ध होगा वह पवित्र, अुदात्त और आदर्शरूप ही जान पड़ेगा। यह महाव्रत जिस माताने धारण किया होगा, वह माता आदर्श माता बनेगी और पिता आदर्श पिता होगा। पुत्र हो तो अैसा ही महाव्रती होना चाहिये, मित्र हो तो अैसा ही होना चाहिये — अिस प्रकार हरअेक सम्बन्धके बारेमें आपके लिअे अेक ही तरहकी राय बनेगी। अिस प्रकार जीवनमें सभी ओरसे सिद्धि मिलनेके कारण आप घरमें प्रिय, समाजमें मान्य और अपनी दृष्टिसे धन्य और कृतकृत्य होंगे। अिस सिद्धिके लिअे ही मानव-जीवन है। यह सिद्धि प्राप्त कर लेनेके बाद जीवनमें और कुछ सिद्ध करनेको रहता ही नहीं।

(दैनिक प्रवचनसे)

हृदय आनन्द और अुल्लाससे भर गया है। दूसरोंका भला होता देखकर, अुन्हें दुःखसे मुक्त हुअे देखकर आपको कृतार्थता और धन्यता महसूस होगी। अिस प्रकार मानवताके मार्गमें अधिकाधिक सफलता प्राप्त करनेका आपका अनुभव जैसे-जैसे बढ़ता जायगा, वैसे-वैसे अुसी मार्ग पर आगे चलनेका आपका निश्चय और भी प्रबल होगा। आपका अुत्साह बढ़ता रहेगा। अुसके सामने तमाम संकट, तमाम रुकावटें, आपको तुच्छ मालूम होंगी। ज्यों-ज्यों आप अिस मार्गमें आगे बढ़ेंगे, त्यों-त्यों आपकी सात्त्विकतामें शुद्धता और तेजस्विता आती जायगी। आपकी बुद्धि प्रखर होगी। सद्विचार और सद्वर्तन आपका स्वभाव बन जायगा। परमात्माके प्रति आपकी निष्ठा बढ़ती जायगी। आत्म-विश्वास बढ़ता जायगा। फिर यह महाव्रत आपको महाव्रत जैसा नहीं लगेगा। अुसकी कठिनता जाती रहेगी। वह व्रत ही आपका सहज जीवन बन जानेके बाद, अुसीमें धन्यता, कृतार्थता और प्रसन्नता महसूस होनेके बाद अुसमें कठिनता कहांसे दिखाअी देगी? अैसी स्थितिमें आपको यही लगेगा कि दुनियाके हरअेक व्यक्तिके साथ आपका सम्बन्ध विवेक-शुद्ध, धर्मशुद्ध और न्यायशुद्ध है। व्यक्तिगत, कौटुम्बिक, सामाजिक और राष्ट्रीय — हरअेक सम्बन्ध और क्षेत्रमें आपको अपने लिअे अेकसी प्रियताका ही अनुभव होगा। माता, पिता, पति, पत्नी, भाअी, बहन, चाचा, मामा, पुत्र, पुत्री, पड़ोसी, आप्तजन, मित्र या दूसरे कोअी — जैसा भी आपका सम्बन्ध होगा वह पवित्र, अुदात्त और आदर्शरूप ही जान पड़ेगा। यह महाव्रत जिस माताने धारण किया होगा, वह माता आदर्श माता बनेगी और पिता आदर्श पिता होगा। पुत्र हो तो अैसा ही महाव्रती होना चाहिये, मित्र हो तो अैसा ही होना चाहिये — अिस प्रकार हरअेक सम्बन्धके बारेमें आपके लिअे अेक ही तरहकी राय बनेगी। अिस प्रकार जीवनमें सभी ओरसे सिद्धि मिलनेके कारण आप घरमें प्रिय, समाजमें मान्य और अपनी दृष्टिसे धन्य और कृतकृत्य होंगे। अिस सिद्धिके लिअे ही मानव-जीवन है। यह सिद्धि प्राप्त कर लेनेके बाद जीवनमें और कुछ सिद्ध करनेको रहता ही नहीं।

(दैनिक प्रवचनसे)
